दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

(A CRITICAL HISTORY OF DAKHINI LITERATURE)

डॉ० इकबाल अहमद
डी० लिट्०

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

•

•

प्रथम संस्करण
१९८६

•

स्टार प्रिण्टर्स
२८७, दरियाबाद
इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

मूल्य ८०.००

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य का इतिहास वृहद् एवं जटिल है। इस साहित्य के उद्गम व विकास में जितनी विविधताएँ और गुत्थियाँ हैं, सम्भवतः उतनी किसी अन्य भारतीय साहित्य के इतिहास में नहीं है। इसका मूल कारण यह है कि हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास और विस्तार आरम्भ से बहुउद्देशीय रहा है। हिन्दी का जो परिनिष्ठित एवं परिष्कृत रूप इस समय साहित्य में प्रयुक्त हो रहा है, वह किसी नगर विशेष, जनपद विशेष अथवा उपजनपद विशेष में विकसित नहीं हुआ है। इसके विकास में सदियों से समस्त देश का योग रहा है। असाधारण ज्ञानी एवं निष्णात दार्शनिक से लेकर किसान व मजदूर तक ने इस भाषा की शब्द सम्पदा को समृद्ध किया है। देश की हिन्दीतर भाषाओं ने भी अनेक क्षेत्रों में अपने चिन्तन का सार हिन्दी को प्रदान किया है और आज भी कर रही है। अतः यह आवश्यक है कि हिन्दी क्षेत्र से बाहर चर्चित दक्खिनी की रचनाओं पर आलोचनात्मक दृष्टिपात किया जाये जिससे अन्तःसम्बन्धों का विवेचन-विश्लेषण हो सके।

दक्खिनी का सम्बन्ध पछाँही बोलियों से अपेक्षया घनिष्ठ है। अतः हिन्दी के साहित्यिक व परिनिष्ठित रूप के विकासात्मक अध्ययन के लिए इन बोलियों का अध्ययन स्वतः आवश्यक हो जाता है। एक कारण यह भी है कि हिन्दी (खड़ी बोली) की लिखित सामग्री 18वीं शताब्दी से पूर्व नहीं मिलती, किन्तु दक्खिनी में पाँच सौ वर्षों (14वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक) की समृद्ध सामग्री आज भी विद्यमान है। वास्तव में यह सब इस कारण हो सका क्योंकि दक्खिन प्रदेश के शासकों ने अपने युग के जन-जीवन में सक्रिय योग दिया था और वहाँ के विद्वानों ने भी साहित्य सृजन में विशेष रुचि दिखायी थी। इस प्रकार दक्खिनी भाषा और साहित्य के विकास में पश्चिमी-गुजराती और मराठी के साथ-साथ दक्षिण भारत की गौरवशाली भाषाओं—तेलुगू, कन्नड और तमिल—का विशेष योग रहा है।

सूफ़ी साधक शेख़ फरीद शकरगंज, निज़ामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो ने अपने प्रयास से हिन्दी के उस रूप को साहित्य में प्रतिष्ठित किया जो क्षेत्रीय तथा जनपदीय प्रभावों से ऊपर उठकर एक विशाल क्षेत्र की भाषा के रूप में परिणत होता जा रहा था किन्तु क्षेत्रीय अहमन्यतावश उत्तर भारत में उसका सार्वदेशिक विकास अवरुद्ध सा रहा। जहाँ उत्तर में 14वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक हिन्दी—राजस्थानी, मैथिली, ब्रजभाषा और अवधी के रूप में ही पहचानी जाती रही वहाँ दक्षिण भारत में दक्खिनी दूरदर्शी सूफ़ी साधकों की तपश्चर्या से फलती-फूलती रही, जो सार्वदेशिक हिन्दी का अभिन्न अंग है और जिसके जाने बिना न तो हिन्दी के और

न ही उर्दू के उद्गम, विकास और प्रसार का विवरण पूरा हो सकता है। वस्तुतः हिन्दी का दक्षिणी संस्करण ही दक्खिनी भाषा है।

लेखक के इस विनम्र प्रयास का प्रमुख उद्देश्य दक्खिनी के विपुल परन्तु उपेक्षित साहित्य की सीमाओं को निर्धारित करना और उसका विकासात्मक अध्ययन करना है। उसका अभिमत है कि दक्खिनी के व्यवस्थित अध्ययन के बिना हिन्दी साहित्य का अध्ययन अपूर्ण ही रहेगा। यह भी सत्य है कि दक्खिनी साहित्य के अध्ययन से राष्ट्रीय चेतना की नीव दृढ़ हो सकेगी। अद्यावधि दक्खिनी के बहुत कम ग्रन्थ प्रकाश पा सके हैं, अधिकांश ग्रन्थ पाण्डुलिपियों में हैं और ग्रन्थागारों में अन्वेषकों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रस्तुत अनुसंधित्सु का सतत प्रयास रहा है कि दक्खिनी का कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ अध्ययन से छूटने न पाये, किन्तु उसकी भी अपनी सीमाएँ हैं।

यह शोध प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है :—

प्रथम अध्याय में दक्खिनी भाषा की उत्पत्ति, उसके नामकरण की समस्या तथा उसके विकास की परिस्थितियों का सम्यक् विवरण प्रस्तुत किया गया है। दक्खिनी और दक्षिणवर्ती भाषाओं के सह सम्बन्धों को एवं दक्खिनी और हिन्दी के सम्बन्ध को मौलिक रूप से परखने का गम्भीर प्रयास हुआ है।

द्वितीय अध्याय—दक्खिनी साहित्य की सामग्री और काल विभाजन से संबद्ध है। इस अध्याय में दक्खिनी की विपुल सामग्री का संक्षेप में परिचय दिया गया है तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा दक्खिनी साहित्य के काल अथवा खण्ड विभाजन का मूल्यांकन कर उसे नयी दृष्टि से परखा गया है।

तृतीय अध्याय में दक्खिनी की आदिकालीन परिस्थितियों की स्पष्ट व्याख्या की गई है एवं तत्कालीन साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया है—(क) प्रमुख कवि (ख) गौण कवि। अन्त में विवेच्य काल के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का स्पष्ट विवरण दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक 'पूर्व मध्यकाल' है। इस स्थल पर तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए साहित्य सेवियों को फिर दो वर्गों में रखा है—(क) प्रमुख कवि और (ख) गौण कवि। अध्याय के अन्त में सामान्य प्रवृत्तियों की विवेचनात्मक समीक्षा की गई है।

पंचम अध्याय 'उत्तर मध्यकाल' है। इसमें तत्कालीन परिस्थितियों की विस्तृत चर्चा है और कवियों के व्यक्तित्व व कृतित्व का पुनर्मूल्यांकन किया गया है और अन्त में काल विशेष की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण है।

अन्तिम और षष्ठ अध्याय का विषय है—'दक्खिनी का गद्य साहित्य'। इस स्थान पर दक्खिनी गद्य की समस्त उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया

है। इस अध्याय में कतिपय ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों को भी सम्मिलित किया गया है जिनके लेखक आज तक अज्ञात हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध परमादरणीय गुरुवर डा० शंकर लाल यादव के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। प्रोफेसर यादव का मार्ग-दर्शन एवं दिशा निर्देशन सदैव लेखक को आत्म विश्वास प्रदान करता रहा तथा अध्ययन को आगे खिसकाता रहा है। प्रस्तुत कृति में जो सुवास है वह उनकी देन है और जो त्रुटिकण्ठक हैं वे लेखक के हैं।

उन समस्त मित्रों, पुस्तकालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों एवं विद्वानों के प्रति जिनकी शुभाशंसाओं व रचनाओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से शोध प्रबन्ध के प्रणयन में योग हुआ है, लेखक आभार स्वीकार करता है।

मैं, लोक भारती, इलाहाबाद, के श्री रमेश चन्द्र जी और श्री दिनेश चन्द्र जी का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने 'दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के प्रकाशन में रुचि ली। आशा है, हिन्दी जगत, इस ग्रन्थ का यथोचित स्वागत करेगा।

—इक़बाल अहमद

विषयानुक्रमणिका

□ □

प्रथम अध्याय

दक्खिनी का उद्भव और विकास

पीठिका

भारत में आने वाले मुसलमानों ने यहाँ की भाषाओं को चाहे वे साहित्यिक-संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि ही क्यों न रही हों, यहाँ तक की स्थानीय बोलियों तक को 'ज़बान-ए-हिन्दी' कहा। हिन्दी से उनका अभिप्राय हिन्दुस्तान की भाषा से था। छठी शताब्दी में फारस के बादशाह नौशेरवाँ के एक दरबारी कवि ने 'पंचतंत्र' का अनुवाद किया तो उसने इस संस्कृत को भी 'ज़बान-ए-हिन्दी' के नाम से अभिहित किया। शेख फ़रीदुद्दीन शकरगंज ने इस भाषा को हिन्दवी अथवा हिन्दी कहा, जहाँ तक मेरी जानकारी है, हिन्दी में 'शरअ' (इस्लामी धर्मशास्त्र) लिखने वाले प्रथम सूफ़ी साधक शेख फ़रीदुद्दीन शकरगंज ही हैं।[1] इनके शिष्य प्रसिद्ध सूफी संत शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने भी इसी भाषा का प्रयोग जनसाधारण तक अपने विचारों को पहुँचाने के लिए किया और उसे 'ज़बान-ए-हिन्दी' की संज्ञा दी। अमीर खुसरो शेख निज़ामुद्दीन औलिया के परम प्रिय शिष्य थे। इनकी मातृ-भाषा हिन्दवी थी। इन्होंने भारत की लगभग सभी भाषाओं के लिए हिन्दुई, हिन्दवी अथवा हिन्दी शब्द का उपयोग किया है। किन्तु अमीर खुसरो ने अपनी भाषा अर्थात् हिन्दवी को संसार की अन्य भाषाओं के समक्ष किसी भी प्रकार निम्न नहीं स्वीकारा। उन्होंने हिन्दवी को अरबी के समकक्ष खड़ा करने का प्रयास किया। द्रष्टव्य है—"हिन्दी भाषा भी अरबी के समान है क्योंकि उसमें भी मिलावट को स्थान नहीं है।" यहाँ पर अमीर खुसरो का संकेत संस्कृत भाषा की ओर है। मुगल सम्राट ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने 'बाबर नामा' में उत्तर भारत की भाषाओं के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया है। यह भी कहा जाता है कि महमूद गजनवी के दरबार में हिन्दी के दो कवि—तिलक हिन्दी और बहराम रहते थे।[2] अतः यह कहा जा सकता

---

1. डा० इक़बाल अहमद—शेख फरीद शकरगंज की हिन्दी कविता : एक पुनर्निरीक्षण (लेख) हिन्दुस्तानी, भाग 37, अंक 4, अक्टूबर-दिसम्बर, 1976, पृ० 82
2. "सुलतान महमूद को स्वयं हिन्दी भाषा का ज्ञान था। वह जब हिजरी सन् 413 में कालिजर पहुँचा तो वहाँ के राजा नन्दा ने सुलतान की प्रशंसा में कुछ छन्द लिखकर भेजे जिन्हें सुनकर सुलतान बहुत प्रसन्न हुआ और राजा नन्दा को पन्द्रह किलों का पट्टा लिख दिया। जिसमें कालिजर भी सम्मिलित था।"
   —महमूद खाँ शिरानी, पंजाब में उर्दू, पृ० 63

है कि भारत की समस्त भाषाओं के लिए 'हिन्दी' का प्रयोग फारसी भाषा से भेद दिखाने के लिए किया गया है।

आर्यों के आने के पश्चात् भारत, भाषा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त हुआ—एक उत्तर तथा दूसरा दक्षिण। दक्षिण आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का संगम स्थल बना। यह प्रदेश केवल संस्कृतियों का ही संगम स्थल न रहा अपितु भाषाओं का भी सम्मिश्रण हुआ जिसमें खड़ी बोली का संगम विशेष महत्व का है, जिसे हम दक्खिनी, दक्खिनी उर्दू और दक्खिनी हिन्दी नामों से पुकराते हैं। प्रस्तुत संदर्भ में दक्खिन का अभिप्राय बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर राज्यों से है। वैसे बोलचाल की दक्खिनी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। भारत के मूर्धन्य भाषाविद् डा० बाबू राम जी सक्सेना ने दक्खिनी को आर्य भाषा हिन्दी का ही एक रूप कहा है।[1] सुलतान मुहम्मद कुली कुत्बशाह की एक नायिका का नाम 'हिन्दी छोरी'[2] है—जिसका संकेत हिन्दी भाषा की ओर भी है। दक्खिनी के साहित्यकारों ने अपनी भाषा का परिचय देते हुए उसे हिन्दी, हिन्दवी और दक्खिनी नामों से सम्बोधित किया है। कुछ कवियों एवं लेखकों ने इसे गुजरी के नाम से भी पुकारा है। मौलाना डा० अब्दुल हक़ ने बुरहानुद्दीन जानम के इस कथन का—'मेरी भाषा गुजरी है'—विश्लेषण इस प्रकार किया है—"अगरचे वह ज़बान जिसमें उनका कलाम है, हिन्दी है। लेकिन गुजरी हिन्दी है और हक़ीकत भी यह है कि कलाम के मुतअला (अध्ययन) से साफ ज़ाहिर होता है कि उनकी ज़बान पर गुजरात का असर है और यह कुदरती बात है। हिन्दी कहूँ या उर्दू कहूँ यह जहाँ गई मुक़ामी (क्षेत्रीय) रंग की झलक इसमें ज़रूर आ गयी।"[3] महमूद खाँ शेरवानी का मत है—'एक दिलचस्प अमर यह है कि जब हाली दकमी ने उर्दू का नाम दकनी रखा। हाली गुजराती ने इसका नाम गुजराती या गुजरी रख दिया, लुत्फ यह है कि खुद इन ममालिक (देशों) के वाशिन्दे इसको इन नामों से पुकारते रहे।" शेख खूब मुहम्मद चिश्ती ने मसनवी 'खूब तरंग' 986 हिजरी में लिखी। इस तसनीफ़ (रचना) की ज़बान गुजराती के मुकाबिला में ज़्यादातर उर्दू के जेल में दाखिल है। लेकिन शेख इसको गुजराती बोली कहते हैं—

---

1. डा० बाबूराम सक्सेना—दक्खिनी हिन्दी, पृ० 15
2. रंगीली साईं ते तूं रंग भरी है। सुगड़ सुन्दर सहेली गुन भरी है।।
   लटकना बिजली निमने उस सुहावे। वो हिन्दी छोरी बहु छन्द शहपरी है।।
   × × × × ×
   नबी सदके रिझाये कुत्ब शह कूं। तोसकियां में तूं जैसी शहपरी है।।
   —डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर—कुल्लियात सुलतान मुहम्मद कुली कुत्ब शाह, पृ० 271
5. मौलाना अब्दुल हक़—कदीम उर्दू (लेख) उर्दू (पत्रिका), पृ० 46

ज्यूं दिल अरब अजम की बात
सुन बोली, बोली गुजरात ।।'[1]

दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध अनुसन्धाता श्री नसीरुद्दीन हाशमी का मत है—"शुमाल (उत्तर) में अब तक इस जदीद (आधुनिक या नयी) ज़बान का कोई नाम रायज नहीं था मगर दकन में वह दक्खिनी नाम से मासूम हुई।...दकन में यह ज़बान हिन्दी और दक्खिनी से मासूम रही।"[2] डा० ग्यान चन्द जैन के मतानुसार—'इसका गुजरात से कोई तालुक नहीं, यह नाम गुजरानवाला और गुजरात (पंजाब) के दकन दारद सिपाहियों का अता करदा है। चुनांचे दकनी शुअरा शाह बुरहानुद्दीन ज़ानम और अमीनुद्दीन दकनी ने अपनी ज़बान को गुजरी कहा है।'[3]

भाषा का निर्णय शब्दों पर अधिक निर्भर नहीं करता है, प्रत्युत भाषा के आधार क्रियापद, संयोजक शब्द तथा कारक चिन्ह होते हैं जो वाक्य विन्यास की विशेषताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। दक्खिनी में हिन्दी बोल-चाल के सभी स्वर—अ आ, इ ई, उ ऊ, ए ऐ, ओ और औ विद्यमान हैं। इतना ही नहीं इसमें हिन्दी बोल-चाल के सभी व्यंजन भी मौजूद हैं। यही कारण है कि प्रसिद्ध भाषाविद् जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है—"उर्दू के समान यह (दक्खिनी) फारसी लिपि में लिखी जाती है लेकिन फारसीकरण से बहुत कुछ बची हुई है। इसमें ऐसे व्याकरणिक रूप ('मुझको' के लिए 'मेरे को') प्रयुक्त होते हैं जो उत्तरी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित हैं किन्तु साहित्यिक भाषा में नहीं मिलते। दक्षिणी भाग में इसमें भूत काल के सकर्मक क्रियाओं के पूर्व 'करण कारक' के चिन्ह 'ने' का प्रयोग नहीं जो पश्चिमी हिन्दुस्तानी की सभी बोलियों की एक विशेषता है।"[4] डा० धीरेन्द्र वर्मा ने दक्खिनी के सम्बन्ध में कहा है—'हिन्दी भाषा का विकास और उसमें साहित्य रचना का कार्य केवल उत्तर भारत में नहीं हुआ है। दक्षिणी भारत की मुसलमानी रियासतों, उनके शासकों एवं उनके दरबार के तथा अन्य साहित्यिकों का भी इसमें महत्वपूर्ण हाथ है। मुसलमान फ़क़ीरों, सैनिकों और राज्य संस्थापकों के द्वारा साहित्यिक हिन्दी दक्षिण भारत में पहुँची थी और पन्द्रहवी शताब्दी तक उसमें उच्चकोटि का साहित्य निर्मित होने लगा था।"[5] डा० वर्मा ने दक्खिनी को खड़ी बोली का स्वरूप स्वीकारते हुए कहा है—"दक्षिण भारत में विकसित हिन्दवी अथवा दकनी उर्दू साहित्य का

1. महमूद खाँ शेरवानी—पंजाब में उर्दू, पृ० 49
2. नसीरुद्दीन हाशमी : दकन में उर्दू, पृ० 13
3. डा० ग्यान चन्द जैन—उर्दू-ए-मुआनी लिसानियात, पृ० 132
4. जार्ज ग्रियर्सन—भारत का भाषा सर्वेक्षण, भाग 9, पृ० 25, अनुवादक—डा० निर्मला सक्सेना
5. डा० बाबू राम सक्सेना—दक्खिनी हिन्दी, प्रकाशकीय

प्रारम्भ 1326 ई० में मोहम्मद तुग़लक़ के दक्षिण आक्रमण के बाद हुआ। हिन्दवी के प्रारम्भिक कवि मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीर थे, जिन्होंने अपने धार्मिक विचारों के प्रचार की दृष्टि से ये रचनाएँ लिखी थीं। यह साहित्य अभी देवनागरी लिपि में प्रकाशित नहीं हुआ है यद्यपि इसकी भाषा पुरानी खड़ी बोली है।"[1] मौलवी मुहम्मद मुबीन क़ैफ़ी का मत है—"दक्खिनी ज़बान और बाल खसूस दक्खिनी शायरी जो उस दौर के नमूना पेश करती है उससे यह मालूम होता है कि हिन्दी का असर दक्खिनी उर्दू पर पहले से वसी हद में मौजूद था, बयक नज़र मालूम होता है कि हिन्दी ज़बान की खुसूसियात लफ्जी व मानयी, तरक़ीब तर्ज़े अदा जज़बात, तरवैयुल, तशबीह व इस्तारे सब कुछ दक्खिनी शायरी में मौजूद है।"[2] कहने का तात्पर्य यह है कि दक्खिनी, उर्दू की अपेक्षा हिन्दी के अधिक निकट है।

वास्तव में दक्खिनी ऐतिहासिक कारणों से ईरानी प्रभावों को स्वीकार किये हुए है किन्तु इसका जन्म भारत में ही हुआ है। अतः स्वाभाविक सी बात है कि इस पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव अधिक होगा। जिस बोल चाल की भाषा का प्रयोग शेख फरीदुद्दीन शकरगंज एवं अमीर खुसरो ने अपनी हिन्दी कविताओं में किया था तथा जिस भाषा को उत्तर भारत के सन्तों ने भारवा, हिन्दी, हिन्दवी और हिन्दुई आदि नामों से पुकारा था, वही भाषा दक्षिण भारत में आकर दक्खिनी हो गई।

दक्खिनी के कवियों और लेखकों ने इसको विभिन्न नामों से पुकारा है। जैसे—हिन्दी, हिन्दवी, गुजरी और दक्खिनी।

हिन्दी

सूफ़ी साधक शाह मीराँ जी शम्सुल उश्शाक ने अपनी काव्य भाष को हिन्दी कहा है:—

है अरबी बोल केरे। और फारसी बहुतेरे॥
ये हिन्दी बोलूँ सब। उस अतरों के सबब॥
ये भाका भल सो बोलें। पन उसका भाव न खोलें॥
ये गुरु मुख पंद पाया। तो ऐसे बोल चलाया॥
जे कोई अछे खासे ...स बयान के पासे॥
वे अरबी बोल न जाने। ना फारसी पछाने॥
ये उनकूँ बचन होत। सुन्नत बूझे रीत॥
ये मग़ज़ मीठा लागे। तो क्यूं मन उस थे भागे॥[3]

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 80
2. मौलवी मुहम्मद क़ैफ़ी—जवाहर-ए-सुखन, पृ० 9
3. मीराँ जी शम्सुल उश्शाक—खुशनामा, पृ० 2, हस्तलिखित प्रति सूफी, सावार जंग म्यूज़ियम पुस्तकालय, हैदराबाद।

दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार मुल्ला वजही ने अपने प्रसिद्ध गद्य ग्रन्थ 'सबरस' में अपनी भाषा को 'हिन्दी' संज्ञा प्रदान की है :—

हिन्दुस्तान में, हिन्दी ज़बान सूं इस लताफ़त—इस छन्दां सूँ नज़म होर नस्र मिलाकर यूं नइं बोल्या।"[1]

शाह बुरहानुद्दीन जानम बीजापुरी अपनी रचना 'इर्शादनामा' में लिखते हैं :—

यह सब बोलूं हिन्दी बोल। पुन तूं इन्हों सेतो घोल।।
ऐब न राखे हिन्दी बोल। मानी तो चख दीखे खोल।।
हिन्दी बोलो किया बखान। जेकर परसाद या मुझ ग्यान।।[2]

मौलाना रूमी की रचना 'मौज़ज़ह' का दक्खिनी में अनुवाद करते हुए जुनूनी में लिखा है :—

मैं इसको दर हिन्दी ज़बाँ, इस वास्ते कहने लगा।
जो फारसी समझे नहीं, समझे इसे खुश दिल होकर।

काज़ी महमूद 'बहरी' ने अपने ग्रन्थ 'मन लगन' में अपनी भाषा को हिन्दी कहा है :—

हिन्दी तो ज़बान च है हमारी।
कहने न लगी हमन कूँ भारी।[3]

बाकर आगाह ने 'रिसाला फ़िक़ा हाव इस्लाम' में अपनी भाषा को 'हिन्दी' के नाम से पुकारा है :—

वले बाज यारों का इमाँ हुआ,
सो **हिन्दी ज़बाँ** यह रिसाला।[4]

मीरा याक़ूब का कथन है—"शाह अमीनुद्दीन आला सानी अपनी हयात के वक़्त में मुंजे बशारत किये—तुने जो 'शमायतुल अतकिया' किताब कूँ हिन्दी ज़बान में ल्यावे ता हर किसी कूँ समज आवे।"[5]

सूफ़ी सन्त वली उल्ला कादरी ने भी अपनी रचना की भाषा को हिन्दी के नाम से अभिहित किया है :—

---

1. डा० श्रीराम शर्मा—वजही-सबरस, पृ० 10
2. शाह बुरहानुद्दीन जानम—इरशाद नामा, पृ० 4, क्र० सं० 164, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद।
3. मुहम्मद सखावत मिर्ज़ा—बहरी-मन लगन, पृ० 21
4. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 14
5. मीरा याक़ूब—शमायतुल अतकिया, पृ० 15, क्र० सं० 663, स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद

"कितेक तालिबाँ ऐसे हक़ के हैं, जो न अरबी जानते हैं और न फारसी पहचानते हैं।...तो तुजकूँ लाज़िम है जो इस मानी की अरुस कूँ फारसी हौर अरबी की खिलवत के बाहर काढ़ हिन्दी ज़बान की तख्त पर बेलाजवता हों कि आशिक अपने माशूक़ के ज़माल का शराब अपने आँख्याँ के प्याल्याँ में मालामाल भरकर अपने जीव के हलक़ में पहुँचावें हौर अब्द का बेहोश हो जावे।"[1]

हिन्दवी

शेख अशरफ़ ने अपने काव्य 'नौसर हार' में अपनी काव्य भाषा को हिन्दी की संज्ञा से अभिहित किया है :—

बाजा केता हिन्दवी में, किस्स-ए-मकतल शाह हुसे।
नज़्म लिखी सब मौज़ू जान, यों मैं हिन्दवी कर आसान।

× × ×

यक यक बोल मौज़ू जान, तक़रीर हिन्दवी सब बसान।[2]

'इब्राहीम नामा' नामक काव्य की भाषा को अब्दल ने हिन्दवी कहा है :—

सो यूं बचन सूँ शाह उस्ताद कान।
पूछ्या जगतगुरु शेर कह किस ज़बान॥
ज़बाँ हिन्दवी मुझ सूँ होर देहलवी।
ना जानू अरब होर अजब मसनवी॥[3]

गुजरी

शाह बुरहानुद्दीन जानम ने एक स्थल पर अपनी भाषा को गुजरी के नाम से अभिहित किया है :—

सब यूँ ज़बान गूजरी नाम,
ई किताब कल्मतुल हक़ायक़।[4]

दक्खिनी :

'कुतुब मुश्तरी' नामक काव्य में कवि मुल्ला वजही ने अपनी भाषा को दक्खिनी कहा है :—

दखन में जूं दखनी मीठी बात का।
अदा तै किया कोई इस धात का।[5]

---

1. डा० राजकिशोर पांडेय—दक्खिनी का प्रारम्भिक गद्य, पृ० 2
2. शेख अशरफ़—नौसर हार, पृ० 69, क्र० सं० 123, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद।
3. डा० मसऊद हुसेन खाँ—अब्दल-इब्राहीम नामा, पृ० 19
4. बुरहानुद्दीन जानम— कल्मतुल हक़ायक़, पृ० 3, क्र० सं० 1735, स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद।
5. नसीरुद्दीन हाशमी—मुल्ला वजही-कुतुब मुश्तरी, पृ० 29

इब्न निशाती ने अपने काव्य 'फूलबन' में लिखा है :—

इसे हर कस कते समझा कूँ तूँ बोल।
दखनी के बातां सारियां कूँ खोल ॥[1]

'खाबिर नामा' नामक ग्रन्थ में कविवर रुस्तमी ने अपनी भाषा को दक्खिनी नाम से अभिहित किया है :—

किया तरजुमा दखनी होन दिल पजीर।
बोल्या मुअज्ज़ यूँ कमाल खान व वीर ॥[2]

दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि नुसरती ने भी अपने काव्य 'गुलशन-ए-इश्क' में अपनी भाषा को 'दक्खिनी' की संज्ञा दी है :—

सफाई की सूरत की है आरसी।
दखनीं का किया-शेर हूँ फारसी ॥[3]

कविवर सनअती ने अपने ग्रन्थ 'किस्स-ए-बेनज़ीर' में अपनी भाषा को दक्खिनी के नाम से अभिहित किया है :—

इसे फारसी बोलना शौक़ था,
वले के अज़ीज़ा कूँ यूँ शौक़ था।
कि दखनी जबां इसे बोलना,
जो सीपी में मोती नमन रोलना।
× × ×
जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है,
सो दखनी जबां उनकूँ आसान है।[4]

कविवर हाशमी ने 'यूसुफ जुलेखा' नामक काव्य में अपनी भाषा को 'दक्खिनी' की संज्ञा दी है जो इस प्रकार है :—

तेरे शेर का जग तें दखनी है नाऊँ।
नको भौत कर दुसरी बोली मिताऊँ ॥[5]

कतिपय विद्वानों की धारणा है कि यह भाषा दाक्षणात्य मुसलमानों के एक छोटे से वर्ग की भाषा है किन्तु भाषा किसी जाति विशेष, धर्म विशेष अथवा वर्ग विशेष की नहीं हुआ करती है, प्रत्युत जिस देश में भाषा जन्म लेती है, उसी देश की

1. अब्दुल कादर सखरी—इब्ने निशाती—फूल बन, पृ० 9
2. नासीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 14
3. मौलवी अब्दुल हक़—नुसरती-गुलशन-ए-इश्क, पृ० 10
4. अब्दुल कादर सरवरी—सनअती—किस्स-ए-बेनज़ीर, पृ० 26
5. सैयद मीरां हाशमी—युसुफ जुलेखा, पृ० 14, क्र० सं० 5, स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद।

होती है। यह सत्य है कि किसी भी भाषा का साहित्य तब तक गौरवान्वित नहीं हो सकता, जब तक वह स्वतन्त्र एवं धर्म निक्षेप न हो। डा० श्रीराम शर्मा ने दक्खिनी के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—"उर्दू या दक्खिनी में ऐसी असंख्य कृतियाँ हैं जो किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं हैं। ये कृतियाँ सार्वदेशिक और शाश्वत हैं। शाश्वत और सार्वदेशिक रचनाओं के अभाव में किसी भाषा का साहित्य गौरवान्वित नहीं हो सकता।"[1] यह कहना उचित है कि दक्खिनी साहित्य का अधिकांश भाग मुसलमान सूफ़ी फकीरों और साहित्यकारों द्वारा निर्मित हुआ है। प्रसिद्ध विद्वान एवं भाषाविद् डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार—"केवल लिपि को छोड़कर यह (दक्खिनी) सारा साहित्य बिल्कुल हिन्दू परम्परा का उसी प्रकार अनुकारी है जैसे उत्तरी भारत में आरम्भिक अवधी भाषा में रचित मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत।"[2] दक्खिनी के मर्मज्ञ डा० बाबू राम सक्सेना ने अपने ग्रन्थ 'दक्खिनी हिन्दी' में विचार व्यक्त किया है कि यह दक्खिनी, हिन्दी की ही एक शाखा है, ठीक उसी प्रकार जैसे अवधी, ब्रज तथा हिन्दी की अन्य ग्रामीण भाषाएँ हिन्दी की शाखाएँ हैं। दक्खिनी में भले ही अरबी, फारसी के शब्द रहे हों, पर संज्ञाओं के कारण कोई बोली अपनी आधारभूत भाषा से पृथक नहीं हो सकती। किसी भाषा को व्याकरणिक कोटियाँ ही उसे स्वरूप प्रदान करती हैं।

दक्खिनी के उद्भव और विकास की परिस्थितियाँ

हिन्दी का जो परिनिष्ठित और परिष्कृत रूप इस समय साहित्य में प्रयुक्त हो रहा है, वह किसी एक नगर, जनपद अथवा दो चार ज़िलों में विकसित नहीं हुआ। उसके विकास में सदियों से समस्त देश का योग रहा है और भारत की विभिन्न भाषाओं का योग रहा है। प्रकाण्ड ज्ञानी और दार्शनिक से लेकर सामान्य किसान तक ने इस भाषा के शब्द भण्डार को समृद्ध किया है। जहाँ तक शब्दावली का संबंध है वह पूर्णतया संस्कृत की ऋणी है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अँग्रेजी भाषा व साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है। देश की हिन्दीतर भाषाएँ भी अनेक क्षेत्रों में अपने चिन्तन का सार हिन्दी को प्रदान करती रही हैं, किन्तु इन नाना दिशाओं से पोषण ग्रहण करते हुए भी हिन्दी के परिनिष्ठित रूप की परम्परा अविछिन्न रही है।

दक्खिनी भाषा के जन्म के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का कथन है कि मुसलमानों के प्रभाव से इसकी उत्पत्ति हुई है, किन्तु दक्खिनी के विकास के सम्बन्ध में अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके उद्गम और विकास में मुसलमानों के हाथ तो बहुत बड़ा है, किन्तु यह नहीं भुलाया जा सकता कि भारत की विभिन्न भाषाओं का भी योग भी कुछ कम नहीं रहा है। अभी तक के शोध से पता चलता है कि चौदहवीं

---

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 41
2. डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या—भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० 212

शताब्दी के अन्त और पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से दक्खिनी साहित्य का लिपिबद्ध रूप प्राप्त होता है। इस साहित्य में सूफी भावधारा की प्रधानता है।

उत्तर भारत के शेख फरीद शकरगंज और अमीर खुसरो खड़ी बोली हिन्दी के प्रथम कवियों में माने जाते हैं। इन्होंने फारसी के अतिरिक्त हिन्दी में बहुत सी कविताएँ लिखी थीं किन्तु उस समय उनका महत्व अधिक न समझा गया। इसलिए कुछ कविताएँ नष्ट हो गयीं। इन्होंने कुछ हिन्दी ग्रन्थों की रचनाएँ भी की थी— 'हालात-ए-कन्हैया' और 'नज़रान-ए-हिन्दी'।[1] किन्तु ये ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। इनका एक कोश 'खालिक़बारी' हिन्दी में प्रकाशित अवश्य मिलता है जिसमें इन्होंने अरबी, फारसी, तुर्की और हिन्दी के समानार्थी शब्दों का संकलन किया है। इसके अतिरिक्त भी इनकी कविताओं के कुछ संकलन मिलते हैं जिनको नागरी प्रचारिणी सभा, काशी एवं हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया है। इनकी कविताओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी भाषा बोलचाल की है, जिसमें खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा का भी पुट है। इनके पूर्ववर्ती मसऊद हैं जिन्होंने हिन्दी में कविताएँ लिखी थीं। मुहम्मद औफ़ी ने अपने तज़किरे (1228 ई०) में लिखा है कि मसऊद ने हिन्दी के 'दो दीवान' (काव्य संग्रह) की रचना की थी। इनका काल बारहवीं शताब्दी माना जाता है किन्तु इनकी कोई रचना आज प्राप्य नहीं है।

प्रसिद्ध सूफी साधक शेख फरीद शकरगंज (1173-1265 ई०) ने हिन्दी में कविताएँ की हैं उनके कुछ नमूने प्रस्तुत हैं :—

> तन धोने से दिल जो होता पोक,
> पेश रू असफ़िया के होते गोक।
> रीश सबलत से ग़र बड़े होते,
> बोकड़वाँ से न कोई बड़े होते।
> खाक़ लाने से गर ख़ुदा पाये,
> गाय बैलाँ भी वासलाँ हो जायें।
> गोशगिरी में गर खुदा मिलता,
> गोश जो यां न कोई वासिल था।
> इश्क का रूमूज़ न्यारा है,
> जुज़ पीर के न कोई चारा है।[2]

---

1. डा० इकबाल अहमद—अमीर खुसरो की हिन्दी कविता में सूफी-साधना (लेख) शोध-पत्रिका, अंक 3 (जुलाई-सितम्बर) पृ० 65, 1971
2. डा० इकबाल अहमद—मध्यकालीन संस्कृति को सूफ़ी कवियों का योगदान, पृ० 336

शेख फरीद की एक अन्य कविता, जिसका शीर्षक 'सगन ज़िक्र जली' है, की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

जली याद की करना रह घड़ी,
यक तिल हज़ूर सों हलता नहीं।
उठ बैठ में याद सो शाद रहना,
गवाहदार को छोड़ के चलना नहीं।
पाक़ रख तूं दिल को गैरसती,
आज साईं फरीदा का आवता है।[1]

प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त शेख शरफुद्दीन बू अली कलन्दर (मृत्यु—1323 ई०) अमीर खुसरो के समकालीन थे। इनका यह दोहा प्रसिद्ध है :—

सजन सकारे जायँगे और नैन मरैंगे रोय।
बिधना ऐसो रैन कर भोर कभी न होय।।[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि खड़ी बोली में काव्य निर्माण का काम बारहवीं शताब्दी में आरम्भ हो गया था किन्तु सदियों तक यह प्रवृत्ति शिथिल रही। इसके पश्चात् अवधी और ब्रजभाषा में विपुल साहित्य की रचना हुई। इस काल के प्रमुख साहित्यकार कबीर, नानक, जायसी, तुलसी और सूरदास हैं। कबीर की भाषा अवधी के निकट है। इनका आविर्भाव काल लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्य है। पन्द्रहवीं शती के प्रसिद्ध बल्लभाचार्य के ब्रज मण्डल में आकर बसने के अनन्तर ब्रज में काव्य रचना आरम्भ हुई। यद्यपि 'शिव सिंह सरोज' में पुष्पदन्त नामक एक कवि का उल्लेख है जो भाषा का जनक कहा गया है और जिसका समय 713 ई० दिया गया है, परन्तु न तो इस कवि की कोई रचना मिलती है और न यह अनुमान हो सकता है कि उस समय हिन्दी भाषा प्राकृत अथवा अपभ्रंश से पृथक हो चुकी थी क्योंकि बारहवें शतक में भी यह भाषा अपरिपक्व अवस्था में थी। यों तो अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का प्रचार मुसलमानों के भारत प्रवेश के समय से इतना होने लगा था कि भाषा के लक्षण में 'पारसी' भी रखी गयी।[3]

डा० बाबूराम सक्सेना का कथन है—"हिन्दी के कुछ मान्य विद्वानों ने कभी पुष्पदन्त आदि अपभ्रंश के कवियों को और कभी 'बौद्ध गान ओ दोहा' आदि के रचयिताओं को हिन्दी के आदि कवियों का बद दिया है पर यह भ्रम है। इन ग्रंथ-कारों की भाषा और हिन्दी में बड़ा अन्तर है। सच्चाई यह है कि हिन्दी खड़ी बोली के जो प्राचीन ग्रन्थ इस समय मिलते हैं, वे विदेशियों की कृतियाँ हैं·· जब उन्होंने

---

1. डा० इक़बाल अहमद—मध्यकालीन संस्कृति को सूफी कवियों का योगदान, पृ० 337
2. वही, पृ० 359
3. कामता प्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण, पृ० 13-14

इसे अपनाया उस समय भारतीय परम्परा के ऊँचे दर्जे का साहित्य संस्कृत में रचा जा रहा था, पर काव्य, नाटक, कथा और कहानी आदि प्राकृतों और अपभ्रंशों में लिखे जा रहे थे। ···विदेशियों की विद्याओं की भाषा यहाँ की संस्कृत के मुक़ाबिले की फारसी थी और विदेशी परम्परा वाले बढ़िया मार्के की चीजें फारसी में लिखते थे, पर जनसाधारण के समझने लायक सिद्धान्त और किस्से कहानियाँ हिन्दी में भी लिख देते थे। आरम्भ काल की रचनाएँ अधिकतर फारसी ग्रन्थों के अनुवाद हैं।"[1] आगे चलकर डा० सक्सेना कहते हैं—"खड़ी बोली साहित्य की यह विदेशी परम्परा ईसा की चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में गुजरात, महाराष्ट्र, विजय नगर आदि दक्खिनी प्रदेशों में मुसलमानी फौजों और सन्तों एवं दरवेशों के साथ गई और ज्यों-ज्यों ये लोग वहाँ बसते गये त्यों-त्यों वहाँ इसमें भी घर कर लिया।"[2]

राजनीतिक अवस्था

दक्खिनी भाषा और साहित्य के विकास क्रम को समझने के लिए उस समय की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। मुसलमानों के आक्रमण से पहले दक्षिण भारत में राष्टकूट वंश, चालुक्य राय एवं यादव वंश के राज्य थे। इन वंशों के सम्बन्ध में इतिहासकारों का मत है कि ये उत्तर भारत से दक्षिण में आये। चालुक्य राजपूत जाति के थे। कहा जाता है कि इस वंश के लोगों ने छठी शताब्दी में दक्षिण में प्रवेश किया।[3] प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन भी इसी मत के अनुयायी हैं और इनका कथन है कि चालुक्य वंश राजपूत था जिसने कल्याण पर राज्य किया (A Rajput family of Chalukya tribe reigned at Calia'n west of Bidar, on the borders of Camatac and Maharastra. They are traced with cetainty, by inscriptions from the end of the tenth to the end of twelfth century).[4] यही कारण है कि शूरसेन प्रदेश की प्राकृत शौरसेनी एक प्रकार से समूचे उत्तर भारत में साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा बनी और उसका प्रभाव दक्षिण पर भी पड़ा। धार्मिक दृष्टि से भी उत्तर दक्षिण में आदान-प्रदान हुआ। बौद्धों और जैनों का प्रभाव दक्षिण पर भी पड़ा।

---

1. डा० बाबू राम सक्सेना—दक्खिनी हिन्दी, पृ० 32-33
2. वही, पृ० 33
3. There is good reason to believe that the Chalukyas migrated from Rajputana to the Deccan. They are connected with Gurjar tribes.
   —Bombay Gazetteer, 1896-1 Pt. 1, pp. 127, 138, 463 Note 2,467.
4. Mount Stuart Elphintone, The History of India, P. 239.

अलाउद्दीन खिलजी ने 26 फरवरी, 1295 ई० में देवगिरि पर आक्रमण करने के लिए कड़ा से प्रस्थान किया और 1297 ई० में गुजरात और मालवा को दिल्ली राज्य में मिला लिया। राय करण रामचन्द्र की शरण में जा पहुँचा और अपनी पुत्री देवल देवी का विवाह रामचन्द्र यादव के पुत्र शंकर देव से कर दिया। मुसलमान वाहिनी देवगिरी पर आक्रमण का अवसर खोज रही थी। अलाउद्दीन की सेना के सेनापति मलिक काफ़ूर ने रायकरण और देवल देवी को रामचन्द्र यादव से माँगा, किन्तु मानधनी रामचन्द्र यादव ने उसे ठुकरा दिया। इस समाचार को पाते ही मलिक काफ़ूर ने देवगिरी पर आक्रमण कर दिया और उसे 1307 ई० में अपने अधिकार में ले लिया। इतना ही नहीं मलिक काफ़ूर और अलफ खाँ ने 1304 में महाराष्ट्र, 1307 ई० में आन्ध्र और 1308 ई० में कर्नाटक को जीत करके दिल्ली राज्य की श्री वृद्धि की। सन् 1309 में मलिक काफ़ूर ने वारंगल को जीता और फिर दिल्ली लौट आया। मलिक काफ़ूर दो-तीन वर्ष के बाद पुन: दिल्ली से दक्षिण की ओर रवाना हुआ और उसने द्वार समुद्र तथा मदुरा को 1312 ई० में जीतकर दिल्ली शासन का विस्तार किया।

जब अलाउद्दीन खिलजी की सेना उत्तर से दक्षिण की ओर आयी तो उसके साथ बहुत से असैनिक भी दक्षिण में आये और उन्होंने दक्षिण को ही अपना निवास स्थान बना लिया। इसके साथ ही दक्षिण में उत्तर से आने वालों का द्वार खुल गया। उत्तर भारत के निवासी कुछ दक्षिण में आकर बसने लगे तो उनके साथ उनकी भाषा भी आयी। इस काल में विशेष रूप से मुसलमान सूफ़ी साधक ही दक्षिण आये और धर्म प्रचारार्थ यहाँ बस गये। धर्म प्रचार के साथ-साथ उनकी भाषा का भी प्रचार हुआ।

इतिहास से स्पष्ट होता है कि अलाउद्दीन के सैनिकों ने तो केवल दक्षिण को जीतकर अपने राज्य में मिलाया था और वे अपना सूबेदार अथवा उच्चाधिकारी नियुक्त करके वापस चले गये थे, किन्तु मुहम्मद तुग़लक ने समूचे भारत को एक शासन सूत्र में मज़बूती से बाँधने के लिए अथक प्रयास किया। मुहम्मद तुग़लक ने दिल्ली को राज्य संचालन में उपयुक्त न समझ कर 1327 ई० में दौलताबाद को राजधानी बनाने का निश्चय किया। फलत: दिल्ली के सभी निवासियों को आदेश दिया कि वे सब दिल्ली से दौलताबाद को प्रस्थान करें। इस प्रस्थान में लाखों व्यक्ति दिल्ली से दौलताबाद आये, जिसमें सैनिक, सामन्त, श्रमिक, व्यापारी, कलाकार तथा साहित्यकार सभी थे। कुछ समय पश्चात् मुहम्मद तुग़लक को अपना निर्णय परिवर्तित करना पड़ा और पुन: दिल्ली को राजधानी बनाया गया। जब मुहम्मद तुग़लक ने वापस होने का आदेश दिया तो वहाँ से अनेक कलाकार एवं साहित्यकार वापस नहीं हुए और दौलताबाद को ही अपना स्थायी निवास बना लिया। उनमें अनेक परिवार मूलत: दिल्ली के निवासी थे और कुछ परिवार ऐसे भी थे जो अन्य हिन्दी भाषी क्षेत्रों से आये थे। वे अपनी भाषा का प्रयोग घरों और बाजारों में करते

थे। यही नहीं उनमें से अनेक व्युत्पन्न लोगों ने अपनी भाषा (हिन्दी) में रचनाएँ भी कीं। तुग़लक शासन के शिथिल हो जाने से दक्षिण स्वतन्त्र हो गया और हसन गंगोही बहनी ने 1347 ई० में गुलबर्गा में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। इससे गुलबर्गा में मुस्लिम संस्कृति के एक नये केन्द्र की स्थापना हुई। इस समय बहमनियों के पास दामोल, चोल, राजपुर और गोआ के बन्दरगाह थे। जिनके द्वारा ईरान, अरब, अफ्रीका और मलाया से उनका सीधा सम्पर्क था। इन लोगों की मातृ-भाषा अरबी, फारफी अथवा तुर्की थी। अतः गुलबर्गा को मुस्लिम संस्कृति तथा अरबी-फारसी के अध्ययन का केन्द्र बनाने का आरम्भ हुआ। मुहम्मद बहमनी द्वितीय (1378-1397 ई०) ने बाहरी लोगों को प्रोत्साहित किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी फीरोज़ बहमनी (1397-1422 ई०) ने दक्खिनी मुसलमानों, उत्तर भारत से आये हुए हिन्दुओं और स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित किया और उनकी संस्कृति में अधिक रुचि ली। बहमनी राज्य की स्थापना 1347 ई० में हुई थी किन्तु 1480 ई० के पश्चात् इस राज्य की नीव कमज़ोर हो गयी तथा 1484 ई० में फतहउल्लाह इमाद शाह ने बरार में इमाद शाही राज्य की नींव डाली, किन्तु यह राज्य अधिक समय तक न टिक सका और 1574 ई० में अहमदनगर में विलीन हो गया। युसुफ आदिल शाह ने सन् 1480 ई० में आदिल शाही शासन की स्थापना की। मुग़ल शासक औरंगजेब ने आदिल शाही शासक सिकन्दर को हराकर आदिल शाही राज्य का अन्त कर दिया। उन्हीं दिनों सुलतान कुली कुत्ब शाह ने 1518 ई० में गोलकुण्डा में कुत्ब शाही राज्य की स्थापना की, किन्तु औरंगज़ेब के आक्रमण से अबुल हसन ताना शाह (1673-87 ई०) परास्त हो गया और गोलकुण्डा भी मुगल साम्राज्य का एक भाग बन गया। बीजापुर को विजय करके औरंगज़ेब दक्षिण की राजनीति में उलझ गया इससे समूचे भारत की राजनीति का सन्तुलन बिगड़ गया। परिणामस्वरूप मराठा शक्ति का उदय हुआ।

आलमगीर औरंगज़ेब ने अपनी 80 वर्ष की आयु में ब्रह्मपुरी नामक स्थान को अन्तिम निवास स्थान चुना और उसका नाम बदलकर इस्लामपुरी रखा। आलमगीर 21 मई 1695 ई० से 18 अक्टूबर 1699 ई० तक यहीं से समस्त राज्य का संचालन करता रहा। उसके साथ उत्तर भारत से आये सहस्रों सैनिक, व्यापारी, प्रबन्धक और श्रमिक औरंगाबाद एवं इस्लामपुरी में रहते थे। औरंगज़ेब के इस अभियान से 'दक्खिनी' का खूब विकास हुआ। कामता प्रसाद गुरु का यह कथन उचित ही है—"इस देश में जहाँ-जहाँ मुगल बादशादों के अधिकारी गये, वहाँ-वहाँ वे अपने साथ इस भाषा को भी ले गये।"[1]

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि दक्षिण में बराबर युद्ध होता रहा। मराठे मुग़ल साम्राज्य पर बराबर आक्रमण करते रहे। यहाँ तक कि इन्होंने मुग़लों को बहुत

---

1. कामता प्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण, पृ० 22

परेशान कर दिया था। औरंगज़ेब के दक्षिण से वापिस जाने के पश्चात् जब आसफ़जाह दक्खिन का सूबेदार बनकर आया, तब फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में संघर्ष छिड़ गया। इसके पश्चात् दक्षिण में अनेक शक्तियाँ सामने आयीं, जिनमें हैदर अली, टीपू सुलतान और पेशवा का महत्वपूर्ण स्थान है।

दक्षिण भारत आज राजनीतिक दृष्टि से विभक्त हो गया है तथा भाषावार प्रान्तों की रचना के कारण दक्षिण समाप्त प्राय हो गया। जिस इतिहास का विवरण हमने ऊपर दिया है, उसका दक्खिनी भाषा के विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन राजवंशों ने दक्खिनी के विकास में निरन्तर योग दिया। बहमनी, आदिल शाही, कुत्ब शाही तथा आसफ़ शाही वंशों के दक्खिनी भाषा और साहित्य से सम्बन्ध की चर्चा अगले अध्यायों में की जायेगी।

धार्मिक अवस्था

उत्तर एवं दक्षिण भारत में पाँचवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक धार्मिक क्षेत्र में विशेष रूप से बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन होते दिखायी देते हैं। द्रविड़ शाकाहारी थे और सूर्य और वृक्ष आदि की पूजा करते थे, किन्तु बौद्ध, जैन, शैव तथा हिन्दू धर्म से प्रभावित होकर धीरे-धीरे इन लोगों ने मांस-मदिरा का सेवन भी आरम्भ कर दिया। यह तथ्य तो इतिहास सिद्ध है कि बौद्ध धर्म बहुत पुराने समय में केवल मैसूर, महाराष्ट्र और आन्ध्र में ही नहीं प्रत्युत सुदूर दक्षिण में भी आदर प्राप्त कर चुका था। पल्लव राजधानी कांचीवरम् में अनेक बौद्ध विहारों की स्थापना हुई जिसमे इस धर्म की और अधिक उन्नति हुई। ह्वेनस्वांग जब 640 ई० में कांचीवरम् पहुँचा तो उसने वहाँ दस हज़ार भिक्षुओं को देखा। ह्वेनस्वांग का गुरु धर्मपाल का जन्म स्थान कांचीवरम् ही था। बौद्धों के समान जैनों का प्रचार भी बहुत रहा है किन्तु पारस्परिक संघर्ष के कारण बौद्ध धर्म का पतन हो गया। जैन मतावलम्बी अभी भी विद्यमान हैं। राष्ट्र कूट के राजा कट्टर जैन धर्म के मानने वाले थे। इन राष्ट्र कूटों के कारण प्राकृत का अध्ययन दक्षिण में भी होने लगा था। संस्कृत का सम्मान हुआ तथा उसके साहित्य की उन्नति हुई।

बौद्ध धर्म के पतन के बाद दक्षिण में एक नई विचारधारा-भक्ति का आविर्भाव हुआ। इसके दो रूप हैं, एक—शैव भक्ति सम्प्रदाय और दूसरा—वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय। शैव भक्ति सम्प्रदाय के भक्त को सर्वशक्तिमान स्वीकारते थे। अत: दक्षिण में बहुत से शिव मन्दिरों की स्थापना हुई तथा आचार्य शंकर (शंकराचार्य) के मत का प्रचार दक्षिण तक सीमित न रहकर पूरे भारत मे फैल गया। इसका अनन्त प्रमाण यह है कि शंकराचार्य का जन्म दक्षिण (केरल) में हुआ था किन्तु देहान्त उत्तर भारत के अन्तिम छोर हिमालय पर हुआ। इसी काल का दूसरा भक्ति सम्प्रदाय है वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय में भक्त का विष्णु भगवान के अनेकानेक अवतारों में विश्वास रहता है। इस सम्प्रदाय के स्वामी रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य और मध्वाचार्य का सम्बन्ध कितना घनिष्ठ रहा है उसे बताने की आवश्यकता नहीं है।

सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रभाव भी दक्षिण पर कुछ कम नहीं पड़ा। मराठी से प्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर एवं उनके अग्रज निवृतिनाथ 'नाथ विचारधारा' से प्रभावित थे एवं उनका सीधा सम्बन्ध गोरखनाथ परम्परा से था। इसी प्रकार सिद्धों का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में पड़ा। इसी काल में उत्तर भारत की पूर्वी एवं पश्चिमी भाषाएँ विकसित हो रही थीं। इन्हीं दिनों जो सन्त यहाँ आये उनके साथ ये बोलियाँ भी यहाँ पहुँचीं और यह परम्परा बराबर चलती रही।

सामाजिक अवस्था

दक्षिण भारत के अधिकांश मूल निवासी द्रविड़ हैं। जिस प्रकार उत्तर भारत का समाज कई वर्गों में विभाजित था उसी प्रकार दक्षिण में भी द्रविड़ जाति व्यवसाय के अनुरूप कई वर्गों में विभक्त थी। यथा—कृष्णक, ग्वाल, सामुद्रिक (मछुवे अथवा नाविक), शिकारी और अन्य वर्ग। उत्तर भारत में आर्यों द्वारा जो समाज स्थापित किया गया था उसमें और कोई विषमता न थी, किन्तु धीरे-धीरे उसमें जातिगत भेद आ गया। द्रविड़ों में जन्म से जाति का कोई सम्बन्ध न था और न ही जाति प्रथा की विषमता थी। द्रविड़ जाति में स्त्रियों को स्वतन्त्रता अधिक थी। यहाँ पर पर्दा प्रथा का चलन न था। स्त्रियों को सामाजिक कार्यों में भाग लेने की स्वतन्त्रता थी। इस समाज की एक विशेषता यह थी कि यहाँ पर प्रेम विवाह का बहुत प्रचलन था और बहु विवाह की प्रथा थी। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचलन था और ये विदुषी होती थीं। द्रविड़ समाज में अतिथि सत्कार की भावना थी और ये बहुत परिश्रमी थे। सन्तान में साहस और अन्य गुणों का विकास करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे। द्रविड़ों का मुख्य आहार चावल और मांस था। मद्यपान का चलन इनमें अधिक था, किन्तु बौद्धों एवं जैनों के सम्पर्क से यह बहुत कम हो गया।

आर्थिक दृष्टि से द्रविड़ उन्नत थे क्योंकि ये प्रायः व्यापारी थे। इन्होंने छठी शताब्दी ईसा से ही बेबीलोनिया में व्यापारिक उपनिवेश स्थापित कर लिये थे और भारतीय चावल, गर्म मसाला और पीपल यूनान भेजते थे। यह भी कहा जाता है कि प्रथम शताब्दी ईसा के आरम्भ में ही रोम भारतीय सूती कपड़े व गर्म मसाले, हीरे-जवाहरात का व्यापारिक केन्द्र बन गया था। भारतीय मखमल मिस्र तथा अन्य देशों को भेजा जाता था। चीन से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। यह व्यापार द्रविड़ राज्यों के बन्दरगाहों से होता था। द्राविड़ क्षेत्र इस व्यापारिक सम्बन्ध के कारण धन-धान्य से पूर्ण था।

बुनाई कला में द्रविड़ समाज अत्यधिक उन्नतिशील था। कहा जाता है कि ये बत्तीस प्रकार के सूती कपड़े बुनना जानते थे। कला का प्रदर्शन लकड़ी पर किया करते थे। ये कलाकार तथा भवन निर्माता थे। बाद में ये लोग काष्ठ कला के अतिरिक्त पत्थर पर भी चित्रकारी करने लगे जो आज भी दर्शनीय है। गायन विद्या और नृत्य कला में इन्होंने विशेष उन्नति की थी।

दक्षिण भारत की भाषाओं में तमिल भाषा का सर्वोच्च स्थान था। इसके साहित्य को प्रोत्साहन बौद्ध, जैन, वैष्णव और शैव विद्वानों ने दिया जिससे अनेकानेक लेखकों तथा कवियों का आविर्भाव हुआ। आगे चलकर कन्नड़ और तेलुगु भाषाओं में भी साहित्य की रचना होने लगी। द्रविड़ भाषाओं में मलायलम भाषा का जन्म सबसे बाद में हुआ किन्तु आज इसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों में जैन धर्म के प्रचार के कारण यहाँ के समाज में कुछ अन्तर आने लगा तथा जैनों और बौद्धों का संघर्ष छिड़ गया। इतना ही नहीं बल्कि शैव मत और ब्राह्मण मत में भी संघर्ष आरम्भ हुआ किन्तु ब्राह्मणों के अधिक प्रभाव के कारण जाति भेद भी अधिक उभर आया, जिससे समाज में विघटन उत्पन्न हो गया। समाज में निम्न जातियों की स्थिति अच्छी न थी। इस विषय में सामाजिक स्थिति ने ही मुसलमानों को दक्षिण में प्रवेश के लिए उकसाया और मुसलमानों को अपने धर्म के प्रचार के लिए सुविधाएँ प्रदान कीं। जीवन सांत्वना के लिए सूफ़ी सन्तों के उपदेश और मधुर वाणी से मुग्ध होकर उस ओर द्रविड़ आकृष्ट हुए और उन्होंने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। उन दिनों धर्म प्रचार का माध्यम दक्खिनी ही थी।

दक्खिनी और मुसलमान

दक्खिनी के विषय में मुस्लिम समाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण भारत से अरबों का सम्बन्ध बहुत पुराना है। अरबों के साथ ही भारतीय व्यापारी पश्चिमी देशों से व्यापार करते थे। पाँचवीं शताब्दी में फारस का भारत से व्यापार चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था। इनमें अधिकतर अरब नाविक ही काम करते थे। अतः अरब और भारतीयों का साझा था। यह स्वाभाविक बात है कि जब एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों के साथ व्यापार करेंगे तो उनका प्रभाव एक दूसरे पर पड़ेगा। यही कारण है कि उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत पर अरबों का प्रभाव विशेष रहा। इस्लाम के उदय से पहले ही भारत के दक्षिणी तट पर अरबों की बस्तियाँ थीं। इनमें प्रमुख रूप से मलाबार का स्थान था। अरबों की बस्तियाँ चाउल, कल्याण और सोपारा में भी थीं। जब सातवीं शताब्दी में इस्लाम का उदय हुआ तो इसने इस दिशा में अत्यधिक सहायता की। इस्लाम के सेनापतियों ने मध्य तथा पश्चिमी एशिया की भूमि पर झंडा फहरा दिया तथा हिन्द महासागर में उनके जहाजी बेड़े फिरने लगे।

राष्ट्रकूटों के शासन काल (756 ई० से 973 ई०) के बीच व्यापार खूब होता था। आठवीं और नौवीं शताब्दी से ही अरब और फारस में सूफ़ी मत का प्रचार ज़ोरों से होने लगा था और दसवीं तथा बारहवीं शताब्दी में इसने असाधारण उन्नति कर ली थी। डा० मुहम्मद गौस के मतानुसार—"मलिक काफ़ूर के दक्षिण आने से पहले और रूमी के पश्चात् दक्षिण भारत में लगभग बीस सूफ़ियों के शिष्य धर्म प्रचार

का कार्य कर रहे थे और इसकी जानकारी मलिक काफ़ूर को थी । इनमें शाह मोलिन, बाबा सैयद मज़हर, तबले आलम, शाह अलाउद्दीन, शाह अली पहलवान, शाह निज़मुद्दीन, बाबा शरफ़ुद्दीन, बाबा शाहुद्दीन और बाबा फकरुद्दीन आदि के नाम विशेष हैं । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि दक्षिण में आने वाले मुस्लिम व्यापारियों के साथ ही इस्लाल धर्म के प्रचारक भी दक्षिण में आये । इन प्रचारकों ने भारत के निवासियों को अपनी ओर आकृष्ट किया और बहुत से लोगों को मुसलमान बनाया ।

अरब व्यापारी लाल सागर से चलकर सिंध के मुहाने और खम्भात की खाड़ी से होते हुए मलावार पहुँचते और वहाँ पड़ाव कर लंका जाया करते थे । ये लोग भी अपने धर्म का प्रचार करते थे । इनके कारण मलाबार तट पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा और यह धर्म यहाँ के निवासियों को इतना अच्छा लगा कि यहाँ के शासक राजा क्रांगनूर ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया । जब राजा ने ही इस धर्म को स्वीकार कर लिया तो अब मुसलमान प्रचारकों को किसी प्रकार की कठिनाई न रह गयी और वे शान्तिपूर्वक इस्लाम का प्रचार करते रहे । दसवीं शताब्दी तक पूर्वी समुद्र तट पर भी अरब मुसलमान आ बसे और मदुरा, त्रिपुरा (त्रिचनापल्ली) आदि में उनकी बस्तियाँ बन गयीं । तेरहवीं शताब्दी तक मुसलमानों ने यहाँ की राजनीति में भी प्रवेश पा लिया था तथा पांडव राजाओं के यहाँ मुसलमान ऊँचे पदों पर थे । यहाँ तक कि मंत्री पद पर भी आसीन हो गये । मलिक काफ़ूर ने जब आक्रमण किया तो यहाँ पर अनेक मुसलमान बस्तियाँ थीं तथा यहाँ के राजाओं के पास मुस्लिम सेनाएँ थीं ।

सिंध पर अरब शासक 711 ई० से ही शासन कर रहे थे और इनका सम्बन्ध राष्ट्रकूटों से था । तेरहवीं शताब्दी में उत्तरी भारत से मुसलमान दक्षिण भारत आने लगे थे । जिन मुसलमानों ने उत्तर से दक्षिण में आकर अपना निवास बनाया, वे अपने आपको दक्खिनी अथवा मुल्की कहते थे एवं जो मुसलमान ईरान, ईराक तथा अरब से आये थे उन्हें आफ़ाक़ी के नाम से सम्बोधित किया जाता था । यही आफ़ाक़ी लोग उच्च वर्ग से थे और इन्हीं की भाषा और वेशभूषा उच्च मानी जाती थी । वास्तव में ये लोग अपने आपको केवल हिन्दुओं से ही नहीं बल्कि मुसलमानों से भी श्रेष्ठ समझते थे । स्वभावत. दक्खिनी मुसलमान भाषा और अध्ययन के क्षेत्र में आफ़ाक़ियों की श्रेष्ठता को स्वीकार करने पर भी छोटेपन की भावना से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया से वंचित न हो सके । बहमनी वंश के शासकों की नीति यह थी कि वे कभी आफ़ाक़ियों को बढ़ावा देते थे तो कभी दक्खिनी मुसलमानों को । आफ़ाक़ियों का सम्बन्ध विशेषकर शासकों और दरबारों तक ही सीमित था किन्तु दक्खिनी मुसलमानों का सम्बन्ध दरबार और स्थानीय लोगों से भी था । इस कारण इन्हें स्थानीय कुलीन हिन्दुओं का समर्थन भी समय-समय पर मिलता रहा । अतः दक्खिनी मुसलमान महाराष्ट्र तथा कर्नाटक की प्राचीन संस्कृति और जीवन से

परिचित ही नहीं हुए बल्कि उसे बहुत सीमा तक अपनाया भी। दक्खिनी और आफ़ाक़ी लोगों का संघर्ष बहुत गहरा होता गया। अब यह केवल प्रशासनिक ही नहीं रह गया था प्रत्युत दैनिक जीवन और संस्कृति के क्षेत्र में भी प्रवेश पा गया था।

अहमद नगर, बीजापुर और गोलकुन्डा के शासक यद्यपि अरब और ईरान की संस्कृति में विशाल रुचि और आस्था रखते थे, साथ ही स्थानीय भाषाओं और रीति-रिवाजों से भी सम्बन्ध रखते थे एवं उसमें समय-समय पर हाथ भी बटाते थे। यद्यपि ये आफ़ाक़ियों को सम्मान देते थे। तत्कालीन परिस्थितियों ने दक्षिण में धर्म, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में समन्वय एवं सहिष्णुता के प्रयोग का जो दायित्व उन्हें सौंपा था, उसे इन राजवंशों ने भलीभाँति निभाया।

दक्खिन और हिन्दी का सम्बन्ध

जैसा विगत पृष्ठों में वर्णित है दक्खिनी भाषा दक्खिनी अथवा मुल्की मुसलमानों की भाषा है जो परिस्थितिवश मिल जुलकर विकसित हुई। जब हम इस नव्य भाषा की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह उत्तर भारत की विभिन्न बोलियों को आत्मसात किये हुए है और इस पर पश्चिमी एवं पूर्वी बोलियों का प्रभाव है किन्तु पश्चिमी बोलियों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। इसमें अरबी और फारसी के शब्द बहुलता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण की भाषाओं—मराठी, तेलुगु एवं कन्नड़ का भी प्रभाव कम नहीं है। अतः इन सब प्रभावों के कारण दक्खिनी (भाषा) भारतीय भाषाई मानचित्र पर एक नयी भाषा बन गयी।

दक्खिनी के दो रूप हैं—एक बोली का रूप और दूसरा साहित्यिक रूप। बोलचाल की दक्खिनी में स्थानीय बोलियों का प्रभूत प्रभाव रहा है। औरंगाबाद और देवगिरी की बोलचाल की भाषा पर मराठी का प्रभाव बीजापुर और गुलबर्गा की दक्खिनी पर कन्नड़ का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। अतः मैसूर, मद्रास और अन्य अनेक नगरों की भाषाओं में बहुत अन्तर आ गया है। कभी-कभी तो एक स्थान का व्यक्ति दूसरे स्थान के व्यक्ति की बोली को कठिनाई से ही समझ पाता है।

डा० श्रीराम शर्मा ने एक स्थल पर लिखा है—"पछाँह की बोलियों से दक्खिनी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दी ही नहीं उर्दू के साहित्यिक परिनिष्ठित रूप के अध्ययन के लिए भी इन बोलियों का अध्ययन आवश्यक है। इसका एक कारण तो यह है कि परिनिष्ठित हिन्दी या उर्दू के अध्ययन के लिए हमारे पास अठारहवीं सदी से पहले की लिखित सामग्री बहुत कम है जबकि दक्खिनी में चौदहवीं से लेकर अठारहवीं सदी तक पाँच सौ वर्षों में लिखा हुआ समृद्ध साहित्य है। दूसरा कारण यह है कि हिन्दी से सम्बन्धित इस बोली का विकास उत्तर से हटकर दक्षिण के उस क्षेत्र में हुआ जहाँ दक्षिण भारत की दो बड़ी गौरवशाली भाषाएँ—तेलुगु और कन्नड़ बोली जाती हैं। इस बोली के विकास में गुजराती और मराठी ने भी सहायता की है।

अरब, ईरान तथा मध्य एशिया के देशों से आने वाले साधकों और विचारकों के भाव-वहन करने का अवसर इस बोली को प्राप्त हुआ।"[1] पंडित परशुराम चतुर्वेदी का कथन है—"दक्खिनी हिन्दी मूलतः वह कौरवी, हरियानी व हिन्दी बोली थी जो दिल्ली के मुस्लिम सुलतानों द्वारा की गयी, दक्षिण भारत की विजय के साथ-साथ उस ओर प्रायः विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल से ही पहुँचने लग गयी थी।"[2]

प्राचीन काल से उत्तर-दक्षिण में अनेक भाषाओं की विद्यमानता में भी एक सामान्य भाषा का व्यवहार होता रहा। इतिहास इसका साथी है कि शतियों तक संस्कृत धार्मिक भाषा ही नहीं प्रत्युत संस्कृति और राजकाज की भाषा भी थी। आठवीं शताब्दी तक दक्षिण के शासक ताम्रपत्र अथवा शासन पत्र संस्कृत में लिखा करते थे। जैन और बौद्ध धर्मावलम्बियों ने धर्म प्रचार के लिये प्राकृत भाषा का आश्रय लिया। इससे उत्तर भारत में प्राकृत सांस्कृतिक तथा साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार की गयी और यही भाषा दक्षिण में भी अपनाई गयी अर्थात् प्राकृत ने भी दक्षिण भारत में संस्कृत की भाँति महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। जब उत्तर में अपभ्रंश भाषा ने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्तर को प्राप्त किया तब दक्षिण के मनीषी भी इसे अपनाने में पीछे नहीं रहे। इसमें उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचनाएँ हुई। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण का सम्पर्क नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में भी सहायक सिद्ध हुआ। इस कड़ी को और अधिक दृढ़ करने का काम मुसलमानों ने किया। मुसलमान यों तो आठवी-नवी शताब्दी से ही भारत में रहने लगे थे किन्तु जब वे शासक के रूप में भारत आये तो इन्होंने इस कड़ी को दृढ़तर करने का प्रयास किया और चौदहवीं शताब्दी में ये अपने प्रयत्न में अधिक सफल हो सके।

सम्राट अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल से लेकर निज़ामुल मुल्क आसफ़ जाह (प्रथम) तक सहस्रों परिवार उत्तर भारत से दक्षिण भारत में आये और उन्होंने दक्षिण को ही अपना निवास स्थान बनाया। ये परिवार केवल दिल्ली से ही संबंधित नहीं थे बल्कि उनका सम्बन्ध उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों से था। किसी का मूल निवास स्थान अवध या किसी का बिहार तो किसी का राजस्थान और किसी का पंजाब किन्तु इनमें दिल्ली के निवासी ही अधिक थे।

विभिन्न स्थानों से आये हुए उत्तर भारत के परिवारों की अपनी-अपनी मातृभाषाएँ थी, किन्तु सभी लोग दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली भाषाओं से भी परिचित थे। परिणामस्वरूप दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली भाषा दक्षिण में सांस्कृतिक भाषा बनने लगी और धीरे-धीरे ऐसे शब्दों का व्यवहार कम होने लगा जो किसी विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित थे। उस समय तक खड़ी बोली भलीभाँति

---

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास, प्राक्कथन, पृ० 8
2. पंडित परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, पृ० 367

परिष्कृत नहीं हुई थी और उस पर हरियानी, मेवाती, शेखावाटी एवं ब्रज बोलियों का प्रभाव अधिक था।

आगन्तुक मुसलमानों ने खड़ी बोली के महत्व को समझा क्योंकि यह ऐसी भाषा थी जो क्षेत्रीय प्रभावों के रहते हुए भी राजस्थान से बिहार तक भली प्रकार समझी जाती थी, उसमें विचार विनमय सरलतया सम्भव था। इस कारण सामान्य जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए उन्होंने खड़ी बोली को स्वीकार किया। इन लोगों ने जब खड़ी बोली को स्वीकार किया तो दक्खिनी में अरबी और फारसी के शब्दों का समावेश आरम्भ हुआ। खड़ी बोली में अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों का प्रयोग करने में सामान्य जनता ने भी गौरव अनुभव किया। राजनीतिक स्थिति का उल्लेख करते हुए बताया जा चुका है कि अलाउद्दीन खिलजी से लेकर मुगल सम्राट औरंगजेब के शासन काल तक दिल्ली से दक्षिण के राज्यों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में परस्पर रहा है। खड़ी बोली जैसे-जैसे परिष्कृत होती गयी वैसे-वैसे दक्खिनी पर भी उसका प्रभाव पड़ा, किन्तु दक्खिनी ने अपने ढाँचे में विशेष परिवर्तन नहीं किया।

दक्खिनी के विकास में मुस्लिम धर्म प्रचारकों का कम योग नहीं, यद्यपि इन धर्म प्रचारकों का मुख्य उद्देश्य यह था कि सहस्त्रों की संख्या में जो मुसलमान दक्खिन में आकर बस गये थे, उन्हें धार्मिक दृष्टि से केन्द्रीय भावधारा से पृथक न होने देना। इसी अन्तः प्रेरणा से इस्लाम के प्रचारक प्रसिद्ध सूफी साधक ख्वाजा बन्दा नवाज़ 90 वर्ष की आयु में दक्षिण में आये। इसके पश्चात् बहुत से सूफ़ी सन्त अपने शिष्यों के साथ यहाँ आते रहे और उन्होंने औरंगाबाद, गुलबर्गा, बीजापुर तथा अन्य स्थानों को धार्मिक प्रचार का केन्द्र बनाया। इन सन्तों ने अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए खड़ी बोली को उपयुक्त समझा और इस प्रकार दक्खिनी भाषा का साहित्य के लिए उपयोग आरम्भ हुआ। दक्खिनी में दर्शन और धर्मशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली सन्तों के कारण ही आई।

उत्तर में नेपाली एवं उसके सर्वथा विपरीत दक्षिण में गोलकुन्डा की दक्खिनी में राजस्थानी के शब्द रूपों में कई स्थलों पर आश्चर्यजनक समानता मिलती है। दक्खिनी पर राजस्थानी के बहुबचन, पूर्वकालिक क्रिया, क्रिया के स्त्रीलिंग तथा क्रिया-विशेषणों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

दक्खिनी में हिन्दी बोलचाल के सभी स्वर—अ आ, इ ई, उ ऊ, एँ ए ऐ, आँ ओ, औ विद्यमान हैं। हिन्दी बोलचाल के सभी व्यंजन भी दक्खिनी में पाये जाते हैं। इसमें अरबी फारसी के सभी कुछ अक्षर आ गये हैं जैसे—ख़, ज़, ग़, फ़, क़ आदि। उत्तर भारत की बोलचाल में जहाँ एक ही शब्द में दो मूर्धन्य ध्वनियाँ पास-पास के अक्षरों में आती हैं, वहाँ दक्खिनी में पहली के स्थान में दन्त्य ध्वनि आ जाती है। साहित्यिक खड़ी बोली की इकारान्त-ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में इस अविकारी विभक्ति के बहुवचन में 'याँ' जुड़ता है उसी तरह दक्खिनी में भी। जैसे—

एक अये, अपनियाँ, एतियाँ मूरतियाँ।
बैसियाँ शाह परियाँ।

सम्बन्ध वाचक और अनिश्चय वाचक अंशों को जोड़कर बोलने का जो चलन उत्तर भारत में है, वह दक्खिनी में भी विद्यमान है। इनमें 'जो' का कभी-कभी 'जु' हो गया है। जैसे—जु कोई, जु कुछ, जु कुच आदि।

यद्यपि दक्खिनी ने खड़ी बोली अथवा पश्चिमी बोली से विशेष रूप विन्यास-ग्रहण किया है तथापि पूर्वी बोलियों से भी सम्बन्ध बनाये रखा। दक्खिनी ने पूर्वी बोलियों के क्रिया पदों को अपनाया है। पूर्वी बोलियों में अवधी का अपना विशेष स्थान है। अवध सूफ़ी साधकों का प्रमुख केन्द्र रहा है। अतः सूफ़ी सन्तों ने अवधी भाषा में अनेक काव्यों की रचना की। दक्षिण भारत में उत्तर भारत के बहुत से लोग आये और उनमें सूफ़ी सन्त भी थे जो अवधी भाषा से भली प्रकार परिचित थे तथा सूफ़ी सन्तों के उन ग्रंथों से भी परिचित थे जो अवधी में लिखे गये थे। यही कारण है कि बहुत से अवधी काव्यों का दक्खिनी में अनुवाद हुआ—मुल्ला दाऊद कृत 'चन्दायन' का अनुवाद मुल्ला गवासी ने 'मैना सतवन्ती' के नाम से किया। जायसी कृत 'पद्मावत' का अनुवाद गुलाम अली ने उसी नाम से किया। इसके अतिरिक्त मंझन कृत 'मधुमालती' का अनुवाद नुसरती ने 'गुलशन-ए-इश्क' के नाम से किया। इसमें नाममात्र का अन्तर है अन्यथा कहानी, दृश्य एवं घटना स्थल सब एक समान है। इन रचनाओं की दक्षिण में विशेष ख्याति है।

इसके अतिरिक्त पूर्वी बोलियों का दक्खिनी पर जो प्रभाव पड़ा उसके कई कारण हैं—(1) हिन्दी की निर्गुणधारा के लगभग सभी सन्त कवि पूर्वी क्षेत्र के थे जो वहाँ की ही बोली बोलते थे और उनकी कविताओं पर उसका प्रभाव स्वाभाविक ही है। (2) 16वीं और 17वीं शताब्दी में जौनपुर सूफ़ी सन्तों का केन्द्र था। 'मृगावती' नामक प्रसिद्ध सूफ़ी काव्य की रचना शेख कुतुबन ने जौनपुर के शासक के आश्रय में की। जौनपुर के पतन के बाद वहाँ के बहुत से सामन्त, विद्वान और सम्भ्रान्त व्यक्ति गोलकुण्डा और बीजापुर आदि नगरों में आकर बस गये। ये सभी अपनी-अपनी भाषा बोलते थे। इससे उनकी रचनाओं पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। (3) मुस्लिम शासकों की सेनाएँ किसी एक स्थल पर नहीं रहती थी, न ही उन सेनाओं में किसी क्षेत्र विशेष के व्यक्ति थे। अतः छावनियों में विभिन्न भाषाओं का एक विचित्र संगम हो जाता था।

उत्तर भारत की बहुत समय तक ब्रजभाषा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक भाषा थी। जब उत्तर भारत से अनेक विद्वान् दक्षिण आये तो उनमें बहुत से काव्य रसिक ब्रजभाषा से भी परिचित थे। अतः दक्षिण के लोग भी ब्रजभाषा के प्रभाव से वंचित न रह सके एवं दक्षिण के अनेक कवियों ने ब्रजभाषा में भी कविताएँ लिखीं। कुछ कवियों की दक्खिनी भाषा में ब्रजभाषा की प्रवृत्ति पायी जाती है। इब्राहीम शाह

द्वितीय के 'नवरस नामा' में ब्रजभाषा के शब्द ही नहीं प्रत्युत व्याकरणिक रूप भी मौजूद हैं। शाह अली मुहम्मद गाँवधनी की रचना 'जवाहरुल असरार' में ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इतना ही नहीं वजही की गद्य रचना 'सबरस' में भी अनेक दोहे ब्रजभाषा के हैं। इसी प्रकार अशरफ कृत 'नौसर हार' पर भी ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है।

प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा है—"हिन्दवी के प्रारम्भि कवि मुसलमान सूफी फकीर थे, जिन्होंने अपने धार्मिक विचारों के प्रचार की दृष्टि से ये (दक्खिनी) रचनाएँ लिखीं थीं। यह साहित्य अभी तक देवनागरी लिपि में प्रकाशित नहीं हुआ है, यद्यपि इसकी भाषा पुरानी खड़ी बोली है।"[1] दक्खिनी के प्राण डा० बाबूराम जी सक्सेना ने दक्खिनी को हिन्दी माना है—"दक्खिनी खड़ी बोली का ही पूर्वकालिक रूप है।"[2] प्रसिद्ध भाषाविद् डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने दक्खिनी भाषा को हिन्दी की संज्ञा देते हुए कहा है—"इस साहित्य शैली का शाब्दिक, तात्विक और तथ्य विषयक ढाँचा उत्तर भारत के सन्त साहित्य जैसा ही था। इसके बाद अधिकतया शुद्ध हिन्दी या संस्कृत तत्सम अथवा अर्धतत्सम ही होते थे, मामूली तौर पर विदेशी अरबी-फारसी शब्द अधिक नहीं आते थे। बाद में, केवल मुसलमान लेखक द्वारा प्रयुक्त होने के कारण, इन विदेशी शब्दों की संख्या बढ़ती गयी, किन्तु उसका अनुपात इतना नहीं था जितना दिल्ली और लखनऊ की उर्दू में हम देखते हैं। भाषा के हिन्दीपन को कोई हानि नहीं पहुँची। इसलिए दक्खिनी साहित्य को हम असंदिग्ध रूप से शुद्ध हिन्दी साहित्य का ही अंश समझ सकते हैं।"[3]

दक्खिनी और क्षेत्रीय भाषाएँ

दक्खिनी भाषा और साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव मराठी का पड़ा। इसका प्रमुख कारण यह है कि मराठी आर्य कुल की भाषा है और खड़ी बोली तथा मराठी में कई दृष्टियों से साम्य पाया जाता है। दौलताबाद, गुलबर्गा के पश्चात् जब बीजापुर में मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई तो वहाँ के बड़े-बड़े पदों पर मराठी भाषी नियुक्त किये गये और इतना ही नहीं बीजापुर की राजभाषा बहुत दिनों तक मराठी रही। इससे दक्खिनी में मराठी भाषा के बहुत से शब्द आये और स्थायी बन गये। दूसरी बात यह भी है कि दक्खिनी भाषा का प्रचार प्रसार चार-पाँच शक्तियों तक महाराष्ट्र अथवा उसके आस-पास के क्षेत्र में ही हुआ है। यदि ठीक से परखा जाये तो कहा जा सकता है कि दक्खिनी को मराठी के साथ ही युवावस्था प्राप्त हुई। यही

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 80
2. ड० बाबूराम सक्सेना—दक्खिनी हिन्दी, पृ० 65
3. श्रीराम शर्मा—दक्खिनी का पद्य और गद्य, अवतरणिका, पृ० 6

कारण है कि शब्दों के समावेश के साथ-साथ दक्खिनी के उच्चारण में भी मराठी का प्रभाव है। यदि हम औरंगाबाद के दक्खिनी बोलने वालों से बातचीत करें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उनके बोलने का ढंग, स्वरों का उतार चढ़ाव, महाप्राण और अल्पप्राण का उच्चारण, वाक्य में शब्दों की स्थिति को व्यक्त करने वाली लय मराठी से प्रभावित है।

दक्खिनी का क्षेत्र मराठी के अतिरिक्त गुजराती, तेलुगु, कन्नड़ और तमिल भाषाओं के क्षेत्रों से मिला हुआ है। अतः उनका प्रभाव पड़ना भी निसर्ग सिद्ध है। सन् 1601 ई० में मुगलों ने गुजरात पर अधिकार किया। उस समय अहमदाबाद सूफी सन्तों का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ से बहुत से विद्वान् और कुलीन व्यक्ति बीजापुर चले आये। इस प्रवास में बहुत से सूफी साधक भी आये थे। इससे अहमदाबाद की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ पहले बीजापुर, फिर गोलकुन्डा को अनायास ही आ मिली। गुजरात से आये हुए सन्तों ने बीजापुर और गोलकुन्डा को दक्खिनी में गुजराती के शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ किया और शनैः-शनैः गुजराती के शब्द आम हो गये।

शब्दों के मिश्रण के साथ-साथ दक्खिनी के उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तन का क्षेत्रीय भाषाओं के अनुसार होना भी स्वाभाविक ही है। कन्नड़ और तेलुगु का उच्चारण जिस विशेष ढंग से होता है उसी ढंग से दक्खिनी का उच्चारण भी परिवर्तित हो गया। हैदराबाद, बीजपुर, गुलबर्गा के दक्खिनी भाषियों के उच्चारणों की यदि तुलना की जाये तो उच्चारण का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि दक्खिनी भाषा पर हिन्दी का प्रभाव अत्यधिक है किन्तु यह कहना भी असमीचीन होगा कि दक्षिण भारत की क्षेत्रीय भाषाओं—विशेषकर मराठी, कन्नड़, तेलुगु और तमिल का प्रभाग नगण्य है। इन भाषाओं का महत्वपूर्ण योग है। भाषा जब स्वतन्त्र होती है और अन्य भाषाओं की शब्द सम्पदा को बचाने की शक्ति रखती है तो भाषा सशक्त बनती है। इस प्रकार वह किसी वर्ग विशेष और जाति विशेष की भाषा न होकर समस्त मानव समाज की भाषा होती है। यही कारण है कि दक्खिनी भाषा न किसी वर्ग विशेष से सम्बन्धित रही है और न ही किसी जाति विशेष से अपितु यह मध्ययुग में सभी वर्गों और जातियों की भाषा बनकर सामने आयी। इसी प्रकार इसका साहित्य भी मानव जाति के लिए है न कि किसी विशेष जाति अथवा वर्ग के लिए। यह भाषा सुसमृद्ध इसी कारण बन सकी है कि उसने किसी विशेष भाषा से सम्बन्ध न रखकर समस्त भाषाओं से अपना सम्बन्ध जोड़ा है। यही कारण है कि कुछ विद्वान इसे गुजरी की संज्ञा से अभिहित करते हैं तो कुछ उर्दू और कुछ हिन्दी से। मेरा विश्वास है कि दक्खिनी भाषा का विकास अपने आप में स्वतन्त्र है। यह खड़ी बोली के मार्ग पर चलने वाली है तथा उसकी अनुगामिनी है।

भारतवर्ष में एक नयी भाषा का जन्म, जिसे उर्दू कहते हैं, मुसलमानों के आगमन के बाद हुआ। जब मुसलमान भारत में आये तो उन्होंने जनसाधारण से

सम्पर्क स्थापित के लिये एक ऐसी भाषा की रचना की जिसे साधारण से साधारण भारतीय समझ सकता। आरम्भ में मुसलमान दिल्ली अथवा दिल्ली के आस-पास रहे थे। अतः उन्होंने दिल्ली के आस-पास की बोलियों और अरबी-फारसी के मिश्रण से एक नयी भाषा को जन्म दिया जिसे अमीर खुसरो ने हिन्दवी की संज्ञा दी और फिर बाद में उसी को उर्दू अथवा खड़ी बोली हिन्दी कहा गया। प्रारम्भ में हिन्दी और उर्दू दोनों एक ही थी किन्तु अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति को इसके साथ जोड़ा और इसे दो नामों से पुकारा—(1) हिन्दी हिन्दुओं की भाषा और (2) उर्दू मुसलमानों की भाषा। यह कार्य फोर्ट विलियम कालेज में आरम्भ हुआ। यहाँ भाषा हिन्दू-मुस्लिम भाषा के रूप में विभक्त हुई। एक ओर उर्दू में अरबी-फारसी के शब्दों को भरा जाने लगा तो दूसरी ओर हिन्दी में संस्कृत और प्राकृत के शब्दों को।

खड़ी बोली का जन्म भारत की अन्य भाषाओं के समान मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा से हुआ। अतः यह एक अन्य भारतीय आर्य भाषा है। इसके परसर्ग, सर्वनाम, क्रियापद आदि का क्रमिक विकास मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के समान है। अतः उर्दू को जिसका जन्म हिन्द में हुआ विदेशी भाषा की संज्ञा देना अनुचित होगा। यह कहा जा सकता है कि नवागन्तुक मुसलमानों ने भारतीय आर्य भाषा की परम्परा में नयी आर्य भाषा की रचना की।

इसी प्रकार जब मुसलमानों का प्रवेश उत्तर से दक्षिण भारत में हुआ तो वे अपने साथ उत्तर भारत के जनसाधारण की भाषा को लाये और उन्होंने दक्षिण वासियों से अपने सम्पर्क को दृढ़ बनाने के लिए तथा वहाँ के लोगों से विचार विनिमय के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता अनुभव की जिसके विकास से दक्षिण वाले भी लाभ उठा सकें। अतः ये लोग अपने साथ जो भाषा (खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप) लाये थे उसी के आधार पर दक्खिनी की रचना की और इसमें क्षेत्रीय भाषाओं (मराठी, कन्नड़, तेलुगु और तमिल) के शब्दों का समावेश किया। स्वाभाविक ही है जब उसमें अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों का समावेश हुआ तो उसकी रचना पद्धति में अन्तर आया। डा० मसऊद हुसेन खाँ ने दक्खिनी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "कुछ संज्ञाओं की भिन्नता और उच्चारण भेद के अलावा दक्खिनी दिल्ली के मुस्लिम शासकों के युग की प्राचीन उर्दू के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"[1] भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दक्खिनी भाषा का परीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि इसकी संरचना प्रक्रिया दिल्ली के आस-पास की बोलियों—विशेष रूप से हरियाणी और खड़ी बोली से मेल खाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि दक्खिनी भाषा उत्तरी और दक्षिणी भारतीय संस्कृति तथा हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति की प्रतिनिधि भाषा है।

□ □

1. डा० मसऊद हुसेन खाँ—शेरो अज़्म, पृ० 176

द्वितीय अध्याय

दक्खिनी साहित्य की सामग्री और काल विभाजन

साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने के दो प्रमुख साधन होते हैं : एक—अन्त: साक्ष्य और दो—बहि: साक्ष्य ।

अन्त: साक्ष्य में ग्रन्थों, रचनाओं, संग्रहों में कवियों-लेखकों द्वारा आत्म निवेदन के आधार पर तथ्यों का अध्ययन किया जाता है ।

बहि: साक्ष्य के द्वारा भी इतिहास लेखन में सहायता मिलती है । इसमें स्वरचित रचनाओं को छोड़कर उनके सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री होती है । इसके दो रूप हैं—एक प्राचीन सामग्री, जिसके अन्तर्गत प्राचीन कवियों की रचनाओं के संग्रह आते हैं । दूसरा रूप आधुनिक है जिसका सूत्रपात अब्दुल जब्बार मलकापुरी ने 1912 ई० में किया । इन्होंने 'शुअरा-ए-दकन' और 'औलिया-ए-दकन' द्वारा इस रूप का श्री गणेश किया । तत्पश्चात् बाबा-ए-उर्दू मौलाना अब्दुल हक़ ने 'उर्दू की इब्तदाई नशों नुमा में सूफ़िया-ए-कराम का काम' की रचना की । दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री नसीरुद्दीन हाशमी ने 'यूरोप में दक्खिनी मखतूतात' और 1923 ई० में 'दकन में उर्दू' नामक शोध ग्रन्थों की रचना की । सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर की रचनाएँ—'उर्दू शहपारे' (1929 ई०), 'उर्दू मखतूतात' और 'दक्खिनी अदब की तारीख' 1957 ई० में पाठकों के सामने आयीं । प्रो० अब्दुल क़ादर सरवरी ने 'उर्दू मसनवी का इरतका' सन् 1939 ई० में पाठकों के सम्मुख रखा । प्रो० दाऊद खाँ शेरवानी ने 'दी बहमनीज़ आफ़ दी डेक्कान' (1953 ई०) और 'दक्खिनी कलचर' (1977 ई०) नामक दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाशित किया । दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् एवं प्रसिद्ध भाषाविद् डा० मसऊद हुसेन खाँ ने 'तारीख-ए-ज़बान उर्दू' (1954 ई०) 'करीम उर्दू' (चार भाग क्रमश: 1965, 1967, 1968 और 1972 ई०) में प्रकाशित करके दक्खिनी साहित्य की अमूल्य सेवा की है । डा० गोपीचन्द नारंग की रचना 'उर्दू मसनवियाँ' (1962 ई०) प्रकाशित हुईं । शौक़त शब्जबारी कृत 'उर्दू ज़बान का इतरका' (1956 ई०) प्रकाशित हुई । श्री बदीम हुसेनी ने 'दकन में रेखती का इरतका' नामक ग्रन्थ की रचना की । महापंडित राहुल सांकृत्यायन की 'दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा' 1958 ई० में प्रकाशित हुई । डा० सईदा जाफर कृत 'दकनी रूबाइयाँ' 1966 ई० और हफीज़ क़तील कृत 'मेराजुल आशकीन' (1969 ई०) आदि महत्व-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाश में आये । इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत कवियों एवं लेखकों तथा युग विशेष के अनेकानेक अध्ययन उल्लेखनीय हैं । जैसा अन्यत्र कहा गया है कि दक्खिनी साहित्य के रचयिता विशेषतया सूफी साधक रहे हैं परन्तु उन्होंने अपने सम्बन्ध में

अत्याल्प जानकारी दी है। इसके अतिरिक्त इतिहास की पुस्तकों के साक्ष्य से कुछ सामग्री मिल जाती है क्योंकि समसामयिक इतिहासकारों ने प्रसिद्ध सन्तों, विद्वानों और साहित्यकारों का उल्लेख अपने इतिहास ग्रंथों में यत्र-तत्र किया है। यथा इब्न बतूता, फरिश्ता (अब्दुल कासिम फरिश्ता) आदि। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों ने भी इस सम्बन्ध में कुछ लिखा है किन्तु उनके ग्रन्थों और उल्लेखों में ठीक-ठीक तिथियाँ नहीं मिल पाती हैं। अतः ऐतिहासिक काल-विभाजन में बड़ी कठिनाई होती है।

वास्तव में कवि की कृति अथवा कृतियों का अध्ययन करना ही एक युग विशेष के जीवन की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना है। कवि की रचनाओं का सम्बन्ध इतिहास, राजनीति, धर्म तथा समाज आदि अनेक पक्षों से हो सकता है। इतिहास लिखने के लिए ऐसी रचनाओं की खोज परम आवश्यक होती है।

दक्खिनी साहित्य का भण्डार विपुल है परन्तु उसकी सामग्री अभी बिखरी पड़ी है। उसका कुछ भाग असावधानी और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण नष्ट भी हो चुका है। परिणामस्वरूप अनुसंधाताओं का समस्त साहित्यिक निधि तक पहुँचने का अवसर नहीं मिल पाता है। अतः पाण्डुलिपियों को प्रकाश में लाने की प्रथम एवं परम आवश्यकता है। ऐसा हो जाने पर दक्खिनी का ही नहीं, हिन्दी का साहित्य इतिहास भी पूर्ण हो जायेगा।

आज दक्खिनी साहित्य का जो लिपिबद्ध रूप प्राप्त है, वह तेरहवीं शताब्दी से सत्तरहवीं शताब्दी तक का है। यह समय बहमनी शासन का काल है जिसमें दक्खिनी का विकास हुआ।

दक्खिनी साहित्य के अनेक ऐसे कवि एवं लेखक हैं जो स्वतन्त्र अध्ययन एवं अनुसंधान का विषय बने हुए हैं। इनकी रचनाएँ अपने समय की साहित्यिक प्रक्रिया का पूर्ण संदेश देती हैं। महाराष्ट्र के कुछ सन्तों ने हिन्दी में कविताएँ लिखी हैं और उनके बाद दक्खिनी के प्रथम कवि एवं लेखक ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ हैं। इनकी मृत्यु 1422 ई० में हुई। ये फीरोज़ शाह बहमनी के शासन काल (1393 ई० से 1423 ई०) में सन् 1412 ई० में दिल्ली से गुलबर्गा आये। ये अरबी-फारसी के अच्छे विद्वान् तो थे ही और साथ ही साथ दिल्ली के आस-पास की बोलियों से भी अच्छी तरह अवगत थे। जब वे दक्षिण भारत में आये तो इन्होंने धर्म प्रचारार्थ जन-साधारण की बोली में तसव्वुफ से सम्बन्धित नियमों और सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया। इनके द्वारा रचित दक्खिनी की रचनाएँ इस प्रकार हैं—मेराजुल, आशकीन, हिदायतनामा, तिलावतुल वजूद, शिकारनामा, रिसाला सः बारह और चक्की नामा। दक्खिनी का प्रसिद्ध कवि निज़ामी, अहमद शाह बहमनी (द्वितीय) के शासन काल (1460-62 ई०) में वर्तमान था। इसका प्रेमाखयान काव्य 'कदमराव पदमराव' है। सदरुद्दीन एक सूफी साधक थे। इनकी रचना 'कसब महवियत' है। यह तसव्वुक की पुस्तक कही जा सकती है। सैयद अब्दुल्ला हुसेनी ने सैयद अब्दुल कादिर जीलानी की पुस्तक 'निशातुल इश्क' का अनुवाद दक्खिनी भाषा में किया था। कुतुब खाना

टीपू सुलतान में मुश्ताक की ग़जलें और क़सीदे मिले हैं जिससे स्पष्ट होता है कि ये अपने समय के श्रेष्ठ कलाकार थे। लुत्फ़ी की कुछ ग़जलें और क़सीदें प्राप्त हुए हैं। शाह मीराँ जी शम्सुल उश्शाक अपने समय के प्रसिद्ध सूफी साधक हैं। ये बहुत योग्य शेख और प्रसिद्ध अध्यात्मवादी थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—गुलबास, जल तरंग, सबरस, शरह मरग़ूबुल क़ुतूब, रिसाला तसव्वुफ़ (ये सभी रचनाएँ गद्य में हैं), खुशनामा, शहादतुल हक़ीक़त, खुशनग्ज, बसारतुल ज़िक मग्जे मरगब व चहार शहादत (ये सभी ग्रन्थ पद्य में हैं)। आजरी ईरान से आया, परन्तु अपनी प्रतिभा से बहमनी शासन में मालिकुश्शुअरा (राजकवि) के पद पर आसीन हुआ।

कुत्बुद्दीन 'फ़ीरोज़' कुत्बशाही शासनकाल का श्रेष्ठ कवि था। इनकी शायरी की प्रशंसा दक्खिनी के प्रसिद्ध कवियों ने की है। फीरोज़ केवल कवि ही नहीं, आचार्य भी था। फीरोज़ की केवल एक पुस्तक 'पितरनामा' का पता चल सका है। वजही का नाम असदुल्ला था। ये दक्खिनी के बहुत प्रसिद्ध कवि थे। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—कुतुब मुश्तरी, सबरस, ताजुल हक़ायक़ हैं। सुलतान मुहम्मद कुली कुत्ब शाह दक्खिनी का उच्चकोटि का कवि था। उसकी कविताओं का संग्रह हिजरी सन् 1025 में तैयार किया गया। इसमें मसनवियाँ, क़सीदे, मर्सिये, ग़ज़ल रूबाइयाँ सभी सम्मिलित हैं। सुलतान मुहम्मद कुली कुत्ब शाह का भतीजा व दमाद सुलतान मुहम्मद भी कवि था और अपना काव्य नाम 'ज़िल्लाह' रखता था। उसकी कविताओं का संग्रह भी प्राप्य है, जिसमें मसनवियाँ, कसीदें और गज़लें आदि हैं। अब्दुल्लाह कुत्ब शाह सुलतान मुहम्मद कुत्ब शाह का पुत्र और उत्तराधिकारी था। वह अपनी कविताओं में 'अब्दुल्लाह' काव्य नाम लिखता था। फारसी और दक्खिनी के उसको अत्यधिक अनुराग था और वह दोनों भाषाओं में कविता लिखता था। उसके फारसी और दक्खिनी दोनों में दीवान (काव्य संग्रह) मिलते हैं। इनमें क़सीदे, मसनवियाँ, मर्सिये और ग़ज़लें आदि संकलित हैं। गवासी अपने समय का प्रमुख कवि था। इसको सुलतान अब्दुल्लाह कुत्बशाह ने 1625 ई० में राज कवि के पद पर आसीन किया था। गवाही की रचनाएँ इस प्रकार हैं—सैफ़ुल मुलूक व बदीउज्जमान, तूतीनामा, मैना सतवन्ती। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त गवासी ने मर्सिये और ग़ज़लें भी लिखीं थी जिनका संकलन प्राप्य है। अहमद नामक कवि भी इसी काल का था। इसके दो प्रेमाख्यानक काव्य—लैला मजनूं और मुसीबत अहले बैत मिलते हैं। आज़िज का लगाव तसव्वुफ़ से था। इसकी रचना 'लैला मजनूँ' प्रेमाख्यान है जो फारसी से दक्खिनी में अनूदित है। कुत्बी का नाम कुत्बुद्दीन था। इसने ख्वाजा युसुफ़ की पुस्तक 'तोहफतुल निशाह' का दक्खिनी में 'तोहफ़ा' के नाम से अनुवाद किया। सुलतान एक सूफ़ी सन्त थे और इनके आध्यात्मिक गुरु प्रसिद्ध सूफ़ी साधक मीराँ जी शम्सुल उश्शाक थे। इनको भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इनकी रचनाओं का संकलन प्राप्त है। इनकी गद्य रचना 'दारुल असरार' है। शेख अब्दुल्ला कवि और गद्यकार दोनों था। इसकी गद्य रचना 'एहकामुल सलात' है, इस ग्रन्थ की रचना लेखक ने 1032 हिजरी

में की थी। जुनैदी का नाम अहमद था। इन्होंने 'माह-ए-पैकर' नामक ग्रन्थ की हिजरी सन् 1064 अर्थात् 1653 में की। सैयद बुलाकी की प्रसिद्ध रचना 'मेराज नामा' है। इब्न निशाती का मूलनाम शेख अहमद मजहररुद्दीन था और पिता का नाम शेख फखरुद्दीन था। इसका प्रसिद्ध प्रेमाख्यानक काव्य 'फूलबन' है। यह फारसी पुस्तक 'बसातीन' का अनुवाद है। तबई की रचना 'बहराम' व 'गुलन्दाम' है। कवि केवल काव्य रचना में नहीं निपुण था प्रत्युत एक सफल गद्य लेखक भी था। मुहब एक सूफ़ी घराने से सम्बन्धित थे और सलूक व बातिन से लगाव था। इनकी मसनवी 'मअज़ज़ा हज़रत फातुमा' है। यह फारसी से अनूदित है। कबीर नामक कवि ने 1090 हिजरी में 'तमीम अन्सारी' नामक ग्रन्थ की रचना की। औलिया गोलकुन्डा के दरबार से सम्बन्धित थे। इन्होंने हिजरी सन् 1090 में 'अबू शहमः' नामक प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की। गुलाम अली, ताना शाह के शासन काल का कवि है। इसका एक ही प्रेमाख्यानक काव्य 'पद्मावत' प्राप्त है। इस काव्य की रचना तिथि हिजरी सन् 1091 है। सेवक की मसनवी 'जंगनामा' है जिसका रचना-काल हिजरी सन् 1093 है। फायज़ अब्दुल हसन ताना शाह के समय का कवि है। इसने 'रिज़वान शाह रूह अफ़ज़ा' नामक प्रेमाख्यानक काव्य की रचना हिजरी 1094 अर्थात् 1683 ई० में की। लतीफ की मसनवी 'ज़फर जामा' है जिसे कवि ने हिजरी सन् 1095 में लिखा। इन्होंने मर्सियों की भी रचना की। अफ़ज़ल का नाम शाह मुहम्मद अफ़ज़ल था। ये एक बहुत बड़े सूफ़ी साधक थे। अफ़जल की रचना 'मुहिउद्दीन नामा' है। इस ग्रन्थ में कवि ने सैयद अब्दुल क़ादिर जीलानी के करामात और फ़ज़ीलत का उल्लेख किया है। इनके कई कसीदे भी मिलते हैं। फत्ताही का नाम मुहम्मद रफअती है। इसकी दो रचनाएँ—मुफीदुल यकीन और शअब ईमान मिलती हैं। मीराँ जी हसन खुदा नुमा ने दक्खिनी में कई रिसाले लिखे थे जिनमें 'शरह तमहीद हमदानी' प्रमुख है। मौलाना अब्दुल्ला की पुस्तक 'अहकामुल सलात' है। आबिद शाह एक सूफ़ी सन्त थे। ये कवि और गद्यकार दोनों थे। इनका काव्य 'गुलज़ारुलसालकीन' है और गद्य रचना 'कुन्जुल मोमनी' है।

आदिल शाही शासन काल में दक्खिनी साहित्य ने बहुत उन्नति की। शाह बुराहनुद्दीन जानम अपने समय के प्रसिद्ध सूफ़ी एवं कवि थे। इन्होंने दक्खिनी में कई रचनाएँ की हैं जो इस प्रकार है—

काव्य—इर्शाद नामा, मुनफहतुल ईमान, सुख सुहेला, हुज्जतुल बक़ा, नसीमुल कलाम, रमूज़ुल बासवीन, बशरतुज्ज़िक, वसीयतुल हादी, नुक़्त-ए-वाहिद, कुफ़ नामा, मुसाफिरत शेख खान मियाँ और दोहरो एवं फुटकल पदों का संकलन।

गद्य—कलमतुल हक़ायक़, मक़सूदे इब्तदाई, कलमतुल इसरार, अज़िक्रे जली, मारिफ़तुल कुलूब, हश्त मसाइल और रिसाले तसव्वुफ़।

इब्राहीम आदिल शाह (द्वितीय) स्वयं एक उच्चकोटि का कवि था और कवियों को आश्रय भी देता था। इसके काव्य का नाम 'इब्राहीम' था। इसकी प्रसिद्ध

रचना 'नौरस' है जो हिजरी सन् 1026 में लिखी गई। अबदल एक सफल कवि था। इसकी रचना 'इब्राहीम नामा' है जिसकी रचना कवि ने हिजरी सन् 1012 में की। मुक़ीमी की प्रसिद्ध रचना 'चन्दर बदन व महयार' है। कवि ने इस प्रेमाख्यानक काव्य को हिजरी सन् 1050 में लिखा। अमीन का प्रेमाख्यानक काव्य 'बहराम व हुस्न बानो' है। कवि शौक़ी की दो रचनाएँ प्राप्त हैं—फतहनामा निज़ाम शाह और मेजबानी नामा। अपने समय के प्रसिद्ध कवि सनअती ने 'किस्सा बेनज़ीर' और 'गुलदस्ता' नामक दो प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना की। मलिक खुशनूद की 'हश्त बहिश्त' और 'बाज़ार-ए-हुस्न' नामक रचनाएँ मिलती हैं। 'खाबिर नामा' ग्रन्थ के रचयिता रुस्तमी हैं। कविवार दौलत का प्रेमाख्यानक काव्य 'बहराम व गुलन्दाम' है। सुलतान अली आदिल शाह उच्चकोटि का कवि था। वह 'शाही' नाम से काव्य लिखा करता था। इसका दीवान (काव्य संग्रह) हिन्दी में प्रकाशित हुआ है। नुसरती अपने समय का प्रसिद्ध कवि हुआ है। इसने जो प्रेमाख्यान काव्य लिखे वे बड़े रुचिकर हैं। कविवर नुसरती की प्राप्त रचनाएँ इस प्रकार हैं—गुलशन-ए-इश्क, अलीनामा, तारीख-ए-इश्कन्दरी। शाह मलिक की रचना है—शरीअत नामा। अमीनुद्दीन अली, 'अमीन' नाम से काव्य रचना करते थे। इनके प्रमुख काव्य मुहब्बत नामा, रमूज़ुलसाकीन हैं और इनकी गद्य रचनाएँ हैं—गुफतार शाह अमीन और गंज मुखफी। हाशमी का मूलनाम सैयद मीरान है और इन्होंने 'युसुफ जुलेखा' नामक प्रेमाख्यानक काव्य लिखा है। इनका एक काव्य संग्रह भी प्राप्त है। इसी काल में कई कवि हुए हैं जिनका नाम अमीन था। एक कवि मुहम्मद अमीन अयागी है जिन्होंने 'नजात नामा' नामक ग्रंथ की रचना की। कवि शग़ली ली 'पन्दनामा' काव्य की रचना की। कवि मुर्तजा का ग्रंथ है—'वस्ल नामा'। हुसेन सूफ़ी साधक होने के कारण शाह हुसेन कहे जाते थे किन्तु काव्य में 'हुसेनी' शब्द का प्रयोग करते थे। ये अमीनुद्दीन काव्य के मुरीद (शिष्य) और खलीफ़ा (उत्तराधिकारी) थे। इनका एक काव्य संकलन मिलता है। मुहम्मद मुख्तार 'मुख्तार' नाम से कविता लिखते थे और ये धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। इनकी दो रचनाएँ मिलती हैं—मेराज नामा और मौज़ूद नामा। कवि मोमिन की रचना 'इस्रार-इश्क' है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1093 है। सुलतान सिकन्दर आदिल शाह के शासन-काल का एक प्रसिद्ध कवि मुअज़्ज़म है जिसके शेजरतुल तातिया, गंज मुखफी, गुलजार जन्नत आदि काव्य मिलते हैं इसका एक काव्य संकलन भी है।

कविवर अशरफ ने 'नौसर हार' नामक प्रसिद्ध काव्य की रचना की और यह आफताही सुलतान हुसेन निज़ाम शाह के शासन काल का कवि है। इसने शाह नामा की बहर (छन्द) में एक मसनवी लिखी थी। इसमें हुसेन निज़ाम शाह के युद्ध का वर्णन है। बरीद शाही शासन काल का कवि कुरेशी है जिसने हिजरी सन् 1022 में 'भोगफल' नामक काव्य की रचना की।

दक्षिण भारत पर जिस समय मुग़ल शासक शासन कर रहे थे, उस समय का

सबसे प्रसिद्ध कवि एवं आलोचक वली दकनी हुआ। इसका पूरा नाम मुहम्मद वली था। ये एक बार आलमगीर औरंगज़ेब के शासन-काल में दिल्ली गये थे और वहाँ दरबार में अपनी कविता सुनाई और प्रसिद्धि प्राप्त की। दूसरी बार ये मुहम्मद शाह के शासन काल में दिल्ली गये। इन्हें उर्दू के कुछ आलोचक 'बाबा-ए-उर्दू' की संज्ञा से अभिहित करते हैं। इन्होंने कसीदे, ग़ज़लें, रुबाइयाँ और मसनवियों की रचना की और इनकी कविता संग्रह के कई संस्करण हैं। बहरी दक्षिण भारत के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इनका पूरा नाम क़ाज़ी मुहम्मद बहरी था, इनके पिता का नाम बहरुद्दीन काज़ी था इसलिए इन्होंने 'बहरी' काव्य नाम चुना। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—मन लगन (रचना-काल हिजरी सन् 1112 अर्थात् 1705 ई०), भंग नामा और गज़ल संग्रह हैं। ज़ईफ़ी का वास्तविक नाम शेख दाऊद था। ये अपने समय के बहुत बड़े विद्वान एवं सूफ़ी सन्त थे। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—हिदायत नामा, इश्क़ सादिक, नसीहत-ए-बदन, किस्सा कफन चोर (फारसी से अनुवाद) हैं। शाह तुराब अली चिश्ती एक प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त थे। काव्य नाम 'तुराब' और 'तुराबी' मिलता है। इनकी रचनाएँ हैं—जहूर कुल्ली, गंजुल असरार, गुलज़ार वहदत, ग्यान सरूप, आइन-ए-कसरत, और मन समझावन। वजहीउद्दीन वजदी के प्राप्त ग्रंथ—पंछी बाछा, तुहफ़ा आशिकाँ और मखज़न-ए-इश्क हैं। इसके अतिरिक्त भी प्रभूत सामग्री उपलब्ध हुई है जिनका उल्लेख यथा समय किया जायेगा।

काल विभाजन का आधार

साहित्य के इतिहास का काल विभाजन बड़ा कठिन कार्य है। वह नितान्त वैज्ञानिक अथवा पूर्ण भी नहीं होता है क्योंकि प्रत्येक समाज की विचारधारा का अपना विशेष इतिहास होता है और उसी के अनुसार उसके साहित्य के काल विभाजन के आधार भी प्रस्तुत होते हैं। सामान्यत: काल विभाजन का प्रमुख आधार प्राप्त ग्रंथों की संख्या नहीं, अपितु प्रवृत्ति विशेष अथवा युग विशेष के मूल प्रेरणा स्रोत ही होते हैं।

दक्खिनी भाषा में साहित्य की रचना लगभग छ: सौ वर्षों तक चलती रही। इस विस्तृत अवधि के साहित्य को सुचारु रूप से अध्ययन और इसके क्रमिक विकास की जानकारी के लिए इसे विभिन्न कालावधियों में विभाजित करना आवश्यक है।

दक्खिनी भाषा और साहित्य का अध्ययन एक दीर्घ काल तक उपेक्षित रहा है, पर अब कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है। हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने तो इसे स्पर्श भी नहीं किया है। कुछ अन्य विद्वानों ने इसका न्यूनाधिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया है, परन्तु उसे हम सन्तोषजनक नहीं कह सकते। हिन्दी में साहित्यिक दृष्टि से दो-तीन पुस्तकें ही उपलब्ध हैं। उर्दू साहित्य के विद्वानों ने अवश्य ही इसे हिन्दी से पहले अध्ययन का विषय बनाया और कई पुस्तकों को सम्पादित करके और आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखकर उन्हें पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया।

दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान एवं शोधार्थी श्री नसीरुद्दीन हाशमी का प्रयास श्लाघनीय है। इन्होंने सर्वप्रथम दक्खिनी साहित्य के इतिहास को 'दकन में उर्दू' (1923 ई०) नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया। इसमें इन्होंने साहित्यिक विशेषताओं की ओर विशेष ध्यान न देकर केवल कवियों और लेखकों का संक्षिप्त में जीवन-वृत्त दिया है और उनके ग्रन्थों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इन्होंने साहित्य के इतिहास को शासकों के शासन-काल के अनुसार विभाजित किया है—

पहला दौर—(बहमनी उर्दू-हिजरी सन् 747 से 900 तक)
दूसरा दौर—(कुत्ब शाही उर्दू-हिजरी सन् 901 से 1100 तक)
तीसरा दौर—(मुगलिया उर्दू-हिजरी सन् 1101 से 1136 तक)
चौथा दौर—(उर्दू और सलतनत आसफ़िया--हिजरी सन् 1136 से 1220 तक)
पांचवां दौर—(सलतनत आसफ़िया आसफ जाह सालिस आसफ जाह राबअ आसफ जाह खामस हिजरी सन् 1220 से 1301 तक)
छठवां दौर—(उर्दू का सलतनत आसफिया का सरकारी जबान करार पाना—हिजरी सन् 1301 से 1336 तक)[1]

दक्खिनी भाषा और साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' ने सन् 1958 ई० में एक छोटी सी पुस्तक 'दकनी अदब की तारीख' प्रकाशित की है, जिसमें इन्होंने श्री हाशमी की अपेक्षा कम सामग्री प्रस्तुत की है। इन्होंने पुस्तक को चार अध्यायों में विभाजित किया है—

1. बहमनी अहद (1350 से 1525 ई०)
2. आदिल शाही अहद (1490 से 1686 ई०)
3. कुत्ब शाही अहद (1508 से 1687 ई०)
4. मुग़ल अहद (1686 से 1750 ई०)[2]

महा पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने सन् 1958 ई० में 'दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा' नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने कुछ कवियों के जीवन-वृत पर संक्षेप में प्रकाश डालने का प्रयास किया और उनके काव्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इन्होंने श्री हाशमी की पद्धति के अनुसार लिखी है, किन्तु पुस्तक को तीन अध्यायों में विभाजित किया है—

आदि काल (1400 से 1500 ई०)

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी, दकन में उर्दू, 1923 ई० में प्रकाशित।
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, 1958 ई० में प्रकाशित।

मध्य काल (1500 से 1657 ई०)

उत्तर काल (1657 से 1840 ई०)[1]

डा० श्रीराम शर्मा ने कुछ प्रमुख कवियों को लेकर एक पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी का साहित्य' नामक लिखी है, जिसमें महत्वपूर्ण सामग्री संकलित हुई है। श्रीराम शर्मा ने पुस्तक को तीन खण्डों में विभाजित किया है —

प्रथम खण्ड (1300 से 1600 ई०)

द्वितीय खण्ड (1600 से 1675 ई०)

तृतीय खण्ड (1700 से 1850 ई०)

पहले उल्लेख किया जा चुका है कि दक्षिण भारत में मुसलमान आठवीं शताब्दी में पहुँच चुके थे और उन्हें सामाजिक तथा राजनीतिक महत्व प्राप्त हो गया था, किन्तु ये मुसलमान केवल समुद्री मार्ग से आये थे जिनमें अधिकांश अरब थे। 1293 ई० में अलाउद्दीन खिलजी द्वारा पहला मुस्लिम आक्रमण दक्षिण पर हुआ। अलाउद्दीन ने 15 वर्ष (1297-1311 ई०) में अपना अभियान पूरा किया और उसने विंध्याचल से दक्षिणी समुद्र तट तक का क्षेत्र अपने अधीन कर लिया। सन् 1332 ई० में देवगिरी भी दिल्ली शासन में सम्मिलित हो गया। तुगलक वंश का ध्यान भी दक्षिण की ओर विशेष रूप से गया। सुलतान मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण का अधिकांश भाग अपने राज्य में मिला लिया और शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए दक्षिण को पाँच भागों में विभाजित कर दिया—1. देवगिरी, 2. तिलिंग, 3. काम्पिली, 4. द्वार समुद्र और 5. मलाबार।

सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ ने दौलताबाद को दिल्ली बनाने का निश्चय किया। उसका विश्वास था कि यदि दौलताबाद को राजधानी बनाया जाये तो दक्षिण और उत्तर पर दृढ़ व अपेक्षित नियन्त्रण रखा जा सकता है। यह उसकी दूरदर्शिता अवश्य थी, परन्तु वह इसमें असफल रहा, किन्तु उसके इसी अभियान के कारण दक्खिनी भाषा की नींव पड़ी। इससे यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि है।

सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ के शासन काल में ही दक्षिण में विद्रोह आरम्भ हो गया किन्तु सुलतान ने स्वयं आकर इसका दमन किया। सुलतान के जाते ही दौलताबाद के लोगों ने हसन गंगू उर्फ जफर खाँ को अपना नेता घोषित कर दिया। 3 अगस्त 1347 ई० को हसन गंगू ने सुलतान अबुल मुज़फ्फर अलाउद्दीन बहमन शाह के नाम से शासन करना आरम्भ किया और दौलताबाद से आकर गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। बहमनी वंश का अन्तिम शासक कलीमुल्लाह (1524-27 ई०) था। बहमनी शासन को उसके चार सामन्तों ने चार स्वतन्त्र राज्यों में बदल दिया। ये चार राज्य हैं—1. निज़ाम शाही (अहमद नगर), 2. आदिल शाही

---

1. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, 1958 ई० में प्रकाशित

(बीजापुर), 3. कुतुब शाही (गोलकुन्डा), और 4. बरीद शाही (बीदर)। अहमद नगर, बीजापुर, गोलकुन्डा और बदिर के राजधानी बनने से दक्खिनी भाषा और साहित्य की बहुत उन्नति हुई। यद्यपि राजनीतिक परिस्थिति बहुत डावा डोला रही क्योंकि मुग़लों का आक्रमण आरम्भ हो गया था तथापि दक्षिण पर मुसलमानी राज्य की स्थापना से साहित्यकारों को अनेक प्रकार की सहायता प्राप्त हुई और उन्होंने स्वयं साहित्य सृजन में रुचि ली।

इस समय तक उत्तर और दक्षिण के निवासी एक दूसरे से भली भाँति परिचित हो चुके थे एवं दोनों में घनिष्ठता स्थापित हो गयी थी। शान्ति, आनन्द और विलास की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और परिणामस्वरूप साहित्य, कला-कौशल, शिल्प आदि का उत्कर्ष सामने आया।

राजनीतिक पट परिवर्तन के साथ साहित्य में भी अनेक मोड़ आये। मेरी दृष्टि में दक्खिनी साहित्य को निम्न तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—

1. आदि काल (1300-1525 ई०)
   बहमनी शासन काल (गुलबर्गा)
2. पूर्व मध्य-काल (1526-1690 ई०)
   निज़ाम शाही (अहमद नगर)
   आदिल शाही (बीजापुर)
   कुतुब शाही (गोलकुन्डा)
   बरीद शाही (बदिर)
3. उत्तर मध्य काल (1691-1850 ई०)
   मुगल शासन— लगभग पूरा दक्षिण औरंगाबाद केन्द्र के रूप में
   आसफिया शासन – हैदराबाद और सभी प्रवर्ती प्रदेश

विशेष—

4. गद्य साहित्य— अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखकर गद्य साहित्य का अध्ययन अलग से प्रस्तुत किया है।

आदि काल, पूर्व मध्य-काल तथा उत्तर मध्य काल में दक्खिनी भाषा और साहित्य के काव्य-रूपों और शैली का विकासात्मक विवेचन दिया गया है। आधुनिक काल के साहित्य को छोड़ दिया गया है क्योंकि अब दक्खिनी केवल बोल-चाल की भाषा रह गयी है इसका साहित्यिक रूप लगभग लुप्त हो गया है। आधुनिक रूप भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अवश्य महत्व का है, किन्तु इसका साहित्यिक महत्व नगण्य है। जो रूप हमें देखने को मिलता भी है उसे अब दक्खिनी नहीं कहा जा सकता, वह तो उर्दू है और कुलीन लोग उसी को अपनी भाषा मानते हैं।

□ □

तृतीय अध्याय

आदि काल

(1300-1525 ई०)

पीठिका :

1187 ई० में यादव वंश ने दक्षिण भारत में अपने राज्य की स्थापना की। इस वंश का राजा रामचन्द्र यादव था।[1] 1297 ई० में गुजरात और मालवा को जीतकर मलिक काफ़ूर ने देवल देवी और रायकरण को रामचन्द्र यादव से माँगा, जो उसकी शरण में थे, किन्तु रामचन्द्र ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। अब मलिक काफ़ूर को आक्रमण करने का बहाना मिला और उसने रामचन्द्र यादव के महाराष्ट्र, आन्ध्र और कर्नाटक के लिए तथा देवगिरी को जीतकर इन्हें दिल्ली राज्य में मिला लिया। 1309 में मलिक काफ़ूर ने वारंगल को जीता और कुछ समय के लिए दिल्ली लौट आया। विजय पर विजय करता हुआ वह फिर दक्षिण में आया और उसने 1312 ई० में द्वार समुद्र एवं मदुरा पर विजय प्राप्त की। 1320 ई० में खिलजी वंश का अन्त हो गया। इस वंश का अन्तिम शासक मुबारक शाह 'कुत्बुद्दीन' था। मुबारक शाह ने दक्षिण के विद्रोहियों का बड़ी कठोरता से दमन किया, किन्तु दक्षिण का कुछ भाग स्वतन्त्र हो गया।

खिलजी वंश के पश्चात् गयासुद्दीन तुग़लक़ दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ। यह पराक्रमी, कर्तव्यनिष्ठ और सच्चा शासक था, साथ ही साथ शूरवीर और युद्ध कला में निपुण कुशल सैनिक भी था। इसने खिलजी शासन के अन्तिम दिनों में दक्षिण के जो राज्य स्वतन्त्र हो गये थे, उन्हें फिर से दिल्ली राज्य के नियन्त्रण में कर लिया। गयासुद्दीन तुग़लक़ की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद तुग़लक़ शासक हुआ। यह तीक्ष्ण बुद्धि, उत्कृष्ट रुचि एवं विद्या प्रेमी था। वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् था तथा आदर्शवादी शासक था।[2] इसकी मृत्यु के पश्चात् फिरोज़ शाह तुग़लक़ सिंहासनारूढ़ हुआ। इसने योग्यता एवं तत्परता से शासन व्यवस्था को ठीक करके शान्ति स्थापित की, किन्तु फीरोज़ शाह तुग़लक़ के शासन काल में दक्षिण के अमीरों ने एकमत होकर दिल्ली सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और दो वर्ष के कठिन संघर्ष के बाद हसन खाँ अलमुर्ख उर्फ ज़फर खाँ अलाउद्दीन बहमन शाह के नाम से दक्षिण का स्वतन्त्र शासक बना।

---

1. एम० एल्फिन्स्टन—हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृ० 238
2. मजूमदार, रे चौधरी एण्ड दत्ता—ऐन एडवान्स हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृ० 309

बहमनी शासन का व्यवस्थापक हसन गंगोह बहमनी बहुत दूरदर्शी शासक था। उसने अपने राज्य की सीमाओं को थोड़े ही समय में बहुत बढ़ा लिया था। उसका विश्वास था कि बिना राज्य विस्तार के शासन सुव्यवस्थित नहीं हो सकता। जिस समय उसका देहान्त हुआ, उस समय बहमनी राज्य उत्तर में मान्ड से लेकर दक्षिण में तुंगभद्रा नदी तक और पूरब में भावनगर और पश्चिम में गोदावरी तक फैला हुआ था। अलाउद्दीन हसन बहमनी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मुहम्मद शाह शासक बना। इसका प्रधान मंत्री सैफुद्दीन गौरी था। इन दोनों ने सलतनत को खूब सँवारा और शासन को शुव्यवस्थित बनाने के लिए उसे चार प्रान्तों में विभाजित किया। समस्त साम्राज्य को चोरों, डाकुओं और ठगों से पवित्र कर दिया। इसके शासन काल में राज्य में सर्वत्र शान्ति थी। परस्पर सद्व्यवहार के लिए मद्यपान निषेध कर दिया गया था। मुहम्मद शाह के पश्चात् उसका पुत्र मुजाहिद शाह सिंहासनारूढ़ हुआ, किन्तु इसके चाचा दाऊद खाँ ने इसका वध कर दिया और स्वयं शासक बन बैठा, किन्तु कुछ काल पश्चात् मारा गया। इसके बाद मुहम्मद शाह (द्वितीय) शासक हुआ। यह हसन बहमनी का पोता था। यह बहुत न्यायप्रिय राजा था। यह विद्या-प्रेमी एवं विद्वान् था। इसके बाद सन् 1397 ई० में फीरोज़ शाह सिंहासन पर आसीन हुआ। इसके शासन काल में समस्त राज्य में शान्ति थी। अतः राज्य की चतुर्दिक उन्नति हुई। भौतिक समुन्नति के अतिरिक्त सांस्कृतिक स्थिति भी स्वच्छ थी। इसके पश्चात् उसका भाई अहमद शाह गद्दी पर बैठा। अहमद शाह ने गुलबर्गा को छोड़ बदिर को अपनी राजधानी बनाया; अहमद शाह के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन (द्वितीय) और फिर हुमायूँ शाह। इसके पश्चात् निज़ाम शाह और निज़ाम शाह की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद शाह (द्वितीय) सिंहासनारूढ़ हुआ। उसका प्रधान मंत्री महमूद अतीव कुशाग्र बुद्धि था। उसने राज्य की सीमाओं को और विस्तृत किया तथा प्रबन्ध व्यवस्था के लिए राज्य को चार प्रान्तों के स्थान पर आठ प्रान्तों में विभाजित किया। इसके पश्चात् इस वंश का पतन आरम्भ हुआ। मुहम्मद शाह (द्वितीय) के पश्चात् इसका पुत्र महमूद शाह और फिर अहमद शाह और उसके बाद अलाउद्दीन (तृतीय) शासक बना, किन्तु इसका शासन केवल नाम मात्र था। अला-उद्दीन (तृतीय) के पश्चात् वलीउल्लाह और कलीमुल्लाह भी सिंहासनारूढ़ हुए। कलीमुल्लाह का देहान्त सन् 1527 ई० में हुआ और यही बहमनी वंश का अन्तिम शासक था।

बहमनी वंश ने लगभग 180 वर्ष तक शासन किया। इस राज्य का संस्थापक हसन खाँ बहमनी विद्या प्रेमी व्यक्ति था। इसने प्रजा को शिक्षित करने के लिए स्थान-स्थान पर पाठशालाएँ स्थापित कीं और विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दीं तथा शिक्षकों को अच्छा वेतन निर्धारित किया था जिससे सुयोग्य शिक्षक कार्य करने के लिए तत्पर हों। मुहम्मद शाह ने चोरों, ठगी और डाकुओं का विनाश करके समाज में शांति और समृद्धि का वातावरण बनाया। मुहम्मद शाह (द्वितीय) न्याय प्रिय

शासक था । इसके दरबार में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होता था । इतिहास-कारों ने इसके न्याय की भूरि-भूरि प्रशसा की है । यही कारण है कि जनता इससे प्रेम करती थी तथा समाज में अन्याय का अन्त हो गया था । शासक स्वयं विद्या प्रेमी था तथा स्वयं विद्वान होने के कारण अपनी प्रजा को विभिन्न विद्याओं से लाभान्वित होने का अवसर प्रदान करता था । उसने बड़े-बड़े शहरों में उदाहरणार्थ—बीदर, गुलबर्गा, कन्धार, दौलताबाद और एलचपुर आदि में पाठशालाएँ स्थापित कराई । इन पाठशालाओं में विद्वान् शिक्षकों की नियुक्तियाँ की गयीं और इनमें विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देने की व्यवस्था की गई तथा उन्हें छात्रवृत्तियाँ भी दी गईं ।

मुजाहिद शाह अपनी जनता में अत्यधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता था और उसकी लोकप्रियता की यह स्थिति थी कि उसे प्रजा बहराम (प्रभु) नाम से स्मरण करती थी । बहमनी वंश का एक विद्या प्रेमी, संस्कृति प्रेमी एवं प्रजा प्रेमी शासक फीरोज शाह था । वह स्वयं विद्वान् एवं कवि था । राजकाज से छुट्टी मिलने पर वह विद्वानों से स्वयं मिलता था तथा सप्ताह में तीन दिन मंगलवार, बुधवार और शनिवार विद्यार्थियों को स्वयं पढ़ाता था । इसने अपने शासन काल में सबसे बड़ा काम यह किया कि तेलुगु, कन्नड़ और मराठी भाषियों को एक स्थान पर एकत्र किया और समाज की भलाई के लिए तीनों क्षेत्रों में योग्य व्यक्तियों की नियुक्तियाँ की । इसने हिन्दुओं के समसामयिक रीति-रिवाज़ रहन-सहन के ढंग अपनाये । अतः इसे मिश्रित दक्खिनी संस्कृति का संस्थापक कहा जाता है । अहमद शाह वली को हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूप से मानते थे । आज भी उसके उर्स को इस्लामी सन् हिजरी ओर हिन्दू सन् विक्रमी सम्वत् के मेल से ही मनाया जाता है एवं उसका आरम्भ हिन्दू ब्राह्मण करता है । वह नारियल फोड़ता है और कब्र पर फूल चढ़ाता है । हिन्दू रीति-रिवाज द्वारा इसकी उपासना के पश्चात् ही मुसलमानों को अन्दर आने की आज्ञा है ।[1] यों तो सभी सूफ़ी साधकों की समाधियों पर हिन्दू और मुसलमान दोनों इकट्ठा होते हैं और श्रद्धा के पुष्प अर्पित करते हैं, किन्तु दक्षिण के सूफी साधक गेसूदराज बन्दा नवाज़ का उर्स एक बड़े पुष्पस्तव का (गुलदस्ता) से प्रारम्भ होता है जिसे एक हिन्दू और एक मुसलमान रस्सी की सीढ़ी से चढ़कर गुम्बद के कलश पर लगाते हैं ।[2]

इस काल के लगभग सभी शासकों ने जनसाधारण को शांति एवं सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास किया तथा जनता को विभिन्न प्रकार की कलाओं और विद्याओं की ओर आकृष्ट किया । यही वह काल है जब दक्खिनी भाषा सरकारी भाषा के उच्च पद को प्राप्त कर सकी । उन दिनों मराठी, तेलुगु और कन्नड़ भाषी जनता

---

1. ज़हीरुद्दीन अहमद—अहमद शाल वली, पृ० 166
2. प्रो० हारून खाँ शेरवानी—दक्खिनी कल्चर, पृ० 30

अपनी-अपनी भाषा की खिचड़ी पकाना चाहते थे। इस अन्तर विरोध के कारण इनमें से किसी भाषा को सरकारी भाषा बनाना कठिन था। अतः इन शासकों ने बुद्धिमत्ता का परिचय दिया और जन साधारण के लिए सुलभ भाषा—दक्खिनी को राजभाषा बनाया।

संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि विवेच्य काल में यद्यपि राजनीतिक उथल-पुथल थी तथापि जनता की सुख समृद्धि की ओर शासक पूरा ध्यान देते थे। समाज चोरों, ठगों और असामाजिक अवांछित तत्वों से लगभग मुक्त था। जनता की सुरक्षा के लिए स्थान-स्थान पर चौकियाँ स्थापित की गयी थीं। यातायात के लिए सड़कों का निर्माण तथा कृषि कार्य हेतु जलाशयों का निर्माण किया गया। इस काल के शासकों ने मिली जुली संस्कृति की स्थापना की और जनसाधारण का जीवन सुखमय बनाया था।

बहमनी शासक धार्मिक स्थानों को राजनीति में नहीं घसीटते थे, अपितु उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। यद्यपि विजयनगर के हिन्दू राजा देवराय और बहमनियों में सदैव टकराव होता रहता था तथापि विजयनगर के शासक ने अपनी सेना में मुसलमानों को भरती किया और उन्हें हर प्रकार की धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की। इसी प्रकार बहमनी शासकों ने भी किया। बहमनी राज्य में स्थान-स्थान पर ऐसे हिन्दुआनी तीरथ और मठ कायम रहे, जिन्होंने अपने लिए एक विशेष स्थान बना लिया था। यह प्रसिद्ध है कि महाराष्ट्र के शहर नासिक में श्रीरामचन्द्र जी अपने वनवास के समय रुके थे। यह पवित्र स्थान बहमनी शासन काल में हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ स्थान बना। महाराष्ट्र में पंढरपुर भक्ति आन्दोलन का एक केन्द्र रहा है। भारत के बारह बड़े ज्योतिर्लिंगों में से पाँच बहमनी राज्य में थे। तलजापुर के भवानी मन्दिर में आज भी फीरोज़ शाह बहमनी का अभिलेख है।[1] वहाँ की जनता अहमद शाह वली बहमनी का हिन्दुआनी रीति-रिवाज के अनुसार उर्स मनाती है।

प्रमुख कवि और काव्य

ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़

उत्तर भारत के मुसलमान विचारक और सूफ़ी सन्त दक्षिण भारत में धर्म प्रचारार्थ आया करते थे किन्तु संगठित रूप से दक्षिण में इस्लाम का प्रचार उस समय से प्रारम्भ होता है जब हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य हज़रत बुरहानुद्दीन 'गरीब' चार सौ साथियों के साथ दौलताबाद आये। प्रसिद्ध सूफी सन्त ख्वाजा बन्दा नवाज़ के पिता दक्षिण में आये थे किन्तु कब आये ? इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य

1. एच० एम० जोशी एण्ड एच० के० शेरवानी—मिड़िवल डक्कान हिस्ट्री, पृ० 4

नहीं है। इनमें तीन प्रमुख धारणाएँ हैं[1]—

1. गरीब के साथियों में बन्दा नवाज़ के पिता युसुफ भी थे।
2. युसुफ (शाह राजू क़त्ताल) हज़रत गरीब के साथ नहीं आये थे बल्कि वे स्वतन्त्र रूप से दक्षिण में आये थे।
3. युसुफ उस समय दक्षिण (देवगिरि अथवा दौलताबाद) आये जब मुहम्मद तुग़लक़ ने अपनी राजधानी दौलताबाद को घोषित किया है।

युसुफ के साथ उनकी पत्नी और उनका पंचवर्षीय पुत्र भी दक्षिण आये। पुत्र का नाम सैयद मुहम्मद हुसेनी था जो आगे चलकर बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बन्दा नवाज़ के जन्म व मृत्यु के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं है, किन्तु दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा० ज़ोर ने लिखा है कि ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ का जन्म दौलताबाद में हुआ एवं पिता की मृत्यु के बाद वे दिल्ली चले गये और कुछ समय पश्चात् 1392 ई० में गुलबर्गा आये।[2] महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि बन्दा नवाज़ 1318 ई० के आस-पास दिल्ली में पैदा हुए थे। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में इन्होंने विचार व्यक्त किया है कि इनका देहांत 1423 ई० में हुआ।[3] डा० श्रीराम शर्मा ने डा० अब्दुल का संदर्भ देते हुए विचार व्यक्त किया है कि इनका जन्म 1312 ई० के और मृत्यु 1437 ई० के लगभग हुई।[4] दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध शोधार्थी श्री हाशमी ने इनके जन्म के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी है किन्तु मुत्यु के सम्बन्ध में लिखा है—इनकी मृत्यु हिजरी सन् 825 अर्थात् 1422 ई० में गुलबर्गा में हुई।[5]

ख्वाजा बन्दा नवाज़ दक्षिण में पाँच वर्ष की आयु में आये थे और पिता की मृत्यु के कारण बालक बन्दा नवाज़ अपनी माता के साथ दिल्ली लौट गया। आध्यात्मिक ज्ञान के अतिरिक्त इन्हें कई विषयों का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने शर्फुद्दीन नामक विद्वान् से शिक्षा प्राप्त की थी। आप अरबी, फारसी के विद्वान् तो थे ही साथ-साथ दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली हिन्दी का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था।

तैमूर लंग जब दिल्ली पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर रहा था तो ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ अपने परिवार के साथ अस्सी वर्ष की आयु में ग्वालियर, भेलसा, मांड और गुजरात को पार करते हुए दौलताबाद आये और वहाँ से धारुर पहुँचे। जब बहमनी शासक फीरोज़ शाह को बन्दा नवाज़ के आने का समाचार मिला तो उसने

---

1. हाफिज़ मुहम्मद हासिम सिद्दीकी—सवानेह ख्वाजा बन्दा नवाज़, पृ० 8
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 11
3. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा, पृ० 3
4. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 95
5. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 29

इन्हें अपने दरबार में आने का निमन्त्रण दिया। सैयद बन्दा नवाज़ हिजरी सन् 815 1412 ई० में गुलबर्गा आये और उस समय उनकी आयु 80 वर्ष की थी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उनका जन्म हिजरी सन् 735 अर्थात् 1332 ई० में हुआ होगा। जहाँ तक मृत्यु का प्रश्न है, श्री हाशमी ने हिजरी 825 अर्थात् 1422 ई० लिखा है और राहुल सांकृत्यायन ने 1423 ई० लिखा है। राहुल ने यह भी लिखा है कि बन्दा नवाज़ का देहान्त 105 वर्ष की आयु में हुआ।[1] इस दृष्टि से तिथि मेल नहीं खाती है क्योंकि यदि उनका जन्म 1332 ई० में हुआ और मृत्यु 1422 ई० अथवा 1423 ई० में हुई तो उनकी आयु केवल 90-91 वर्ष की रही होगी, किन्तु डा० अब्दुल हक़ के अनुसार उनका देहान्त 1437 ई० में हुआ। इस दृष्टि से उनकी आयु एक सौ पाँच वर्ष होती है। अतः ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ का जन्म हिजरी सन् 735 अर्थात् 1332 ई० और मृत्यु 1437 ई० में हुई यही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

कहा जाता है कि ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ जब गुलबर्गा में पहुँचे तो वे एक संस्था के रूप में पूज्य बन गये। इनके शिष्यों की संख्या बहुत बड़ी थी। आप धर्म प्रचार का काम करते थे। अहमद शाह बहमनी ने गुलबर्गा में एक पाठशाला की स्थापना की थी जिसमें अरबी-फारसी भाषा और साहित्य के अतिरिक्त इस्लामी धर्म शास्त्र का भी अध्ययन व अध्यापन होता था। सैयद ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ ज़ुहर (दोपहर के बाद) की नमाज़ के बाद हदीस, सलूक तथा सूफ़ी विचारधारा को पढ़ाया करते थे। ये कुलीन लोगों को अरबी-फारसी में उपदेश देते थे और जो लोग अरबी-फारसी नहीं जानते थे उन्हें दक्खिनी भाषा में अपने उपदेशों का सार बताया करते थे।[2]

हज़रत ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ स्वयं तो चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे किन्तु अन्य सूफी विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करने का भी प्रयत्न करते थे। कभी भी शरीअत की अवज्ञा नहीं करते थे बल्कि उसका पालन बड़ी दृढ़ता से करते थे। ये तसव्वुक को कुरआन से सम्मत सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे और हज़रत मुहम्मद साहब द्वारा प्रदर्शित मार्ग को उच्चतम स्वीकार करके उसी पर चलने का भरसक प्रयत्न करते थे।

प्रसिद्ध सूफी सन्त ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ ने फारसी में कई ग्रन्थों की रचना की, अभी तक जो पुस्तकें प्रकाश में आयी हैं, वे हैं—खातिरुलकुद्दूस और आस्म उल असरार। नसीरुद्दीन हाशमी ने बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ की पाँच पुस्तकों का उल्लेख किया है—(1) मअराजुल आश्कीन, (2) हिदायत नामा, (3) तिलावतुल वजूद, (4) शिकार नामा और (5) रिसाला स:बारह।[3] इसके अतिरिक्त श्री हाशमी ने एक

---

1. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पृ० 3
2. हाफिज़ मुहम्मद हामिद सिद्दीकी—स्वानह ख्वाजा बन्दा नवाज़, पृ० 19
3. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 29

और पुस्तक 'चक्की नामा' का भी उल्लेख किया है।[1] खलीक अन्जुम ने ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ की पुस्तकों में 'मअराजुल आश्कीन' में 'दकनी कलाम' में 'हकीकत रामकली', मुखम्मस, रुबाई और 'सहेलिया' नामक रचनाओं का भी उल्लेख किया है।[2]

इनकी रचना 'चक्कीनामा' के कुछ छन्द प्रस्तुत हैं—इनमें मनुष्य के चरित्र से सम्बन्धित बातों का उल्लेख किया गया है—

1. देखो वाजिब तन की चक्की।
   पीव चतुर होके सक्की।
   सौकत इब्लीस खींच खींच थक्की।
   कहे या बिस्मिल्ला अल्ला हो॥
2. अलिफ अल्ला का दिस्ता।
   म्याने मुहम्मद होकर दिस्ता॥
   पंछी तलब यो कूँ दिस्ता।
   कहे या बिस्मिल्ला हो हो अल्ला॥
3. लादिम वजूद वासन होना।
   इसी तोबा सती धोना॥
   ज़ात की पाने सो आमली को लहना।
   कहे बिस्मिल्ला हो हो अल्ला॥[3]

ख्वाजा बन्दा नवाज़ ने दक्खिनी में नआत (हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा के गीत) 'हकीकत रामकली' नामक शीर्षक से लिखी है जो इस प्रकार है—

ऐ मुहम्मद मुजको जम जम जलवा तेरा।
वाहिद अपने आप था, आये आप निझाया॥
परगट जलवे कारने, अलिफ़ मीम हो आया।
इश्को जलवा देने कर, काफ नून बसाया॥[4]

'मखम्मल' नामक कविता में कवि जीवन की कठिनाइयों का उल्लेख करता है और कहता है यह संसार क्षणिक है—

कहाँ लक खोचिया रहेगा तू,
दुनिया की परेशानी।
जिये लक फिकर है दुनिया की,
दुनिया देखे तो है फानी।[5]

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 31
2. खलीक़ अनजुम—मीराजुल आश्कीन में दकनी क़लाम, पृ० 86
3. नसीरुद्दीन हाशमी – दकन में उर्दू, पृ० 34
4. खालिक़ अन्जुम—मीराजुल आश्कीन में दकनी क़लाम, पृ० 94
5. वही, पृ० 98

हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज़ ने अपने को प्रियतमा और परमात्मा को प्रियतम के रूप में व्यक्त किया है—

मैं आशिक उस पीव का, जिने मुझे जीव दिया है।
ओ पीव मेरे जीवन का बरमा लिया है।

× × ×

ख्वाज़ा नसीरुद्दीन जिने साइयाँ बताई।
जीव का घूंघट खेल कर पिया मुख आप दिखाई।
रखे सैयद मुहम्मद हुसेनी पीव संग कहिया न जाये।[1]

प्रो० अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी ने ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ की दो कविताओं—'हक़ीक़त दर मक़ाम कल्यानी' और 'दर मक़ाम रामकली' को उद्धृत किया है जिनमें तसव्वुफ के तत्व पाये जाते हैं। इनमें काव्य गुण भी हैं यद्यपि इससे प्रतीत होता है कि कवि ने केवल अपने उपदेशों के लिए इन कविताओं को कहा होगा। दोनों कविताओं की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

अल्लाह में तुज बाज क्यों रहूँ यक तल, शाह का बिरहा भेद या तेरी कीता।
भिन्नता करते जनम सब गीता, बेगी मिला ल्यू कर वहम पर मीता।
उस इसी ने मियाने दर्द है कारी, बेदिल होर हूँ तो मुश्किल है भारी।
मुझ दुखिया कूँ देवना दिलदारी
ख्वाजा नसीरुद्दीन मेरे छन्दा, सैयद मुहम्मद मुरीद तेरा हूँ बन्दा।
मेरी बन्दगी क़बूले तो करूँ मैं आनन्दा।[2]

'दर मकाम रामकली' नामक कविता का विषय तसव्वुफ है। कवि ने इसमें परमात्मा को पर्दे के अंदर बताया है जिसके विरह में साधक तड़पता रहता है। इसमें परमात्मा को प्रेयसी और स्वयं को प्रेमी बताया है। परमात्मा का नून (ज्योति) समस्त जगत में विद्यमान है और यह जगत उसको देखने के लिए आरसी के समान है, उस पर आसक्त होने के लिए आवश्यक है, माया रूपी घूंघट को मुख से हटा दे। आत्म-ज्ञान से ही समस्त विश्व पहचाना जा सकता है—

खोल खोल घूंघट वारने, तेरा बिरहा लग्या मुंजे मारने।
पिया मुझ अबला सूं क्या-रोशना, घर आव रे दूलन साजना।
करे लाव रे किसी सूं क्या लाजना
पिया मैं तू फक से हुई पीव तुझ कारने, तू मेरा साईं आमुंजे मीलने।
तब धूरी एलाखी हुई सब जग मने

1. डा० अब्दुल हक़—उर्दू की इब्तदाई नशो नुमा में सूफिया अकराम का काम, पृ० 20
2. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग, पृ० 14

तूं मेरा रोशन बख्श सारे आलम का, मैं उम्मीदवार हूँ तेरे नूर का।
सैयद मुहम्मद बन्दा तेरा प्यार का, कामह दिलाव सजन टक चाव का।[1]

ख्वाजा बन्दा नवाज़ ने ग़ज़लों की भी रचना की है। इसमें वे अपना काव्य नाम 'शहबाज़' रखते थे। उनकी ग़ज़ल के कुछ अशआर प्रस्तुत हैं जो तसव्वुफ पर आधारित है—

तूं तो सही है शकरी कर नफस घोड़ा सार तूं,
ना हो नरम तज: ओ जरी पाश पावेगा आज़ार तूं।
गोड़े कूँ घबर खोड है बदरव्याल इसका होर है,
तन लूटने का जोड़ है ना छोर इस मद तुम्हार तूं।
दी कला दिल ग्यान का चार अखला ईमान का,
इनाम दे खुदा दहयान का इक बाद अपने वार तूं।
खो गैर शरीअत नाल बन्द ज़ीन है तरीक़त ज़हर बन्द,
हक है हक़ीक़त पेश बन्द हुक मारिफत अख्तियार तूं।

× × ×

शहबाज़ हुसेनी खोय कर हर दो जहाँ दिल धोय कर।
अल्ला जये यक होय कर करतब पावेगा दीदार तूं॥[2]

हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज की एक रुबाई है जिसमें उन्होंने कुछ बीमारियों के नुस्खे हैं—

जितना काजल उतना बोल, उससे दूना गोंद घोल।
ज़रा सी फिटकरी नमक ला थोड़ा, क़लम जैसे चूं तुर्की घोड़ा॥
सुन तू सयाने मेरी बात, बोलूं दारू में किस घात।
जिसके मुँह में आवे बास, उसकी दारू सुन मुझ पास॥

× × ×

नीला तोता धनिया भून, उसमें मिला तूं सेंधा लून।
पान पलास के कांहया आन, माफल लोचन और लोबान।
ज्यूं ज्यूं लगावे पावे सुख, तुझ दाँतों का जावे दुख॥[3]

सूफी सन्त बन्दा नवाज़ ने सरल एवं व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से तसव्वुफ के कठिन सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं जिससे जनसाधारण भली प्रकार लाभ उठा सकते हैं। इनकी भाषा शैली सुन्दर एवं सरल है।

---

1. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग, पृ० 15
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 35
3. वही, पृ० 31

निज़ामी

दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् नसीरुद्दीन हाशमी ने 'दकन में उर्दू' नामक पुस्तक में लिखा है—"सुलतान अहमद शाह सालिस (तृतीय) बहमनी (हिज़री सन् 865 के 867) के समय में विद्यमान था।...वह सुलतान का दरबारी कवि था। उसकी एक मसनवी 'कदम राव और पदम' मैंने लतीफ़ुद्दीन और स्वर्गीय बसी ताजिर कुतुब के पास देखी थी।"[1] डा० बाबू राम सक्सेना के मतानुसार—"दक्खिनी का पहला कवि निज़ामी था जो बहमनी सुलतान अहमद तृतीय के शासन काल (सन् 1460 से 1462 ई०) में मौजूद था।"[2] प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद ने अहमद शाह द्वितीय का शासन-काल 1518 ई० दिया है।[3] डा० गोपीचंद नारंग ने कवि निजामी की दो पंक्तियों का उदाहरण देकर उसे अहमद शाह तृतीय के राज्यकाल का माना है।[4] प्रसिद्ध दक्खिनी साहित्य के विद्वान् डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर का कथन है—"अहमद शाह सालिस उपनाम निज़ाम शाह बहमनी के शासन काल में एक उर्दू कवि निजामी बीदरी गुज़रा है जो अभी तक की जानकारी के अनुसार उर्दू का वह कवि है जिसने प्रेमाख्यान काव्य की एक विस्तृत मसनवी 'पदम राव' लिखी। इससे पहले की उर्दू नज़्म (पद्य) व नस्र (गद्य) भी मिलती है, वह धार्मिक और तसव्वुफ से सम्बन्धित है। निज़ाम शाह बहमनी 1460 ई० में गद्दी पर बैठा और केवल दो वर्ष उसने राज्य किया। 1462 ई० में उसका देहान्त हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि निज़ामी ने यह मसनवी उन्हीं दो वर्षों के बीच लिखी।"[5] आगे चलकर हाशमी ने इसे बहमनी राज्य काल का सिद्ध करने के लिए गोपीचन्द नारंग के द्वारा प्रस्तुत की गई पंक्तियों को प्रस्तुत किया है और उसके अतिरिक्त एक पंक्ति जो उद्धृत की है, वह इस प्रकार है—

> लक़ब शाह अली आल बहमन वली,
> वली थे बहुत पदा नदा कली।

इसके पश्चात् श्री हाशमी ने मसनवी का एक शीर्षक प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 38
2. डा० बाबूराम सक्सेना—दक्खिनी हिन्दी, पृ० 84-85
3. डा० ईश्वरी प्रसाद—मध्यकालीन भारत, पृ० 420
4. शहन शाह बड़ा शाह अहमद कुँवर, परीताल संसार करता अधार।
   धनी ताज का कौन राजा बहंग, कुंवर शाह का शाह अहमद भुजंग॥
   डा० गोपीचन्द नारंग—उर्दू मसनवियाँ, पृ० 51
5. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 13

किया है—'मदह सुलतान अलाउद्दीन बहमनी नूरूल्ला मरकदा'।[1] इससे स्पष्ट होता है कि अलाउद्दीन बहमनी का देहान्त हो चुका था और काव्य से स्पष्ट है कि अहमद अभी शहजादा था।

डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर ने लिखा है—"निज़ामी की इस मसनवी की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। वह जीर्ण-शीर्ण है लेकिन उसमें 865 शेर बच गये हैं। इसमें आरम्भ में ईश-स्तुति, हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा, चारों खलीफाओं का गुण वर्णन है। इसके पश्चात् सुलतान अलाउद्दीन हुमायूँ शाह बहमनी की बड़ाई है जिसके पुत्र सुलतान अहमद शाह के युग में यह आख्यानक काव्य लिखा गया है जिसके (बादशाह) विरद (निज़ाम) के आधार पर कवि ने अपना काव्य नाम निज़ामी रखा था। निज़ाम शाह का असली नाम अहमद खाँ था। उसे इतिहासकार अहमद शाह (तृतीय) के नाम से भी स्मरण करते हैं।"[2] फिर आगे चलकर डा० ज़ोर ने काव्य की पंक्तियों को उद्धृत करके बताया है कि कवि ने कई स्थलों पर निज़ामी कहा है।[3]

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि यह आख्यानक काव्य अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् लिखा गया। उसका उत्तराधिकारी अहमद था। बहमनी वंशावली को देखने से स्पष्ट होता है कि सुलतान अलाउद्दीन हुमायूँ के अतिरिक्त कोई अन्य शासक नहीं हुआ जो इस नाम अर्थात् अलाउद्दीन से हुआ हो और जिसका उत्तराधिकारी अहमद शाह हो। सुलतान अहमद शाह तृतीय हिजरी सन् 865 से 867 अर्थात् 1461 ई० से 1463 ई० तक शासन किया। अतः हम निःसंकोच यह कह सकते हैं कि यह आख्यानक काव्य इसी के शासन काल में रचा गया। दूसरी बात यह है कि इस काल (हिजरी सन् 865-867) के जो सिक्के प्राप्त होते हैं उन पर सुलतान का नाम अहमद शाह अंकित है। इसके रचना का समय यही काल इससे भी सिद्ध होता है कि कवि सुलतान का पार्षद था और उसका सम्बन्ध दरबार से था।

अब प्रश्न उठता है कि इस काव्य के रचयिता निज़ामी का वास्तविक नाम क्या था? डा० ज़ोर के मतानुसार "सुलतान का उपनाम निज़ाम था। अतः कवि ने भी अपना काव्य नाम निज़ामी रखा।"[4] किन्तु डा० ज़ोर ने यह नहीं

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 39
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 13
3. निज़ामी कहनहार जिस यगर होय, सुननहार सुन नाज़ गुफ्तार होय।
   कहूँ सद साजे निज़ामी धरम, पदम सब सुने बास बांजे कदम॥
   —डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 14
4. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकन अदब की तारीख़, पृ० 14

बताया है कि कवि का मूल नाम क्या था ? श्री हाशमी ने भी डा० ज़ोर की ही भाँति अपना मत प्रकट किया है किन्तु सखावत मिर्ज़ा ने अपने लेख 'उर्दू अदब' में लिखा है कि निज़ामी का मूल नाम फखरूद्दीन था। कवि निज़ामी ने इन पंक्तियों में यह संकेत किया है—

सुवर फरव्रे दीं अब कैसे सुवरसी

फिर अन्य स्थल पर भी वह अपने मूल नाम की ओर स्पष्ट संकेत किया है जो इस प्रकार है—

कहे फरव्रे दीं एक साचा बचन,
भले परखिये जे करे कोई गुन।

बीदर में एक मकबरा है, जहाँ 'फरवरूल मुल्क' दफनाये गये हैं। एक पुस्तक में इस व्यक्ति को "फखरुल मुल्क तुर्क लिखा गया है।"[1] श्री सखावत मिर्ज़ा ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि उन्होंने जो लेख लिखा है वह डा० अब्दुल हक़ की प्रति के आधार पर लिखा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'सलातीन-ए-दकन' में इसका नाम फखरूल मुल्क है। यह फखरुल मुल्क बहमनी साम्राज्य के प्रसिद्ध मन्त्री महमूद गावान का जमाता था। अब प्रश्न उठता है कि क्या फखरुद्दीन और फखरुल मुल्क एक ही व्यक्ति का नाम है अथवा दो का। निज़ामी ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा इस प्रकार की है—

शहंशाह बड़ा शाह अहमद कुँवार,
पिरतयाल संसार करतार अधार।
धनी ताज का कौन राजा अभंग,
कुँवर शाह का शाह अहमद भुजंग।
लक़ब शह अली आल अहमद बली,
वली ने बहुत बुद्ध तद आ गही।[2]

नसीरुद्दीन हाशमी ने आख्यानक काव्य का एक शीर्षक प्रस्तुत करके सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह रचना अलाउद्दीन बहमनी की मृत्यु के पश्चात् और उसके उत्तराधिकारी अहमद शाहजादा के शासन-काल में लिखी गयी—'मदह सुलतान अलाउद्दीन बहमनी नूरूल्ला मरक़दा'[3] इस शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने स्वर्गीय शाह अलाउद्दीन बहमनी की प्रशंसा की है। डा० ज़ोर एवं श्री हाशमी दोनों ने इसके कुछ अंश अपनी-अपनी पुस्तकों में उद्धृत किए हैं। इन दोनों में पाठान्तर है। परन्तु इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थ का रचना-काल निज़ाम शाह बहमनी का

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 169
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 14
3. नसीरूद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 39

शासन काल (1461-63 ई०) है और दूसरी बात यह भी प्रमाणित हो जाती है कि 'कदमराव व पदमराव' का रचयिता निज़ामी ही था।

अब प्रश्न उठता है कि आख्यानक काव्य का नाम पदमराव है अथवा कदमराव और पदम अथवा कदमराव व पदमराव। डा० ज़ोर ने काव्य का नाम 'पदमराव' लिखा है।[1] श्री हाशमी ने कदमराव और पदम शीर्षक से सम्बोधित किया है।[2] पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने भी इसका शीर्षक 'कदमराव व पदम' लिखा है।[3] सखावत मिर्ज़ा ने ग्रन्थ का शीर्षक 'कदमराव व पदमराव' प्रस्तुत किया है।[4] सखावत मिर्ज़ा ने जिस प्रकार की कहानी प्रस्तुत की है उसके आधार पर शीर्षक कदमराव व पदमराव' अथवा 'कदमराव और पदमराव' ही अधिक उपयुक्त हो सकता है। किन्तु इस प्रेमाख्यानक काव्य के जितने पद्यों को मैंने देखा है उनमें शीर्षक कहीं पर भी अंकित नहीं है। इसमें कहीं 'कदमराव' है तो कहीं 'कदम' शब्द है और कहीं केवल 'पदम' है तो कहीं 'पदमराव' है। अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि इस प्रेमाख्यानक काव्य का शीर्षक 'कदमराव व पदमराव' ही रहा होगा।

ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने ईश-वन्दना से किया है जो इस प्रकार है—

गुसाई थी एक दना जगदार,
वरद वरद न जग तूही दीनहार।
आकास ऊँचा पाताल धरती थी,
जहाँ कुछ न कोई था है तू ही।
रिझनहार अंधे रिझनहार तू.
रहनहार पछे रहनहार तूं।
निज़ामी कहनहार जिस यार होय,
सुननहार सुन नग्ज़ गुफतार होय।[5]

परमात्मा की स्तुति के पश्चात् हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा है—

नहीं एक सांचा गुसाई अमर,
सरी दूई तीन जग तोरा दिगर।
बिठाया अमोलक रतन नूर दहर,
किती देक बलकट करन राज कर।

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 13
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 38
3. पंडित परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, पृ० 368
4. सखावत मिर्ज़ा—मसनवी कदमराव व पदमराव (लेख) उर्दू अदब, पृ० 41 1966 ई०
5. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 40

अमोलक कलत सेस संसार का,
करे काम नर धार करतार का।
मुहम्मद जरम बुनियाद नूर,
दो ही जग सरी दे पोसाद तूर।[1]

इसके पश्चात् स्वर्गीय सुलतान अलाउद्दीन की प्रशंसा इन शब्दों में की है—

बड़ा शाह वह शाह जिस शा जग,
धेन सेवती जरम तिसे पाय लग।
नहीं शह किया शादर कहन धरन,
गगन दिल धरत दिल मुस्तखर करन।
अतार व मुसतखर हवाये कलम,
मुसखर किया सूर दिले हत अलम।
अलग गार खन सूर चल सर उचाव,
तबल धूल बरगों बदल तूँ बजाव।
चमकने लगी जब कनक हेतर,
चरवाहा किया धरत आकास पर।
चमक बिजुली त्यों अलम मुझ ज्यों,
इल्म सनक तूँ गरज घन जूँ-चूँ तूँ।[2]

समसामयिक शासक अथवा आश्रयदाता का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। अत: अब सखावत मिर्ज़ा के लेख के आधार पर आख्यानक काव्य 'कदमराव व पदमराव' की कथा का सार प्रस्तुत है—

कदमराव नामक राजा था जो प्राय: योगियों के साथ रहा करता था। एक दिन संयोगवश उसकी भेंट अक्खरनाथ योगी से हुई। अक्खरनाथ नामक योगी ने राजा से कहा, मुझे परकाय में प्रवेश की विद्या आती है। राजा के मन्त्री पदमराव ने राजा को समझाया कि इन योगियों और सन्यासियों का साथ आपके लिए अच्छा नहीं है किन्तु राजा ने एक न सुनी। राजा कदमराव ने अक्खरनाथ योगी से परकाय प्रवेश की विद्या सीखी और एक दिन मृत तोते के शरीर में प्रवेश किया। योगी ने इस अवसर से लाभ उठाकर अपनी आत्मा को राजा के शरीर में प्रवेश कराया एवं स्वयं राजा बन बैठा।

राजा कदमराव के एक अन्य मन्त्री मधरबुध को एक योगी का राजा बन बैठना पसन्द नहीं आया। योगी ने उसे पुरस्कार देकर प्रसन्न करना चाहा, किन्तु वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। एक दिन नकली राजा (योगी) और मधरबुध में कुछ विवाद

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 41
2. वही

हो गया तो योगी ने कहा, इसमें मेरा दोष नहीं है। विश्वासघात का दोष तो पदमराव मन्त्री पर है।

अन्त में तोते के शरीर में ही राजा कदमराव अपने मन्त्री पदमराव को डाँटता है। पदमराव को अपने कार्य पर लज्जा आती है और योगी से प्रार्थना करता है कि वह राजा को अपने शरीर में आने दे। योगी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। राजा ने अपनी काया में प्रवेश किया और पूर्ववत् महलों में जीवन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार की कथाएँ दक्खिनी के कवियों में बहुत प्रचलित हैं। लोक कथाओं के अतिरिक्त जैनों और बौद्धों के साहित्यों में भी इसी प्रकार की कहानियाँ मिलती हैं। मुसलमान कवियों ने इन कहानियों को इसलिए कदापि नहीं अपनाया है कि उनका विश्वास इसमें था। मुसलमान सूफी सन्तों ने इस प्रकार की कहानियों के द्वारा अपने विचार जन साधारण तक पहुँचाने चाहते थे। विशेष रूप से सूफी साधकों की यह मान्यता थी कि अपने विचारों को लोक प्रचलित कहानियों और जन साधारण की भाषायें उन तक पहुँचाया जाये। अतः उन्होंने हिन्दू धर्म की समस्त मान्यताओं का उल्लेख अपने काव्य में करते हुए सूफी विचारधारा का प्रसार एवं प्रचार किया।

इस ग्रन्थ की अभी तक खण्डित प्रतियाँ ही प्राप्त हुई हैं। अतः इसका प्रामाणिक पाठ अभी तक उपलब्ध नहीं है। इसका मूल्यांकन भी अधूरा ही है। श्री हाशमी और श्री सखावत मिर्ज़ा के अथक परिश्रम के कारण ही इस काव्य का कुछ अंश उपलब्ध हो सका है। उसी के आधार पर ही कुछ चर्चा सम्भव हो सकती है।

'कदमराव व पदमराव' नामक ग्रन्थ का जो अंश प्राप्त है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि इसमें अरबी-फारसी के शब्दों का अभाव है तथा ब्रजभाषा का अधिक प्रभाव है। निज़ामी की भाषा को निम्नांकित पंक्तियों के आधार पर समझा जा सकता है—

कदम राव अरवीं रन दिना आधर,
कि रहन बात सुन बात बक बत धर।
सीना था की नारी धरी बहुत जल्द,
सो मैं आज देता तेरी जन्द बन्द।
धसीं झन्द जब मैं दुनिया जग में,
नई दहल थे तहन हुई पर बारक में।
सुजात एक नागिन कुजात एक सांप,
असंकत देती खलीस बालिब चांय।
जो कर नार मुज कूं किया सीइ राव,
असन्कत कि क्यूं देख सकूं अब नाव।

निज़ामी की कविता के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वह अपने समय का महान कवि था। इससे एक बात जो स्पष्ट होती है वह यह है कि इस समय तक दक्खिनी पूर्ण रूप से साहित्यिक भाषा नहीं बन सकी थी—

पदम राव भतया महा कर दीं,
कुन्दल पैराव भा होर हर दीं।
खपरा तीर हो ज्यूं रस्या था अधल,
कमान हो पऱ्या नेका की पाये तल।
× × ×
कि तूं साच मेरा गुसाईं कदम,
पदमराव तुज पाव केरा पदम।
जहां तू धरे पाव हो सिर धरूं,
अपस सार की लक तराइ करूं।

कवि निज़ामी काव्य के द्वारा उपदेश देता है। उसकी मान्यता है कि सत्य सदैव महान है और सत्यता का ही मूल्य बढ़ता है—

न बोलूं कधी झूट पन साच बोल,
कि जिस बोल थे हों हूं ऊंच बोल।

'कदम राव व पदम राव' काव्य की विशेषता यह है कि इसमें कथा के साथ-साथ तथ्यों का विश्लेषण भी किया गया है। उदाहरणार्थ एक स्थान पर कवि ने लिखा है कि महापुरुष न किसी की बात को बुरा मानते हैं और न ही भला प्रत्युत अपना कर्तव्य पूरा करते हैं :—

कि जो तू बोले मुझे दुक्ख ना,
जो बोल्या करे भई मुझे सुक्ख ना।

कवि का विश्वास है कि भले का फल भला होता है और बुरे का फल बुरा होता है। राजा कदम राव का मन्त्री पदमराव राजा के साथ षड़यन्त्र करता है किन्तु अन्त में स्वयं ही परास्त होता है और मन्त्री राजा से कहता है—

कि तू साच मेरा गुसाईं कदम,
पदम राव तुज पाव केरा पदम।
जहां तू धरे पांव हो सिर धरूं,
अपस सार की लक तराइ करूं।

कवि निजामी ने अपने काव्य में कुछ स्थलों पर मानसिक स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है किन्तु कुछ स्थलों पर केवल कहानी कह कर सन्तोष कर लिया है। उदाहरण प्रस्तुत है—

अक्खरनाथ मंतर सिखाया रहस,
यकायक पड़्या टूट मंदिर कलस।
जताये बहुत तो सगुन राव कूं,
न पूछना किये राव उस भाव कूं।
पढ़ा अक्खरनाथ मन्तर सकाल,
खया देक परख्यू रतन संभाल।

दक्खिनी भाषा का प्रसिद्ध कवि निज़ामी के काव्य 'कदमराव व पदमराव' के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि काव्य की भाषा सरल है और इसमें लोक तत्वों का समावेश हुआ है। वाक्य विन्यास सरल हैं। कवि ने यत्र-तत्र तत्काल प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। इस काव्य की एक विशेषता यह भी है कि इसमें क्षेत्रीय शब्दों के साथ-साथ अरबी-फारसी के शब्दों की अपेक्षा तत्सम व तद्भव एवं अपभ्रंश के शब्दों का भी प्रयोग बड़ी मात्रा में हुआ है जो इस समय की रचनाओं में प्रायः कम मिलता है।

शाह मीराँ जी 'शमसुलउश्शाक़'

मीराँ जी शमसुलउश्शाक अपने समय के महान विद्वान् थे और दक्षिण भारत के सूफ़ी सन्तों में उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान था। उन्हें मीराँ जी के अतिरिक्त शमसुल उश्शाक (प्रेमियों का सूर्य अथवा भक्त सूर्य) भी कहा जाता है। दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध शोधार्थी डा० अब्दुल हक़ ने लिखा है—"हज़रत शाह मीराँ जी बहुत योग्य शेख और प्रसिद्ध अध्यात्मवादी हुए। कहते हैं, वे मदीना में बारह वर्ष रहे और प्रति वर्ष हज का सौभाग्य प्राप्त किया। वहाँ से दक्षिण भारत में आये और बीजापुर में निवास स्थान बनाया। ख्वाजा कमालुद्दीन बियाबानी से दीक्षा ली जो हज़रत बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ ख्वाजा सैयद मुहम्मद हुसैनी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे।"[1] इसी प्रकार का मत प्रकट करते हुए श्री हाशमी ने कहा है—"हज़रत शाह मीराँ जी शमसुल उश्शाक उन औलियाओं में से हैं जिन्होंने हज़ारों मनुष्यों को सत् मार्ग दिखाया है। आप बीजापुर के बाहर रहते थे और आप ख्वाजा कमालुद्दीन बयाबानी के शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे।"[2]

मीराँ जी शमसुल उश्शाक का जन्म कहाँ हुआ? इस प्रश्न को लेकर विद्वान् विभिन्न प्रकार के मत दे रहे हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि मीराँ जी का जन्म मक्का में हुआ और वहाँ से बीजापुर में आये।[3] डा० ज़ोर का कथन है "ये छोटी आयु में ही अरब चले गये थे और उस समय दक्षिण भारत वापस आये जब यहाँ पर बहमनी शासन समाप्त हो रहा था।"[4] डा० ज़ोर के इस कथन से आभास होता है कि शाह मीराँ जी का जन्म भारत में ही हुआ था। डा० श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि खाज़िनतुल आसफिया के लेखक ने इनका जन्म स्थान मांडू बताया है।[5] आगे डा० शर्मा ने फिर

---

1. डा० अब्दुल हक़—क़दीम उर्दू (लेख) उर्दू (पत्रिका) खंड 7, अंक 26, अप्रैल 1927, पृ० 171
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 49
3. प्रो० अब्दुल कादर सरवरी—उर्दू मसनवी का इर्तका, पृ० 30
4. डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी जोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 20
5. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 109

लिखा है कि "कुतुब खाना गच्ची महल (बीजापुर) में उपलब्ध बयाज़ुल अमलियात संकलन में इनका जन्म स्थान दिल्ली लिखा है।"[1] इस प्रकार ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता है कि महान कवि एवं विद्वान् मीरां जी शमसुल उश्शाक का जन्म किस स्थान पर हुआ।

शाह मीरां जी शम्सुल उश्शाक के जन्म और मृत्यु की तिथियों के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। दक्खिनी भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डा० ज़ोर के मतानुसार मीरां जी का जन्म 1496 ई० में हुआ।[2] डा० अब्दुल हक़ का कथन है—"बहमनी शासन के अन्तिम दिनों में इनका जन्म हुआ और आदिल शाही शासन के आरम्भिक दिनों में बीजापुर में रहते थे। डा० अब्दुल हक़ के इस कथन से वास्तविक तिथि का अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता है, किन्तु डा० अब्दुल हक़ ने मीरां जी की मृत्यु तिथि हिजरी सन् 902 बतायी है।"[3] मौलवी अब्तुल जब्बार खां मलकापुरी ने मीरां जी शम्सुल उश्शाक का देहान्त हिजरी सन् 910 लिखा है।[4] डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर ने लिखा है—"हिजरी सन् 902 मृत्यु तिथि न होकर जन्म तिथि है। उनकी मृत्यु हिजरी सन् 970 (1564 ई०) में हुई।"[5] राहुल सांकृत्यायन ने मीरां जी का देहान्त हिजरी सन् 905 (1496 ई०) माना है।[6] प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी ने मीरां जी की मृत्यु हिजरी सन् 904 (1448 ई०) माना है।[7]

सुलतान युसुफ आदिल शाह मीरां जी का बहुत आदर करता था। इसी के शासक-काल (1490 से 1528 ई०) में आपका देहान्त हुआ। बीजापुर के पास ही शाहपुर नामक स्थान पर इनकी समाधि बनी हुई है जहाँ प्रतिवर्ष उर्स का आयोजन किया जाता है।

गुरु परम्परा : मीरां जी शम्सुल उश्शाक दक्षिण भारत के प्रसिद्ध सूफ़ी साधक एवं दक्खिनी के प्रथम मुसलमान कवि हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ की परम्परा से सम्बद्ध है। इस परम्परा में अनेक विद्वान् एवं चिन्तक हुए हैं किन्तु ख्वाजा बन्दा नवाज़ की शिष्य परम्परा में शाह मीरां जी का विशेष स्थान है। इनकी गुरु परम्परा इस प्रकार है—

सैयद मुहम्मद हुसेनी (ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़)

---

1. डॉ० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 139
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 20
3. डा० मौलवी अब्दुल हक़—क़दीम उर्दू (लेख) उर्दू (पत्रिका) खंड 7, अंक 26, अप्रेल 1927 ई०, पृ० 171
4. मौलवी अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी—औलिया-ए-दकन, पृ० 102
5. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—इरशादनामा (भूमिका), पृ० 19
6. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पृ० 5
7. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग़, पृ० 235

हज़रत शाह जमालुद्दीन मग़रबी
हज़रत शाह कमालुद्दीन बयाबानी
हज़रत शाह मीराँ जी 'शम्सुल उश्शाक'

सुलतान युसुफ़ आदिल शाह मीराँ जी का बड़ा भक्त था। उनके आदेशों को सिर आँखों पर रखता था। उनसे समय-समय पर मिलता रहता था। दक्षिण भारत के अधिकांश सूफ़ी साधक अपने शिष्यों को मानव जाति की भलाई का केवल उपदेश ही नहीं देते थे प्रत्युत मानव जाति की सहायता को कार्य व्यवहार में लाते थे। उनका विश्वास था—व्यक्ति को शिक्षित बनाने से मानव जाति की सेवा के साथ-साथ मानव का कल्याण भी होगा। ये साधक यद्यपि अरबी-फारसी भाषाओं के पंडित थे किन्तु वे अन्य ग्रन्थों की रचना उसी भाषा में करते थे जिसे आम जनता समझती थी। हज़रत शाह मीराँ जी शम्सुल उश्शाक भी इन्हीं साधकों में से थे जिन्होंने विद्यार्थियों एवं मानव जाति के कल्याण के लिए पाठ दिए एवं जनसाधारण की भाषा (दक्खिनी) में उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रणयन किया।

शाह मीराँ जी को यद्यपि अरबी-फारसी पर विशेष अधिकार था और उन्हीं में अनेक रचनाएँ भी की हैं किन्तु उन्होंने जन साधारण की भाषा दक्खिनी में अमूल्य ग्रन्थों की भी रचना की, जो इस प्रकार है—

गद्य-ग्रन्थ : 1. गुलबास, 2. जलतरंग, 3. सबरस, 4. शाह मरगूबुल कलूब, 5. रिसाला तसव्वुफ़।

पद्य-ग्रन्थ : 1. खुशनामा, 2. शहादतुल हक़ीक़त, 3. खुशनग्ज़, 4. बसारतुल ज़िक्र और 5. मग्ज़-ए-मरगूब व चहार शहादत।

यहाँ पर केवल दक्खिनी की पद्य रचनाओं का अध्ययन करेंगे। गद्य रचनाओं का अध्ययन अलग से दिया गया है।

शहादतुल हक़ीक़त : यह एक छोटी पुस्तिका है। इस काव्य ग्रन्थ में कुरआन शरीफ की कुछ आयतों की व्याख्या की गई है और हदीस के कुछ अंशों का अनुवाद है। पुस्तक पांडुलिपि सालराजंग म्यूज़ियम पुस्तकालय में सुरक्षित है। उसके आरम्भ में लिखा है—"कलाम मीराँ जी शम्सुल उश्शाक के कलाम शाह वजीहुद्दीन तर्जुमा नमूदह अन्द व सबरस नाम कदे अन्द"।[1] अर्थात् मीराँ जी ने भी 'सबरस' नामक ग्रन्थ को रचना की है। कुछ लोगों को भ्रम है कि वजही की ही रचना को मीराँ जी शम्सुल उश्शाक के साथ जोड़ दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मीराँ जी की 'सबरस' मुल्ला वजही की 'सबरस' से भिन्न है।

---

1. मीराँ जी शम्सुल उश्शाक—सबरस, पृ० 1, हस्तलिखित प्रति, सालारजंग म्यूज़ियम पुस्तकालय, हैदराबाद।

'शहादतुल हक़ीक़त' नामक काव्य में कुल 517 पद हैं। पुस्तक के नामकरण के सम्बन्ध में स्वयं कवि ने कहा है—

इस नाम तहक़ीक़, सुन शहादतुल हक़ीक़।

पुस्तक के आरम्भ में मीराँ जी ने भी अन्य सूफ़ी कवियों की भाँति ईश-स्तुति करते हुए परमात्मा के गुणों को अनिर्वचनीय कहा है—

है कहा न आवे—ना नहीं कहिया जावे,
सुन ये गत क्यूँ कर सूजे जिस कुर्बत सों है बूझे।

कवि अपनी पुस्तक की प्रशंसा करते हुए कहता है कि यह हीरों की खान है, अमूल्य है, जो गोताखोर इसमें अपनी बुद्धि से गोता लगायेगा वही ज्ञानी बनेगा और जो व्यक्ति ऊपर ही ऊपर तैरता है उसके हाथ केवल मछली लगती है, हीरा नहीं—

सब हीरां की रे खान ना मोत्यों केरे दान,
जो गव्वास बुध लेबे तो सालिम सोधा लेवे,
जो होयगा मच्छारा क्या जानेगा विचारा।

शाह मीराँ जो शम्सुल उश्शाक ने अपने पीर (गुरु) हज़रत शाह कमालुद्दीन का परिचय देते हुए कहा है—

उस कमालियत का संग उस खानदान का रंग,
उन गमाये अपना हाल तो होय पीर कमाल।

कवि ने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि मैंने कोई बात अपनी ओर से इस पुस्तक में नहीं कही है। ये बातें जो हिन्दी में कही हैं सब कुरआन शरीफ की बातें हैं—

त्यूँ उसमें अरत बीज,
सब कुरआन के बीज।

इस पुस्तक द्वारा कवि ने इस्लाम के मूल सिद्धान्त कि ख़ुदा अकेला है तथा उसका कोई साझीदार नहीं है और वह सृष्टि का निर्माता है—

तुझ बिन और न कोई,
ना ख़ालिक़ दूजा होई।

कवि ने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि मैंने हिन्दी में क्यों लिखा? 'भाका' (भाषा अथवा हिन्दी) को सभी लोग समझते हैं। अरबी-फारसी में तो बहुतों ने लिखा है किन्तु उसे जन साधारण जनता नहीं समझ सकती है। इसलिए जन-साधारण की भाषा में लिखा है। ये शिक्षा हमने अपने गुरुओं से पायी है कि अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए जनसाधारण की भाषा का प्रयोग करो—

है अरबी बोल केरे, और फारसी भौतेरे।
ये हिन्दी बोलूं सब, इस अर्तां के सबब।
ये भाका मल सो बोले, पन उसका भावत खोले।
ये गुरु मुख पद पाया, तो ऐसे बोल चलाया।
जे कोई अछे खासे, उस बयान केरे पासे।
वे अरबी बोल न जाने, न फारसी पछाने।

उन्होंने स्पष्ट शब्दों में तत्कालीन कुलीन वर्ग को बताया है कि वे भाषा की ओर ध्यान न देकर भाव की ओर दृष्टि डालें। किसी भी रचना की भाषा मुख्य नहीं होती है प्रत्युत भाव मुख्य होते हैं। इस प्रकार से रचना का मूल्यांकन करना उपयुक्त होगा—

ये उनकूं बचन होत, सुन्नत बूझे रीत।
यूं देखत हिन्दी बोल, पन मानी है निय तूल।
कड़वेपन सो रस, कुल याके फनस।
न देखत बुरा लेखो, ये मग्ज़ चाक देखो।
जे मग्ज़ मीठा लागे, तो क्यूं मन उस थे भागे।

कविवर मीराँ जी ने अपनी भाषा के सम्बन्ध में फिर कहा है कि यह घूर (अप्रतिष्ठित) भाषा है, किन्तु भाषा की ओर ध्यान न देकर इसके अर्थ को समझो —

यो भाका माटी जानो,
जरे मानी दिले में आनों।

खुशनामा : शाह मीराँ जी की पद्य रचनाओं में 'खुशनामा' प्रथम रचना मानी जाती है। इसमें केवल 117 दोहे हैं। यद्यपि यह छोटी रचना है फिर भी इसमें उन सभी बातों का समावेश है जो एक साधक के लिए आवश्यक होती हैं। कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि रचना का उद्देश्य मानव मात्र को प्रसन्न करना है—

खुश खुश हालो खुश खुशियाँ खुशी रहे भरपूर।
ये खुश खुशियाँ अल्लाह करो अनवरुल अली नूर॥
खंडिया खुशनमा तम्मत हुआ तमाम।
खुश सब कोई दायम कायम जेता खास व आम॥

अब प्रश्न उठता है कि 'खुश' क्या चीज़ है ? प्रसिद्ध विद्वान् डा० अब्दुल हक़ ने खुशनामा में वर्णित 'खुश' पर मत प्रकट करते हुये कहा है—"खुश या तो काल्प-

निक पात्र है अथवा मीराँ जी शम्सुल उश्शाक की लड़की है।"[1] कवि ने स्वयं खुशनामा में इस प्रकार का आभास दिया है—

बरस पाँच और बारा की यक मास नौ दीन।
उसकी उम्र लिखते सब लेखा हुआ उस खीन॥

इन्हीं पंक्तियों के आधार पर विद्वानों ने कहा है कि 'खुश' उनकी पुत्री थी जिसकी मृत्यु 17 वर्ष एक मास और नौ दिन की आयु में हुई।

डा० श्रीराम शर्मा का मत है कि यह 'खुश' मीराँ जी की पुत्री थी।[2] किन्तु मेरा विचार है कि यह मीराँ जी की पुत्री नहीं प्रत्युत काल्पनिक पात्र है क्योंकि मीराँ जी के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों में 'खुश' नामक पुत्री का उल्लेख कहीं नहीं है। ग्रंथ की उपर्युक्त पंक्तियों से भी यह स्पष्ट नहीं होता है कि यह उनकी पुत्री थी। यदि कोई वास्तविक युवती है, भी तो हो सकता है कि मीराँ जी कोई सगी सम्बन्धी हो अथवा उनकी भक्त हो क्योंकि एक स्थान पर कवि ने स्वयं कहा है—

बाली भोली जीव अवाली मुहब्बत केरा नूर।
परम पियारी सात संघाती तिल न होये दूर॥
जब वह आयी इत संसार खुशी सो हुई तमाम।
पगो तब गुरु के लागी, कह्या 'खुश' कर नाम॥

अन्तिम पंक्ति में लिखा है कि गुरु के चरण का स्पर्श किया अतः हो सकता है कि मीराँ जी की कोई परम भक्त युवती ही हो।

यहाँ पर एक अन्य बात को भी ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है कि सूफ़ी साधकों ने अपनी साधना के लिए प्रतीकात्मक पात्रों अथवा कथाओं का आश्रय ग्रहण किया है। अतः हो सकता है कि मीराँ जी ने भी आत्मा को 'खुश' के रूप में अपनाया हो। हिन्दी में बहुत से ऐसे सूफ़ी सन्त हैं जिन्होंने आत्मा को स्त्री रूप में प्रस्तुत किया है।

कवि ने 'खुश' नामक युवती के सम्बन्ध में बताया है कि वह बचपन से ही सांसारिक सुख भोग में रुचि नहीं लेती, यद्यपि वह बहुत प्यारी है—

कभी न रंगी मेंहदी रंगो फूलों बास न आया।
रंग न रंग्या दन्तो उसके भीनी न हल्दी काया॥

एक बार गुरु ने खुश से कहा, तुम सांसारिक कार्यों में भी आनन्द लो। इस पर 'खुश' कहती है—

---

1. डा० अब्दुल हक़—कदीम उर्दू (लेख) उर्दू (पत्रिका) खण्ड 7, अंक 26, पृ० 172, अप्रैल 1927 ई०
2. डा० श्रीराम शर्मा— दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 112

कहे ये सब हुक्म ख़ुदा का जे तुम आखे यूँ !
हमको भावें एक अल्लाह सो करे वह भावे त्यूँ ।।

खुश कहती है कि पाप और पुण्य दोनों ही बन्धन कारक हैं। पाप और पुण्य के रहते हुए जीव ईश्वर से नहीं मिल सकता है—

पुन पाप सट दीजै,
आप शह सूं मेला होवे तब।

कविवर शाह मीराँ जी शम्सुल उश्शाक ने अपने गुरु की प्रशंसा करते हुये कहा है कि वास्तव में सच्चा गुरु वही है जो परमात्मा से प्रेम शिष्य में उत्पन्न कर दे एवं अच्छे और बुरे व्यक्तियों का वर्णन किया है—

पीर वही जो प्रेम लगावे, नूर निशानी ऐन।
मंजिल की सुध लगावे जहाँ दीस ना रैन ।।
जिस मारग ये जीव सँवरे, सो ही मारग सार।
मारग छोड़ चले कुमारग, तिन का हीन विचार ।।
करे जभी वे तीरत पटन, योग अभासे ध्यान।
पाँचों चीज़ रयास राखे, क्यूँ कर दीजै भान ।।
चन्दर सूर की आरत दिखावे, करे अचम्भा जब।
जाकर ही मन दम्भ चलावे, यें भी ध्यान अलब ।।
लूंचत मूँदत फिरे फोकट, लिख करे या हज।
पास देख जिसे देवे मान, वह भी मूरख निलज ।।
जिन कूँ शहबत केरा हावा, उनकूँ दीसे पार।
जिनके पीर शयातीन वे तो ना आवे आवेंगे हक़ धीर ।।

शाह मीराँ जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि जो लोग अनेक गुरुओं के पास जाते हैं, वे आध्यात्मिक ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते—

राह खुदा की बूझ न देखे धावे चारो धीर।
एक छोड़ जे बहुता लागे उनकूँ नाही पीर ।।

कविवर मीराँ जी का मत है कि साधक को सच्चरित होना चाहिए। दुराचरण के कारण अच्छे से अच्छे गुरु भी शिष्य की रक्षा नहीं कर सकता है और न ही गुरु दुराचारी शिष्य को समझा सकता है। इन्होंने ऐसे शिष्यों की तुलना शूकर से की है—

शुब्बर के गल बान्ध्या मुश्क वह क्या उसकूँ जाने।
उसके ताईं सिरज्या वह सो ही पछान माने ।।

सच्चे साधक की पहचान यह है कि वह सदाचारी, सदा रूखी-सूखी रोटी

खाकर तृप्त रहता है। वह कभी अपनी बड़ाई नहीं चाहता। उसे सम्मान की लालसा नहीं होती है। मीराँ जी के शब्दों में—

ना मुज लोडे पाट पितम्बर पे जर जरी सिधार।
फाटी टूटी कम्बली नीको क़लमा जपनहार॥

इनका कथन है कि जब ईश्वर सब की चिन्ता करता है तो फिर मनुष्य क्यों चिन्ता में डूबा हुआ है। परमात्मा किसी को तो भूख मिटाने तक के लिए नहीं देता, किसी को आवश्यकता से अधिक देता है, कोई पलंग पर सोता है और किसी-किसी को भूमि पर ही सोना पड़ता है—

केते पलंग निहाली ऊपर केते पड़े तलहार।
केते कूँ धड़ कू पट ना है केते कूँ धोलार॥

कवि ने ईश्वर की अपार शक्ति का उल्लेख निम्नांकित शब्दों में किया है—

वह बहिश्त म्याने आग उचावे, दोजख कू सके बुझावे।
पकड़ भिकारी तख्त बिठावे, राजे राखी-गर्द मिलावे॥

खुशनग्ज : यह केवल 72 पदों की पुस्तिका है और नौ अध्यायों में विभाजित की गयी है—

1. इरफान-ए-रूह (आत्मिक ज्ञान)
2. इरफान-ए-आल महा (सामाजिक ज्ञान)
3. इरफान-ए-मराक़िबहा (साधनों का ज्ञान)
4. इरफान-ए-ज़ौक-ए-नूर (ईश्वरीय प्रकाश की अनुभूति का ज्ञान)
5. इरफान-ए-अमल (बिहित आचरण-ज्ञान)
6. मौत-ए-आरिफ़ान (ज्ञानी की मृत्यु)
7. बहस अक़्ल व इश्क़ (बुद्धि और प्रेम का विवाद)
8. बयान-ए-करामात (चमत्कारों का वर्णन)
9. बयान-ए-मोहिद्दी मुल्हिद (ऐकेश्वरवादी और नास्तिक का वर्णन)

इन शीर्षकों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि रचना का मूल विषय अध्यात्म है। इसमें 'खुश' नामक युवती जिज्ञासु बनकर गुरु से प्रश्न करती है और गुरु उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

इस पुस्तिका में भी कवि ने खुशनामा की भाँति 'खुश' नामक युवती को पात्र चुना है और उसी को सम्बोधित करके सूफ़ी साधना पद्धति पर प्रकाश डाला है। शाह मीराँ जी ने इस पुस्तिका के चार प्रमुख कोने माने हैं जो इस प्रकार है—
1. तसव्वुक, 2. फिक्र, 3. मुहब्बत और 4. ज़िक्र। मीराँ जी के शब्दों में—

यक यक कोना तव्वकुल का, यक यक कोना फ़िक्र का।
तिसरा कोना मुहब्बत का है, चौथा कोना ज़िक्र का॥

खुश नामक युवती ने जब अपने गुरु से प्रश्न किया कि प्रेम और ज्ञान अर्थात् हृदय और बुद्धि में कौन श्रेष्ठ है तब गुरु ने उत्तर दिया प्रेम का स्थान उच्च है लेकिन इसके साथ ही साथ बुद्धि का भी विशेष स्थान है।

सूफ़ी सन्त मीराँ जी शम्सुल उश्शाक ने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि मनुष्य की सृष्टि कैसे हुई। 'खुश' के द्वारा प्रश्न कराया है कि गुरु द्वारा उसका उत्तर दिया है—

खुश पूछी कहो मीराँ जी आलम अछे केते।
पीर कहे सुन जेते तन अछे आलम तेते ॥

मग्ज-ए-मरगूब व चहार शहादत : शाह मीराँ जी शम्सुल उश्शाक ने इस पुस्तक में सूफ़ियों की चार शहादतों की परिभाषा प्रस्तुत की है। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में इसका नाम 'शहाकत नामा' भी दिया है किन्तु पुस्तक में वर्णित विषय के आधार पर कहा जा सकता है कि पुस्तक का नाम 'चहार शहादत' अधिक उपयुक्त है।

कुछ सूफ़ी साधकों के मतानुसार शरीर चार प्रकार के होते हैं। मीराँ जी इसी मत के समर्थक थे। अतः उन्होंने चार शरीरों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

हवा म्याने जेता रूप तेता पहला तन।
दूजा नत सों हवा को जिस घट बरते मन ॥
तीजा तन ग़ैब जिस आँखें चौथा ग्यान सपूरा।
सतगुरु सेवे थे बुध पावें बिन गुरु फ़हम अधूरा ॥

समस्त सूफ़ी सन्तों ने गुरू को अत्यधिक महत्व दिया है और उनका विश्वास है कि गुरु के बिना वास्तविक ज्ञान असम्भव है। शाह मीराँ जी के मतानुसार ज्ञान गुरु के कारण ही सफल होता है अन्यथा ज्ञान प्राप्त करने में व्याधि पड़ती है—

सुने सो करे सो देखे, देख्या तो कुछ भोग।
सतगुरु किरपा होय तो भला नइँ तो दूना रोग।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि सूफ़ी साधकों के सामने प्रेम का महत्व प्रथम है और ज्ञान का स्थान दूसरा है। सूफ़ी साधक प्रेम और ज्ञान के पश्चात् जप को महत्व देते हैं। इनका मत है कि जप के द्वारा ही आत्मा उद्देश्य की ओर अग्रसर होती है। इस जप के लिए तीन अंगों का विशेष महत्व है—

1. क़ल्ब (हृदय)
2. रुह (आत्मा)
3. सिरी (अंतःकरण)

हृदय, आत्मा अन्तःकरण का उपयोग सूफ़ी साधक ईश्वर प्राप्ति के लिए करते हैं। इनका विश्वास है कि साधक हृदय से ईश्वर को पहचानता है, आत्मा से ईश्वर को प्यार करता है और अन्तःकरण से ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त सूफ़ियों के यहाँ ज़िक्र का भी महत्व है। इन्होंने इसे तीन अंगों में विभावित किया है—

1. ज़िक्र-ए-क़ल्बी (हृदय द्वारा किया जाने वाला ध्यान)
2. ज़िक्र-ए-रुही (आत्मा द्वारा किया जाने वाला ध्यान)
3. ज़िक्र-ए-सिरी (अन्त:करण द्वारा किया जाने वाला ध्यान)

इसके अतिरिक्त एक ज़िक्र और होता है 'ज़िक्र-ए-जली' के नाम से जाना जाता है। अन्य जपों के लिए साधना की आवश्यकता होती है किन्तु 'ज़िक्र-ए-जली' के लिए इसकी आवश्यकता नहीं होती। इसे साधारण व्यक्ति मौखिक करता है और इस जप को मुख से करता है। शाह मीराँ जी ने भी अन्य सूफ़ी साधकों की भाँति विभिन्न प्रकार के जपों का परिणाम बताया है —

जिक्र-ए-जली मुख बोले बयान क़ल्बी दिल राखे।
रुही मुखड़ा देखे शह का सिरी सू मुख चाखे ॥

भाषा एवं शैली :

भाषा-शैली की दृष्टि से जब हम कविवर मीराँ जी की कविता पर दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने विशुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया है जिसे नामदेव एवं अन्य दक्षिणी कवियों ने अपनाया था। वास्तव में भी शाह मीराँ जी ने एक विशेष शैली का निर्माण किया है जिसका उदाहरण प्रस्तुत है—

बिस्मिल्लाह अल रहमान अल रहीम तू सुजान
ये सब आलम तेरा रज़्ज़ाक सभी केरा
तुझ बिन और न कोई ना खालिक दूजा कोई
जे तेरा होये करम तो टूटे सभी भरम
इस कारन तुझको ध्याऊँ और तेरा नाम ल्यूँ
तुझ न रता कौन जाने और पूरी सिफ़त बखाने
है तेरा अन्त न पार किस मुख करूँ उच्चार
जो तेरा अमर जाने उस नहीं को न माने।

कुछ स्थलों पर हम इस प्रकार का प्रयोग भी पाते हैं—

माता जो बालक थे रुसे जाना उन्हें किधर
आप जिस मारग लासी मीराँ मैं जाऊँ तिधर।

छन्द-शास्त्र की ओर जब हमारी दृष्टि जाती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि दक्खिनी के अन्य कवियों की भाँति मीराँ जी ने भी त्रुटियाँ की हैं। कविवर मीराँ जी ने 'खुशनामा' में दोहा छन्द को अपनाया है। इनकी मात्राओं की गणना से स्पष्ट होता है कि इस पुस्तक के अधिकांश दोहे चौबीस मात्रा के नहीं हैं। उर्दू भाषा के छन्दों की भाँति इन्होंने दोहों में आवश्यकतानुसार दीर्घ स्वर को ह्रस्व और ह्रस्व को दीर्घ बनाया है। इसी प्रकार 'शहादतुल हक़ीक़त' के छन्दों की मात्राएँ भी नियमित नहीं हैं।

फीरोज़ :

कवि फीरोज़ का मूल नाम कुतुबुद्दीन था और काव्य का नाम फीरोज़ था।[1] पिता का नाम शेख मुहम्मद था।[2] फीरोज़ अपने समय के महाकवि और आचार्य थे। ये बीदर के निवासी थे किन्तु कुछ समय के बाद गोलकुन्डा को अपना निवास स्थल चुना। इनके दीक्षा गुरु ने इन्हें इब्राहीम कुत्ब शाह के आग्रह पर गोलकुन्डा भेजा था।[3] इनका कादरिया सूफ़ी सम्प्रदाय से सम्बन्ध था। इनके धर्म-गुरु शेख मुहम्मद इब्राहीम मशहूर मखदूम जी थे।[4] डा० मसऊद हुसेन खाँ के मतानुसार शेख मुहम्मद इब्राहीम का देहान्त बदिर में हिजरी सन् 873 में हुआ।[5] दक्खिनी साहित्य के विद्वान श्री हाशमी का मत है कि इनका देहान्त हिजरी सन् 940 है।[6]

फीरोज़ की केवल एक रचना का अभी तक पता चल पाया है, जिसे प्रो० मसऊद हुसेन खाँ ने सम्पादित करके प्रकाशित कराया है। यह पुस्तक दो नामों से जानी जाती है—पितरनामा अथवा तौसीकनामा। इस ग्रंथ पर डा० नज़ीर अहमद ने एक विद्वतापूर्ण लेख भी प्रकाशित किया था। पुस्तक के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत: हिजरी सन् 940 के बाद हुई। गोलकुन्डा के कवि वजही और इब्न-ए-निशाती ने फीरोज़ की प्रशंसा की है। वजही ऐसे घमन्डी कवि ने भी फीरोज़ की विद्वता की प्रशंसा अपनी पुस्तक 'कुतुब मुश्तरी' में जिस ढंग से किया है, वह दर्शनीय है—

कि फीरोज़ आ जवाब मे रात कूँ,
दुआ दे के चूमे मेरे बात कूँ।
कहिया है तूँ यूँ शेर ऐसा सरस,
कि पड़ने कूँ आलम करे सब होस।
तो यूँ कर कि खसलत यों तुज आये ना,
कि तूँ खुश अछे होर के भाये ना।
तूल ऐसी तरज़ दिल ने पंजानवी,
कि दूसरे करें सब तेरी पैरवी।
वजही तेरा दहन जूँ बर्क़ हैं,
तुजे होर बाज़ाँ में कई फ़र्क़ है।

---

1. मुजे नाव है कुतुबुद्दीन, तखल्लुस सो फीरोज़ है बीदरी।
डा० मसऊद हुसेन खाँ—फीरोज़ बीदरी-पितरनामा, पृ० 258
2. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—बुझते चिराग, पृ० 238
3. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी जोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 18
4. ब्राहीम मखदूम जी जीवना, कि मैं सर्फे वहदत सदा पीवना।
डा० मसऊद हुसेन खाँ—फीरोज़ बीदरी-पितरनामा, पृ० 356
5. डा० मसऊद हुसेन खाँ—फीरोज़ बीदरी-पितरनामा (भूमिका), पृ० 338
6. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 68

एक अन्य स्थल पर वजही ने फ़ीरोज़ के सम्बन्ध अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं—

कि फीरोज़ महमूद अछे जो आज,
तो इस शेर कूँ बहुत होता रवाज़।
कि नादिर थे दोनों के इस काम में,
रह गया मैं कने बोल अछू नाम में।

इब्ने निशाती ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'फूलबन' में लिखा है—

नहीं वह किया करूँ फीरोज़ उस्ताद,
जो देते शायरी का कुच मेरे दाद।

इससे स्पष्ट होता है कि फीरोज़ अपने समय का महाकवि था और एक बात तो स्पष्ट होती है वह यह कि वह बीदर का मूल निवासी था किन्तु बाद में गोलकुन्डा चला आया था।

फीरोज़ बीदरी ने अपनी रचना 'पितरनामा' में हज़रत सैयद मुहिउद्दीन अब्दुल क़ादिर जीलानी की प्रशंसा की है और उनकी जीवन चर्या को बड़े आदर से अंकित किया है। हज़रत सैयद अब्दुल कादिर जीलानी सदैव ईश्वर के ध्यान में मग्न रहा करते थे। अतः वे 'ग़ौस-ए-आज़म' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनको सूफ़ी साधकों में विशेष स्थान प्राप्त था। कहा जाता है कि इन्होंने ही कादरी सम्प्रदाय की नींव डाली थी और फीरोज़ बीदरी इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। 'पितरनामा' के आरम्भ में कवि ने बताया है कि शेख अब्दुल कादिर जीवानी की आत्मा हज़रत मुहम्मद साहब, हज़रत अली और हसन तथा हज़रत हुसेन की ज्योति से युक्त थी—

मुहिउद्दीन तूँ दीन तुझ ते जिया,
तू इस्लाम कूँ ज़ोर सिर ते दिया।
तू ही नूर दीदा नबी का यक़ीन,
तू ही ऐन दस्ता अली यक़ीन।
कि बाग़ अली कूं तू गुलशन किया,
चिराग हुसेन कू तूँ रोशन किया।

अपने आध्यात्मिक गुरु शेख इब्राहीम मखदूम जी की प्रशंसा में उन्होंने इस प्रकार लिखा है—

इब्राहीम मखदूम जी जीवना,
कि मैं सिर्फ वहदत सदा पीवना।
मेरा पीर मखदूम जी जग मने मंगूँ,
निआमताँ में सदा इस कने।
करे मुझ ऊपर प्यार से पीव जग,
कि तुझ प्यार थे होय मन्द हर जग।

पिया ज्यूँ थे तूहन बास है,
तू हम जीव के फूल का बास है।
वही फूल जिस फूल की बास तूँ,
वही जीव जिस जीव की आस तूँ।
सो तूँ रोक है दीन का वारदार,
जो तुझ छातो तल जग है पकड़्या करार।
अछू मुझ अपर छालो तेरा जरम,
कि आधार मेरा सो तेरा करम।

अपने आध्यात्मिक गुरु शेख मखदूम और सैयद जीलानी में कोई अन्तर नहीं मानता है और कहता है—

मुहिउद्दीन मैं देख सर भुइं धरा,
किती ठार भी सीस यूँ ही रख्या।
रु पेश राख हत जोड, पाव पड़्या,
जो मैं ढूढ़ता था सो मुंज अपड़्या।

कवि ने यह भी कहा है कि जब मैंने स्वप्न में हज़रत शेख अब्दुल क़ादिर जीलानी को देखा तो मुझे मालूम हुआ कि आप बिलकुल मखदूम जी के ही समान हैं इसलिए उसने आपको मुहिउद्दीन सानी के नाम से स्मरण किया है। शेख अब्दुल कादिर जीलानी की कृपा फीरोज़ पर हुई और उसका हृदय उनकी ज्योति से जगमगा उठा।

फीरोज़ यह भी कहता है कि हज़रत अब्दुल कादिर जीलानी की मुझ पर ऐसी कृपा थी कि खिज्र भी थोड़ी देर तक उन्हें पहचान नहीं सके। एक दिन खिज्र ने एक पुरुष को एक पेड़ की छाया में खड़ा देखा और उन्हें अन्तर्वाणी के द्वारा समझाया—

मुनाजात पर खिजर सुन्या आवाज़,
कि ऐ खिजर तेरी क़बूली नियाज़।
बड़ा अब्दुल कादिर मुहिउद्दीन वली,
हिडे जुमला माशूक़ इसकी गली।
कि इश्को बसाया सो बाज़ार रास,
सचा अब्दुल क़ादिर खरीदार खास।

वह अपने गुरु को उनके चमत्कारों के कारण श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता प्रत्युत उनकी भक्ति और धार्मिक ज्ञान के कारण ही वह उनका आदर करता है। कवि ने सामान्य जनता को भी उपदेश दिया है कि वे सूफ़ी साधकों से चमत्कार की आशा न करें। कवि ने अपने गुरु को सम्बोधित करते हुए कहा है—

तुजे फिकर दमड़ी न तूँ कुच धरे,
गनी तू दोनों जग तसर्रुफ़ करे।
तू सुलतान जग का व जग में फक़ीर,
कि सब बादशाहाँ कू तू दस्तगीर।
सदा मस्त तूँ बादानोशी न तुज,
बली तूँ करामात फरोशी न तुज।

कविवर फीरोज़ ने अन्य सूफ़ी साधकों की भाँति गुरू के महत्व को व्यक्त करते हुए कहा है कि सन्त की आत्मा पुष्प है और उसकी सुगंधि गुरू है—

जो बिन हुक्म उसके खरचता नहीं,
अगर हुक्म है तो दरचता नहीं।
खुदा सोंचा होना है जो होयगा,
समज तूँ नहीं तो सदा रोयगा।
अक़ीदे के बाताँ कूँ ले कुछ पछान,
यके कलिया सज सेती याद आन।
खुदा बाज दूसरे कूँ जानो नको,
खुदा छोड़ दूसरे को मानो नको,
× × ×
इलाही तेरे फज़्ल का आसरा;
अता कर मुंजे अदल ते दे पना।
× × ×
मुहिउद्दीन सानी सो मखदूम जी,
अरे जीव उस हत परम मद पी।

सूफ़ी सन्त फीरोज़ के काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उसमें उच्च कोटि के काव्य गुण विद्यमान हैं। पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा इसकी शैली भी प्रौढ़ है। इनकी कविता में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का समावेश है। यत्र-तत्र प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों को भी स्थान मिला है।

अशरफ़ :

कवि अशरफ़ कन्धार शरीफ़ के प्रसिद्ध महापुरुष सैयद अली सांगडे सुलतान मुश्किल आसाँ (मृत्यु 1403 ई०) के भांजे और शाह ज़ियाउद्दीन बयाबानी के उत्तराधिकारी थे।[1] इनका पूरा नाम मुहम्मद अशरफ़ था। ये अशरफ़ नाम से कविता लिखा करते थे। अहमद निज़ाम शाह के शासन काल (1461-63 ई०) में ये

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 19

विद्यमान थे और इसी अवधि में इन्होंने 'नौसिर हार' की रचना की।[1] सिफारिश हुसेन रिज़वी ने डा० मुहिउद्दीन का उल्लेख करते हुए विचार व्यक्त किया है—(अशरफ) नाम ज़िउद्दीन बियाबानी होगा। कुछ लोग अशरफ को अहमद नगर का निवासी बताते हैं, किन्तु यह प्रमाणित नहीं है। कुछ इन्हें बीजापुर का निवासी मानते हैं परन्तु इसका भी प्रमाण नहीं है। इनका काव्य नौ भागों में विभाजित है, अत: इसका नाम 'नौसिर हार' पड़ा।[2] महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने कवि अशरफ़ का नाम 'शेख शरफुद्दीन अशरफ' बताया है और कहा है कि अशरफ ने इमाम हुसेन पर पड़ी विपत्तियों के सम्बन्ध में अपना काव्य 'नौसिर हार' 909 हिजरी (1503 ई०) में लिखा।[3] आगे चलकर राहुल जी ने इनकी एक और रचना की सूचना दी है और इसका नाम 'वाहिदबारी' बताया है एवं इस पुस्तक के विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ये कोश-ग्रन्थ है और खालिक़बारी (अमीर खुसरो की रचना) के समान है।[4] काव्य के अध्ययन से कवि का पूरा नाम नहीं मिलता है।

अत: साक्ष्य के आधार पर 'नौसिर हार' का रचना-काल हिजरी सन् 909 है। कवि के शब्दों में—

हिजरत नबी नौ सौ नौ,
कहिया अशरफ़ नौ सिर यों।

कवि ने अपने ग्रन्थ का शीर्षक 'नौ सिरहार' स्वयं रखा था। वह कहता है—

नौ सिरहार इध धरिया नाऊ,
जाये देख तू अब हर ठाऊ।

श्री हाशमी लिखते हैं कि यह मसनवी नौ अध्यायों में विभक्त है।[5] डा० ज़ोर ने लिखा है—यह नौ अध्याय और कई उप शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित है।[6] श्री रिजवी का कथन है—"सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह मजलिस के ढंग की एक लम्बी कविता का पता चलता है जिसका नाम नौ सिरहार है और इसका रचयिता अशरफ है। यह अठारह सौ शेर की लम्बी कविता दस अध्याय में है।[7] इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद में जो प्रति है उसे देखने का अवसर लेखक को

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 280
2. सिफारिश हुसेन रिज़वी—उर्दू मर्सिया, पृ० 49
3. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पृ० 6
4. वही, पृ० 6
5. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 281
6. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 19
7. सिफारिश हुसेन रिज़वी—उर्दू मर्सिया, पृ० 18

मिला है उस प्रति में भी दस अध्याय हैं और अध्याय उपशीर्षकों में विभाजित हैं।[1] यह दक्खिनी भाषा का प्रथम ग्रंथ है जो हज़रत इमाम हुसेन पर लिखा गया है।

ग्रन्थ के प्रथम दो अध्यायों में मूल कथा का आरम्भ नहीं हुआ है। प्रथम अध्याय में कवि ने ईश-स्तुति की है और उसके पश्चात् हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा की है एवं चारों खलीफाओं का उल्लेख मात्र किया है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह भी है कि इसमें तत्कालीन शासक की प्रशंसा नहीं है।

ईश-वन्दना :

अल्ला वाहिद हक़ सुबहान,
जिन पर सिरज्या भवों आसमान।
चन्दर सूरज तारे रुख,
बादल, बिजली, मेंह अचूक।
दोजख, जन्नत अर्श फलक,
लोह क़लम हम हूर मलक।

हज़रत मुहम्मद साहब : नबी मुहम्मद हक़ रसूल,
कीता जिन पे फक्र क़बूल।
दो हतो जग असरूर सेर,
जिन कूँ चारो यार वज़ीर।

चारो खलीफा : बूबकर सिद्दीक एक सिरा,
उमर खिताब हम दूसरा।
ऐ दो बुज़ुर्ग पीर आज़ाद,
उसमान अली दोय दामाद।

हसन हुसेन : दोय नवासे इन मिल जाऊँ,
हसन व हुसेन जिन का नाऊँ।
कि थी इस खुद जोय सरूप,
साहब जमाल अज़ हद खूब।

कवि अशरफ़ ने द्वितीय अध्याय में पुस्तक लिखने का कारण, विषय की जानकारी और पुस्तक का रचना-काल बताया है।

वास्तव में मूल कथा का आरम्भ तृतीय अध्याय से होता है। इसमें कवि ने हज़रत इमाम हुसेन के सम्बन्ध में लिखा है। यद्यपि यह मर्सिया है किन्तु यह अन्य मर्सियों के समान नहीं है प्रत्युत आख्यानक काव्य के रूप में लिखा गया है।

'नौ सिर हार' नामक काव्य की मुख्य कथा कर्बला नामक दुर्घटना पर

---

1. हस्तलिखित प्रति, संख्या 1, इदार-ए-अदबियात-उर्दू, हैदराबाद

आधारित है। ग्रन्थ के आरम्भ में कर्बला की पृष्ठभूमि दी गयी है। इसमें ऐतिहासिक तथ्य के साथ-साथ कल्पना का भी योग है।

कथा-सार

हज़रत मुहम्मद साहब अपने दोनों नवासों (हज़रत हसन और हुसेन) से बहुत प्रेम करते थे। जब ईद का त्योहार आता तब वे दोनों पर अपना प्यार प्रदर्शित करते थे। जिब्राइल ने हज़रत मुहम्मद साहब से सात बार कहा, तुम्हारे नवासे जीवन में बहुत कष्ट उठायेंगे और शत्रु इनकी हत्या कर देंगे।

सदैव की भाँति जिब्राइल हज़रत मुहम्मद साहब के नवासों के लिए ईद के अवसर पर कपड़े लाये। इसमें एक हरे रंग का दूसरा लाल रंग का। हज़रत हसन ने हरे रंग का कपड़ा पहना और हज़रत हुसेन ने लाल रंग का। इसे देखकर हज़रत मुहम्मद साहब दोनों नवासों के भविष्य को समझ गये। जिब्राइल ने भी कहा – हसन को विष दिया जायेगा और हुसेन की हत्या की जायेगी।

एक बार हज़रत मुहम्मद साहब ने बातों ही बातों में मुवाविया को बताया कि तुम्हारा पुत्र मेरे नवासों को मारेगा। इस बात को सुनकर मवाविया चिन्तित हुआ और निश्चय किया कि वह ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करेगा। किन्तु मुवाविया संयम नहीं रख सका और उसकी सेविका से उसे पुत्र हुआ। उसका नाम यजीद रखा गया। मुवाविया के राज्य एवं धन सम्पत्ति पर उसका अधिकार हो गया।

यजीद ने अपने पिता से कहा—अब्दुल्ला जबीर की पत्नी बहुत सुन्दर है और मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। उसका नाम जैनब है। अगर वह मुझे न मिली तो मैं जोग ले लूंगा। पिता ने इस बात को उचित नहीं समझा, किन्तु पुत्र को भी वह खोना नहीं चाहता था।

मुवाविया ने अब्दुल्ला जबीर को बुलाया और कहा - तुम हज़रत मुहम्मद साहब के आत्मीयजन हो, मैं अपनी पुत्री का विवाह तुमसे करना चाहता हूँ। मैं तुम्हें अच्छा दहेज दूंगा। अब्दुल्ला सहमत हो गया फिर दूसरे दिन मुवाविया के पास अब्दुल्ला जबीर गया तो मुवाविया ने कहा, मेरी पुत्री तुमसे विवाह करने को तैयार नहीं है। तुम्हारी पत्नी जैनब बहुत सुन्दर है यदि तुम उसे तलाक़ दे दो तो मेरी पुत्री तुमसे विवाह करेगी।

अब्दुल्ला जबीर घर गया और अपनी पत्नी को तलाक़ देकर मुवाविया के पास आया। मुवाविया कुछ समय बाद घर में से निकला और बोला, मेरी लड़की कहती है कि जब तुमने जैनब सी सुन्दर युवती को तलाक़ दे दिया तो मुझे भी तलाक दे दोगे।

उस नगर में एक बहुत चतुर व्यक्ति मूसी असअरी था। मुवाविया ने उसे बुलवाया और उससे कहा, कि तुम जैनब के पास जाओ और उसे उपहार देकर मेरे पुत्र से विवाह करने के लिए राजी करो। जब मूसी अशअरी जैनब के पास जा रहा था तो मार्ग में अब्बास का पुत्र कासिम मिला। उसने भी मूसी अशअरी से कहा कि

मेरा उपहार जैनब को ले जाओ। उसके बाद मार्ग में ही हुसेन मिले और उन्होंने कहा, मेरा उपहार जैनब के पास पहुँचा दो।

जब मूसी अशअरी जैनब के पास पहुँचा तो स्वयं सुध-बुध खो बैठा। मूसी ने जैनब से कहा—मजीद, कासिम, हुसेन और मुझे अपना प्रेमी मानों और जिसे अच्छा समझो उसी से अपना मन लगाओ। जैनब ने उत्तर दिया—तुम मेरे पिता तुल्य हो। अब बताओ तीनों में से मेरे लिए कौन अच्छा रहेगा? मूसी ने सलाह दी—तुम्हें राज्य चाहिए तो यजीद से विवाह करो, सुन्दर पुरुष चाहिए तो कासिम ठीक रहेगा और यदि परलोक बनाना हो तो अली के पुत्र हुसैन से प्रेम करो। जैनब ने हुसेन को चुना और उससे विवाह कर लिया तथा मूसी ने मुवाविया को सूचित किया। यह समाचार सुनकर वह बहुत दुखित हुआ।

यजीद ने प्रतिज्ञा की कि मैं अली के पुत्र हुसेन का सिर काटूंगा। मुवाविया ने अपने पुत्र यजीद को समझाया और कहा, हज़रत मुहम्मद साहब के नवासे पर हथियार मत उठाना। मवाविया के जीवन काल तक तो कुछ न हुआ, किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् यजीद ने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहा। उसने हुसेन के बड़े भाई हसन को विष देकर मारने का निश्चय किया। यजीद ने एक दासी को बहुत सा धन देकर हसन की पत्नी के पास भेजा। दासी ने हसन की पत्नी से कहा, यदि यजीद की बात मानोगी तो रानी बनोगी। हसन की पत्नी उस दासी कुटनी की बात में आ गयी और सायंकाल रोज़ा खोलने के समय हसन ने पत्नी से पानी माँगा, पत्नी ने पानी में विष मिलाकर दे दिया। हसन ने अपने छोटे भाई हुसेन से कहा, मैं चला, मेरा ताबूत नाना की कब्र के पास ले जाना और मेरे बच्चे तुम्हारे जिम्मे हैं।

हसन की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी ने यजीद के पास सन्देश भेजा। यजीद ने उत्तर दिया जब तू अपने पति की नहीं हुई तो फिर किसकी होगी।

हसन की मृत्यु के पश्चात् यजीद हुसेन के पीछे पड़ा। यजीद का एक मन्त्री मदीना में रहता था। यजीद ने उसे आदेश दिया कि हुसेन से कहो कि वह मुझे खलीफा स्वीकार करे और यदि वह इसे मानने से इनकार करे तो उसका सिर काट कर भेज दो। मन्त्री ने हुसेन से कहा, हुसेन ने अस्वीकार कर दिया। इस पर यजीद के मन्त्री ने कहा, तुम मदीना छोड़कर चले जाओ।

इसी बीच कूफा से हुसेन के पास सन्देश आया कि आप कूफ़ा चले आइये, हम लोग आपकी पूरी सहायता करेंगे। हुसेन ने मुस्लिम बिन अक़ील को भेद लेने के लिए कूफा भेजा, किन्तु धोखे से मुस्लिम बिन अक़ील मारा गया।

कुछ समय पश्चात् हुसेन ने भी कूफ़ा का मार्ग पकड़ा और मार्ग में ही उन्हें मालूम हुआ कि मुस्लिम बिन अक़ील की हत्या कर दी गयी है। इस बात की भी सूचना मिली कि कूफ़ा में यजीद का सरदार उन पर आक्रमण करने के लिए तैयार बैठा है। हुसेन ने फ़ुरात जाने का निश्चय किया, किन्तु मार्ग भूल गये और कर्बला के मैदान में पहुँच गये। यहाँ पर यजीद की सेना ने पड़ाव डाल रखा था। मुहर्रम मास

का चाँद निकला। हुसेन के साथियों ने एक दूसरे का हाथ चूमा। आस-पास कहीं पानी नहीं था। जो लोग पानी लेने के लिए गये, उन्हें शत्रु सेना ने लौटा दिया।

तत्पश्चात् वहीं पर हुसेन के साथियों और यजीद की सेना के बीच घमासान का युद्ध हुआ और हुसेन के साथी एक-एक करके मारे गये। अन्त में हुसेन भी युद्ध क्षेत्र में काम आये।

कवि अशरफ ने कर्बला की दुर्घटना को अरबों के पारस्परिक संघर्ष को नया रूप दिया है अर्थात् इसे यजीद और हुसेन का संघर्ष बना दिया है। इसमें कवि ने कल्पना का खूब सहारा लिया है और जैनब नामक सुन्दरी को संघर्ष का आधार बनाया है जो तथ्य के विरुद्ध है। इस कथा का प्रमुख पात्र हुसेन है, किन्तु मुवाविया, हसन, कासिम और मुस्लिम बिन अक़ील आदि पात्रों का भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है।

कवि ने कल्पना शक्ति से ही इस कहानी में सरसता एवं नाटकीयता का समावेश करा दिया है और कथा प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ती है। इसमें आरम्भ से अन्त तक आकर्षण बनाये रखने का कवि ने सफल प्रयास किया है।

'नौ सिरहार' नामक काव्य में वीर और करुण रस की प्रधानता है किन्तु श्रृंगार रस का भी समावेश है। काव्य में दो स्थानों पर विशेष रूप से वीर रस का परिपाक हुआ है—प्रथम—जब कासिम (हसन का पुत्र) युद्ध के लिए तैयार होकर जाता है और द्वितीय—हुसेन का युद्ध वर्णन।

कासिम का युद्ध क्षेत्र में पदार्पण और युद्ध-कौशल :

हमला कीता जू उन गाज़,
टूट पड़ा ज्यों बहरी बाज।
बैरी बाहें खोल बजाव,
बरसत लागा खांडे घाव।
हर हर हमला हर हर घाव,
लोहू केरी खाल भराव।
बाजा ज्यों आया वक़्त,
बेताब हुब्बा कासिम सख्त।

हज़रत हुसेन का युद्ध करना :

तेगो तर्कस कम्मर बांध,
जैसा पून्यो केरा चांध।
ओ बेग रावत-सा रंग चढ़,
बैरों केरा रुख पकड़।

जब हसन की मृत्यु होती है तब हुसेन बहुत व्यथित होते हैं। उस स्थिति का चित्रण कवि ने बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से किया है। यहाँ पर करुण रस का समावेश हुआ है—

निकल आया हूँ घर थे,
तूट पड्या ज्यूं ऊपर थे।
ये जो देखे उट शिताब,
भाई हुआ है बेताब।
हसन हसन करता धाव,
दोन्हों नैनों नीर बहाय।
ये हुसेन जो देख्या हाल,
हसन हुआ सख्त निढ़ाल।

कविवर अशरफ ने जैनब के नख-सिख वर्णन में नयी-नयो उपमाओं और रूपकों का प्रयोग नहीं किया है भारतीय रूढ़ उपमा और रूपक अपनाया है। यही एक स्थल है जहाँ पर कवि को शृङ्गार रस के उल्लेख का अवसर मिला है। जैनब के नेत्रों, मस्तक, पलकों, नाक और दाँतों का चित्रण इस प्रकार है—

जैनब है उसका नाम,
नयन सलोने जो बादाम।
माथे जानो चाँद उलाट,
पलखाँ जानो कान कमाल।
नाक मुहावे अँखिया तल,
दाँत बत्तीसी तैसी जान,

वासनात्मक शृंगार का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है:—

भौं तन लागा नफ्स तरकां मार,
जानो लाई इक अंगार।
तिलमिल करने लाग्या सख्त,
मिले सगले लोग उस वक़्त।

उक्त काव्यांश में कवि अशरफ ने मुवाविया की वासना की प्रबलता का चित्र खींचा है।

'नौ सिरहार' नामक काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस समय तक दक्खिनी भाषा और शैली बहुत विकसित हो चुकी थी। काव्य की भाषा समृद्ध है। कहीं-कहीं पर मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है। कथा में घरेलू जीवन की झाँकी सर्वत्र दिखायी पड़ती है। कवि की कला का कौशल यह है कि उसने सफलतापूर्वक विभिन्न प्रकार के चरित्रों वाले व्यक्तियों का चरित्र चित्रण किया है। कवि निपुण साहित्यकार है।

कविवर अशरफ़ का देहान्त हिजरी सन् 931 में हुआ। इसकी समाधि फखराबाद, जिला औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में विद्यमान है।[1]

---

1. प्रो० मोहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग, पृ० 237

शाह बुरहानुद्दीन जानम

शाह जानम बीजापुर के प्रसिद्ध सूफ़ी साधक मीराँ जी शम्सुलउश्शाक के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। जानम ने भी अपने पिता के समान सूफ़ी साधकों में उच्च स्थान प्राप्त किया एवं पिता के समान ही ये गम्भीर विद्वान् थे। इनकी जन्म तिथि के संबंध में निश्चित रूप से कहना कठिन है क्योंकि दक्खिनी साहित्य के विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। डॉ० ज़ोर ने जानम की जन्म तिथि हिजरी सन् 950 (1543 ई०) और मृत्यु हिजरी सन् 990 (1583 ई०) के लगभग मानी है।[1] महापंडित राहुल ने भी जन्म हिजरी सन् 950 (1543 ई०) लिखा है।[2] इन्होंने मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। श्री हाशमी के मतानुसार जानम का देहान्त हिजरी सन् 990 (1583 ई०) में हुआ और इनको बीजापुर में मीराँ जी के मकबरे में दफन किया गया है।[3]

शाह बुरहानुद्दीन जानम ने आध्यात्मिक शिक्षा अपने पिता से ली थी। ये अपने पिता के इतने भक्त थे कि इन्होंने अपनी कृति 'इरशाद नामा' के मंगलाचरण में हज़रत मुहम्मद साहब के तुरन्त पश्चात् अपने पिता की ही प्रशंसा की है, यद्यपि सूफ़ी साधकों में यह चलन रही है कि हज़रत मुहम्मद साहब के पश्चात् चारों खलीफाओं का गुण-गान तत्पश्चात् समसामयिक शासक और इसके बाद अपने आध्यात्मिक गुरु की प्रशंसा की जाये।

सूफ़ी सन्त जानम ने अपने गुरु और पिता की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

सिफत करूँ कुछ अपना पीर,
जिससे रोशन होय ज़मीर।
जिन मुंज लीता कर उपदेश,
बाई इस चरन लेउं गबेस।
धौं जग में मुंज बैत वही,
सिंगरूं ले मन नेता वही।
तिसकूँ सुमरे तन मन शाद,
जिसका है मुंज पर शाद।
जग में अहै तूँ ही रतन,
पर्दे में ले करूँ जतन।
राख्या कोंदन कर इस ढांव,
तिल तिल सिमरूँ उस नांव।

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—शाह जानम—इरशाद नामा (भूमिका), पृ० 48
2. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ० 8
3. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 185

'सुख सुहेला' नामक ग्रंथ में उन्होंने अपने पिता के सम्बन्ध में लिखा है :—

सुख का सरवर शाह मीरां जी अन्त करन ले माने।
सहसर जिबवा होये मुख मेरे ना पूरी करत बखाने॥

शाह बुरहानुद्दीन जानम को अपने पिता के प्रति अगाध श्रद्धा थी और वे पिता के देहान्त पर अत्यधिक शोकग्रस्त हो गये थे। इस सम्बन्ध में लिखा है :—

पीर मीराँ जी शम्स उश्शाक,
धऊँ जग रब तुज किया कशाख।
अहै तेरी ये बुनियाद,
चिश्तियाँ केरा है खानवाद।
पीर वही मुज है मुर्शीद,
नित बखानी उन तौहीद।

सूफ़ी सन्त कविवर शाह बुरहानुद्दीन ने कई पुस्तकों की रचना की है। इनकी सभी रचनाएँ शाह मीराँ जी की भाँति तसव्वुफ के सिद्धान्तों पर आधारित हैं किन्तु इनकी रचनाएँ अधिक सरल एवं सरस हैं। इनकी रचनाओं में कवित्व शक्ति भी अधिक है। सूफी साधक बन्दा नवाज़ और मीराँ जी ने जिन सूफ़ी मान्यताओं का हिन्दी में बीजारोपण किया था वही विचार शाह जानम की हिन्दी रचनाओं में पल्लवित हुए हैं। शाह जानम की निम्नलिखित रचनाएँ हैं :—

पद्य—

(1) इरशाद नामा (2) मनफहतुल ईमान, (3) सुख सुहेला, (4) हुज्जतुल बक़ा, (5) नसीमुम क़लाम, (6) रमूज़ुल वासलीन, (7) बशारतुल ज़िक्र, (8) वसीयतुल हावी, (9) नुक़्त-ए-वाहिद, (10) कुफ्र नामा, (11) मुसाफिरत शेख खाँ मियाँ, (12) दोहरों और फुटकल पदों का संकलन।

गद्य—

(1) क़लमतुल हक़ायक़, (2) मकसूद-ए-इब्तदाई, (3) क़लमतुल इस्रार, (4) जिक्र-ए-अली, (5) मारिफ़तुल कुलूब, (6) हश्त मसाइल, (7) रिसाला-ए-तसव्वुफ़।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त श्रीराम शर्मा ने 'पंज-गंज' और 'तन नामा' नामक पुस्तकों की सूचना भी दी है।[1] 'पंज-गंज' नामक ग्रंथ में पाँच प्रकार को जपों अथवा स्मरणों का उल्लेख हुआ है। इसमें न तो अनावश्यक शब्द आने पाये हैं और न ही वे पूर्ववर्ती एवं समकालीन सूफ़ी सन्तों की भाँति अपने मूल विषय से हटते हैं।

'तन नामा' नामक पुस्तिका में सूफ़ी सन्त शाह जानम ने पाँच तत्वों

---

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 149

और पाँच तन मात्राओं का उल्लेख किया है और उन्होंने प्रत्येक तत्व के लिए एक फरिश्ता (देवदूत) भी निर्धारित किया है।

शाह बुरहानुद्दीन जानम के समय में हिन्दी भाषा समाज में पसन्द नहीं की जाती थी। ऐसे लोगों को जो हिन्दी को पसन्द नहीं करते थे उनको उत्तर देते हुए शाह जानम ने कहा है कि बाह्य ढंग पर विचार न कर उसके अन्दर झाँकना चाहिये। इनका मत है कि शब्दों को ही नहीं देखना चाहिये प्रत्युत उसके अर्थ को देखना भी अभीष्ट है। हिन्दी शब्दों को अपनाने में कोई हानि नहीं है। यदि सागर के मोती किसी डबरे में मिले तो बुद्धिमान व्यक्ति उन्हें ग्रहण करते हैं :—

ऐब न राखे हिन्दी बोल, माने तो चख देख खोल।
ज्यूं वे मोती समुन्दर सात, डबरा जे लागे हात।
क्यूं न लेवें उसे भी कोई, सुहान चित्र जो कोई होय।
है समुन्द में मोती यू ज्ञान, रतन के जोती यूं।

शाह बुरहानुद्दीन जानम की रचनाएँ शिक्षात्मक हैं क्योंकि वे भी अपने पिता की भाँति बहुत बड़े विद्वान् तथा सूफ़ी साधक थे। इनके शिष्यों की संख्या बहुत बड़ी थी जिनमें कुछ तो अरबी-फारसी जानते थे और कुछ नहीं जानते थे। अतः इन्होंने अपने शिष्यों को मारिफ़त से परिचित कराने के लिए लिखा है। वास्तव में इन्होंने अपनी पुस्तकों के माध्यम से सरलतापूर्वक धार्मिक आस्थाओं और आचरणों की व्याख्या प्रस्तुत की है। इन पुस्तकों के अध्ययन से पाठक स्वयं अनुभव करने लगता है मानो कोई ज्ञानी उसका पथ प्रदर्शन कर रहा है।

इरशाद नामा : सूफ़ी साधक शाह जानम की पद्यात्मक रचनाओं में 'इरशाद नामा' का विशेष महत्व है। अन्य रचनाओं में तो केवल किसी एक विषय का उल्लेख किया गया है किन्तु 'इरशाद नामा' में साधक की सर्वांगीण साधना का दिग्दर्शन कराया गया है। 'इरशाद नामा' ग्रंथ में कवि ने सर्वप्रथम परमात्मा की स्तुति की है, उसके बाद हज़रत महम्मद साहब का गुणगान किया है और उसके पश्चात् अपने पिता एवं गुरु मीरां जी शम्सुल उश्शाक की प्रशंसा की है :—

ईश-स्तुति—अल्ला सिमरूँ पहले आज,
कीना जिन महधो जग काज।
जगतर करो तूं करतार,
समूंकेरा सिरजन हार।
अस्तुत ओरूँ करने चख,
फ़ुरसत पाऊँ बोलने मुख।

हज़रत मुहम्मद साहब की गुण प्रशंसा—

तू सुमिरत धवूं जग राव,
धवूं जग कीता मुहम्मद चाव।

ये दो आलम तेरे काज,
उम्मत केरा है सरताज ।

कवि ने अपनी रचना का नाम 'इरशाद नामा' घोषित किया है एवं इसकी रचना तिथि हिजरी सन् 990 भी लिखा है । कवि के शब्दों में—

नाम किताब इस आख्या होय,
खातिर लिया इस राख्या होय,
इरशाद नामा इसका नाम,
लोडे फिकर इसे मुदाम ।
यह सब बोल्या है अनजान,
आबिद आज़िज़ है बुरहान ।
हिज़रत नौ सब नव्वद मान,
इरशादनामा लिख्या जान ।

यह रचना प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गयी है जो कि प्राचीन भारतीय शैली है । 'इरशादनामा' में शाह जानम ने सर्वत्र प्रश्नों के उत्तर में ही अपनी बात नहीं कही है बल्कि कहीं कहीं गुरु, शिष्य को बिना प्रश्न के ही सम्बोधित करता है । इसमें शिष्य जिज्ञासु को लेखक की सदैव सहानुभूति प्राप्त होती है ।

शाह जानम के मतानुसार साधक को जब वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब द्वैत भाव पूर्णतया समाप्त हो जाता है । इन्होंने यह भी कहा है कि सच्चे ज्ञान के कारण गुरु-शिष्य में अन्तर नहीं रह जाता है :—

जैसा तूं मैं वैसा हूं,
ना किस अंग मिल कैसा हूं ।
सब में नादूं मैं हूं एक,
ये सब दिनेत मेरे बेक ।
भेद जुदा पुन एक है नूर,
सब में देख्या आप जहूर ।

कवि का विश्वास है कि ईश्वर प्रदत्त ज्ञान बहुत समय तक साथ नहीं देता है । एक स्थिति ऐसी आती है, जब ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का भेद समाप्त हो जाता है । वास्तविक ज्ञान वह होता है जिसके कारण ज्ञाता और ज्ञेय का अन्तर समाप्त होता है :—

जे तुझ हिरदे बैठा ग्यान,
देख्या अपस आप निधान ।
जे आप खोजे पीव कूं पाय,
पीव को खोजे आप गंवायं ।

एक स्थल पर कवि शाह जानम ने भी कबीर की भांति कहा है कि ज्ञान

कागज़ और स्याही से नहीं प्राप्त हो सकता है । इन्होंने नामधारी साधुओं सन्तों एवं फ़क़ीरों की आलोचना की है :—

मसि कागद थे क्यों होवे ग्यान,
पकड़ेगे कुछ ल्या ईमान ।
कोई बेस खिलवत भूक भरे,
कोई देसान्तर लेय फिरे ।

कवि का कथन है कि ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है किन्तु वह दो प्रकार का होता है—एक ज्ञान वह भी है जिसके कारण ही ईश्वर और जीव भिन्न दिखायी देते हैं :—

बिन ग्यान तुज न रूप अभास,
कि उस ग्यान के दर्पन पास ।
एक मुख के मुख होवे दोय,
दो मुख आरस एक ही होय ।

सूफ़ी साधक आत्मा को एक पथिक के रूप में स्वीकारते हैं और यह पथिक साधना की कई मन्ज़िलों (सौपानों) को पार करता हुआ ईश्वर के निकट पहुँचता है । अब प्रश्न उठता है कि ये मन्ज़िलें कहाँ हैं तो साधक उत्तर देता है कि ये मंज़िले अथवा मुकाम अन्द:करण में होते हैं । मुख्यतया सूफ़ी सन्त चार मंज़िल को स्वीकार करते हैं । शाह बुरहानुद्दीन जानम ने भी चार मन्ज़िलों का उल्लेख अपने काव्य में किया है :—

पहली मंजिल नासूत जान,
जैसा बालक या हैवान ।
मलकूत मंज़िल केरा बार,
बन्दगी केरे लाज़िम ठार ।
जबरूत मंज़िल केरा चाव,
तस्लीम केरा देखे भाव ।
लाहूत मंज़िल वाहित हाल,
आप खुदी सब दुनिया वाल ।

सूफ़ी सन्त इन चारों मन्ज़िलों में लाहूत और नासूत को अधिक महत्व देते हैं क्योंकि नासूत (मानवी भाव) और लाहूत (ईश्वरत्व) भाव का सम्मिलित ही साध्य माना जाता है ।

शाह बुरहानुद्दीन जानम की मान्यता है कि शरीअत (इस्लामी धर्म शास्त्र) द्वारा प्रतिपादित विहित कर्मों के सम्पादन एवं निषिद्ध कर्मों के परित्याग से नासूत (मानवी भाव) को प्राप्त किया जा सकता है । विहित के परित्याग और निषिद्ध के आचरण से शैतानी मुक़ाम पर जाना होता है । द्वितीय मुक़ाम मलकूत (देवलोक) तक

पहुँचने के लिए तरीक़त (कार्य प्रणाली) का आलम्बन लेना होता है। तृतीय मुकाम जबरूत (तप लोक) है। इसकी प्राप्ति मारिफत (ब्रह्म ज्ञान) से होती है एवं चतुर्थ मुकाम लाहूत (ईश्वरत्व) है। इसकी प्राप्ति हक़ीक़त (वास्तविकता ज्ञान अथवा सत्य ज्ञान) से होती है।

साधक चारों मंजिलों की यात्रा उपासना के द्वारा करता है। सूफ़ियों के उपासना के मुख्य अंग इस प्रकार हैं-- फ़िक्र (चिन्तन) और ज़िक्र (जप)।

ज़िक्र (जप) के पाँच प्रकार माने जाते हैं और जानम के इन्हीं को स्वीकार किया है जो इस प्रकार हैं—(1) जली, (2) क़ल्वी, (3) रुही, (4) सिर्री और (5) खफ़ी। 'पंजगंज' नामक पुस्तिका में कवि ने इन्हीं पाँच ध्यानों का उल्लेख सुंदर ढंग से किया है।

'इरशाद नामा' में कविवर जानम ने यह भी स्पष्ट किया है कि आत्मा वस्तुत: ईश्वर का प्रतिबिम्ब है :—

जूं यक दरपन केरे ठार,
मुख अभासे अपना बार।
यूं रूह छाया तेरी पकड़,
जात क़दीमी केरे भर।

सुख सुहेला : इस पुस्तिका में कुल 28 चौपदी अथवा 56 शेर हैं। इसमें एकेश्वरवाद पर विशेष बल दिया गया है। कवि ने गुरु के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है :—

बहुत घात योगी करे विचार,
गुरु बिन न पाये सोई।
साधु जन की सेवा लहिये,
तोष प्रापत होई।
गुरू प्रसाद हो सोई यक जानी
देखत बिरला कोई।
लो गाये मन कुच इलाही,
जिन बूज बखतां लाबी।

शाह बुरहानुद्दीन जानम ने धार्मिक बाह्याडम्बरों की आलोचना करते हुए शिष्यों को अपने मार्ग पर स्थिर रहने की शिक्षा दी है एवं समाज के नामधारी योगियों तथा साधुओं पर भी व्यंग्य किया। उन्होंने आकाश-गमन, जल विहार इत्यादि बाह्य उपकरणों को साधु के लिए निरर्थक बताया है :—

अकास पंत का उडान उडे तो बहु पंखी जान
पानी पर के पतंग चले तो मंछी केरी घात
उस कारन पूरिद सिद बाज़ी मुश्किल है यूबान।

कवि ईश्वर को पोथी अथवा पुराणों की वस्तु नहीं मानता है बल्कि उसका मत है कि यह गुरू द्वारा ज्ञान से प्राप्त होने वाली तथा स्वयं को मिटाकर प्राप्त की जाने वाली वस्तु है। शाह आलम के शब्दों में :—

पड़ पड़ पंडित जनम गँवाये मूरख रहे सुन रोज
पुरान पुस्तक देक ढढोल बसे निराला नोज
आप खुदी किस पूच न लेवे गुरू मुक केरे बीज
लोगाये मन कुच इलादी जिन बूज बख्ती लादी।

'सुख सुहेला' ग्रन्थ की एक विशेषता यह भी है कि इसमें अरबी व फारसी के शब्दों की कमी है। यह रचना काव्य-कौशल एवं भाषा की दृष्टि से सरल एवं सरस है। सुख सुहेला की भाषा सीधी सादी है। कवि ने अपने मन्तव्य को व्यक्त करने के लिए सरल शब्दों का प्रयोग किया है :—

पंत अकास का वियंगा जाने जल का मारग मीन।
साध का अन्त साधु जाने दूजे कूँ नई चीन
ऐसा साधू भाग लहे तो चरनो रहना-लीन।

शाह बुरहानुद्दीन जानम के परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय बताते हुए कहा है :—

याद विसर का फांदा भला न होवे दूई छोड़ निराल
उन दो थे जे देख अगोचर सो है नूर का हाल
उस नूर में मुहीत आप जनावे सहजे सहज विसाल।

नुक़्त-ए-वाहिद—दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा० जोर ने संकलन में 'नुक़्त-ए-वाहिद' और रमूजुल वासलीन रचनाओं का वर्णन है। इन दोनों पुस्तिकाओं में एकेश्वरवाद की महिमा है। इनमें सैद्धान्तिक बातों के अतिरिक्त साधक की उस स्थिति का वर्णन भी है जो वह अपने आराध्य के विरह में व्याकुल रहता है। विरह की स्थिति इस प्रकार प्रकट की गई है :—

निस दिन आगे विरह मारी, न नीद अदेखे नयन पड़े।
पलावे मेरी आग वले क्यों, सपने देखूँ सोव खड़े॥

शाह बुरहानुद्दीन जानम ने साधक की आत्मा को स्त्री के रूप में और ईश्वर को प्रियतम के रूप में प्रस्तुत किया है :—

रूप कहूँ तिस पीव का, ना कोई खातिर ल्यावे।
बिन रूप जो आवे जान सी, ना कोई देखन पावे॥
आज की रैन सुहाग की, सखी शहों मनाये न काहे।
ऐसी रैन सुलक्खनी, फिर बहुरि न आवे॥

उक्त दोहों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि कबीरदास के दोहे उस समय बहुत प्रचलित थे क्योंकि इन दोहों में कबीर के विचारों की छाप है।

दक्खिनी साहित्य के अधिकांश कवियों ने काव्य शास्त्र अथवा छन्द शास्त्र की कोई चिन्ता नहीं की है और यत्र-तत्र नियमों का उलंघन भी किया है। शाह जानम ने भी दोहों की मात्राओं का प्रयोग नियमित रूप से नहीं किया है। इन्होंने कुछ स्थानों पर गुरू को लघु और लघु को गुरू बना दिया है। इतना ही नहीं प्रत्युत इनके दोहों में यति की भी अनियमितता पायी जाती है :—

जग लग तन नहीं छोड़िया जीव कूँ तब लग होना दूर।
जब लग नज़र नहीं छोड़ी आँख कूँ तब लगा होना नूर।।
यू सब तन में मन बरतन देख छोड़े ये सुख दुःख।
दुख सुख दोनों यक करसी तो पावे सहज का सुख।।

नसीमुल कलाम : इस पुस्तिका में केवल 45 शेर संग्रहीत हैं। इसमें कुरआन व हदीस पर टीका की गई है और शरीअत पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है :—

अलह पाक मनजह ज़ात उस कूँ सिफतां कायम सात
इल्म, इरादत, कुदरत वार सुनता दखता बोलनहार
हती सिफ़त ये जान ह्यात उसकूँ नाही कद ममात
ऐसियाँ सिफ्तां सूँ है जान जूँ कि चंद ना चाँद संगात।

हुज्जतुल बक़ा : इसमें 805 शेर हैं। सूफ़ी साधक जानम ने इस पुस्तक में एकेश्वरवादी विचारों, ईश्वर की अनन्तता और बुजुर्गी पर प्रकाश डाला है। इसमें वली और उसके शिष्यों का वार्तालाप है। यह भी हो सकता है कि शाह जानम स्वयं गुरू थे। अतः उन्होंने स्वानुभूति को प्रस्तुत किया हो।

बशारतुल ज़िक्र : यह केवल एक पृष्ठ की छोटी सी पुस्तिका है। इसमें परमात्मा के महत्व को बताते हुए सूफ़ी साधक शाह जानम ने तसव्वुफ के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

मनफ़अतुल ईमान : इसमें कवि ने ईश्वर और हज़रत मुहम्मद साहब के महत्व को प्रतिपादित किया है। इसमें नास्तिकों के तर्कों पर प्रकाश डालते हुए शिष्यों को उससे दूर रहने का उपदेश दिया गया है। इश्क और अध्यातम ज्ञान के सम्बन्ध में भी विचार संकलित हैं। सूफ़ी साधक शाह बुरहानुद्दीन जानम की यह रचना काव्य-कौशल की दृष्टि से उच्चकोटि की है :—

कोई कहे सब इश्क बयान इश्क के आगे क्या है फ़ाम
इश्क लिया है सब पुर बास इश्क थे सगला भोग विलास
बाज़ आँखें अपनी बूझ मालूम नहीं कुछ उसकी सूझ
एक जमा सब पकड़िया ज्यू के बीज थे निल्या झाड़
कांटा छांटा फूल और फूल शाख बरग सब देख उसूल
एक जमा कर राखें बार बीज पने का नाहीं भार
एके बीचे बीज़ अपार बीज नये सो सगला झाड

कोई कदे थे देख मुक़ीम यू सब आलम अहे क़दीम
न इस खालिक़ मखलूक़ कोई जैसा तैसा समझा होई ।

शाह जानम ने तसव्वुफ के समस्त सिद्धान्तों के कितनी सुगमता एवं विद्वता से समझाया है । इसमें उन्होंने बुद्धि से प्रेम को श्रेष्ठ सिद्ध किया है, प्रेम समस्त विश्व में व्याप्त है, प्रेम ही भोग विलास का कारण है, कोई इससे पार नहीं पा सकता । वास्तव में जिस प्रकार से एक बीज अनेक बीजों का निर्माण करता है अथवा एक बीज अपने अनेक बीजों को छिपाये रहता है, वृक्ष के पत्तों, टहनियों, शाखाओं, फल-फूल को अपने आप में समाये रहता है और जब खुलता है तब वह प्रकट हो उठते हैं । इसी प्रकार एक शक्ति समस्त विश्व में व्याप्त है ।

वसीयतुल हादी : इसका विषय है परमात्मा का भुगतान । इसका आरम्भ विषय प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है । कवि ईश-वन्दना करता है :—

सकता क़ादर कुदरत सूं समझे तुझ कूं कोई क्या ।
जिसकूं लोड़े दवे राह कहिया यह दी मन पशा ।।
ये रूप प्रगट आप छिपाया कोई न पाया अन्त ।
माया मोह में सब जग बान्ध्या क्यूं कर सूझे पंत ।।

इस पुस्तक की भाषा 'इरशाद नामा' की भाषा से मेल खाती है ।

दोहरों और गज़लों का संकलन – कविवर शाह बुरहानुद्दीन जानम ने कुछ फुटकल दोहों और ग़ज़लों की भी रचना की है । जिनके अध्ययन से विदित होता है कि वे केवल सूफ़ी सन्त ही नहीं थे प्रत्युत एक सफल कवि भी थे । सूफ़ी साधना पद्धति पर प्रकाश डालते हुए, उन्होंने इश्क को बुद्धि के लिए आवश्यक घोषित किया है तथा बुद्धि को इश्क के मार्ग में सहायक सिद्ध किया है । उन्होंने फ़ना पर बल दते हुए कहा है कि प्रियतम में विलीन होकर बक़ा पाने के लिए फ़ना होना ही चाहिए । साधक यदि स्वयं को खोता है तो प्रियतम को प्राप्त करता है :—

जिन इश्क बुध को सूझ नहीं,
और बिना बुध के इश्क को गूज नहीं ।
जो आप को खोजे पीय को पावे,
पीव को खोजे आप गँवाये ।

सूफ़ी साधक शाह बुरहानुद्दीन जानम की कुछ कविताओं के शीर्षक इस प्रकार हैं :—

1. हक़ीकत रास
2. दर मुक़ाम कोरी
3. दर मुक़ाम असावरी
4. दर मुक़ाम शोक
5. दर मुक़ाम रामकली

6. दर मुक़ाम माकड़ा
7. हक़ीक़त
8. दर मुक़ाम धनासरी
9. दर मुक़ाम बलावल आदि ।

गौण कवि और काव्य

गोरखनाथ

गोरखनाथ 'नाथ सम्प्रदाय' के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनके आविर्भाव के संबंध में अनेक मत हैं। इसका कारण यह है कि गोरखनाथ का व्यक्तित्व इतना व्यापक एवं प्रभावशाली रहा है कि देश के कोने-कोने से उनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। इतना ही नहीं अपितु स्थान-स्थान पर उनके मठ, मन्दिर एवं समाधि आदि विखरे हुए हैं। प्रिगज महोदय के मतानुसार वे पंजाबी थे। ग्रियर्सन का कथन है कि ये काठियावाड के थे और मोहनसिंह का विचार है कि इनका सम्बन्ध पेशावर से था। कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार गोरखनाथ का जन्म महाराष्ट्र के चन्द्रगिरी नामक ग्राम में हुआ था।[1] एक जनश्रुति है कि गोरखनाथ मत्स्येन्द्र नाथ के प्रतिद्वन्द्वी और गोरखा (नैपाल राज्य) राज्य के संरक्षक सन्त थे। तिब्बती जनश्रुति के अनुसार गोरखनाथ एक बौद्ध बाजीगर थे और उनके कनफटे शिष्य भी बौद्ध थे। बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सेन वंश के नाश होने पर इन्होंने शैवमत को स्वीकार कर लिया।[2] एक अन्य जनश्रुति के अनुसार गोरखनाथ सर्वशक्तिशाली है। इनका मुख्य स्थान वर्तमान गोरखपुर है। ये कुछ दिनों तक नैपाल में भी रहे और शैवमत का प्रचार करते रहे। इनकी हिन्दी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि ये महाराष्ट्र के ही निवासी थे। यह भी सम्भव है कि ये हिमालय के रहने वाले रहे हों, जहाँ बौद्ध धर्म के साथ-साथ शिव पूजा भी प्रचलित है। गोरखनाथ के संस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रन्थों के अतिरिक्त मराठी के ग्रन्थ भी मिलते हैं। इन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में इनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। 'महार्णव' तन्त्र के अनुसार—गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, नागार्जुन, सहस्मार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड भारत, आदिनाथ और सत्येन्द्रनाथ। ज्ञानेश्वरी के रचयिता ज्ञानेश्वर ने अपने गुरू परम्परा का उल्लेख करते हुए गोरखनाथ का भी उल्लेख किया है :—

> श्री मत्स्येन्द्र नाथ—श्री गोरक्षनाथ (गोरखनाथ)—श्री गौण नाथ
> श्री निवृत्ति नाथ—श्री ज्ञानेश्वर (ज्ञानदेव)[3]

---

1. श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 45
2. इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एन्ड इथिक्स, पृ० 328, भाग 6
3. श्री ज्ञानेश्वरी, पृ० 513

गोरखनाथ के समकालीन त्र्यम्बक पंत थे जो ज्ञानेश्वर के प्रपितामह थे। गौणनाथ के समकालीन गोविन्द पंत थे और बिट्ठल पंत के पुत्र निवृति नाथ और ज्ञानेवर थे। निवृति नाथ का जन्म सम्वत् 1320 और ज्ञानेश्वर का जन्म सम्वत् 1322 माना जाता है।[1] श्री त्र्यम्बक पंत का समय सम्वत् 1250 कहा जाता है जो गोरखनाथ के समकालीन हैं। अतः यही समय गोरखनाथ का भी मानना उचित होगा।

डा० शहीदुल्लाह ने गोरखनाथ का आविर्भाव सम्वत् 722 में माना है। महा-पंडित राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय सम्वत् 902 निर्धारित किया है। डा० मोहन सिंह के मतानुसार इनका समय नवीं और दसवीं शताब्दी है। डा० बडथ्थवाल ने गोरखनाथ का आविर्भाव सम्वत् 1050 निश्चित किया है एवं डा० फर्कहार ने गोरखनाथ का समय सम्वत् 1257 माना है, यद्यपि अनेक विद्वानों ने गोरखनाथ के समय के सम्बन्ध में अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं किन्तु श्री ज्ञानेश्वर ने सम्बत् 1250 निश्चित किया है[2] जो अधिक युक्ति संगत है।

गोरखनाथ के आविर्भाव के सम्बन्ध में जिस प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं उसी प्रकार उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने गोरखनाथ की रचनाओं के सम्बन्ध में लिखा है— 'देश-भाषा' में लिखी गोरखनाथ की पुस्तकें गद्य और पद्य दोनों में है और विक्रम सम्वत् 1400 के आस-पास की रचनाएँ हैं। इनमें साम्प्रदायिक शिक्षा है। जो पुस्तकें पायी गयी हैं उनके नाम ये हैं—गोरख-गणेश-गोष्ठी, महादेव-गोरख-सम्वाद, गोरखनाथ जी की सत्रह कला, गोरख बोध, दत्त गोरख-सम्वाद, योगेश्वर साखी, नरवइ बोध, विराट पुराण, गोरख-सार, गोरखनाथ की बानी। ये सब ग्रंथ उनके नहीं, उनके अनुयायी शिष्यों के रचे हैं।[3] मिश्र बन्धुओं ने गोरखनाथ के दस ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है :—

(1) गोरख बोध, (2) दत्त गोरख-सम्वाद, (3) गोरख जी के पद, (4) गोरख जी के स्फुट पद, (5) ज्ञान सिद्धान्त योग, (6) ज्ञान तिलक, (7) योगेश्वरी साखी, (8) नरवै बोध, (9) विराट पुराण और (10) गोरख-सार।[4]

यह कह सकना बहुत कठिन है कि गोरखनाथ की स्वयं रचित रचनाएँ कितनी हैं और कितनी रचनाएँ ऐसी हैं जो उनके शिष्यों द्वारा रची गयी हैं और गोरखनाथ के नाम के साथ जुड़ गयी हैं।

---

1. श्री ज्ञानेवर चरित्र (गीता प्रेस, गोरखपुर), 1990
2. श्री ज्ञानेश्वरी, पृ० 543
3. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 18
4. मिश्र बन्धु विनोद (भाग—1), पृ० 241

गोरखनाथ की जो रचनाएँ प्राप्त हैं उनकी भाषा का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उनकी भाषा में कई भारतीय भाषाओं के साथ-साथ विदेशी भाषाओं का भी मिश्रण है। गोरखनाथ की कविता में विशेष रूप से मराठी का प्रभाव देखा जा सकता है :—

धान दे गोरीए गोरख बाला माई विन प्याले प्याला।
गिगान ची जाल्हीला पालंखू गोरख बाला पौढिला ।। (टेक)
देव लोक ची देव कन्या मृत लोक ची नारी।
पाताल लोक ची नाग कन्या गोरख बाला भारी ।।
माया मारिली मावसी तजीली तजीली कुटम्ब बंधू।
सहसर कँवल तहाँ गोरख बाला जहा मन-मन सासुर सन्धू ।।
आया तजीला तूसनां तजीला, तजीला मनसा माई।
नौ खण्ड पृथ्वी फैरि नै आलो, गोरख रहीला मछीन्द्र ठांई ।।[1]

गोरखनाथ को इस्लामी धर्म ग्रंथ कुरआन का भी ज्ञान था और उन्होंने अरबी शब्दों का समावेश अपनी हिन्दी कविता में स्वच्छन्दता से किया है :—

वेद न सास्त्रे कतेबे न कुराणे पुस्तके न बंध्या जाई।
ते पद जानां बिरला जोगी और दुनी सब धंध लाई ।।[2]

हज़रत मुहम्मद साहब का उल्लेख करते हुए भी अरबी शब्दों का प्रयोग किया है जो इस प्रकार है :—

ओम लोहा पीर। तावां तद्बीर
रूपा मंहमद। सोना खुदाई
दुहूँ बिचि दुनिया गोता खाई
हम तो निरालम्भ बैठे देखने रहे
ऐसा एक सुखन बाबा रतन हाजी कहै।[3]

इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं—प्रथम—गोरखनाथ की जो वाणी उपलब्ध है उसमें मराठी और अरबी-फारसी के शब्दों का पर्याप्त समावेश हुआ है। द्वितीय—गोरख वाणी के रचयिता को इस्लाम धर्म की मान्यताओं का कुछ ज्ञान अवश्य रहा होगा।

गोरखनाथ ने अपने मत एवं सिद्धान्तों को जन भाषा के आश्रय से जन साधारण तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया था। इन्होंने गुरू की महिमा को स्वीकार किया है :—

---

1. गोरख बानी, पृ० 140
2. वही, पृ० 25
3. वही, पृ० 41

गुरु कीजे गहिला निगुण न रहिला,
गुरु बिन ग्यान न पायला रे भाइला।
दूधे धोया कोइला उजाला न होइला,
कागा कंठे पहुप माल हँसला न मैला।[1]

वैराग्य के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है :—

आसति छै हो पिडता नासति नांही,
अनमै होय परतीति निरन्तरि माही।
ग्यान खोजि अभे विग्यांग पाया,
सति सति भावन्त सिध सठि नाथ राया।[2]

इन्द्रिय निग्रह —

भोगिया सूते अजहू न जागे,
भोग नहीं रे रोग अभागे।
भोगिया कहै भल भोग हमारा,
मनसइ नारि किया तन छारा।[3]

गोरखनाथ ने कुंडलिनी जागरण, षटचक्र-भेद, अजपा जाप और अनहद नाद के सम्बन्ध में कहा है :—

छसै सहंस इकीसो जाप,
अनहद उपजे आपहि आप।
बंका जालि मैं अगै सूर,
मोरे मन उडियानी आई।[4]

सहज के सम्बन्ध में गोरखनाथ का कथन है :—

सहज गोरखनाथ वाणिज कराई,
पंच बलद नौ गाई।
सहज सुभावै बावर लाई,
मोरे मन उडियानी आई।[5]

शून्य के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए गोरखनाथ जी ने कहा है :—

सुरहट घाट अम्हे बणिजारा,
सुनि हमारा पसारा।

---

1. गोरख बानी, पृ० 128
2. वही, पृ० 67
3. वही, पृ० 138
4. वही, पृ० 124
5. वही, पृ० 104

लेख न जाणौ देख न जाणौ,
एद्वा बणज हमारा।[1]

नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्रसिद्ध सन्त गोरखनाथ जी ने शिव शक्ति के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है :—

यहु मन सकती यहु मन सीव,
यहु मन पांच तत का जीव।
यहु मन ले जै उनमन रहै,
तो तीन लोक की वार्ता कहै।[2]

तत्कालीन समाज में उथल-पुथल मचा देने वाले प्रसिद्ध सन्त गोरखनाथ ने इसके अतिरिक्त प्राण-साधना, मन-साधना, रसायन सिद्धि और नाडी-साधना आदि का भी उल्लेख जनभाषा में किया है।

दामोदर पंडित

महानुभाव सम्प्रदाय के सन्त कवियों में दामोदर पंडित का मूर्धन्य स्थान है। इनका जन्म-स्थान, जन्म-तिथि एवं दीक्षा पूर्व जीवन-वृत अभी तक अज्ञात है। कहा जाता है कि महानुभाव पन्थ में दीक्षित होने से पहले ये नाथ पंथी थे और शक 1209 में नागदेवाचार्य 'रिद्धपुर' से लौटकर गोदावरी तट स्थित 'निवा' नामक स्थान पर रहने लगे थे। यह भी कहा जाता है कि शक 1194 में इन्होंने सबलोक महानुभाव मार्ग में दीक्षा ली। इनकी पत्नी हिरांबा अत्यन्त सुशीला और पंडिता थी। उसमें उत्कृष्ट गुरु भक्ति थी। एक बार की घटना है कि उसने अपने गुरू नागदेवाचार्य को घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया और उस समय उसकी पुत्री असन्नमरणा थी तो भी वह उनकी सेवा शुश्रुषा में लगी रही। आचार्य को भोजन खिलाने के पश्चात् देखा कि पुत्री का प्राणान्त हो चुका था। इस घटना से उसका जीवन क्रम ही बदल गया और वह विरक्त हो गयी तथा गुरू के सानिध्य में रहने लगी। दामोदर पंडित ने सन्यास नहीं लिया। वे अपने पुत्र के पालन-पोषण में लगे रहे। किम्वदन्ती है कि एक दिन हिरावां ने पति को यह संदेश भेजा कि जिस चूल्हे की खीर तुमने खाई है क्या उसी की राख खाने ठहरे हुए हो ? पत्नी का यह व्यंग्य पति के हृदय में चुभ गया और दामोदर पंडित भी सन्यासी हो गये तथा ये भी पत्नी के समान ही गुरू आश्रय में रहने लगे।

सन्यस्त कवि संस्कृत के आचार्य तो थे ही, मराठी पर भी पूर्व अधिकार रखते थे और हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान था जो कि उनकी कविता से स्पष्ट होता है।

---

1. गोरख बानी, पृ० 104
2. वही, पृ० 18

साहित्य दर्शन के साथ ही साथ उन्हें संगीत के प्रति भी अत्यधिक लगाव था। महानुभाव सम्प्रदाय में सन्यासियों के लिए गायन का निषेध था। इससे इन्हें अत्यधिक कष्ट था और बहुत मानसिक बोझ अनुभव करते थे। एक दिन उनके संयम का बांध टूट ही गया। वे आत्मविभोर होकर गाने लगे। गुरू के कानों में संगीत की ध्वनि पड़ी और वे चुपके से आकर दामोदर पंडित के पीछे खड़े हो गये। दामोदर पंडित वेदना भरे स्वर में गा रहे थे जिसका भावार्थ था—'हे मेरे गोविन्द राजा, जिस प्रकार शिशु अपनी माता के लिए रोता है, उसी प्रकार मैं भी तेरे लिए रोता हूँ। गीत गाकर मैं तुझे अपनी ओर खींचना चाहता हूँ। क्या यह मेरा अपराध है?' आचार्य इस भाव-भीने गीत को सुनकर विचलित हो गये। वे दामोदर पंडित के सामने आ गये और बोले—"तुम पर अब गायन निषेध की आज्ञा नहीं रही। चक्रधर स्वामी ने जो 'गीतुविरवो' कहा है, वह विलासी गीतों के लिए लागू होता है, तुम्हारे लिए नहीं।"

दामोदर पंडित की भागवत के दशम् स्कन्ध की कथा पर आधारित 'बछाहरण' नामक रचना प्रसिद्ध है और इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में रचित साठ चौपाइयाँ प्रसिद्ध हैं। दामोदर पंडित ने अपनी चौपदियों में नाथ पंथियों पर व्यंग्योक्तियों का प्रहार किया है। महाराष्ट्र में महानुभावों ने ही सर्वप्रथम नाथ पंथियों पर प्रहार करना आरम्भ किया था।

दामोदर पंडित की एक चौपदी में नाथ पंथियों और वैरागियों तथा भोगियों की व्याख्या इस प्रकार है—

नव नाथ कहे सो नाथ पंथी,
जगत कहे सो जोगी।
विरद बुझे तो कहि बैरागी,
ज्ञान बुझे सो भोगी।

इन्होंने गर्व करने वाले अवधूतों (गुरुओं) को फटकार सुनाई है:—

सुन हो तुम्ह सिद्धान्त गुरूआ,
सारा ज्ञान पंथ हमारा।
शुन्य निरसुन्य काहा के कहिजे,
ये शिव शकती समाजु गती,
कवण युक्ति तुम पाया,
ब्रह्मा विष्णु महेश चन्द्र रवि,
भ्रमण करत समाया।

सन्त कवि दामोदर पंडित ने चेतावनी देते हुए कहा है:—

हटो हटो रे दम्भ करण,
माथे निव्रित नावें।

जता जता दम्भ करेगा,
तंता बन्धन पावे।
चिथड़ा फाटा तुटा पहेरो,
उपरि चोर न आवे।
येहि रहनि जे चालती,
ते जंगल मध्ये सोवे।

दामोदर पंडित की हिन्दी कविताओं में मुसलमानों के संसर्ग से दक्षित भारत में हिन्दी भाषा का रूप किस प्रकार सहज रीति से विकसित हो रहा था, इसकी झलक हमें देखने को मिलती है। इन्होंने जो कविताएँ लिखी हैं उनमें विभिन्न प्रकार की राग-रागिनियों का समावेश भी है। इनकी एक कविता के कुछ अंश प्रस्तुत हैं जो राग भैरवी में है :—

नव नाथ कहे सो नाथ पंथी, जुगुत कहे सो जोगी।
विश्व बुझे सो कहि बैरागी, ग्यान बुझे सो योगी॥
सुन हो तुम्ह सिद्धांत गरूआ, सारा ग्यान पंथु हमारा।
शुन्य निरसुम्य कहाँ के कहि जे ब्रह्मादिक नेनेति पारा॥
ये शिव शकती समा जुगती, कवन युक्ति तुम पाया।
ब्रह्मा विष्णु महेश चन्द्र रवि, भ्रमण करत समाया॥
× × ×
अलेख कहि जे अपरांपरू, जीव कहि जे अविनाश।
उत्पत्ति प्रलय नागदेव कहे, श्री राऊल के दास॥

एक प्रसिद्ध कविता 'राग-रामग्रि' में है :—

गयनि उतपत्ति गयनी लोरे, आपु तो गयनी समु।
आभासु का भाशु तैसा बुझो, सब माया का मरमु॥
तैसा रे ये भव विचार रजकेरा भुजंगु।
गुरु पसाये बुझति जोइ, न बुझे पैहो जगु॥
× × ×
सार असार निर्वालित प्रभु आदिनाथ की वाणी।
नागदेव म्हाणे हमें रंग लो, चक्र स्वामी चा चरणों॥

सन्त दामोदर पंडित की कविता के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनकी कविता में अरबी-फारसी के शब्दों का अभाव है। यद्यपि दामोदर पंडित मराठी भाषी थे और उन्हें मराठी भाषा पर पूर्ण अधिकार भी था फिर भी इनकी हिन्दी कविताओं में अन्य महाराष्ट्रीय कवियों की अपेक्षा मराठी शब्द बहुत कम हैं। इन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है जिससे इनकी भाषा में प्रवाह एवं लालित्य आ गया है।

नामदेव

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार नामदेव का जन्म शक सम्वत् 1192 और मृत्यु शक सम्वत् 1272 में हुई।[1] डा० भगीरथ मिश्र और राजनारायण मौर्य ने नामदेव का जन्म काल 1270 ई०[2] और विनायक लक्ष्मण भावे ने नामदेव की मृत्यु शक 1272 स्वीकार की है।[3] आचार्य विनय मोहन शर्मा का मत है—"उन्होंने 80 वर्ष की आयु में 1350 ई० में पंडरपुर के विट्ठल मन्दिर के द्वार पर समाधि ले ली।"[4] नामदेव के शिष्य 'परिखा भागवत' की प्रशंसा में एक अभंग लिखा है :—

आषाढ़ शुक्ल एकादशी
नामा विनवी बिट्ठला सी।
आज्ञा वहावी हो मजसी,
समाधि विश्रांति लागी।

डा० राधा कृष्णन ने नामदेव के सम्बन्ध में लिखा है—'बल्लभाचार्य पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सम्बन्धित है। वे विष्णु स्वामी के अनुयायी थे जो कि विशुद्धाद्वैत के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि विष्णु स्वामी ने ब्रह्मसूत्र पर 'सर्वज्ञ सूक्त' नामक व्याख्या लिखी थी। यह बात प्रसिद्ध है कि विष्णु स्वामी के उत्तराधिकारी ज्ञानदेव, मानदेव, त्रिलोचन एवं बल्लभ हुए। विष्णु स्वामी सम्भवतः तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक जीवित रहे।'[5]

नामदेव के माता-पिता निम्न जाति से सम्बन्धित थे। पिता का नाम दामा शेट और माता का नाम जोना बाई था। ये जाति के दर्जी थे। इनका जन्म महाराष्ट्र प्रदेश के ज़िला सतारा के नरसी नामक गाँव में हुआ था। इनका महाराष्ट्र के भक्तों में महत्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है कि ये सगुणोपासक थे किन्तु ज्ञानदेव के सम्पर्क में आने से निर्गुण भक्ति को अपना लिया था। इनके चार सन्तानें थीं जिनमें तीन पुत्र—नारा, महादा और बिठा थे। पुत्री का नाम गोंदा बताया जाता है।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 66
2. डा० भगीरथ मिश्र और डा० राजनारायण मौर्य—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पृ० 1
3. विनायक लक्ष्मण भावे—महाराष्ट्र सारस्वत, पृ० 140
4. आचार्य विनय मोहन शर्मा – हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ० 100
5. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 52

सन्त नामदेव की गुरू परम्परा इस प्रकार बतायी जाती है :—
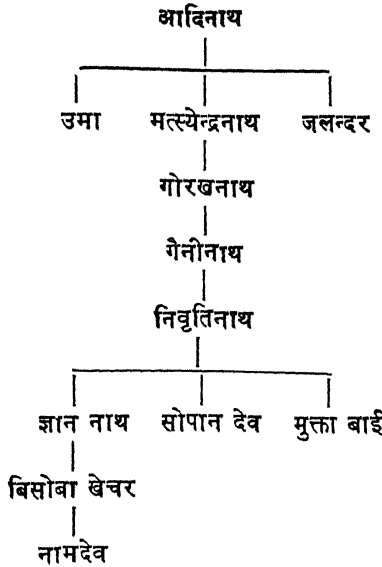
नामदेव मूल रूप से मराठी में रचना करते थे। इनके मराठी भाषा के अभंग प्रसिद्ध है। मराठी के अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी में भी कविताएँ लिखी हैं जिनमें सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। सगुण भक्ति के लिए इन्होंने किसी भी गुरू से दीक्षा नहीं ली थी बल्कि हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा से सगुण भक्त बने थे। जब ये निर्गुण भक्ति में आये तो इन्हें ज्ञानदेव ने किसी गुरू से दीक्षित होने की सलाह दी और कहा—बिना किसी गुरू के वास्तविक ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। अन्त में इन्होंने विसोवा खेचर अथवा खेचर नाथ नामक नाथ पंथी सन्त से दीक्षा ली। नामदेव ने अपने गुरू के सम्बन्ध में कहा है :—

मन मेरी सुई, तन मेरा धागा।
खेचर जी के चरण पर, नामा सिपी लागा।

सुफल जन्म मोको गुरु कीना, दुख बिसार सुख अन्तर दीना।
ज्ञान दान मोको गुरु दीना, राम नाम बिन जीवन न हीना॥

नामदेव गुरु के परम भक्त थे और इन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं :—

सत सत सत गुरु देव,
झुट मुट झुट आन सब सेव।
जो गुरु देवत अमृत देह,
जो गुरु देव नाम जप लेह।

सन्त नामदेव ने सगुण ब्रह्म के सम्बन्ध में हिन्दी भाषा में लिखा है—

धनि धनि मेवा रोमावलि,
धनि धनि कृष्ण ओढ़े कांबली।
धनि धनि तूं माता देवकी,
जिह ग्रृह रमैया कंवला पती।
धनि धनि वनखण्ड वृन्दाबना,
जहँ खेलै श्री नारायना।
वेनु बजावै गोधन चारै,
नामे का स्वामि आनन्द करै॥

भगवान श्री रामचन्द्र जी भक्ति नामदेव ने इस प्रकार की है :—

दशरथ राय नन्द मेरा रामचन्द्र,
प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीवै।

सन्त कवि नामदेव के पदों में सिद्धों और नाथों के स्वर हैं :—

राम संगी नामदेव जनकेऊ प्रति सिया आयी।
एकादसी व्रतु रहै काहै कऊ तीरथ जायी।
भनति नामदेव सुक्रित सुमति भये।

सन्त नामदेव ने पहले तो सगुण की प्रशंसा की किन्तु जब वे निर्गुण भक्ति में दीक्षित हो गये तो उन्होंने निर्गुण के सम्बन्ध में कविताएँ कहीं। उनकी निर्गुण भगवान सम्बन्धी कविता के कुछ अंश प्रस्तुत हैं :—

पांडे तुमरा महादेव धवले बदल चढ़ आवत देख्या था।
मोदी के घर खाना पाका वाका लड़का मार्या था।
पांडे तुमरा रामचन्द्र सो भी आवत देख्या था।
रावत सेती सरबर होई, घर की जोय गँवाया था।
हिन्दू अन्धा तुरको काना, दुवौ तै ग्यानी सयाना।

नामदेव धर्म के लिए किसी प्रकार के आडम्बर को वांछनीय नहीं मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने धार्मिक विधि-विधानों की घोर निन्दा की है। उन्होंने ईश्वर की भक्ति के लिए केवल मन की पवित्रता और आचरण की शुद्धता पर बल दिया है :—

सांप कुछ छोड़े बिल नहीं छांड़े,
उदक माहे जैसे वक ध्यान मांड़े।
काहै का कीजै ध्यान जपना,
जब ते सुध नहीं मन अपना।

नामदेव की हिन्दी कविता में हमें मराठी के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों की भाषाओं का भी प्रभाव दिखायी देता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि नामदेव

भ्रमणशील सन्त थे। उन्होंने पंजाब, राजस्थान और उत्तर भारत का भ्रमण किया था। यही कारण है कि नामदेव का प्रभाव उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन पर पड़ा। उदाहरणार्थ पंजाब में गुरुनानक से अर्जुन देव तक और हिन्दी में विशेष रूप से कबीरदास में समानता है।

नामदेव के पदों में भक्त की भगवान के प्रति मिलन-उत्कण्ठा की मधुर अभिव्यक्ति है। नामदेव ने इसे 'तालाबेली' शब्द से परिचित कराया है जिसका अर्थ व्याकुलता है :—

मोहि लागति तालाबेली
बछरे बिनु गाइ अकेली
पानीआ बिनु मीनु तलफे
ऐसे रामा नामा बिनु वापुरो नामा।

सन्त नामदेव अपने को परमात्मा की पत्नी कहते हैं जो आकृष्ट करने के लिए शृंगार करती है :—

मै बउरी मेरा राम भरतार
रचि रचि ताकउ करऊ सिंगार।

कविवर नामदेव की हिन्दी कविताओं के कई संकलन प्रकाशित हो चुके हैं किन्तु मेरा विश्वास है कि नामदेव की हिन्दी कविता जो मराठी संकलनों में उपलब्ध है। वह भाषाई अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त है। नामदेव की हिन्दी कविता में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव इस प्रकार देखा जा सकता है :—

राजस्थानी— अब नी बिसारू राम सम्भारू
जो रे बीसारु तो सब हारू
सुमीरन स्वासा भरी भरी पीऊ
रंक राम गुड खाई र जीऊ

मराठी— मन्दीर एक द्वार दस जाके गऊ चरावण चालीला।
पाच कोपर चरावे चित सो बाछा राखीला।

मराठी भाषा का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है क्योंकि यह उनकी मातृभाषा थी। इसके अतिरिक्त पंजाबी और हरयानी तथा राजस्थानी का प्रभाव भ्रमणशील व्यक्तित्व के कारण है।

अरबी-फारसी—नामदेव की कविताओं में अरबी-फारसी के शब्द बहुलता से पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि समुद्र के पश्चिमी तट से अरबों का विशेष सम्बन्ध रहा है और फिर मुसलमानों की विजय के पश्चात् महाराष्ट्र मुसलमानों के प्रभाव में रहा है। वर्तमान समय में मराठी में चालीस प्रतिशत अरबी-फारसी के शब्द पाये जाते हैं। इनकी कविता में काफिर, करीम, मिस्कीन, खुदा, नमाज, तुर्क,

मस्जिद, गफलत, औरत, लतीफ़, दोजरव, रहीम, अल्लाह, ग़रीब, हज़रत, मौला, दुनिया, बिस्मिल, सुलतान, काज़ी, सलाम, मुल्ला, बादशाह आदि शब्दों के प्रयोग विशेष रूप से पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ :—

काज़ी मुल्ला करे सलाम
ईन हिन्दू मेरा मल्या मान
बादशाह विनती सुनये हो
नामे शेर भर सोना लेव
माल देखूं तो दोजक परूं
दीन छोड़ दुनिया को मरूं।

इससे स्पष्ट है कि नामदेव ने जिस भाषा में कविता लिखी है वह मिश्रित भाषा है अथवा हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में प्रचलित भाषा को उन्होंने अपनी कविता के लिए चुना। इसमें दक्खिनी भाषा का गुण विशेष महत्व रखता है।

ज्ञानेश्वर

सन्त ज्ञानेश्वर का जन्म पैठण के निकट आउन्दी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। प्रमुख रूप से दो मत हैं—

प्रथम—डा० रानाडे, तुलपुले और पागारकर का। इनके मतानुसार ज्ञानेश्वर का जन्म श्रावण वदी अष्टमी शक 1197 अर्थात् 1275 ई० में हुआ।

द्वितीय— पुरस्सकर्त्ता महाराष्ट्र सारस्वतकार भावे और दांडेकर का मत है कि इनका जन्म शक 1193 अर्थात् 1271 ई० में हुआ। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि दोनों दृष्टियों वाले विद्वानों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, केवल चार वर्ष का अन्तर है। ज्ञानेश्वर के देहान्त के सम्बन्ध में समसामयिक सन्तों के अभंगों का आश्रय लिया जा सकता है, जो इस प्रकार है :—

नामदेव —धन्य अलकापूर इन्द्रायणी। दैव सिद्धेश्वर नांदे तेये।
पुण्य क्षेत्र ऐसे पाहूनीया आधीं। कृष्णा कार्तीक मास त्रयोदशी।
देव गुरुवार दुर्मुख संवत्सर। करिती सुखर कुसुम वृष्टी।
नामा म्हणे ज्ञानराज ब्रह्मपूर्ण। समाधि निधान संजीवनी।

विसोवा—शके वाराशे आठरा। दुर्मुख नाम संवत्सरा।
गुरुवासर कार्तिक मासी। कृष्ण पक्ष त्रयोदशी।
माध्यान्ही दिनकर। राहे क्षणमात्र स्थिर।
खेचर बन्दी ज्ञानेश्वर। जोडोनिया दोन्ही कर।

जनाबाई—धन्य सर्वकाल धन्य तो सुदिन । धन्य हा निधान ज्ञानदेव ।
बारा शते अठरा दुर्मुख संवत्सर । तिथी गुरुवासर त्रयोदशी ।
शरहतु कृष्ण पक्ष कार्तीक मास । वैसे समाधीस ज्ञान राजा ।
नामायाची जनी लागते चरणों । ज्ञानेश्वरी ध्यानी जपत से ।

चोखा मेला—कृष्ण त्रयोदशी कार्तिक मास । वैसे समाधीस ज्ञानदेव ।
जातिहीन चोखा जोडुनि कर । समाधी निर्धारि संजीवनी ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञानेश्वर की समाधि तिथि शक संवत् 1218 कृष्णपक्ष, त्रयोदशी और दिन गुरुवार था ।

ज्ञानेश्वरी के अन्त में ज्ञानेश्वर ने स्वयं लिखा है—

शके बारात्तरे । तै टीका केली ज्ञानेश्वरे ।
सच्चिदानन्द बाबा आदरे । लेखकूँ झाला ।

अर्थात् शक सम्वत् 1212 (1290 ई०) में ज्ञानेश्वरी की टीका लिखी गई और सच्चिदानन्द बाबा ने साथ लेखन का कार्य किया । यह भी कहा जाता है कि ज्ञानेश्वर केवल बाइस वर्ष ही जीवित रहे । ज्ञानेश्वरी का रचना काल शक सम्वत् 1212 है और समाधि काल तत्कालीन सन्तों के मतानुसार शक सम्वत् 1218 है तथा ज्ञानेश्वर ने स्वयं बाइस वर्ष जीने की बात भी कही है तो शक सम्वत् 1218 में से बाइस वर्ष कम कर देने से जन्म शक संवत् 1196 निश्चित होता है, किन्तु परंपरा जन्म काल शक सम्वत् 1197 के पक्ष में है । अतः हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ज्ञानेश्वर का जन्म शक संवत् 1196 अथवा 1197 में हुआ ।

सन्त ज्ञानेश्वर ने बाइस वर्ष की अल्प आयु में जो ग्रंथ लिखा है, अद्वितीय है और इससे उनके असाधारण व्यक्तित्व का पता चलता है । आज महाराष्ट्रीय समाज में ज्ञानेश्वरी वेदों के समान ही पूज्य है । इसकी विशेषता यह है कि उन्होंने इसमें केवल गीता की टीका मात्र नहीं की प्रत्युत काव्य की मधुर चमत्कृति भी संचित कर दी है, जिससे आत्मज्ञान से प्रकाशित और मन काव्य सौष्ठव से चमत्कृत हो जाता है । यह भी कहा जाता है कि उन्होंने अपने बन्धुओं से प्रेरित होकर ही 'अमृतानुभव' की रचना की थी । इसे कवि ने 'अनुभवागत' भी कहा है । इस ग्रन्थ में शिव भक्ति की एकता शब्द मन्डन, शब्द खंडन, स्फूर्तिवाद आदि विषयों का अन्वय पद्धति पर विवेचन किया गया और शंकर-मत का समर्थन है । ज्ञानेश्वर की एक रचना का और उल्लेख मिलता है । इस रचना का नाम 'चांगदेवपासष्टी' है । इसमें हठयोगी चांगदेव की ज्ञानेवर द्वारा प्रेषित उपदेश हैं—

सोइ कच्चा वे नहीं गुरु का बच्चा
दुनिया तजकर खाक रमाई, जाकर बैठा बन मों
खेंचरि मुद्रा वज्रासन मा ध्यान धरत है मन मों

तीरथ करके उम्मर खोई जागे जुगति मो सारी
हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर को तिनके ऊपर जाना
सदगुरु की (जब) कृपा भई, तब आपहि आप पिछाना।

सन्त ज्ञानेश्वर की एक और कविता प्रस्तुत है जिसमें कवि ने निर्गुण ब्रह्म का उल्लेख किया है—

सब घट दखो माणिक मोला,
कैसे कहूँ मैं काला धवला।
पंच रंग से न्यारा होय,
लेना एक और देना दोय। (ध्रुव पद)
निर्गुण ब्रह्म भुवन से न्यारा,
पोथी पुस्तक भये अपारा।
कोरा कागद पढ़कर जाय,
लेना एक और देना दोय।
अलख पुरुष मैं देखा हिष्टि,
करकर आउन समान सुष्टि।
छाटा में कछू न होय,
लेना एक और देना दोय।
खलल दिया त्रिलिका,
तिरते तिरते मन न थका।
इस पार न भावे कोय,
लेना एक और देना दोय।
निर्गुन दाता कर्ता हर्ता,
सब जुग बन मो आपहिता।
सदा सर्वदा अच्चल होय,
लेना एक और देना दोय।

सन्त ज्ञानेश्वर की काव्य भाषा तत्कालीन अन्य सन्त कवियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर है तथा इसमें विदेशी अथवा प्रान्तीय शब्दों का अभाव सा है। यद्यपि सन्त ज्ञानेश्वर मराठी भाषी थे फिर भी उनकी कविता में वे गुण पाये जाते हैं जो एक दक्खिनी के कवि में होते हैं।

गोंदा बाई

गोंदा बाई महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त नामदेव की पुत्री थी। इसने भी अपने पिता की भाँति मराठी और हिन्दी में अभंगों की रचना की।[1] गोंदा बाई की एक

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 67

प्रसिद्ध हिन्दी कविता है जो समसामयिक शासक और नामदेव से सम्बन्धित है। कहा जाता है कि एक बार दिल्ली-सुलतान ने नामदेव को बन्दी बना लिया था और जब नामदेव ने चमत्कार दिखलाया तो सुलतान आश्चर्य चकित हो गया और उन्हें मुक्त कर दिया। इस कविता में इसी घटना को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कविता में सर्वप्रथम गणेश-वन्दना है :—

गजानन गौरी सूत लाल अंग पर वसूत
तेरे मुख बचना मृत उसे जमदूत भागत है
विद्याभरी दन्दुल पेट उस पर साँप की लपेट
विघ्न करत है चपेट पकड़ फेट काल की
नाम दर्जी जालम बिठू राजा का गुलाम
हुआ दुनिया में बदनाम उने नाम डुबाया
नाम प्यारा है भगत उसे जानत है जगत
बम्मन आया धूडत लगत लगत गावं मों।

कवयित्री ने गणेश की वन्दना के पश्चात् कथा आरम्भ की है। यह वर्णन अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है, यद्यपि कहानी सरल एवं सीधे सादे शब्दों में है। फिर भी कवयित्री ने जो चित्रांकन किया है वह दर्शनीय है :—

चले मजल पर मजल आया बेदर के मिसल
वहाँ हुई सो वो सकल तुम सुनो
+ + +
कोस आदे कोस पर नामदेव का लश्कर
बादशहा बैठा निकल कर नज़र कर देखते
कहे कासी पंडत लाल झंडे बहुत
पायदल जावे तहत क्या सरयत खबर लाव
करो कुरान सी सलाम भेजो फौज वो तमाम
क्या करेगा काम तुम बेकाम मत रहो।

इसमें घटना का वर्णन सम्वादात्मक है। अत: भावों का चित्रण सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है। सम्वाद स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़े हैं। कथा में सजीवता का गुण पाया जाता है जो नाटकीयता से भी मंडित है।

जब सुलतान ने नामदेव को चमत्कार दिखाने का आदेश दिया तो उसका चित्र कवियित्री ने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है जो देखते ही बनता है :—

बादशहा कहे जल्दी जाव गाई कसाई कू बुलाव
नामदेव कू बिठलाव नियत पाँचावे गाँव कूं
उसके आगे काटी गाय बम्मन करे हाय हाय
नामा कहे प्रभुराय। ये बुलाय तुम सुनो।

बादशाह कहे लो जान नहीं तो करूँ मुसलमान
झुठ करता है तुफान फिर फकीर कहलावते
किदर रह्या पंढरपुर मेरा वसीला है दूर
कौन कहेगा हुजूर थे ज़रूर हक़ीक़त ।

नामदेव तुरन्त भगवान की शरण में चले जाते हैं और प्रार्थना करते हैं :—

ये तो पापी चंडाल इन्ने बुरा किया हाल
मेरे अबू का काल गोपाल लाल जल्दी आव
नामा रोवो झुरझूर बहे अश्रुन का पूर
बिठू पसीने में चूर बिठू पंढरपुर में डुबे हैं
रुक्मिणी चुस्ती पद्मापाव घबर गये बिठूराव
रुक्मिणी कहे प्रभुराव क्या बलाय मुजे कहो
देव करे·········करे घबरे घबरे बात
नामदेव की कहत हक़ीक़त बुरी है ।

× × ×

अकस्मात हुई बात उठकर बैठे दीना नाथ
चल दिया उसी वक़्त मैं दीना नाथ आया हूँ
बिठू कहे नामदेव उस गाय कूँ हात लगाव
जान उसकी खुजाव जल्दी जाव गाय उठेगी
उठकर खड़ी रहे गाय हर हर बोले बम्मन राय
नामदेव कू लगाय बिठूराय गले से ।

गोंदा बाई की कविता की विशेषता है कि इसमें दक्खिनी भाषा की सभी विशेषताएँ हैं। इसमें मराठी शब्दों का अभाव है। इसकी शैली खड़ी बोली हिन्दी के प्रारम्भिक रूप में है।

कविता का अन्त इस प्रकार होता है :—

बादशहा करे जिकीर सच्च हिन्दू फकीर
ब्रह्म ज्ञान में तीर, रणवीर आये हैं
गोंदा लड़का अज्ञान करे रात दिन ध्यान
हुए वो मेहरबान दिया ज्ञान बालक कूँ ।

सैयद मुहम्मद अकबर हुसेनी

सैयद मुहम्मद अकबर हुसेनी, ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ के पुत्र थे, इनका जन्म दिल्ली ही में हुआ था। पिता के साथ ये दक्षिण भारत में गुलबर्गा नामक नगर में हिजरी सन् 815 अर्थात् 1412 ई० में आये। इन्होंने भी अपने पिता की भाँति अपने जीवन काल ही में प्रसिद्धि पा ली थी। इनका आदर और सम्मान दरबार से

लेकर जनसाधारण तक में था। पिता गेसूदराज़ ने अपने सुपुत्र को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, किन्तु सैयद मुहम्मद अकबर हुसेनी पिता के जीवन-काल ही में 822 हिजरी (1420 ई०) में स्वर्ग सिधार गये।[1]

सैयद मुहम्मद अकबर गद्य और पद्य दोनों शैलियों में रचनाएँ करते थे। साधारणतया ये अपने पिता के उपदेशों और प्रवचनों को लिपिबद्ध किया करते थे और पुत्र द्वारा लिपि विचारों को पढ़कर ख्वाज़ा गेसूदराज़ प्रसन्न होते थे तथा एक बार उन्होंने कहा, तुमने ऐसा लिखा है जैसे मैंने स्वयं ही लिखा है।[2] अभी तक की खोजों के आधार पर इनकी एक पुस्तक का पता चल पाया है जिसमें पद्य और गद्य दोनों का संकलन है। यह पुस्तक तसव्वुफ़ से सम्बन्धित है और इसे मौलवी मुहम्मद बाक़ी ने एक भूमिका के साथ प्रकाशित किया है। सैयद मुहम्मद अकबर हुसेनी को अरबी-फारसी पर पूर्ण अधिकार तो था ही और इसके साथ ही ये दक्खिनी भाषा का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। इन्होंने अपनी गद्य रचनाओं में कुरआन शरीफ़ की आयतों को बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है। इसे पढ़कर साधारण से साधारण ज्ञान रखने वाला भी कुरआन की आयतों का अर्थ भलीभाँति समझ सकता है। इसके अध्ययन से एक बात की ओर संकेत मिलता है कि इन्होंने यह प्रभावित करने का प्रयास किया है कि तसव्वुफ़ कुरआन का विरोधी नहीं बल्कि सहयोगी है। इनके पिता ने भी तसव्वुफ़ को कुरआन का सहयोगी सिद्ध करने का प्रयास किया है। इन्होंने पद्य में तसव्वुफ़ को ही विशेष रूप से अपना विषय चुना है। गद्य का अध्ययन हम गद्य के अध्याय में करेंगे। हम यहाँ पर उनकी केवल पद्य रचनाओं को ही प्रस्तुत कर रहे हैं :—

> धोकर ज़बान कूँ अपनी पहले पीर सूं बयान पर,
> बोलूँ सिफ़त ख़ुदा की कर शुक्र मैं ज़बान पर।
> वे ख़ुदा है सिफ़त उसको निहायत,
> करने को तिस सिफ़त तू नहीं मुझ ज़बान में ताक़त।
> बाज शन: उसके नाम ले क़ादिर मुहीउद्दीन का,
> बोले बयाँ सनू ब हासिल मुरादीन का।

उपर्युक्त कविता में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि शिष्य, गुरू के द्वारा शिक्षा प्राप्त करके ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। आगे उन्होंने लिखा है कि परमात्मा की विशेषताएँ इतनी हैं जिन्हें मेरी जिह्वा नहीं बता सकती है।

इनकी एक अन्य कविता है जिसमें इन्होंने पीर (गुरू) की प्रशंसा करते हुए बताया है कि पीर साधना के लिए आवश्यक है :—

---

1. मौलवी मुहम्मद अब्दुल जब्बार मलकापुरी—औलिया-ए-दकन, पृ० 992
2. हाफ़िज़ मुहम्मद हाशिम सिद्दीकी—स्वानह ख्वाजा बन्दा नवाज़, पृ० 24

बे पीर झाड़ बूये दारद जो लिया धातो,
हरगिज़ न खाये उसकूं कर खाये तू दवारद।
बे पीर के जो हैंगे दारद जो खा जिया कर,
बेशक जिया तू जा नवास करे हो और काफिर।
बे पीर हैंगे दारू खाकर अगर मुवा तो,
ईमाँ सलब तो तिस पर मरता है बे ईमाँ हो।
बे पीर के जो हतका पानी तमाम खावे,
हो गोश्त सूअर का उसकूं हराम पावे।

कवि का कथन है कि यदि शिष्य गुरू पर स्वयं को न्योछावर करता है तो वह अपनी इच्छा की पूर्ति करता है :—

कोई पीर पर फ़ना हो कीता अपस फ़ना हो,
पावे मुराद हक़ सूं जो कुछ तलब करे सो।
स्वर्ग सती जो कहना तो यो सुखन अबस है,
आक़िल के तीन अशारत अतनाज यो सू बस है।

इन कविताओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मुहम्मद अकबर हुसेनी अत्यन्त मेघावी व्यक्ति थे तथा उच्चकोटि के सूफ़ी सन्त और सफल कवि थे। इन कविताओं से स्पष्ट होता है कि इनकी भाषा एवं कोमलकान्त शैली ने लोगों को आकृष्ट किया होगा।

शाह सदरुद्दीन

शाह सदरुद्दीन अपने समय के प्रसिद्ध सूफ़ी साधकों में से एक थे। इनका सम्बन्ध चिश्ती सम्प्रदाय से था। इनके दीक्षा गुरू हज़रत बहाउद्दीन चिश्ती थे।[1] इनके आध्यात्मिक ज्ञान से प्रसन्न होकर इनके गुरू ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। इन्होंने पहले पहल नासिक (महाराष्ट्र) को निवास के लिए चुना और कुछ समय तक वहाँ रहे किन्तु कुछ समय पश्चात् नासिक को छोड़कर पीपरी में अपना निवास स्थान बनाया। अब्दुल जब्बार मलकापुरी के मतानुसार इनका देहान्त हिजरी सन् 876 (1473 ई०) में हुआ।[2] इनकी समाधि पर आज भी हिन्दू-मुस्लिम अपने श्रद्धा के पुष्प अर्पित करने जाते हैं।

शाह सदरुद्दीन अच्छे विद्वान थे। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की। लगभग सभी पुस्तकों का विषय धार्मिक है। इनकी दो पुस्तक—'कसब महबूब' और 'रमूज़ुल कामबीस' उपलब्ध हैं। 'कसब महबूब' का

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 42
2. मौलवी मुहम्मद अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी—औलिया-ए-दकन, भाग 1, पृ० 464

विषय तसव्वुफ़ है। इसकी रचना हिजरी सन् 876 (1473 ई०) में हुई और कवि एवं सन्त का देहान्त भी उस वर्ष में हो गया। 'कसब महबूब' नामक काव्य में कवि ने रूह (आत्मा) तथा हदीस (धर्मशास्त्र) आदि की समस्याओं पर विचार किया है। 'कसब महबूब' ग्रन्थ की एक कविता के कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

नाव वे अल्लाह मुहम्मद अव्वल,
कसब का सब को कहूँ दर हर महल।
गोश जा सूँ अब सूनू साहब यकीं,
क्या कहता है नज़्म में शह सदरुद्दीन।
अव्वलन बानफ़्स व दिल क़तब शाल,
ख्वाहिश दानाई का तू बूज हाल।
कामयाब कूँ यहाँ ते है राह वस्ल,
राह अलातसाल ज़वाल फ़ज़्ल।
सदरुद्दीन तू कसब पर साबित अछे,
× × ×
सिर्फ सूंत खिफ्तों के नस्त साबित अछे।
सदरुद्दीन पल पल में बैकला हुआ,
वस्ल भी यक पल बरवी में हल हुआ।
× × ×
बस कर ए शह सदरुद्दीन राज कूँ,
दे दी दीदार या आपस कूँ खोल।

सूफ़ी साधक सदरुद्दीन की एक पुस्तक 'रमूज़ुल कामबीस' है जिसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य को सांसारिक उलझनों में न पड़कर केवल काम से काम रखना चाहिए। उनका एक शेर प्रस्तुत है :—

मतलब सूँ अपने काम है कनी अछू फारसी।
मका देखने सूँ है ग़र्ज जिस जिन्स की हो आरसी॥

कवि ने आरम्भ में परमात्मा की वन्दना की है एवं हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा प्रस्तुत की है :—

करूँ हम्द व सना हक़ का अव्वल में,
भी नआत-ए-मुस्तफा का खुश नुमा में।
है वह दरियाये किबरिया का ज़ाहिर,
यह और इक दो आलम सूँ है बाहर।
अगर रूँ रूँ मेरी लक लक ज़बाँ हो,
फिर हर यक ज़बाँ सूँ लक लक बयाँ हो।
सना की बहर सूँ यक हिन्द सह से,
सिफ़त की कीना कूँ अना अपर से।

रसूल पाक पर लक लक सलवात,
बर अहल आल व असहाबान सो तहियात।
× × × ×
शुग़ल बेहतर है हरदम ज़िक्र मौला,
बग़ैर अज़ याद इक़ ते काम अव्वला।
करूँ ज़िक्र उनकी ज़ह का कुछ यहाँ मैं,
करूँ राज़ बतियाँ किती आयाँ मैं।

दक्खिनी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान श्री हाशमी ने शाह सदरुद्दीन की एक कविता प्रस्तुत की है किन्तु उन्होंने पुस्तक का नाम नहीं लिखा है। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

बोल तूँ गंज खफ़ी का हाल,
वहदत की अब सुन यो ख्याल।
वहदत कूँ तो यूँ कर जान,
जान पेका आया ज्ञान।
वाहिदियत सो बूज इशतहार,
क़ाबिल पाया चहार इतबार।
× × ×
वाहिदियत सो एक वजूद,
दोयम इल्म हुदा नूर शहूद।

मुश्ताक़

मुश्ताक़ सुलतान मुहम्मद शाह लस्करी बहमनी के शासन काल (1463-1482) के अन्तिम समय का कवि है। इसे सुलतान महमूद शाह बहमनी के शासन काल (1482-1518 ई०) में प्रसिद्धि मिली। मुश्ताक़ के पिता का नाम खलीलुल्लाह बुतशियन था। ये शाह खलीलुल्लाह शाह जैनुल्लाह के उत्तराधिकारी और बीदर के प्रमुख सूफ़ी साधकों में उच्च स्थान रखते थे। सूफ़ी साधक मुश्ताक ने सैयद बुरहानुद्दीन शाह खलीलुल्लाह की प्रशंसा में जो कसीदा लिखा था वह आज भी सुरक्षित है।[1] मुश्ताक ने कसीदों के अतिरिक्त ग़ज़लों की भी रचना की थी। इनकी रचनाओं का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि यह दक्खिनी का प्राचीन कवि था और यह काव्य क्षेत्र में निपुण था। इनके जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है।

कवि मुश्ताक ने जो कसीदा सैयद खलील नअमतुल्लाह की प्रशंसा में लिखा था। उसके कुछ छन्द अग्र प्रकार हैं :—

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर — दकनी अदब की तारीख, पृ० 15

नाज़ का ए नाज़ है खींचे वफ़ा पर क़लम
गम्ज़े का एक तौर है गोद में पाले सितम।
साफ सफा सफहा पर जद दिल मिशकीं है खत,
मैं पोद फ़ाक़े रहिया बरक़ा नबरे का जम।
लुत्फ सुखन यूँ अहे शहद है ज्यूं तैश में,
राके कहर नगर में शीरीं में राखे ऊसम।
लब मने ए नक़्स दरंगे मने ज्यूं ऐश हैं,
कर कि वचन थे दिखाये आग का बागे अरम।
गिरी मलाहम सती आब में आतिश रखे,
बात में सब घात है मदह में हैं ज्यूं ज़म।
कसदा है काबा का करने तवाफ आस्ता,
ज्यूँ कि मुसलमान कूं फर्ज़ है तवाक हरम।
फित्ना शुजाअत का देख रुस्तम दिस्ता छुपा,
शोर सखावत का सुन हो गया हातिम असम।
+ + + +
नूर बसर शम्सुद्दीन शाह मुहम्मद रहे,
होर जो शह काज़िम अहे शह के दिल के ज़म।
फहम सूं मुश्ताकिया नक़्स यो अखलास का,
ज़रब इरादत सती दिल पो अचा जीव ज्यूँ दरम।[1]

डा० ज़ोर ने कवि मुश्ताक़ की दो ग़ज़लों के कुछ शेर प्रस्तुत किए हैं जो इस प्रकार हैं :—

तुझ देखते दिल तो गया होर बीत ऊपर बेकल घड़ी,
देखे तो हैं जीव के ऊपर नैन देखे तो नैन कल घड़ी।
सूरज के गुल में चाँद ज्यूं यों तुझ गले हैकल दिसे,
कुरबान उसके हात पर जिन ऐ तेरी हैकल घड़ी।
आब हयात ओ लब तेरे जान बख्श व जाँ पर्दा है,
मुश्ताक बोसे सूं पिया अमृत भरी ओ कल घड़ी।[2]

एक अन्य ग़ज़ल के कुछ शेर और प्रस्तुत हैं जिसमें कवि ने अपने काव्य का कमाल दिखाया है। इसकी भाषा और शैली अत्यन्त आकर्षक है :—

ओ किसवत केसरी कर तन चमन मियाने चली है आ,
रहे खिलने कूँ यूँ बस्ती ओ चम्पे की कली है आ।

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 46
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 15

रसूल पाक पर लक लक सलवात,
बर अहल आल व असहाबान सो तहियात ।
× × × ×
शुग़ल बेहतर है हरदम ज़िक्र मौला,
बगैर अज़ याद इक़ ते काम अव्वला ।
करूँ ज़िक्र उनकी ज़ह का कुछ यहाँ मैं,
करूँ राज़ बतियाँ किती आयाँ मैं ।

दक्खिनी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान श्री हाशमी ने शाह सदरुद्दीन की एक कविता प्रस्तुत की है किन्तु उन्होंने पुस्तक का नाम नहीं लिखा है । कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

बोल तूँ गंज खफ़ी का हाल,
वहदत की अब सुन यो ख्याल ।
वहदत कूं तो यूं कर जान,
जान पेका आया ज्ञान ।
वाहिदियत सो बूज इशतहार,
क़ाबिल पाया चहार इतबार ।
× × ×
वाहिदियत सो एक वजूद,
दोयम इल्म हुदा नूर शहूद ।

मुश्ताक़

मुश्ताक़ सुलतान मुहम्मद शाह लस्करी बहमनी के शासन काल (1463-1482) के अन्तिम समय का कवि है । इसे सुलतान महमूद शाह बहमनी के शासन काल (1482-1518 ई०) में प्रसिद्धि मिली । मुश्ताक़ के पिता का नाम खलीलुल्लाह बुतशियन था । ये शाह खलीलुल्लाह शाह जैनुल्लाह के उत्तराधिकारी और वीदर के प्रमुख सूफ़ी साधकों में उच्च स्थान रखते थे । सूफ़ी साधक मुश्ताक ने सैयद बुरहानुद्दीन शाह खलीलुल्लाह की प्रशंसा में जो कसीदा लिखा था वह आज भी सुरक्षित है ।[1] मुश्ताक ने कसीदों के अतिरिक्त ग़ज़लों की भी रचना की थी । इनकी रचनाओं का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि यह दक्खिनी का प्राचीन कवि था और यह काव्य क्षेत्र में निपुण था । इनके जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है ।

कवि मुश्ताक ने जो कसीदा सैयद खलील नअमतुल्लाह की प्रशंसा में लिखा था । उसके कुछ छन्द अग्र प्रकार हैं :—

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर — दकनी अदब की तारीख, पृ० 15

नाज़ का ए नाज़ है खींचे वफ़ा पर क़लम
गम्ज़े का एक तौर है गोद में पाले सितम।
साफ सफा सफहा पर जद दिल मिशकीं है खत,
में पोद फ़ाक़े रहिया बरक़ा नबरे का जम।
लुत्फ सुखन यूँ अहे शहद है ज्यूं तैश में,
राके कहर नगर में शीरीं में राखे ऊसम।
लब मने ए नक़्स दरंगे मने ज्यूँ ऐश हैं,
कर कि वचन थे दिखाये आग का बागे अरम।
गिरी मलाहम सती आब में आतिश रखे,
बात में सब घात है मदह में है ज्यूं ज़म।
कसदा है काबा का करने तवाफ आस्ता,
ज्यूँ कि मुसलमान कूं फर्ज़ है तवाक हरम।
फित्ना शुजाअत का देख रुस्तम दिस्ता छुपा,
शोर सखावत का सुन हो गया हातिम असम।
\+ \+ \+ \+
नूर बसर शम्सुद्दीन शाह मुहम्मद रहे,
होर जो शह काज़िम अहे शह के दिल के ज़म।
फहम सूँ मुश्ताकिया नक़्स यो अखलास का,
ज़रब इरादत सती दिल पो अचा जीव ज्यूँ दरम।[1]

डा० ज़ोर ने कवि मुश्ताक़ की दो ग़ज़लों के कुछ शेर प्रस्तुत किए हैं जो इस प्रकार हैं :—

तुझ देखते दिल तो गया होर बीत ऊपर बेकल घड़ी,
देखे तो हैं जीव के ऊपर नैन देखे तो नैन कल घड़ी।
सूरज के गुल में चाँद ज्यूँ यों तुझ गले हैकल दिसे,
कुरबान उसके हात पर जिन ऐ तेरी हैकल घड़ी।
आब हयात ओ लब तेरे जान बख्श व जाँ पर्दा है,
मुश्ताक बोसे सूँ पिया अमृत भरी ओ कल घड़ी।[2]

एक अन्य ग़ज़ल के कुछ शेर और प्रस्तुत हैं जिसमें कवि ने अपने काव्य का कमाल दिखाया है। इसकी भाषा और शैली अत्यन्त आकर्षक है :—

ओ किसवत केसरी कर तन चमन मियाने चली है आ,
रहे खिलने कूँ यूँ बस्ती ओ चम्पे की कली है आ।

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 46
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 15

सूरज मुरजां मैं ज्यूँ दिस्ता नज़र दोनों का पनती थर थर,
जो लट पीचाँ भरी सर थे और रुख ऊपर ढ़लती है आ।
सूरज की ताव जूँ पिगलता बरफ आपस में,
ओ रुख देखत नज़र अँखियाँ के अँखियाँ में कली है आ।
+ + + + +
खिया मुश्ताक़ फारसी सूँ रहते तुम काम जो मैं आऊँ,
रवीदान थर अहे बरा अकन की जान गली है आ।[1]

कविवर मुश्ताक़ की ग़ज़लों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वह अपने समय का महान कवि था। इसने उपमा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग बड़े सुन्दर ढंग से किया है तथा शब्दों को चुन-चुन कर रखा है—

तुज नर्गिसी इस बाग में ज्यूँ गली सुर्खसारा दिसे,
ओ लब सो दो फंकरियाँ छरियाँ उस गली थे यकबारा दिसे।
अँखियाँ उपर है बाल या पिन्जरे मने खुन्जी रह्या,
या जाल में मछली है या बादल में सय्यारा दिसे।
आबे नज़र के जेब पर सीरीं मथा ज्यूँ जीवा है,
जीव के शकर सेती बन्या सो लब शकर पारा दिसे।[2]

मुश्ताक़ ने ग़ज़ल ऐसे कठिन विषय के लिए भी बड़ी सरल व स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है। इनकी कविता की यह विशेषता है कि इन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों की अपेक्षा हिन्दी का अधिक प्रयोग किया है। भाषा का लालित्य आकर्षक बनाने के यथा स्थान मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जो प्रस्तुत कविता से स्पष्ट है :—

नयन तुझ मद भरे देखत मियाने असर आवे,
आधर के याद करने में जबान ऊपर शकर आवे।
सफा उस गल कूँ देखत नज़र सो जागा गिर पड़ती,
मक्खी के घर में काँ ताक़त सूरज लक जागुज़र आवे।
रक़ीन ओ देव ज्यूँ जब तब परी के सात यों आना,
कि फूलाँ सात काँटा होर स्याने कंकर आवे।
नज़र नैन इश्क के मुश्ताक़ तुझ तो ऐब रख देखे,
कहता टेटरा आँगन कूँ नाचने का न हुनर आवे।

लुत्फ़ी

लुत्फ़ी का वास्तविक नाम ज्ञात नहीं है और न ही इनकी जीवन-चर्या के

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 45
2. वही, पृ० 45

सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सकी है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये मुश्ताक़ से प्रभावित थे क्योंकि इन्होंने भी मुश्ताक़ की भाँति शाह खलीलुल्लाह बुत शिकन के पुत्र शाह मुहम्मद की प्रशंसा में क़सीदा लिखा है, किन्तु मैं इसका समर्थन नहीं कर सकता क्योंकि केवल एक कसीदे के आधार पर हम मुश्ताक़ से प्रभावित नहीं स्वीकार कर सकते। हो सकता है कि लुत्फ़ी का व्यक्तिगत रूप से कोई सम्बन्ध शाह मुहम्मद से ही रहा हो अथवा उनके मुरीद रहे हों अथवा उनसे कुछ आध्यात्मिक लाभ उठाया हो।

लुत्फ़ी की काव्य-सेवा क़सीदों और ग़जलों के रूप में प्राप्त होती है। इन्होंने एक क़सीदा ख्वाज़ा किरमानी के क़सीदे के आधार पर दक्खिनी में लिखा। इससे यह प्रतीत होता है कि ये ख्वाज़ा किरमानी से प्रभावित थे। ख्वाज़ा किरमानी के क़सीदे का प्रथम छन्द इस प्रकार है :—

क़िरता ज़र चाक ज़द लाबत सीमीं बदन।
रश्क मलमऊ निशान्द शमअ मरशअ लगन।।

बहमनी शासन काल में शेख नूर मनमानी दक्षिण आये थे और बहमनी दरबार में उनका प्रभाव था और ख्वाज़ा किरमानी हज़रत रुकन समनानी का शिष्य था। ख्वाज़ा किरमानी का काव्य बहमनी दरबार में पसन्द किया जाता था।

कवि लुत्फ़ी द्वारा लिखे गये कसीदा के कुछ शेर (छन्द) प्रस्तुत हैं :—

सुबह हुआ पा सफा रैन का कजला कुवा,
छोड़ चमन की हुआ ग़ैब हुआ बाज ग़न।
सोर सहर सरक के गोर थे जारी हुआ,
कीस लगा रैन के देस जलाया अगन।
किरन की झारो बन्दा रैन की कालिक चुरा,
फर्श मलमअ बिछा खुसरो रूपी ब फन।
चार पहर बरक़रार यों निच रह्या या संजार,
ग़रब के कोय मने डोल दबा यार सुन।
नैन सूरज जहाँ थे ये लाल हुए सरग के,
रैन का काजल संगते हैं खिचा अन्जुमन।
सरग थे निकलिया चन्दर लाल लहू के भितर,
सूर छिपाया खंजर चन्दर दिखाया मकसन।
चन्दर का बाला बिचारें की दाई रचा,
मुश्क अम्बर में छुपा जहाँ कि राखे चतन।

× × ×

लुत्फी बे ऐन पर ऐन इनायत धरूँ,
ऐ शह खूबाँ मन ऐ मह ताबाने मन।

कवि लुत्फी ने सरस एवं सरल भाषा का उपयोग किया है। इनकी रचनाओं में हिन्दी शब्दों की अधिकता है जिससे मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। भाषा में प्रांजलता पाई जाती है। कवि लुत्फी द्वारा रचित एक ऐसी ग़ज़ल उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही है जिससे कवि की भाषा का अनुमान लगाया जा सकता है—

खिलवत मने सजन के मैं मोम की बत्ती हूँ,
यक पाँव पर खरी हूँ जलने परत पती हूँ।
सब किस घरी जलूँगी जागा सूँ नाह लूँ की,
नाजल को किया करूँगी अदल सूँ मदमती हूँ।
नातल मर हाल बलंकाना दिल में डर गलन का,
नासिर में सद जलन का तो या बला सती हूँ।
जलते कूँ ना जलाऊँ तजने कूँ आग लाऊँ,
बो जूँ तू फिर जलाऊँ ना यक रती रती हूँ।
शह के मिलन की माती हर नस जलन कूँ आती,
सब कद कहरा जलाती पन आह नैन कती हूँ।
मैं मस्त हूँ सजग की सुद बुद मस्ती हूँ तन की,
आब इश्क की मदन की मग़रूर मदमती हूँ।
जलने को ना डरूँगी जल कि क्या करूँगी,
क्यूँ ना जलूँ मरूँगी अदलती आदती हूँ।

इसी ग़ज़ल का एक छन्द पूर्वी हिन्दी से कितना सम्बन्धित है और इसमें जिन शब्दों का कवि ने प्रयोग किया है वे जनसाधारण में प्रिय है :—

रसिया चतो रसीले भूकी सो शह मुहम्मद,
मन्दर मने सजन की निस जागती रहती हूँ।

ग़ज़ल का अन्तिम छन्द इस प्रकार है :—

लुत्फ़ी तेरे जलन की पाकी कहाँ है इसमें,
ज्यूँ पाँच पादवाँ के खते सो दहर पती हूँ।

एकनाथ

एकनाथ का जन्म शक संवत् 1450 (1528 ई०) में हुआ और मृत्यु शक संवत् 1521 (1599 ई०) में हुई।[1] इन्होंने हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं में कविता लिखी है। दक्षिण भारत के प्राचीन कवियों की कविताओं के सम्बन्ध में संदेह व्यक्त किया जाता है, किन्तु सन्त एकनाथ की कृतियों के सम्बन्ध में भ्रम की मात्रा बहुत कम है। एकनाथ की विशेषता यह थी कि ये मुसलमान फकीरों के साथ में भी

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 68

रहते थे एवं उनसे इनका सम्बन्ध अच्छा तथा घनिष्ठ था । ये फ़क़ीर जिस प्रकार की हिन्दी बोलते थे उसी प्रकार की हिन्दी में सन्त एकनाथ ने अपने विचार प्रकट किये हैं ।[1]

सन्त एकनाथ ने भागवत की टीका शक सम्वत् 1495 (1573 ई०) में पूरी की और उन्होंने शक सम्वत् 1505 (1583 ई०) के लगभग ज्ञानेश्वरी का प्रामाणिक पाठ तैयार किया । मराठी साहित्य-गगन पर ज्योतिर्मय गौरव पुंज नक्षत्र-एकनाथ थे । एकनाथ संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान् थे और फारसी का भी ज्ञान था ।

सन्त एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी के पास बारह वर्ष तक देवगिरि में शिक्षा ग्रहण करते रहे । एकनाथ जनार्दन स्वामी से आध्यात्मिक विद्या ग्रहण करते और सरकारी कामों में उनकी सहायता करते थे । यहीं पर इनका संबन्ध उत्तर भारत के लोगों से हुआ और वे बोल-चाल की हिन्दी से अवगत हुए । काशीवास और उत्तर भारत की यात्रा से एकनाथ साहित्यिक हिन्दी से भी अवगत हो गये थे । ये काशी में एक वर्ष तक रहे । इन्होंने हिन्दू और मुसलमान सन्तों की संगत से भी बहुत ज्ञान प्राप्त किया ।

एकनाथ का विश्वास था कि ईश्वर और अल्लाह में कोई अन्तर नहीं है । महाराष्ट्र की जनता पंडरपुर के विट्ठल से अपार श्रद्धा रखती है । अतः इन्होंने विट्ठल और अल्लाह में एकता स्थापित करते हुए कहा है :—

हज़रत मौला मौला । सब दुनिया पालन वाला ।
सब घट मो सांई बिराजे । करत है बोलबाला ।
गरीब नवाज मैं गरीब तेरा । तेरे चरण कूँ रत वाला ।
अपना साती समज के लेना । सलील वो ही अल्ला ।
जिन रूप ते है जगत पसारा । यों ही सल्लाह अल्ला ।
एक जनार्दनी निज बद अल्ला । असल वो ही बिट पर अल्ला ।

हिन्दी के क्षेत्र में रहने के कारण सन्त एकनाथ की हिन्दी लोक गीतों का भी अच्छा ज्ञान हो गया था । साधु, भिक्षुक और बाजीगर आदि अपनी वृत्ति के सिलसिले में जो गीत गाते हैं और जिन कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करते थे, उनका परिचय इनको भलीभाँति था और उन्हीं के अनुकरण पर अनेक गीतों की रचना की है—

हम तो जोगी रे बाबा संजोगी,
बहुत दीन के पुराने,
बिरला बूझे कोई लाखों में, गुरु साहबे जाने ।
जपका जोगी, तप का जोगी, जोगी जुग जुग जीवे,
हात मो प्याला लिया प्रेम का भर भर पीवे ।

---

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 68

जोगी कु धुन्डत जो गया कीणे लखे नहीं पाया,
एका जनार्दन कृपा सो जोगी, पकर ही लाया।

इनके गीतों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनमें आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन किया गया है और इनमें लोक गीतों के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं :—

मैं दधि बेचन चली मथुरा।
तुम केंव प्यारे नन्द जी के छोरा॥
भक्ति का अचला पकड़ा हरी।
मत खेंचो मोरी फारी चुनरी॥
अहंकार का मोरा गइगा फोरा।
वहा को गोरस सब ही गीरा॥
बैतन की मोरी अंगिया फारी।
क्यूं कहूं मैं नंगी नार उघारी॥
एक जनार्दन जासो भेंटा।
लागत पगो से कबु नहीं छुटा॥

सन्त एकनाथ ने 'यथा लाभ संतोष' का भाव व्यक्ति करते हुए कहा है :—

अल्ला रखेगा वैसा भी रहना
मौला रखेगा वैसा भी रहना
कोई दिन शिर पर घड़ा चढ़ावे
कोई दिन शक्कर दूध मलीदा
कोई दिन अल्ला मांगता गया
कोई दिन सेवक हाथ जोड़े खड़े
कोई दिन नजीक न आवे घेड़े।

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धति और परिभाषाओं एवं मुस्लिम सन्तों द्वारा प्रचारित सूफ़ी साधना तथा विचारधारा से सन्त एकनाथ भलीभाँति परिचित थे। अतः उन्होंने इन दोनों विचारधाराओं के समन्वय का प्रयास किया है :—

आदि पुरुष निर्गुण निराधार को याद कर,
मेरे गुरु परवरदिगार को याद कर।
जिने माया अजब बनाई,
उस उस्ताद की याद कर।
ग़ैबी खजाना जिसने दिया,
उस साहब को याद कर।
+ + +

बच्चा जाहाँ आना नहीं, ताहाँ ज्या,
मेरे सद्गुरु दाता कू शरन ज्या।
मेरे सद्गुरु दाता की इतनी सी लकरी,
मूल मन्तर हात मों पकरी।
× × ×
आव बे आव बाहर आव,
जिसे नहीं हात ना पाव।
जिसे नहीं गाँव ना ठाँव,
जिसे नहीं रूप रेखा नाँव।
भाव ना अभाव कछु नहीं,
धीरे धीरे तेरा बी मन्तर बोलूँ।
लिंग देह की गांठ खोलूँ,
एक बार ऐसा खेल खेलूँ।
कि मेरे बड़े बड़े खेल थे,
हा तो एक, एक के दो।
दो तीन, तीन के चार,
चार के पाँच, पाँच के पच्चीस।
पच्चीस के छब्बीस, छब्बीस का एक,
एक बी नहीं, तो जनार्दन देख।

सन्त एकनाथ ने क्रोध, विषय-वासना एवं ममता को परम शत्रु माना है। इन शत्रुओं को केवल गुरु पराजित कर सकता है, इन्होंने गुरु को गारूडी कहा है। गारूडी के सामने सर्प कुछ नहीं कर सकता। एकनाथ के गुरू जनार्दन स्वामी सच्ची गारूडी हैं। सच्चा गुरु सदैव अपने शिष्यों की बुराइयों का शमन करता है। गुरु के चरणों में जीवन व्यतीत करने वाला अन्त में 'अलख' से भेंट कर लेता है।

इनकी हिन्दी रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन्होंने कई प्रवृतियों का समन्वय किया है। एक ओर इन्होंने पुराणों के अनुसार ही सृष्टि का विकास क्रम स्वीकार किया है तो दूसरी ओर इन्होंने सूफ़ियों की चिन्ता प्रणाली और नाथ पंथियों की साधना प्रक्रिया स्वीकार की है। इनमें भी जोगियों की भाँति फक्कड़पन पाया जाता है। यही कारण है कि इन्होंने अपने मत को प्रकट करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई है।

सामान्य प्रवृत्तियाँ

आदिकाल में दक्खिनी साहित्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं जिससे इस काल के साहित्य का अपना विशेष स्थान बन जाता है और दक्खिनी साहित्य के

विद्यार्थी को युग विशेष के साहित्य की प्रवृत्तियों का ज्ञान सरलतापूर्वक हो जाता है। इन प्रवृत्तियों का आकलन इस रूप में देखा जा सकता है :—

1. प्रेम निरूपण
2. रहस्यवाद
3. आचरण शुद्धि पर बल
4. मुक्तक शैली
5. निर्गुण भक्ति
6. प्रश्नोत्तर शैली
7. ग़ज़ल और क़सीदों का प्रचलन आदि।

1. प्रेम निरूपण

दक्खिनी साहित्य के लगभग सभी कवि सूफ़ी सन्त हैं और इनका मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम है। उस समय दक्खिनी के कवियों के सम्मुख आख्यानक काव्य की दो परंपराएँ थीं। एक ओर फारसी की रचनाएँ—जिनमें उदात्त प्रेम की आभा से पूरा आख्यान दैदीप्यमान रहता था। दूसरी ओर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में क्रमश: परिमार्जित होने वाले आख्यानक काव्यों की परम्परा थी जो हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों, पहले राजस्थानी और बाद में अवधी में कमनीयता के साथ अपने आपको व्यक्त कर रही थी। इसमें प्रेम की वैराग्य में परिणीत, पुरुष अथवा स्त्री का प्रेम के नाम पर छला जाना, प्रेमिका की प्राप्ति के लिए प्रेमी का और प्रेमी को प्राप्त करने के लिए प्रेमिका का अथक प्रयास, विरहजन्य विलाप एवं मिलन का मधुर संलाप देखा जा सकता है तथा कुछ आख्यानक काव्यों में प्रेम के बहाने उपदेश दिया गया है। दक्खिनी के कवियों ने दो पद्धतियाँ—भारतीय और ईरानी प्रेम पद्धतियों से लाभ उठाया है और उनमें उपदेशात्मक प्रेम को अधिक महत्व प्रदान किया है। इन्होंने प्रेम पात्र के सौन्दर्य को किसी ऐसे प्रकाश या ज्योति पंज के रूप में चित्रित किया है कि प्रत्येक जीव उसकी ओर आकर्षित हो अपना सर्वस्व प्रेम पथ पर न्योछावर करने के लिए उद्यत हो जाय। अपने साधकों को सांसारिक विविध अन्तरायों और उलझनों का सामना करवाकर प्रेम की दृढ़ता प्रदर्शित करना उनका परम उद्देश्य था।

2. रहस्यवाद

जब हम सूफ़ी विचार प्रणाली के रहस्य तत्व पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि रहस्यवाद धर्म की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है। भारत में तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में रहस्यवाद की भावना सामान्य जनता तक पहुँची। इस ओर दक्खिनी के सूफी साधनों का विशेष योग रहा है जिन्होंने अपने दक्खिनी काव्यों के द्वारा अपनी भावना को जनसाधारण तक पहुँचाया। हिन्दू-मुस्लिम दर्शन पद्धतियों में मेल बैठाने का भरसक प्रयास किया। अपने लक्ष्य की प्राप्ति में उन्हें बहुत सीमा तक सफलता भी मिली है। उन्होंने प्रेम मूलक भावना प्रधान रहस्यवाद की काव्यमयी सरस अभिव्यंजना की है। दक्खिनी के प्रसिद्ध विचारक सूफ़ी कवियों ने जगत को सत्य मानकर रहस्यवाद की बड़ी सुन्दर एवं भावात्मक अभिव्यक्ति की है, जिसमें उन्होंने अव्यक्त सत्ता को प्रकट किया है। इन्होंने प्रकृति के माध्यम से भी अव्यक्त

सत्ता की सर्व व्यापकता का संकेत किया है। रहस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक विधान अथवा प्रतीकों का उपयोग किया है। भावात्मक रहस्यवाद की जैसी सृष्टि इनमें पायी जाती है वैसी अन्यत्र कम ही पाई जाती है।

3. आचरण शुद्धि पर बल

दक्खिनी के कवि केवल कवि ही नहीं थे प्रत्युत ये उपदेशक एवं महात्मा थे। अतः इन्होंने स्वाभावानुकूल अपने काव्य के द्वारा आचरण की शुद्धि पर विशेष रूप से बल दिया। अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए इन्होंने अपने प्रकार के रूपक, प्रतीक और कथाओं को ग्रहण किया है जिससे पाठक बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता। इन्होंने लोक प्रचलित कहानियों को ग्रहण किया है तथा उन्हें अपने उद्देश्य के अनुकूल परिवर्तित भी कर दिया है।

4. मुक्तक शैली

इस काल में दक्खिनी साहित्य में मुक्तक शैली का प्रयोग बहुलता से हुआ है क्योंकि मुक्तक शैली पाठक अथवा श्रोता पर तीव्र प्रभावी होती है। इसमें जादू की सी शक्ति होती है। यही कारण है कि दक्खिनी साहित्य के आदि कालीन कवियों ने इस शैली को अधिक उपयुक्त समझा। इसमें इन्होंने प्रमुख रूप से दोहे, चौपाई और दो सुखने आदि छन्दों का उपयोग किया है। मुक्तक शैली के द्वारा कवियों ने उपदेश एवं चेतावनी दी है। दक्खिनी सन्त कवियों ने इसी शैली के द्वारा मानव हृदय में सूक्ष्म भावों को बड़ी सरलता से पहुँचाया है।

5. निर्गुण भक्ति

इस काल के कवि निर्गुण भक्त थे। इनमें प्रेम मार्गी और ज्ञान मार्गी दोनों पाये जाते हैं। इन महापुरुषों का प्रभाव समाज के हर वर्ग पर पड़ा। इनमें गोरखनाथी, नामदेवी, जनाबाई और एकनाथी आदि प्रमुख सम्प्रदाय हैं।

6. प्रश्नोत्तर शैली

दक्खिनी के कवियों ने प्रश्नोत्तर शैली का भी प्रयोग किया है। इसमें गुरू और शिष्य का वार्तालाप है। शिष्य गुरू से प्रश्न करता है, गुरू बड़े सुन्दर ढंग से समाधान करता है। इस शैली द्वारा धर्म एवं दर्शन के रहस्य को सरलता से समझाया गया है। जिससे जन साधारण भलीभाँति उसे हृदयंगम कर सके।

ग़ज़ल और क़सीदों का प्रचलन

ग़ज़ल और क़सीदा का काव्य विधा की दृष्टि से बहुत निकट का सम्बन्ध रखते हैं। दोनों में प्रेम का ही उल्लेख होता है किन्तु दोनों के प्रेम वर्णन में अन्तर होता है। क़सीदा में स्त्री-पुरुष के प्रेम का उल्लेख स्पष्ट होता है जबकि ग़ज़ल में सम्बोधित व्यक्ति के लिंग तक का उल्लेख नहीं होता है। अधिकांश दक्खिनी के कवियों ने ग़ज़ल का सफल प्रयोग आध्यात्मिक भाव व्यक्त करने के लिए किया है।

चतुर्थ अध्याय

पूर्व मध्य काल

(1526-1690 ई०)

पीठिका

बहमनी शासन-काल के अन्तिम दिनों में दक्षिण भारत में पाँच नये राज्यों की नींव पड़ी। ये राज्य थे—बीजापुर में आदिल शाही, बीदर में बरीद शाही, अहमद नगर में निज़ाम शाही, गोलकुन्डा में कुतुब शाही तथा बरार में अमाद शाही।

आदिल शाही वंश के राज्य की स्थापना युसुफ आदिल शाह ने हिजरी सन् 895 (1490 ई०) में की और अपने राज्य की राजधानी बीजापुर को घोषित किया।[1] यह बहमनी शासन काल में राज्य की ओर से बीजापुर का सूबेदार नियुक्त किया गया था। जब बहमनी शासन पतनावस्था में था तो शासन के कई सूबेदारों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इन्हीं सूबेदारों में युसुफ आदिल शाह भी एक था।

स्वतन्त्रता घोषित करने के अनन्तर युसुफ आदिल शाह ने अपने राज्य को सुदृढ़ बनाया तथा राज्य का विस्तार किया। यद्यपि इसने केवल बीस वर्ष तक शासन किया फिर भी प्रजा इससे सन्तुष्ट रही। राज्य में शान्ति एवं सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया।

बहमनी वंश के शासक केवल राज-काज की ही ओर ध्यान नहीं देते थे प्रत्युत विद्या, साहित्य तथा कला को भी विशेष महत्व प्रदान करते थे। इस वंश का संस्थापक युसुफ आदिल शाह स्वयं विद्या एवं कला प्रेमी था। इतना ही नहीं, वह स्वयं कवि और संगीतज्ञ भी था। इसके दरबार में विद्वानों और कलाकारों को उचित आदर और सम्मान मिलता था एवं उन्हें बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त किया जाता था। इससे शासन-काल में ईरान और ईराक से बहुत से विद्वान् और कलाकार बीजापुर आये और सुलतान युसुफ आदिल शाह के आश्रय में प्रसन्नचित्त रहे। इनमें प्रमुख हैं—हाजी रूमी, शेख नसीरुद्दीन, अल्लामा नसरुल्लाह और पीर मक़सूद आदि। इसने राज धर्म शिया घोषित किया था। इसके शासन काल में दक्खिनी को विशेष महत्व नहीं मिला क्योंकि जितने विदेशी थे सबकी मातृ भाषा फारसी थी। अतः राज दरबार में फारसी का बोल बाला था, किन्तु आम जनता की भाषा दक्खिनी

---

1. मुहम्मद फ़िदा अली—तारीख-ए-फरिश्ता (अनुवाद), भाग 4, पृ० 81

ही रही और दक्खिनी का विकास जन साधारण में होता रहा। इसका प्रमाण यह है कि युसुफ आदिल शाह के शासन काल ही में दक्खिनी के प्रसिद्ध सूफी कवि शाह मीरां जी शमसुलउश्शाक थे जिन्होंने दक्खिनी में कई पुस्तकों की रचना की।

युसुफ आदिल शाह के पश्चात् इस्माइल आदिल शाह सिंहासन पर बैठा। यह भी विद्वानों और कलाकारों का आदर करता था। इस्माइल आदिल शाह स्वयं कवि था और इसके काव्य का नाम 'वफाई' था। बीजापुर के इतिहासकार अबुल कासिम फरिश्ता और विस्तानुस्लातीन के रचयिता नुरुल्लाह जुबेरी ने सुलतान इस्माइल आदिल शाह के विद्वता और कवियों तथा कलाकारों के साथ उसके व्यवहार की बड़ी प्रशंसा की है। जब बीजापुर का शासक इब्राहीम आदिल शाह हुआ तो इसने राजधर्म को शिया के स्थान पर सुन्नी घोषित किया और इसने दक्खिनी भाषियों को अधिक प्रोत्साहन दिया। इतना ही नहीं, इसने दक्खिनी भाषा को राजभाषा के पद पर आसीन किया।[1] यद्यपि वह स्वयं कठोर स्वभाव का व्यक्ति था किन्तु विद्वानों और साहित्यकारों का आदर करता था। इसी के शासन काल में सूफी साधक बुरहानुद्दीन जानम विद्यमान थे जिन्होंने दक्खिनी में कई उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना की।

बहमनी वंश का पाँचवाँ शासक अली आदिल शाह भी विद्या एवं कला प्रेमी था। कहा जाता है कि अध्ययन मनन में लीन रहता था और यदि कहीं यात्रा पर जाता था तो भी इसके साथ चार सौ संदूक पुस्तकें अवश्य रहती थीं। इस काल में एक ओर विद्या और कला की उन्नति हुई तो दूसरी ओर विद्वानों और सन्तों के कारण जनता के चरित्र और व्यवहार में काफी सुधार हुआ। यह केवल विद्या और कला का ही प्रेमी नहीं था बल्कि बीजापुर को सजाने में भी रुचि लेता था। इसने कई बाग लगवाये, नहरें बनवायीं, मकान बनवाये और आलीशान मस्जिदों का निर्माण करवाया। इसने दक्खिनी के स्थान पर फारसी को राजभाषा घोषित किया, किन्तु दक्खिनी की नीव इतनी दृढ़ हो चुकी थी कि वह बराबर उन्नति करती गयी।

सुलतान इब्राहीम आदिल शाह (द्वितीय) का शासन काल यद्यपि युद्धों का काल था फिर भी इसने साहित्य और विद्या की ओर विशेष रुचि दिखायी। इसके शासन काल में विद्या, कला, साहित्य और संगीत की बड़ी उन्नति हुई। सुलतान इब्राहीम शाह (द्वितीय) ने विद्या और कला की उन्नति के लिए जो कार्य किये वे दक्खिनी साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे। इसके शासन काल के सभी इतिहासकारों ने इसकी विद्वता और विद्या व्यसन की प्रशंसा की है। सुलतान स्वयं विद्या और संगीत में निपुण था। इसका प्रमाण है सुलतान इब्राहीम आदिल शाह कृत 'नौ रस'। संगीत कला की दृष्टि से भी यह उस्ताद माना जाता है। इसके दरबार में तत्कालीन सभी भाषाओं के विद्वान रहते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि

1. मुहम्मद फ़िदा अली—तारीख-ए-फरिशता (अनुवाद), भाग 4, पृ० 24

इसके शासन-काल में साहित्य, कला और जनता की चौमुखी उन्नति हुई। इसके पश्चात् इसका पुत्र मुहम्मद आदिल शाह गद्दी पर बैठा। यह भी साहित्य प्रेमी था। इसकी पत्नी के आश्रय में दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि मलिक खुशनूद एवं रुस्तमी रहते थे। इसने देश के कोने-कोने में विद्या के केन्द्र स्थापित किये। यही कारण है कि इसके शासन काल में दौलत, सनअती, मुक़ीमी आदि जैसे कवि हुए।

अली आदिल शाह (द्वितीय) का शासन काल युद्धों का काल था किन्तु यह साहित्यकारों, विद्वानों और कलाकारों को समय-समय पर आदर व सम्मान दिया करता था। इसी के काल में काज़ी नूरुल्लाह ने 'तारीख-ए-आदिल शाही' की रचना की। इस काल में विशेष रूप से दक्खिनी के कवियों और साहित्कारों को प्रोत्साहन मिला। स्वयं सुलतान अली आदिल शाह दक्खिनी का कवि था और अपना काव्य नाम 'शाही' रखा था। इसका काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इसके शासन काल में नुसरती ने गुलशन-ए-इश्क और अलीनामा ऐसे प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की। आलमगीरी इतिहासकार खाफी खान ने भी अली आदिल शाह की साहित्यिक रुचि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

सुलतान सिकन्दर आदिल शाह बहमनी वंश का अन्तिम शासक था। यह सदैव युद्धों में तल्लीन रहा। अतः इसे साहित्यिक सेवा का यथोचित अवसर नहीं प्राप्त हुआ। इन सब बातों के होते हुए भी इस काल में दक्खिनी साहित्य की अभिवृद्धि हुई। इस युग की विशेषता यह रही है कि साहित्यकारों ने साहित्य की कई विधाओं पर अपनी तूलिका से रंग भरा है। इस काल में धार्मिक रचनाओं के साथ-साथ वीर काव्य भी रचे गये। इस युग में बहुत सा साहित्य लिखा गया, यदि हम इस काल को दक्खिनी का स्वर्ण युग कहें तो अत्युक्ति न होगी।

बरीद शाही वंश (1487-1619 ई०)

सर्व प्रथम अमीर कासिम बरीद ने सन् 1487 ई० में बीदर के बरीद शाही वंश का शासन स्थापित किया। इस वंश ने सन् 1487 ई० से 1619 ई० तक शासन किया। इस वंश के शासकों को कभी भी शान्तिपूर्वक शासन करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ क्योंकि इसके पड़ोसी शासक सदैव आक्रमण करते रहे।

बरीद शाही शासन काल (1487-1619) के साहित्यकारों का अधिक ज्ञान नहीं है और न ही सामग्री प्राप्त हो सकी है। इस काल के केवल एक कवि 'कुरेशी' के सम्बन्ध में कुछ सामग्री प्राप्त हो सकी है। इसकी रचना 'भोगफल' है इसमें काम शास्त्र का उल्लेख है। इसका रचना काल हिजरी सन् 1022 है।

निजाम शाही (1490-1633 ई०)

मलिक अहमद बहरी ने जिरी सन् 895 (1490 ई०) में निज़ाम शाही वंश के राज्य की स्थापना की।[1] यह मलिक नायब बहरी का पुत्र था। यह निजामुल

---

1. मुहम्मद फिदा अली – तारीख-ए-फरिश्ता (अनुवाद), भाग 3, पृ० 96

मुल्क के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। इसने अपने राज्य की राजधानी अहमद नगर को बनाया। अबुल क़ासिम फरिश्ता ने मलिक अहमद बहरी के व्यवहार और कुशलता की बड़ी प्रशंसा की है।

इस वंश के शासन-काल में साहित्य और कला को पर्याप्त उन्नति प्राप्त हुई। विद्वान्, साहित्यकार और कलाकार विदेशों से बुलाये जाते थे और भारतीय विद्वानों, साहित्यकारों तथा कलाकारों को समुचित आदर और सम्मान दिया जाता था। साहित्य के विकास के लिए इस काल में विशेष अवसर प्राप्त हुआ। इस काल का प्रसिद्ध दक्खिनी कवि शेख मुहम्मद अशरफ 'अशरफ', आफताबी और हसन शौकी हैं।

कुतुब शाही (1518 से 1687 ई०)

कुतुब शाही राज्य की स्थापना सुलतान कुली कुत्ब शाह ने सन् 1518 ई० में की और गोलकुण्डा को राजधानी बनाया। सुलतान कुली कुत्ब शाह ईरान के हमदान नामक स्थान से बहमनी शासन-काल में भारत आया था और सुलतान महमूद ने इसे अपना अंग रक्षक बनाया था। यह अपनी योग्यता और प्रतिभा से दिन प्रति दिन उन्नति करता गया और कुछ दिनों के पश्चात् उसे तेलंगाना का राज्यपाल बनाया गया। यह सुलतान महमूद का बड़ा विश्वास पात्र सरदार था। बहमनी शासन काल के अन्तिम दिनों में बहुत से राज्यपालों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया और बहमनी राज्य से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था, किन्तु इसने बड़ी वफादारी (आस्था) से काम लिया। लेकिन हिजरी सन् 924 (1518 ई०) में उसने भी सुलतान के व्यवहार से तंग आकर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।[1]

सुलतान कुली कुत्ब शाह ने स्वतन्त्रता घोषित करने के बाद राज्य की सीमा को बढ़ाकर क़रब और जवार के क्षेत्र को भी अपने राज्य में मिला लिया और राज्य की सीमा को बारंगल की सीमा से बन्दरगाह मछली पट्टम तक पहुँचा दिया। शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया तथा गोलकुण्डा को शानदार राजधानी में बदल दिया। सुलतान कुली कुत्ब शाह की हत्या हिजरी सन् 950 (1543 ई०) में कर दी गयी एवं उसका पुत्र जमशेद सुलतान बनाया गया। इसका देहान्त भी हो गया। सुलतान जमशेद की मृत्यु के पश्चात् सुबहान कुली शासक बना किन्तु इसका शासन एक वर्ष से भी कम था क्योंकि इसका देहान्त हो गया। कुतुब शाही वंश का चतुर्थ सुलतान इब्राहीम कुली कुत्ब शाह हुआ। इसके शासन काल में शान्ति थी। सुलतान इब्राहीम कुली कुत्ब शाह का देहान्त हिजरी सन् 988 (1580 ई०) में हुआ। इसने बीस वर्ष तक शासन किया एवं विद्या तथा कला को प्रोत्साहित किया। इब्राहीम कुली कुत्ब शाह स्वयं विद्या व्यसनी था। सुलतान इब्राहीम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुहम्मद कुली कुत्ब शाह गोलकुन्डा के सिंहासन पर बैठा। इसके काल में किसी प्रकार की राजनीतिक समस्या नहीं थी। इस काल के कुतुब शाही वंश का सबसे उन्नत और

---

1. प्रो० मुहम्मद अलबरुद्दीन—तारीख-ए-गोलकुन्डा, पृ० 25

शान्ति का काल कहा जा सकता है। इसने चौंतीस वर्ष तक शासन किया तथा इसका देहान्त हिजरी सन् 1020 (1611 ई०) में हुआ।[1] मुहम्मद कुली कुत्ब शाह के बाद उसका भतीजा और दामाद मुहम्मद शाह सिंहासनारूढ़ हुआ। इसने चौदह वर्ष तक शासन किया। चौंतीस वर्ष की आयु में हिजरी सन् 1035 (1626 ई०) में इसका देहान्त हुआ। मुहम्मद कुत्ब शाह के बाद उसका पुत्र अब्दुल्लाह सिंहासन पर बैठा। जिस समय यह शासक हुआ उस समय इसकी आयु बहुत कम थी। अतः इसकी माता हयात बख्शी बेगम शासन का कार्य करती थी। अल्लामा मुहम्मद, जो इब्न खातून के नाम से प्रसिद्ध थे राज्य की देखभाल करते थे। इन्होंने राज्य में किसी प्रकार की अव्यवस्था अथवा विद्रोह नहीं होने दिया। यद्यपि आलमगीर औरंगजेब ने आक्रमण किया, किन्तु हयात बख्शी बेगम की वजह से समझौता हो गया। जब सुलतान अब्दुल्लाह वयस्क हुआ तो हयात बख्शी बेगम ने शासन का कार्य उसे सौंप दिया। यह एक विलासी शासक था किन्तु इसके शासन काल में कोई विशेष उथल-पुथल नहीं हुई। सुलतान अब्दुल्लाह का देहान्त हिजरी सन् 1083 (1673 ई०) में हुआ। सुलतान निःसन्तान था अतः उसका दामाद अब्दुल हसन ताना शाह शासक हुआ। इसने चौदह वर्षों तक शासन किया किन्तु इसके शासन काल में चारों ओर शांति बनी रही। इस वंश का शासन हिजरी सन् 1097 (1687 ई०) में समाप्त हो गया।

कुतुब शाही वंश के संस्थापक सुलतान कुली कुत्ब शाह का अधिकांश समय युद्धों में बीता किन्तु फिर भी इसने विद्या और कला की उन्नति में पर्याप्त योग दिया। इसने 'आश खाना' नामक महल का निर्माण करवाया था जहाँ पर कवि और साहित्यकार एकत्रित होकर अपने काव्य का पाठ करते थे और सुलतान कुली कुत्ब शाह स्वयं उसमें सम्मिलित होकर काव्य को बड़े चाव से सुनता और रुचि लेता था।[2] कवियों और कलाकारों को समुचित सम्मान और पुरस्कार भी देता था।

सुलतान जमशेद स्वयं कवि था। इसका काव्य नाम जमशेद था। इसने अपने दरबार में 'मुल्कुश्शुअरा' मुहम्मद शरीफ बकोई को राजकवि के पद पर आसीन किया था।[3] इसका शासन यद्यपि केवल सात वर्ष ही रहा तथापि साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।

सुलतान इब्राहीम कुली कुत्ब शाह के शासन काल में शान्ति थी। अतः इस काल में साहित्य को अच्छा प्रोत्साहन मिला। सुलतान इब्राहीम के दरबार में साहित्यकारों और कलाकारों का सम्मान और आदर था। इसने अरबी, फारसी के साथ ही तेलुगु और दक्खिनी को भी उचित स्थान दिया। यही काल है जब फरीद, महमूद

---

1. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—तारीख-ए-गोलकुन्डा, पृ० 111
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—उर्दू शहपारे, पृ० 80
3. मुहम्मद फिदा अली—तारीख-ए-फरिश्ता (अनुवाद), भाग 4, पृ० 30

और मुल्ला वजही जैसे प्रसिद्ध साहित्यकार हुए। इसने तेलुगु कवि पूना मुन्टी तेलंगे नारया को सलतनत का 'मुल्कुश्शुअरा' (राष्ट्र कवि) बताया था।[1]

मुहम्मद कुली कुत्ब शाह स्वयं दक्खिनी, फारसी और तेलुगु का अच्छा कवि एवं विद्वान् था। वह इन तीन भाषाओं में कविता भी करता था। इसकी दक्खिनी कविताओं का संकलन 'कुल्लियात-ए-कुली कुत्बशाह' के नाम से डा० ज़ोर ने सम्पादित और प्रकाशित किया है। सुलतान कुली कुत्ब शाह ने फारसी शब्दों का हिन्दीकरण करके अपनी दक्खिनी कविता में उन्हें स्थान दिया। यह इतना दूरदर्शी था कि तेलुगु भाषा के शब्दों को दक्खिनी में उचित स्थान दिया। इसने दक्खिनी को एक राष्ट्रीय रूप प्रदान किया। इसकी दक्खिनी कविता इतनी सरल, सरस एवं प्रांजल है कि हिन्दी वाले कहते हैं उसे हिन्दी कहते हैं तो उर्दू वाले कहते हैं उसे उर्दू। इसने भी अपने पिता के समान ही तेलुगु के पटामटा को अपनी सलतनत का मुल्कुश्शुअरा (राष्ट्र कवि) बनाया। सरकारी नौकरियों में भी इसने अपने पिता की भाँति हिन्दू-मुसलमान का भेदभाव नहीं किया। यही कारण है कि इसे हिन्दू और मुसलमान दोनों का प्रेम मिला। इसके पिता इब्राहीम शाह हिन्दू पर्वों—होली, दीवाली, दशहरा आदि पर्वों पर हिन्दुओं को बधाई देता और स्वयं सम्मिलित भी होता था।

कुतुब शाही वंश का छठा सुलतान मुहम्मद कुत्ब शाह फारसी और दक्खिनी का प्रसिद्ध कवि था। इसके दो काव्य संग्रह—एक फारसी में और दूसरा दक्खिनी में उपलब्ध हैं। इसने फारसी काव्य में अपना काव्य नाम 'जिलुल्ला' और दक्खिनी में 'कुतुब शाह' अपनाया। इसके दरबार में विद्वानों और कलाकारों का आदर होता था। इसके शासनकाल में दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि मुल्ला गवासी, कुत्बी, इब्ने निशानी और जुनैदी आदि हुए। सुलतान अब्दुल्लाह के शासन काल में देश ने उन्नति की ओर प्रजा सम्पन्न थी। व्यापार में उन्नति हुई और कई नये भवनों का निर्माण हुआ। विद्या और कला की दृष्टि से भी यह युग अच्छा रहा। इसके शासन काल में कई पुस्तकों का अनुवाद भी हुआ एवं दक्खिनी की विशेष उन्नति हुई। अन्तिम सुलतान अबुल हसन तानाशाह स्वयं कवि था और कवियों, साहित्यकारों तथा कलाकारों का आदर करता था।

प्रमुख कवि और काव्य

अमीन

'अमीन' काव्य नाम के कई कवि दक्खिनी में हुये हैं। इस अमीन का समय इब्राहीम आदिल शाह (द्वितीय) (1581-1626 ई०) का शासन काल था। अमीन वजही, गवासी आदि महान कवियों का समकालीन था। इसके जीवन वृत के सम्बन्ध

1. डा० इक़बाल अहमद दक्षिण में सांस्कृतिक एकता : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, आजकल (मासिक), दिसम्बर 1975, पृ० 8

में कोई जानकारी नहीं है। इसके काव्य के अध्ययन से केवल इतना कहा जा सकता है कि वह सूफ़ी स्वभाव का व्यक्ति था। इसका दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह फारसी साहित्य का विद्वान और कवि था। यह अनुमान लगाया जाता है कि इसके आध्यात्मिक गुरु सूफ़ी साधक आलम थे।

सूफ़ी साधक अमीन ने 'बहराम व हुस्न बानो' नामक प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है किन्तु कवि अमीन इस काव्य को पूर्ण नहीं कर पाया था कि उसका देहान्त हो गया और इसे बीजापुर के कवि दौलत ने हिजरी सन् 1050 (1643 ई०) पूरा किया दौलत ने स्वयं स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

अमीन ने नाकिस रखा था इसे, कि दौलत ने पूरा किया अब इसे।
सन् एक हज़ार होर पंजाह में, जुमा रोज रबी माह में।
अफजल इलाही किया नज़्म, बतारीख चहारूम कीता खत्म।[1]

कवि अमीन ने अपनी रचना का मूलस्रोत फारसी साहित्य की रचना 'बहराम व गुलदाम' को बताया है। कवि ने इस कथा को सुना था और उसी के आधार पर 'बहराम व हुस्न बानो' प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है :—

किस्सा फारसी सुन के पाई खबर, खुदा की जो कुदरत में एक था शहर।
कि फारस उसी शहर का नाम था, वहाँ बादशाह शाहा बहराम था।

सूफ़ी सन्त अमीन ने काव्य के आरम्भ में ईश-स्तुति की है जो इस प्रकार है—

इलाही जगत का करनहार तूं, गरीबां नबीयां का उद्धार तूं।
किया हम्द व लआत को मुख्तसर, नहीं मैं किया तूल यो सरबसर।

कविवर अमीन ने 'बहराम व हुस्न बानो' की प्रेम कथा का आरम्भ इस प्रकार किया है :—

यकायक मेरे दिल पै आया खियाल, किस्सा यह कहूँ मैं मुक़ीमी मिसाल।
ज़बां पर बचन खूब आता चला, यों मज़मून खुश्तर निभाता चला।
किस्सा मैं किया है जो गुल नाम का, सो बानूं हुसन शह बहराम का।

कथा-सार

फारस नगर में शाह बहराम नामक राजा था उसे शिकार का बहुत शौक था। एक दिन उसने अपने घोड़े को गोरखर के पीछे दौड़ाया। गोरखर स्वयं उसके पास आ गया। शाह बहराम उस पर जीन कसकर सवार हो गया। गोरखर शाह को आकाश-मार्ग से उड़ाकर अपने महल के पास छोड़कर स्वयं अदृष्ट हो गया। कुछ समय पश्चात् वह अपने मूल रूप सफेद देव के रूप में शाह के पास आकर कहता है कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मोहित हो गया था इसलिए तुम्हें मैं गोरखर का रूप धारण

---

1. डा० दशरथराज—दक्खिनी हिन्दी का प्रेमगाथा काव्य, पृ० 250

करके उड़ा लाया हूँ। बादशाह को वह अतिथि के रूप में अपने पास रखा और देव अपने भाई के विवाह के लिए किलेकाफ चला गया। उसकी अनुपस्थिति में शाह बहराम ने अन्दर के बाग का द्वार खोलकर दिन के समय वहाँ गया, जहाँ पर सफेद देव ने उसे जाने से मना किया था। वहाँ पर शाह बहराम ने हुस्न बानो परी को देखा, जो अपनी सखियों के साथ स्नान कर रही थी। बहराम उसे देखकर उस पर आसक्त हो गया। एक बार देव ने बहराम शाह को बताया था कि परी के वस्त्र छुपाने से वह आजीवन प्रेम करती है। शाह बहराम ने हुस्न बानो के वस्त्र को छुपा दिया। हुस्न बानो ने बहराम से एक वस्त्र को छोड़कर सभी वस्त्र माँगे और बिना अनुमति न जाने का वचन दिया। इस प्रकार दोनों में प्रेम हो गया।

हुस्न बानो के बताये हुए तरीके से बहराम शाह उदास होकर सफेद देव से सुलेमान की सौगन्ध दिलाकर हुस्न बानो को माँग लेता है। सफेद देव स्वयं हुस्न बानो पर आसक्त था परन्तु वचन के सामने छटपटा कर रह गया एवं उसे पराक्रम प्राप्ति की अनुमति दी। अन्त में बहराम शाह हुस्न बानो को प्राप्त करता है।

कुछ काल के पश्चात् शाह बहराम हुस्न बानो के साथ स्वदेश लौट रहा था कि मार्ग में विदित हुआ कि मंत्री ने राज्य को हड़प लिया है और अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों को भ्रष्ट कर दिया है। शाह बहराम हुस्न बानो को सराय में रखकर शिकार के लिए निकला। उधर मन्त्री की दृष्टि हुस्न बानो पर पड़ी और वह हुस्न बानो को पाने के उद्देश्य से सराय में गया। हुस्न बानो सराय के संरक्षक को बहराम शाह से सब्ज शहर में मिलने का संदेश देकर कपोत रूप धारण करके उड़ गयी।

जब बहराम शाह वापस आया तो सराय के संरक्षक ने संदेश दिया। इस पर बहराम शाह बहुत दुखी हुआ। शाह ने सफेद देव को बुलाया और देव की सहायता से राज्य को वापस ले लिया तथा सफेद देव की सहायता से ही भाई सुरखाब के पास किलेकाफ़ में सब्ज शहर में पहुँचने के उद्देश्य से गया। सुरखाब ने उसे अपने भाई कन्दक के पास और कन्दक ने अपने भाई कन्दबाल के पास पहुँचाया। कन्दबाल ने शाह बहराम को जमरद मकान की ओर भिजवाया। प्रत्येक देव ने शाह बहराम की सहायता के लिए अपने-अपने सिर का बाल दिया। उन देवों ने शाह को अन्य अनेक दिव्य वस्तुएँ भी दीं, जिनसे वह संकटों का सहन कर सके।

उधर जब हुस्न बानो अपने घर पहुँचती है तो माता-पिता उसे बन्दी बना लेते हैं। शाह बहराम सिर पर गैबी टोपी रखकर उन परियों का पीछा करता है जो हुस्न बानों के स्नान के लिए पानी भरने जा रही थीं। वह हुस्न बानो के पास पहुँचता है और देवों की शक्ति के बल पर हुस्न बानो को मुक्त कराता है। उधर हुस्न बानो अपनी दाई की सहायता से अपने माता-पिता को प्रसन्न कर लेती है और बहराम के साथ उसका विवाह सम्पन्न हो जाता है तदनन्तर आनन्दपूर्वक दोनों स्वदेश वापस लौट आते हैं।

प्रेमाख्यानक काव्य में नायक बहराम शाह के चरित्र का विकास नहीं हुआ है वह सदैव परावलम्बी रहता है। पूरे काव्य में उसने कहीं भी अपनी शक्ति का परिचय नहीं दिया है। जब कहीं संकट आता है तो उसकी सहायता देव करते हैं। उसमें धीरोदास नायक का गुण नहीं के बराबर है। उसे अपने राज्य को वापस लेने में भी देवों की सहायत लेनी पड़ी। इस काव्य के अध्ययन से नायक के चरित्र का कोई प्रभाव पाठक पर नहीं पड़ता। वह तो यन्त्रवत् रह गया है।

काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अमीन अपने समय का एक सफल कवि रहा होगा और उसका तत्कालीन कवियों में विशेष स्थान रहा होगा। कथा की रूपात्मकता स्पष्ट है। भाव चित्रण की दृष्टि से इसका विशेष महत्व नहीं है। भाषा शैली सुन्दर है। कवि ने यत्र-तत्र प्राकृत दृश्यों का अनुपम चित्रण किया है। प्रात.काल का दृश्य इस प्रकार है :—

हुआ सुबह का वक़्त यकायक तमाम, लग्यां बोलने तूतियाँ खुश-कलाम।
सुबह पन अपस मुदसों खींचा नकाब, हो मशरिक से निकला तवा आफताब।

कविवर अमीन ने अपनी रचना का उद्देश्य प्रकट करते हुए कहा है :—

जो कोई पढ़े सो करे मुंज कूँ याद। तअज्जुब से दिल कूँ करे अपने शाद॥

मुल्ला वजही

मुल्ला वजही का मूलनाम असदुल्लाह था।[1] वजही वजा एवं वजही इनका काव्य नाम था। इनके पूर्वज खुरासान से भारत आये थे और दक्षिण भारत में बस गये। भारत में ही इनका जन्म हुआ, किन्तु जन्म तिथि के सम्बन्ध में इतिहास मूक है। इसका प्रमुख कारण यही रहा होगा कि उस समय फारसी साहित्यकारों की तुलना में दक्खिनी साहित्यकारों का आदर सम्मान कम था। उस समय जितने ऐतिहासिक विवरण और जीवन चरित्र लिखे गये, वे सभी फारसी में थे। वजही की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वह अपने समय का दक्खिनी का महाकवि था।

श्री हाशमी के मतानुसार वजही ने कुत्ब शाही वंश के चार शासकों—इब्राहीम कुत्ब शाह, मुहम्मद कुली कुत्ब शाह, मुहम्मद कुत्ब शाह और अब्दुल्लाह कुत्ब शाह के शासन काल को देखा था एवं अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।[2] इससे प्रतीत होता है कि मुल्ला वजही ने बहुत बड़ी आयु पायी थी। डा० दशरथराज का अनुमान है कि वजही का जन्म सन् 1575-1580 ई० के लगभग हुआ होगा।[3] मुल्ला वजही के देहान्त

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 70

2. वही, पृ० 71

3. डा० दशरथराज—दक्खिनी हिन्दी का प्रेम-गाथा काव्य, पृ० 141

के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। प्रो० हारुन खाँ शेरवानी ने अनेक तर्क देते हुए वजही की मृत्यु की तीन तिथियाँ सम्भावित मानी है हिजरी सन् 1070 (1660 ई०), हिजरी सन् 1077 (1667 ई०) और हिजरी सन् 1081 (1671 ई०)।[1] डा० श्रीराम शर्मा के अनुसार वजही की मृत्यु 1640 ई० के लगभग हुई।[2] प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी के मतानुसार वजही की मृत्यु हिजरी सन् 1066 और 1081 के बीच में हुई।[3] इनको सैयद हुसन बरहना शाह की दरगाह में चम्पापेट में दफन किया गया था।

साहित्य सेवा

वजही की दो प्रमुख रचनाएँ—(1) कुतुब मुश्तरी, (2) सबरस। इसके अतिरिक्त 'ताजुल हक़ायक' के विषय में डा० जोर, डा० अब्दुल हक़ और प्रो० अकबरुद्दीन सिद्दीकी जैसे आलोचकों का कहना है कि यह कृति भी मुल्ला वजही की है किन्तु अभी तक यह आलोचना का ही विषय बना हुआ है।

मुल्ला वजही की गुरू परम्परा के सम्बन्ध में कुछ जानकारी पाठकों के लिए निम्न प्रकार से दी जा सकती है—वजही ने अपने काव्य गुरू के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं छोड़ा है किन्तु प्रो० सिद्दीकी की खोज के अनुसार—"वजही ने अपना काव्य गुरु मिर्ज़ा मुहम्मद अमीन रुहुल अमीन को चुना जो तत्कालीन शासक के दरबार में मंत्री थे। उन्होंने वजही की कविता को शुद्ध किया।"[4] जहाँ तक उनके आध्यात्मिक गुरु की बात है उस दिशा में भी प्रो० सिद्दीकी का कथन है कि "वजही अपने जीवन के अन्तिम दिनों में धर्म की ओर झुक गये थे। वजही का सम्बन्ध चिश्ती सम्प्रदाय से था और इनके आध्यात्मिक गुरु शाह अली मुत्की थे। सूफी साधक शाह अली मुत्की पीर शाह बाज के खलीफ़ा थे।"[5] **कुतुब मुश्तरी**—इस प्रेमाख्यानक काव्य का आरम्भ कवि ने मंगला चरण के रूप में ईश-स्तुति से की है—

> तूँ अव्वल तूँ आखिर तूँ क़ादिर अहै, तूँ मालिक तूँ बातिन तूँ ज़ाहिर अहै।
> तूँ मुहसी तूँ मवदी तूँ वाहिद सच्चा, तूँ तव्वाब तूँ रव तूँ माजिद सच्चा।
> तूँ बाक़ी तूँ मुक़सिम तूँ हादी तूँ नूर, तूँ वारिस तूँ मुनइम तूँ बिर तूँ सबूर।
> ....आदि ॥

---

1. प्रो० हारून खाँ शेरवानी—कल्चरल ऐस्पेक्ट्स आफ दी रेन अब्दुल्लाह कुत्ब शाह (लेख) इस्लामि कल्चर, पृष्ठ 5, जनवरी 1940
2. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 245
3. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—बुझते चिराग, पृ० 100
4. वही, पृ० 96
5. वही, पृ० 99

इसके पश्चात् कवि ने हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा सुन्दर ढंग से की है—

मुहम्मद नबी नाँव तेरा अहै, अर्श के ऊपर छाँव तेरा अहै।
कि चौदह मुल्क का तूँ सुलतान है, अली सा तेरा घर में प्रधान है।
असी होर यकलाक पैगम्बर आए, वले मरतबा कोई तेरा ना पाए।

कविवर मुल्ला वजही ने समसामयिक शासक के रूप में सुलतान इब्राहीम कुत्ब शाह की प्रशंसा भी की है—

इब्राहीम कुत्ब शाह राजाधिराज, शाहंशाह है शाह शाहाँ में आज।
अदल बख्शिश होर दाद उसते अछे, सदा खल्क़ सब शाद उसते अछे।
जिते पादशाहाँ हैं संसार के, भिकारी हैं सब उसके दरबार के।

यहाँ पर महापंडित राहुल सांकृत्यायन का मत प्रस्तुत है—"वह (मुल्ला वजही) राजकवि मुहम्मद कुतुब शाह के पिता सुलतान इब्राहीम कुतुब शाह (1550-1580 ई०) के समय में कविता करने लगा था···।[1] दक्खिनी भाषा एवं साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डा० ज़ोर के मतानुसार—"मुहम्मद कुली कुत्ब शाह के शासन काल के उर्दू कवियों में वजही सबसे बड़ा कवि और साहित्कार था।"[2] प्रो० सिद्दीकी का कथन है—"वह (मुल्ला वजही) मुहम्मद इब्राहीम कुत्ब शाह (हिजरी सन् 957-98) के अहद में पैदा हुआ और इसी के अहद में शेर गोई शुरू की। सुलतान मुहम्मद कुली कुत्ब शाह (हिजरी 988-1020) के अहद में इसने काफी ऊरुज हासिल किया 1018 हिजरी में कुतुब मुश्तरी लिखी और 1020 हिजरी के बाद किसी वक़्त सुलतान मुहम्मद कुत्ब शाह (1020-1035 हिजरी) का मातूब (कोप-भाजन) हो गया।"[3] कुछ आलोचकों ने लिखा है, वजही ने इब्राहीम कुत्ब शाह के समय में कुत्ब मुश्तरी काव्य प्रारम्भ किया था। यह मान्यता ठीक नहीं है। इस सम्बन्ध में जो उद्धरण दिया जाता है, उसमें वर्तमान कालिक क्रिया के कारण 'मदह' का भ्रम होता है·····उद्धरण समकालीन शासक की बड़ाई (मदह) नहीं है। वह मुख्य कहानी का अंश है।"[4] डा० शर्मा की यह बात चिन्त्य है क्योंकि एक-समसामयिक शासक की प्रशंसा वर्तमान कालिक क्रिया में है, दो-अधिकांश दक्खिनी के कवियों ने आश्रयदाताओं की प्रशंसा ईश-स्तुति और हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा के पश्चात् की है। इतना ही नहीं उत्तर भारत के सूफी कवियों ने भी इसी क्रम को अपनाया है। अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि जिस समय मुल्ला वजही ने अपनी कृति आरम्भ की थी उस समय इब्राहीम कुत्ब शाह का शासन था और इसने

---

1. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पृ० 17
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दक्खिनी अदब की तारीख, पृ० 62
3. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—बुझते चिराग, पृ० 96
4. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 243

तत्कालीन शासक के रूप में उसकी प्रशंसा की है परन्तु रचना की परिसमाप्ति पर तत्कालीन शासक मुहम्मद कुत्ब शाह की प्रशंसा भी कर दी है जो इस प्रकार है—

मुहम्मद कुत्ब शाह तुज नाव है, हुआ सो तेरे पाँव का छाँव है।
तू दानी तू ग्यानी तू दातार है, तू फाज़िल तू कामिल तू औतार है।

मुल्ला वजही ने अपने ग्रंथ 'कुतुब मुश्तरी' का रचना-काल हिजरी सन् 1018 (1609 ई०) दिया है—

तमाम इस किया दीस बारा मने, सन यक हज़ार होर अठरह मने।

इससे स्पष्ट है कि मुल्ला वजही ने 'कुतुब मुश्तरी' प्रेमाख्यानक काव्य को सुलतान इब्राहीम शाह के शासन काल (1550-1580 ई०) में आरम्भ किया और सुलतान मुहम्मद कुत्ब शाह के शासन-काल में पूर्ण किया।

कुतुब मुश्तरी का कथा-सार

इब्राहीम शाह के कोई पुत्र न था। बड़ी प्रार्थना और दानादि के उपरान्त एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम ज्योतिषियों के परामर्श पर मुहम्मद कुली कुत्ब शाह रखा गया। राजकुमार का पालन-पोषण भलीभाँति किया गया। जब युवराज थोड़ा बड़ा हुआ तो उसे मक़तब (पाठशाला) में शिक्षा के लिए भेजा गया। राजकुमार इतना बुद्धिमान था कि वह शिक्षकों से भी आगे बढ़ जाता था। उसने केवल बीस दिन शिक्षा ग्रहण की कि वह विद्वान्, कवि और सुलेखक बन गया। राजकुमार युवराज हुआ तो एक दिन सुलतान ने आपानक का आयोजन किया। उसमें सभी लोगों ने सुरापान किया और वे उन्मत्त हो गये। उस आपानक में राजकुमार भी सम्मिलित हुआ था। रात के पिछले पहर राजकुमार को नींद आ गयी और उसने स्वप्न मे कई अप्सराओं को देखा। एक फव्वारे के पास कई सुन्दरियाँ एकत्र थीं। पास ही में एक महल था। वहाँ से एक सुन्दरी शृंगार करके आयी और राजकुमार उसे देख मुग्ध हो गया। प्रातः होते-होते राजकुमार अत्यधिक व्याकुल हो गया। यह समाचार पिता तक पहुँचा। पिता ने राजकुमार की माता से कहा किसी तरह पुत्र को सम्भालो। माता के बहुत पूछने पर राजकुमार ने अपनी व्याकुलता का कारण बताया। पिता ने बहुत सी सुन्दरियों को राजकुमार के पास भेजा, किन्तु राजकुमार ने कहा कि इन सुन्दरियों में वह सुन्दरी नहीं है जिसने मुझे मुग्ध किया है।

एक दिन गोलकुन्डा के एक चतुर चितेरे उतारिद ने राजकुमार से कहा, जिस युवती पर तुम आसक्त हो, वह बंगाल में रहती है। उसकी बहन का नाम ज़ुहरा है एवं युवती का नाम मुश्तरी है। मैं उसका चित्र बनाकर दिखा सकता हूँ और उसने चित्र बनाकर दिखाया तो राजकुमार ने कहा, हाँ यही वह युवती है।

राजकुमार ने उतारिद से कहा, मुझे इस युवती से मिलाओ। उतारिद ने कहा, आप इसका विचार छोड़ दो। किन्तु राजकुमार के आग्रह पर चित्रकार

उतारिद ने कहा, पिता से पहले अनुमति ले लो और फिर मेरे साथ व्यापारी के वेष में चलो। राजकुमार ने पिता से आज्ञा माँगी तो पिता ने कहा, तुम मेरे नेत्रों के प्रकाश हो, तुम इतनी दूर मत जाओ, किन्तु पुत्र के आग्रह पर माता-पिता ने अनुमति दे दी।

राजकुमार घर से निकला, मार्ग में विकट नामक पर्वत पड़ा। वहाँ पर चारो ओर धुआँ ही धुआँ था। बाद में मालूम हुआ कि यहाँ पर एक भयानक सर्प रहता है और यह धुआँ उसी की साँस का है। जब वह अजगर निकट आया तो राजकुमार ने तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिए। सर्प ने जो विष छोड़ा, उससे पृथ्वी हरी हो गयी। राजकुमार आगे चला। मार्ग में एक दुर्ग था, वहाँ दो पाँव, तीन सिर और चार हाथों वाला एक देव रहता था। वह बहुत काला था और प्रातः नौ हाथियों का कलेवा किया करता था। राजकुमार के साथी राक्षस को देखकर भागने लगे, किन्तु राजकुमार दुर्ग में घुस गया। उसे वहाँ पर एक और आदमी मिला, उसका नाम था मिर्रीख खाँ। मिर्रीख खाँ ने राजकुमार से कहा, मैंने एक रात स्वप्न में एक सुन्दरी को देखा और मेरे मित्र ने बताया कि वह बंगाल में रहती है और उसका नाम जुहरा है। मैं उसकी खोज में निकला हूँ किन्तु राक्षस ने मुझे किले में बन्द कर लिया है। इसके बाद राजकुमार ने भी अपना हाल बताया। दोनों ने निश्चय किया कि हम दोनों मिलकर प्रयत्न करेंगे। राक्षस के आते ही राजकुमार मुहम्मद कुली ने उसका सिर काट लिया।

राजकुमार मुहम्मद कुली, मिर्रीख खाँ और उतारिद आगे बढ़े। कुछ आगे बढ़े तो दो मार्ग मिले। उतारिद ने कहा, चाहे जिस मार्ग से चलो मार्गों में अप्सरायें मिलेंगी। राजकुमार ने प्रेमिका को ध्यान में रखकर दक्षिण पथ को अपनाया। जब राजकुमार सुन्दर उपवन में पहुँचा तो वहाँ की दासी परी ने रानी परी को सूचित किया कि एक सुन्दर युवक आया है और उसके साथ दो आदमी हैं। राजकुमार को देखकर रानी परी मोहित हो गयी, किन्तु रानी परी ने सोचा कि परी और मनुष्य का कैसे मेल हो सकता है ? रानी परी ने राजकुमार को भाई बनाया और राजकुमार ने परी को बहन। परी को यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि राजकुमार ने राक्षस की हत्या कर दी है। उतारिद ने राजकुमार से कहा, आप (राजकुमार) यहाँ पर रहिए, मैं जाकर बंगाल से मुश्तरी को लाता हूँ।

उतारिद ने बंगाल पहुँचकर मुश्तरी के महल के नीचे चित्रों की दुकान लगायी। मुश्तरी ने उसे बुलाया और कहा, मेरे महल को चित्रों से सजा दो। उतारिद महल की दीवारों पर चित्रकारी करने लगा। चौक में उसने राजकुमार मुहम्मद कुली का ऐसा चित्र बनाया कि—'लिख्या शह की सूरत वहाँ उन जो आ हिली काँद (दीवार) निर्जीव सब जीव पा।' मुश्तरी राजकुमार के चित्र को देखकर बेसुध हो गयी—'वही नक्श तन था वही नक्श मन। वही नक्श पानी वही नक्श अन।' मुश्तरी ने उतारिद से पूछा, क्या यह चित्र काल्पनिक है अथवा यथार्थ।

उतारिद ने पूरी कहानी कह सुनायी। अब मुश्तरी राजकुमार पर मुग्ध हो गयी। उतारिद ने पत्र भेजा, अगर धन ऊपर है तेरा शाह जो तो यहाँ खाना खा होर पाँ पानी पी।'

राजकुमार ने पत्र पाते ही, रानी परी को निशानी के रूप में अपनी अंगूठी दी और रानी परी ने राजकुमार को अपनी मुद्रा दी और राजकुमार बंगाल की ओर चल पड़ा। राजकुमार और मिर्रीख के वहाँ पहुँचने पर मुश्तरी ने स्वयं अगवानी की और मोती निछावर किये।

मुश्तरी ने मिर्रीख और ज़ुहरा को बंगाल का राज्य सौंपा एवं स्वयं मुहम्मद कुली के साथ गोलकुण्डा चली आयो। गोलकुण्डा में दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ।

कथानक

कुतुब मुश्तरी नामक प्रेमाख्यान में कथानक का इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि मुहम्मद कुली कुत्ब शाह के जीवन चरित्र पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। केवल उसका नाम मात्र दिया गया है। प्रेम का वर्णन पुरानी कथा-प्रणाली के अनुसार तिलस्मी घटनाओं के सहयोग से किया गया है। सुलतान इब्राहीम शाह के दीर्घ काल तक सन्तान का न होना, प्रार्थना और दानादि के आधार पर पुत्र की प्राप्ति होना, पुत्र का केवल बीस दिन में समस्त विद्याओं में निपुण होना, युवा होते ही स्वप्न में सुन्दरियों को देखना और उनमें से एक पर आसक्त हो जाना और उसकी खोज में बंगाल को जाना, मार्ग में मिर्रीख को देव की कारावास से छुड़ाना, बंगाल पहुँचकर उतारिद के माध्यम से मुश्तरी से मिलन होना, मुश्तरी की बहन ज़ुहरा का मिर्रीख से विवाह होना तथा मिर्रीख को बंगाल का शासक बनाकर राजकुमार का घर वापस आना आदि सभी घटनाएँ काल्पनिक हैं।

प्रेम पद्धति

कवि मुल्ला वजही ने उत्तर भारत के सूफ़ी कवियों की भाँति ही राजकुमार के हृदय में प्रेमोन्मेष स्वप्न दर्शन से कराया है। नायिका का पता चित्रकार उतारिद बताता है और साथ ही साथ उससे भेंट कराने के लिए बंगाल तक जाता है। दूसरी ओर नायिका के हृदय में भी चित्र दर्शन से प्रेम उत्पन्न होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि नायक और नायिका में प्रेम की उत्पत्ति क्रमशः स्वप्न दर्शन और चित्र दर्शन से होती है। अन्त में बंगाल से मुश्तरी राजकुमार के साथ गोलकुन्डा चली आती है और दोनों का विवाह सम्पन्न होता है।

प्रेम का स्वरूप

कविवर वजही ने राजकुमार और राजकुमारी दोनों की ओर से प्रेम का आधार सौंदर्य घोषित किया है। सूफियों की धारणा है कि जहाँ सौन्दर्य है वहाँ प्रेम की उत्पत्ति होती है बिना सौन्दर्य के प्रेम उत्पन्न नहीं होता।

प्रेम को सफल बनाने के लिए धैर्य और दृढ़ विश्वास की आवश्यकता होती है। इस काव्य में कवि ने राजकुमार के भीतर धैर्य और दृढ़ विश्वास उद्घाटन किया है। मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं किन्तु राजकुमार कहीं भी घबराता नहीं और न ही अपने विश्वास किंचिदपि अस्थिर आने देता है।

कुतुब मुश्तरी प्रेमाख्यानक काव्य की पूर्ण कहानी ऐहिक प्रेम पर आधारित है किन्तु अलौकिक प्रेम की छटा दिखायी देती है। कारण यह कि सूफ़ी साधक लौकिक प्रेम के द्वारा ही अलौकिक प्रेम को व्यक्त करते हैं। प्रेम एक साधना है और जिस व्यक्ति में प्रेम का उदय होता है, वह रात-दिन साधना में निमग्न रहता है :—

अगर नई है आशिक चकोर चाँद का, तो रौंता कूँ वो क्या सबब जागता है।

मुल्ला वजही ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्रेम में द्वैत नहीं होता है। जैसे लौकिक प्रेम में प्रेमी और प्रेमिका वैसे ही अलौकिक प्रेम में साधक और साध्य अभिन्न होते हैं :—

मुहब्बत कहीं यूँ दुई नई अहै, मुहब्बत है जो वाँ दुई नई अहै।

कविवर मुल्ला वजही का मत है कि इस दीपक के लिए न तो पंथी की आवश्यकता है न ही बाती की :—

दीवा दिल बत्ती दम मंधिर जिस्म, अनन जीव होर तेल तुज इस्म है।
बुरी बाव ते यक कथन रख इसे, जतन रख जतन रख जतन रख इसे।

प्रेमिका प्रेमी को पत्र लिखती है और उसमें कहती है कि प्रिय के विरह में शरीर के आभूषण शत्रु बन गये हैं एवं शरीर के प्रत्येक रोम काले नाग बनकर डस रहे हैं :—

होवे जल कमल नयन दीदार बाज़, यकेली कंधा लग रहूँ यार बाज़।
रतन थे सो तन पर अंगारे हुए, कि मुख चाँद आँसू सो तारे हुए।
हरेक रूँ मेरे तब पै ज्यूँ नाग हैं, सुना था अवल सो अताल आग है।

उत्तर भारत के सूफी साधकों की भाँति ही मुल्ला वजही ने भी मानवी प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का सोपान माना है। ईश्वर एक है किन्तु अनेक रूप दिखाई देते हैं :—

अपै पारकी होर अपै मुश्तरी, अपै है गवास होर अपै जौहरी।
वही एक करता है भी धात भेस, कधीं रात होवै कधी होवे दीस।

काव्य-कला

मुल्ला वजही ने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि काव्य वह है जिसमें शब्द और अर्थ का पूरा-पूरा समन्वय हो। वजही के ही शब्दों में :—

वो कुछ शेर के फन में मुश्किल अछे, कि सफ्ज़ होर मानी में यूँ सब मिल अछे।
यूँ सब शेर कहते यू सब शेर नई, कि बोलां किधर होर मानी कहीं।

महाकवि मुल्ला वजही ने अपने काव्य कुतुब मुश्तरी में कई स्थलों पर वस्तु निरूपण आश्चर्य जनक ढंग से किया है। उदाहरणार्थ जब नायिका मुश्तरी अपने प्रेमी को सुरा देती है तब वर्णन अत्यन्त आकर्षक एवं कलात्मक हो उठा है :—

जो शह ताई धन लाई मद लाल कर, कि पानी करी आग कूं गाल कर।

कविवर वजही ने भारतीय साहित्यिकों के समान कई स्थानों पर हंस, चकोर आदि को उपमानों के रूप में प्रयुक्त किया है। एक स्थान पर कवि ने युवती की गति की तुलना हँस की चाल से की है :—

लाले दिए सो ने जो गुल फुल फुल के तेरे गाल पर।
दरिया में ते हंस आयेगा आशिक हो तेरी चाल पर।।

सूफ़ी संत मुल्ला वजही अपने समय का श्रेष्ठ साहित्यकार था। इसने अपने काव्य में मुश्तरी के सौंदर्य की चर्चा करते हुए नायिका के मुख की छवि के आगे रत्न को भी निष्प्रभ बताया है :—

दिसे तन रतन धन के मुख नूर अंगे, कि रोशन किए हैं किए सूर अंगे।

दक्खिनी साहित्य का प्रसिद्ध साहित्यकार वजही अरबी और फारसी का भी विद्वान् था। उस समय फारसी लेखक भारत की उपमाओं और धार्मिक गाथाओं से या तो अधिक परिचित नहीं थे अथवा जानबूझ कर उपयोग नहीं करते थे, किन्तु वजही ने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन लेखकों और कवियों की परम्परा को तोड़कर भारतीय उपमाओं व दृष्टान्तों को अपनाया है। वजही ने केवल रूढ़ उपमाओं को ही नहीं अपनाया है अपितु नये-नये उपमानों का प्रयोग किया है जो बहुत ही सशक्त है। उपमानों की सहायता से कवि ने सर्वत्र मूर्ति खड़ी कर दी है। बोलचाल में सुन्दर आँखों को आम की फाँकी अथवा फाँक कहा जाता है वजही ने भी इस उपमान को अपनाया है। आम की फाँक केवल आँख की आकृति को व्यक्त करती है। किन्तु वजही ने एक साथ आँख की आकृति एवं काली पुतली को भी मूर्त किया है :—

दिसे पुतली यू नार की आँख ये, कि बैठ्या भँवर आँब की फाँक में।

वैसे नख-शिख वर्णन में कवि रूढ़ उपमानों का अधिक प्रयोग करते हैं किन्तु वजही ने रूढ़ एवं अपने निरीक्षण में प्राप्त उपमानों का प्रयोग किया है :—

जो शह याद करते थे धन गाल कूँ, तो गुड देते थे जाके गुलाल कूँ।
सो नर्गिस कूँ शह देक शहमात थे, कि नयन उसी सरोक़द के इस धात थे।
जो शह कूँ जोवन याद आते अथे, तो नारंज पर हात पाते अथे।
सुधन क़द कूँ शह ख्याल लाय कर, गले लगते थे सरो कूँ जाय कर।

कविवर वजही ने कहा है कि नायिका के काले बालों में आँखें ऐसा चमकती हैं और ऐसा प्रतीत होता है और मानो जाल में मछलियाँ फँसी हों :—

अछे नैन उस केस काले मने, कि मछलियाँ दो संपड़्यां है जाले मने।

नायिका की रोमावली का वर्णन कवि मुल्ला वजही ने इस प्रकार किया है :—

कि जिसका जो रोमावली नांव है, सो घन सर की चोटी की ओ छांव है ।

इससे स्पष्ट होता है कि मुल्ला वजही छन्द शास्त्र एवं काव्यगत रूढ़ियों से भली प्रकार परिचित थे । श्री नसीरुद्दीन हाशमी ने वजही के काव्य की प्रशंसा करते हुए कहा है—"कुतुब मुश्तरी का अख्लूब बयान निहायत पाकीज़ा है और इसकी ज़बान बहुत साफ है । इस मसनवी से उस ज़माने की तर्ज मआशरत, तमद्दुन और तहज़ीब का काफी अन्दाज़ा होता है ।"[1]

मुल्ला वजही ने मर्सियों की भी रचना की है जो काफी प्रभाव डालने वाली है । एक मर्सिया के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

हुसेन का ग़म करो अज़ीज़ाँ, उन जूँ सूँ जडी अज़ीज़ाँ ।
बना जो अव्वल है ग़म का, अर्श जगत होर धरत हलाया ।
क़ज़ा में जूं जूं लिख्या अभी, गिरया हुसेन पर अधी समाया ।
बुन्याँ बलियाँ के उन जवाँ सू मकडे, यो ग़म हुसेन का जख्म धो लाया ।
दिलाँ में दोगगी चहू ने चुक्या, यो ग़म ने सुलगा व बरक लगाया ।
यों क्या बला था यो क्या जफा था, मगर क़ज़ा था सो हक़ दिखाया ।

× × × ×

हुसेन याराँ दरुद भेजो, कि दीन का यो दीवा जलाया ।
तुम्हारे वजही कूं या इमामाँ, नहीं तुमन बिन यो उसको साया ।

मुल्ला वजही की दूसरी प्रामाणिक रचना सबरस है । यह गद्य रचना है । अतः इसका उल्लेख गद्य के अध्याय में किया जायेगा ।

मुल्ला गवासी

मुल्ला गवासी अपने समय का सबसे अधिक सफल और सिद्धहस्त कवि था । किन्तु इसकी जन्म तिथि ज्ञात नहीं है और न मृत्यु के सम्बन्ध में ही निश्चित कहा जा सकता है । दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हाशमी ने अनुमान लगाया है कि गवासी की मृत्यु हिजरी सन् 1060 से पहले हुई होगी ।[2] सुलतान मुहम्मद कुली कुत्ब शाह के शासन-काल (1612-1626 ई०) में गवासी कवि के रूप में चमका और सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह शासन-काल (1626-1672 ई०) में यह राजकवि के पद पर आसीन हुआ । गवासी ने अपना कवि-जीवन ग़ज़ल और क़सीदे से आरम्भ किया और आरम्भ में ग़ज़ल के द्वारा ही कीर्ति प्राप्त कर ली । इसने आख्यानक काव्य के क्षेत्र में इसके पश्चात् प्रवेश किया । गवासी को कवि जीवन के

1. श्री नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 71
2. वही, पृ० 97

आरम्भ में ही लोकप्रियता प्राप्त हो गयी थी। गवासी आत्म-प्रशंसा में लिखता है :—

यकीन जान कि तेरे क़दीम बन्द्या में, गवास आज जो है तूती शकर गुफ्तार।
(विश्वास कीजिए कि गवासी आज का मधुरभाषी तोता है।)

मुल्ला वजही भी गोलकुन्डा का कवि था। जब तक वह जीवित रहा तब तक उसने किसी को अपने से बड़ा नहीं समझा और स्वयं वजही ही सर्व मान्य रहे। उसने स्वयं लिखा है कि उसकी ज्ञान भरी बातों को सुनकर खुरासान के कवि भी ठगे रह जाते हैं। दोनों लोकों में जिस उत्तम हीरे का मोल हो सकता है वही मेरी कविता का है और उसने स्वयं को भारत का तोता (मधुर वाणी) कहा है :—

कि नादिर थे दोनों कि इस काम में, रक्या मैं कने बोल अछो काम में।
न पहुँचे न पहुँच्या है गुन ज्ञान में, सो तूती ऐसा हिन्दुस्तान में।
कि बाता यों सुनकर मेरे ज्ञान, रह्या थक ही कुँर्बा खुरासाँ गियान।
जिसे शायराँ शायर हो आयेंगे, सो मुंजते तरज शेर का पायेंगे।

इसका उत्तर मुल्ला गवासी ने इन शब्दों में दिया है :—

मेरा ज्ञान अजब शक्कारिस्तान है, जो इस थे मिठा सब हिन्दुस्तान है।
जिते हैं जो तूती हिन्दुस्तान के, भिखारी हैं मुंज शक्करिस्तान के।
शकर खा मेरे शक्करिस्तान थे, मिठे बोल उठे ओ अपस ग्यान थे।

आश्रयदाता

गवासी का आश्रयदाता सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह था। इससे पहले इसको राज दरबार में स्थान नहीं मिला था। इसने समसामयिक शासक अब्दुल्लाह कुत्ब शाह से प्रार्थना की :—

जो सुलतान अब्दुल्ला इन्साफ कर, जो मेरे जौहराँ पोत दिन साफ कर।
देवे दाद मेरा बहुत मान पांव, उमस दूर ते ता गरीबाँ पाँव।
कि यो शाह खरीददार होय, तो ताजा मेरा तब गुलजार होय।
कि गमगी हूँ मैं सख्त संसार ते, धरूँ दगदगे लाख उस आजार ते।
परेशानगी में जम्या ख्याल मैं, ले आया हूँ ऐसे रतन ढाल मैं।

इस प्रार्थना पर सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह ने इसे दरबार में स्थान दिया और कुछ समय पश्चात् इसे राजकवि के उच्च पद पर आसीन किया। इतना ही नहीं, सुलतान मुहम्मद आदिल शाह (1526-56 ई०) के दरबार में इसे गोलकुण्डा का राजदूत बनाकर भेजा। बीजापुर के सुलतान के यहाँ भी इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। गवासी जब बीजापुर राजदूत बनकर गया तो इसने गोलकुण्डा और बीजापुर के राजनीतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसने केवल राजनीतिक सम्बन्धों को ही नहीं सुदृढ़ किया, प्रत्युत साहित्यकारों और विद्वानों को

भी एकत्र किया तथा गोलकुन्डा के साहित्यकारों का प्रतिनिधित्व भी किया। गवासी से बीजापुर के प्रसिद्ध कवि नुस्रती और मुक़ीमी लाभान्वित हुए। मुक़ीमी ने गवासी के सम्बन्ध में लिखा है :—

ततब्बो गवासी का बान्द्या हूँ मैं, सुखन मुख्तसर ल्या के सान्द्या हूँ मैं।

सुलतान मुहम्मद आदिल शाह ने गवासी को गोलकुन्डा वापसी पर एक बड़ा हाथी, छः ईराकी घोड़े और बहुमूल्य वस्तुओं से भरी सन्दूकें भेंट कीं।[1]

गवासी ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा करते हुए उसे एक योद्धा के रूप में चित्रित है :—

सख दल सूँ तू जाय जिस वाट ते, ज़मी धाबरी होवे झलकाट ते।
जो कड्डी नज़र सूँ चडावे तू यों, झडे डर ते बागां के पंज्यां के नहीं।

गवासी को अपनी कविता पर बड़ा गर्व था, इसने स्वयं को सबसे महान कवि कहा है यद्यपि उसने किसी कवि की न तो निन्दा की है और न ही अवहेलना की है पर उसकी दृष्टि में समस्त संसार के कवि और काव्य उसकी रचना का मुँह जोहने वाले हैं और उसी के कारण उनका मूल्य है। इसके अपनी कविता के सम्बन्ध में कहा है :—

जो एक घोस निकले सेहर गाह कर, चल्या फूलवाडे कदन ख्याल कर।
सो यों कुछ वहाँ फूल बार आये थे, सब्ज पोश डाल्या पर झलकाये थे।
मगर पांच सो शमा के झाड़कर, दिवे ल्याये थे नूर के सरबसर।
मेरी रूह परवाना के सारका, जो आशिक हैं नूरो की झलकार का।

+ + +

किवाडा खुले सब मेरे काम के, खिले फूल मक़सूद के काम के।
मेरा जीव बुलबुल हो बोलन लग्या, छुपे गैब के नग्मे खोलने लग्या।

मुल्ला गवासी की आर्थिक दशा अच्छी न थी। इसके पास सर्दी से बचने का कोई सामान नहीं था अतः कवि ने ठंड से पूछा :—

मैं थंड का मिज़ाज जो पूछ्या तो यूँ कहीं,
दौलत-मदां कूँ गर्म हूँ जेत्या के बाद थंड।

गोलकुन्डा के इस महाकवि को ईश्वर के सम्मुख अपनी आर्थिक कठिनाई का उल्लेख करना पड़ा, जो इस प्रकार है :—

करूँ जिस सूँ यारी तो अगयार होयं, चलूँ भोर ही तो वो भार होयं।
वक़ा सूँ रखूँ जिसके पावाँ पी सिर, तो मेरे च सर पर रखे पांव फिर।

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी जोर—उर्दू शह पारे, पृ० 105

यद्यपि गवासी सामान्य जनता के लिए जन साधारण की भाषा में कविता करता था फिर भी उसका विश्वास था कि उसी कवि को सफलता मिलती है जिसका मोती सुलतान के मुकुट में शोभा पाये :—

चढ़े हात मोती यू जिस राज के, तो सर पर रखे जोड उपर ताज के ।
उनन का बहा कोई दे ना सके, बगैर राज़ भी कोई ले ना सके ।

अभी तक की खोजों के आधार पर कहा जा सकता है कि मुल्ला गवासी ने तीन आख्यानक काव्यों की रचना की है जो इस प्रकार हैं :—

1. सैफुल मुलूक व बदीउज्जमाल
2. तूतीनामा
3. मैना सतवन्ती ।

सैफुल मुलूक व बदीउज्जमाल

यह ग्रन्थ अलिफ लैला की प्रसिद्ध कहानी पर आधारित है। भारत में यह बहुत ही लोकप्रिय रहा है । इसका अनुवाद पंजाबी भाषा में लुत्फ़ अली और इमाम बख्श ने किया । अब्दुर्रहमान नामक कवि ने सिन्धी में इसका पद्यबद्ध अनुवाद किया और पश्तो भाषा में भी अहमद नामक कवि ने इस कथा का अनुवाद किया है । अला-वल ने पद्मावत की भाँति सैफुल मुलूक व बदीउज्जमाल को बंगाली भाषा में लिखा है । इससे विदित होता है कि यह कथा भारत में बहुत प्रसिद्ध रही है और उसने गवासी को भी आकृष्ट किया ।

मुल्ला गवासी ने मूल कथा का शब्दशः अनुवाद नहीं किया है प्रत्युत भावा-नुवाद किया है । गवासी ने पात्रों के नामों में परिवर्तन किया है और वर्णन में भी विस्तार किया है । कवि मुल्ला गवासी ने कथा को सैफुल मुलूक के सुखपूर्वक राज्य करने एवं उसके पुत्र प्राप्ति पर आनन्द एवं उत्साह के वर्णन पर समाप्त किया है जब कि फारसी गद्य में प्राप्त कथा दुखान्त है । इसमें सैफुल मुलूक 150 वर्ष तक राज्य करता है । उसके राज्य में प्रजा बीमारी ग्रस्त एवं निर्धन रही तथा बदीउज्जमाल को दुखी अवस्था में दिखाया गया है—"तमाम मर्द व ज़न स्याह पोश शुदंद खुरदश अज़मरदम शहर बर आमद बदीउज्जमाल ईं बैत भी ख्वानद व भी गरीस्त —

ए मृग हजार खानै वीरान कर दी । दर मुल्क वजूद गारत जान कर दी ॥
हर गोहर क़ीमती कि आमद जहाँ । बरूए व ज़ीरे खाक यकसां करदी ॥"[1]

मुल्ला गवासी ने 'सैफुल मुलूक व बदीउज्जमाल' की रचना केवल तीस दिन में की थी । इसका रचना काल हिजरी सन् 1025 अर्थात् 1641 ई० है :—

बरस यक हज़ार होर पाँच बीस में, किया खत्म यूँ नज़्म दिन तीस में ।

---

1. डा० दशरथ राज—दक्खिनी हिन्दी का प्रेम-गाथा काव्य, पृ० 193

काव्य के आरम्भ में अन्य दक्खिनी कवियों की भाँति ही मुल्ला गवासी ने भी ईश-स्तुति की है :—

इलाही जगत का इलाही सो तूँ, करनहार जम बादशाही सो तूँ ।
तेरे हुक्म तल नौगढ़ आसमान के, रइयत मलिक तेरे फरमान के ।

\+ + +

दिखा की मया कर तू मुझ खाक़ कूँ,
दे रंग बास मुझ दिल के फलफाक कूँ ।

सुलतान अब्दुल्लाह कुतब शाह की प्रशंसा कवि ने आश्रयदाता के रूप में की है :—

महाराज अब्दुल्लाह नावं, सरया के तारिक पर इसका है छावं ।
कहीं कुद्सियाँ साहबे सदराये, कि हर साब सो है ज्यूँ के सब कदराये ।

कथा-सार

हजरत सुलेमान के समय में मिस्र देश का शासक नवल आसिम था । वह नि:-संतान था । अत: दुखी रहा करता था । मंत्रियों ने उसे धैर्य बँधाया और ज्योतिषियों को बुलवाया । ज्योतिषियों के परामर्श पर उसने यमन के राजा की पुत्री से विवाह किया। उससे पुत्र नें जन्म लिया, उसका नाम सैफ़ुल मुलूक रखा गया । पुत्र के जन्म के अवसर पर ज्योतिषियों ने कहा, चौदह वर्ष की आयु में राजकुमार पर संकट आयेगा किन्तु उसका अन्त सुख प्राप्ति में होगा ।

उधर उसी दिन सालेह नामक मन्त्री के घर में भी पुत्र ने जन्म लिया । उसका नाम सआद रखा गया ।

राजकुमार और मन्त्री के पुत्र सआद दोनों का पालन-पोषण एक साथ होने लगा । जब दोनों सात वर्ष के हुए तो उनके लिए एक मौल्लिम को बुलाया गया । दोनों रात-दिन उसके पास शिक्षा ग्रहण करने लगे । थोड़े समय में ही दोनों विद्या में निपुण हो गये । दोनों तीर चलाने में अद्वितीय निकले ।

सुलतान आसिम ने पुत्र के बड़े होने पर तीन वस्तुएँ—उत्तम घोड़ा, ज़रबख्त (सोने-चाँदी के तारों से बना कपड़ा) और नागमढ़ी अँगूठी थी । ये तीनों वस्तुएँ उसे हज़रत सुलेमान से मिली थीं ।

जब राजकुमार ने ज़रबख्त को खोला तो उसमें इसको एक चित्र मिला । उस चित्र को देखते ही राजकुमार बेसुध हो गया । राजा ने पुत्र के सुख-वैभव के लिए परियों की रानी का पता लगाने का प्रयास किया, जिसका चित्र राजकुमार को व्याकुल किये हुए था किन्तु वह सफल नहीं हुआ ।

अन्त में राजकुमार स्वयं उस सुन्दरी का पता लगाने के लिए घर से निकल पड़ा । मार्ग में चीन के दरबारी चित्रकार से भेंट हुई, उसने बताया कि इस अप्सरा का पता कुस्तुनतुनिया का कोई व्यक्ति बता सकता है । राजकुमार वहाँ गया किन्तु किसी

ने पता नहीं बताया। एक दिन राजकुमार तूफान के कारण मार्ग में भटक गया और हब्श के किनारे पहुँच गया। हब्शी लोग उसे पकड़ ले गये किन्तु राजकुमार वहाँ से भाग निकला। मार्ग में कई बाधाएँ आयीं। एक दिन राजकुमार ने देखा कि आस-पास का वन प्रकाशित हो उठा है एवं अनेक जंगली पशु घूम रहे हैं।

कुछ दिनों के पश्चात् राजकुमार एक ऐसे द्वीप में जा पहुँचा जहाँ बन्दरों का निवास था किन्तु उनका राजा मनुष्य था। वहाँ से राजकुमार आगे बढ़ा तो उसे एक महल दिखाई पड़ा। जब राजकुमार उस महल के पास पहुँचा तो महल के सभी ताले खुल गये। वहाँ लाज नामक रानी की लड़की थी। उसे राक्षस उठा लाया था। राजकुमार ने राक्षस का वध कर दिया और लाज नामक राजकुमारी को मुक्त करा लिया। राजकुमारी की सहायता से अपनी प्रेमिका बदीउज्जमाल का पता लगाया। राजकुमारी को राजकुमार सिंहल द्वीप ले गया, जहाँ उसकी भेंट सआद के हुई।

उधर बदीउज्जमाल सिंहल द्वीप की राजकुमारी के मुक्ति का समाचार सुनकर उससे मिलने के लिए सिंहल द्वीप आयी। उसने वहाँ सैफुल मुलूक की प्रशंसा सुनी। तत्पश्चात् वह सैफुल मुलूक से मिलने के लिए बाग में गयी। वहाँ राजकुमार को देख कर वह भी उस पर आसक्त हो गयी। बदीउज्जमाल ने सैफुल मुलूक को बताया कि मुझे पाने के लिए मेरी दादी को मनाओ और उसे वहाँ तक पहुँचाने के लिए एक जिन्न भी उसके साथ कर दिया।

बदीउज्जमाल की दादी शाह बानो को सन्तुष्ट करने में सैफुल मुलूक सफल हो गया। शाह बानो उसे लेकर अपने पुत्र शाह बान के पास सरम गयी और राजकुमार को बाग में छोड़ दिया। राजकुमार वहाँ एक देव की कैद में पड़कर कुनजुम पहुँचता है। वहाँ से वह शाह बानो की सहायता से मुक्त हुआ और उसका विवाह बदीउज्जमाल से हुआ।

इसके बाद राजकुमार ने मन्त्री के पुत्र सआद का विवाह सिंहल द्वीप की राजकुमारी लाज से करवाया और स्वदेश लौट आये।

प्रेम का स्वरूप

डा० बांध्रे ने गवासी को सूफ़ी बताया है।[1] किन्तु उन्होंने कहीं भी प्रमाणित नहीं किया है कि गवासी सूफ़ी था। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन है—"गवासी का मसनवी में इसकी कथा को कहीं-कहीं वह आध्यात्मिक रूप भी दिया गया नहीं जान पड़ता जो उत्तरी भारत की सूफ़ी प्रेम गाथाओं की विशेषता है और जिसकी ओर किये गये कुछ न कुछ संकेत चन्दायन की अधूरी प्रति में भी हमें मिल जाते हैं।"[2] डा० दशरथराज का मत है—"कवि गवासी का सूफ़ी विचारधारा से कोई सम्पर्क

1. डा० कुमारी विमला बान्ध्रे – दक्खिन के सूफ़ी लेखक, पृ० 104
2. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान पृ०, 131

नहीं रहा है।"[1] मेरा ख्याल है कि कवि ने केवल शुद्ध प्रेमाख्यानक काव्य लिखा है। कवि यौवनावस्था में मनचला था किन्तु अन्त में वह उस पर पश्चाताप करता है।

गवासी ने प्रेम को कभी भी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया, किन्तु काव्य में प्रेम के विरह पक्ष की ही प्रधानता है।[2] सैफुल मुलूक का विरह प्रमुख है। आरम्भ में नायक विरहाग्नि में जलता है किन्तु जब वह नायिका बदीउज्जमाल की खोज में निकलता है तो विरह उत्साह में बदल जाता है। अतः एक शुद्ध प्रेमाख्यानक काव्य के रूप में सैफुल मुलूक बदीउज्जमाल एक उत्तम ग्रन्थ है जिसमें प्रेम भाव का विकास दिखाने में कवि को अच्छी सफलता मिली है। कवि ने उसमें जिन्न, देव और परियों का समावेश कराके उसे आकर्षक बनाया है।

प्रेमिका की प्राप्ति के लिए नायक सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों के नायकों की भाँति विभिन्न कष्टों को सहन करता है। प्रेम की वास्तविकता तब तक स्पष्ट नहीं होती जब तक प्रेमी विभिन्न प्रकार की विपत्तियों से न गुजरे। अतः अलौकिक प्रेमी को अत्यधिक कष्टदायी परीक्षणों के उपरान्त ही सफलता मिलती है। अतः सैफुल मुलूक व बदीउज्जमाल को यदि अलौकिक प्रेमाख्यान काव्य स्वीकार किया जाय तो अनुचित न होगा कि काव्य का अन्त संयोग में होता है।

मैना सतवन्ती

अभी तक जो सामग्री प्राप्त हुई है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ का नामकरण कवि ने स्वयं नहीं किया है क्योंकि इसमें रचना का नाम नहीं है। इसमें रचना-काल भी नहीं है। इसकी पांडुलिपियाँ जो भारत और विदेशी संग्रहालयों में मिलती है उन पर अलग-अलग नाम दिये हुए हैं—जैसे चन्दा लोरक, किस्सा-ए-मैना, मैना सतवन्ती और मसनवी गवासी आदि। कुछ समय तक यह भी स्पष्ट नहीं हो सका था कि इस महान् कृति का रचयिता कौन है? किन्तु अब स्थिति सुस्पष्ट हो गयी है कि प्रस्तुत ग्रन्थ को मुल्ला गवासी ने रचा है :—

बुरे फहम दारां में हूँ कम फहाम, किया हूँ यू नादानगी सूँ तमाम।

× × × ×

गवासी कमीने पो करना नज़र, दुआ हक़ सूँ मंगना मेरे हक़ उपर।[3]

---

1. डा० दशरथराज—दक्खिनी का प्रेम गाथा काव्य, पृ० 195
2. सचीं हर दर्द कूँ है हर कदूं दवा, वले इश्क के दर्द कूँ नई दवा।
   अछे जिसके तइं इश्क का दर्द जो, विचारे हकीमाँ करे क्या कहीं।
3. डा० गुलाम उमर खाँ—मैना सतवन्ती अज़ मुल्कुश्शुअरा गवासी, डा० मसउद हुसैन खाँ, कदीम उर्दू, भाग—1, पृष्ठ 194

काव्य का आरम्भ हम्द (ईश-स्तुति) से होता है जो इस प्रकार है :—

कहूँ हम्द मैं पाक रहमान का, कि ऊ हम्द ज़ेवर है ईमान का।
जमा हम्द उस कूँ सजावार है, जिने जग कूँ पैदा करन हार है।

इसके पश्चात् कवि गवासी ने हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा की है :—

इलाही दिख्या तूं बन्द्यां की शरम, नबी कू दिया भेज कीता करम।
मनूर किया जिसने इस्लाम कूँ, शफाअत दिया खास होर आम कूं।
शफीअ ऊ हस्र सात के वक़्त का, ऊ सुलतान मेराज के तख्त का।

कथा का मूल स्रोत

मुल्ला गवासी ने स्वयं कहा है कि यह कथा फारसी में थी और मैंने इसे दक्खिनी में अनुवाद किया है।[1] ग्रंथ के अध्ययन से पता चलता है कि इसका आधार 'हमीदी कृत इस्तनामा' फारसी काव्य है। गोपी चन्द नारंग के मतानुसार—"चन्दायन की कथा के आधार पर फारसी में लिखा गया एक ही काव्य—हमीदी कृत इस्तनामा—इस समय उपलब्ध है किन्तु मुल्ला गवासी का आख्यानक काव्य इस्तनामा पर आधारित नहीं है। कारण यह है कि इस्तनामा के अन्त में चन्दा की मृत्यु का वर्णन है जबकि गवासी ने उसे जीवित दिखाया है। इसमें बारहमासा भी नहीं है जो चन्दायन का महत्वपूर्ण अंश है और जो फारसी इस्तनामा में भी विद्यमान है। इस्तनामा वस्तुतः सूफ़ी रूपक (आध्यात्मिक) काव्य है, जिसमें लोरक—ईश्वर, सातन—शैतान, मैना—आत्मा और दन्ताल—बावन के प्रतीक हैं। गवासी ने पात्रों की आध्यात्मिक व्याख्या नहीं की है। अतः स्पष्ट होता है कि चन्दायन से सम्बन्धित फारसी में हमीदी के इस्तनामा के अतिरिक्त भी कोई अन्य काव्य रहा होगा, जिस पर गवासी का काव्य आधारित है।[2] डा० परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार, "गवासी कृत 'मैना सतवन्ती' और हमीदी कृत 'इस्तनामा' की कहानी में विशेष कोई परिवर्तन नहीं है।"[3]

हमीदी कृत इस्तनामा का कथा-सार

हिन्दुस्तान के एक राजा के एक पुत्री थी जिसका नाम मैना था। वह अत्यन्त रूपवती एवं पतिव्रता थी। उसका विवाह लोरक नामक सुन्दर युवक से हुआ। दोनों

---

1. रिसाला अया फारसी यू अव्वल, किया नज़्म दक्खिनी से वेवदल।
   एता इहाँ किस्से का सुन लो बयां, कि यकायक बयां हज़ारां बयां।
   डा० गुलाम उमर खाँ—मैना सतवन्ती अज़ मुल्कुश्शुअरा गवासी, डा० मसउद हुसैन खाँ, कदीम उर्दू, पृ० 122
2. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 296
3. डा० परमेश्वरी लाल गुप्त—चन्दायन, पृ० 350-51

में घनिष्ठ प्रेम था परन्तु वह चाँद नामक एक अन्य सुन्दरी के साथ सम्बन्ध स्थापित करके नगर से भाग गया। मैना पति के वियोग में व्यथित रहने लगी।

इसी बीच मैना के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर सातन नामक युवक मैना पर मुग्ध हो गया और रात दिन मैना के महल का चक्कर काटने लगा। एक दिन उसने मैना को अपनी अट्टालिका पर खड़ा देख लिया। उसके सौन्दर्य को देखते ही वह मूर्छित हो गया।

मैना को प्राप्त करने के लिए सातन ने बूढ़ी कुटनी को नियुक्त किया। कुटनी एक दिन फूलों का गुलदस्ता लेकर मैना के पास गयी और मैना के मन में विलास पैदा किया कि वह उसकी धाय है और उसने शैशवावस्था में उसे दूध पिलाया था।

कुटनी ने जब यह समझ लिया कि मैना अब उसके जाल में अच्छी तरह आ गयी है तो उसने अपना काम आरम्भ कर दिया। मैना के दुख दर्द का हाल पूछा, मैना ने उसे लोरक के प्रति अपनी विरह व्यथा कह सुनायी।

कुटनी ने बात को सुनकर कहा, लोरक बहुत बेवफा और गद्दार है तथा परामर्श दिया कि वह किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करके यौवन का आनन्द उठाये और यह भी कहा कि सातन तुम्हारा प्रेमी है तथा तुम्हारी प्रेमाग्नि में जल रहा है। यदि लोरक चाँद के साथ यौवन का आनन्द उठा रहा है तो तुम भी सातन को अपना लो।

मैना ने कुटनी के इस परामर्श को ठुकरा दिया। कुटनी साल भर प्रयत्न करती रही और प्रति मास ऋतु की विशेषताओं को व्यक्त कर मैना को कामोत्तेजित करने की चेष्टा करती रही, किन्तु मैना कुटनी की बातों में नहीं आयी।

इसी बीच लोरक की प्रेयसी चाँद की मृत्यु हो गयी और वह मैना के पास पुनः वापस आ गया और दोनों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

मैना सतवन्ती का कथा-सार

एक शहर में बालाकुँवर नामक न्याय प्रिय राजा रहता था। उसके चन्दा नामक सुन्दर पुत्री थी। उसी शहर में लोरक नामक ग्वाला भी रहता था। एक दिन छज्जे से चन्दा ने लोरक को देखा और वह उस पर आसक्त हो गयी। चन्दा ने लोरक को बुलाया तथा अपना आशय बताया और साथ में भाग चलने को कहा, इस पर लोरक ने कहा कि मेरे घर में मेरी पत्नी है, उसका नाम मैना है। चन्दा ने कहा, मैना को छोड़ो, मेरे साथ चलो, मेरे पास अपार सम्पत्ति है। चन्दा के सौन्दर्य ने उसे पहले ही आकृष्ट किये हुए था। वह चन्दा के आग्रह पर उसके साथ भाग गया।

राजा बालाकुँवर को जब इस बात का समाचार मिला तो उसने अपने सेवकों से कहा, मैना पर बहुत दिनों से मेरी दृष्टि है। अब मेरा काम आसान हो गया। एक चतुर कुटनी को बुलाया और मैना को राजा की ओर आकृष्ट करने का काम उसे सौंपा।

कुटनी ने मैना के पास जाकर कहा, तुम्हारी माँ को दूध नहीं था तो मैंने ही तुम्हें दूध पिलाया था। कुटनी ने मैना की दयनीय अवस्था देखकर लोरक को गाली देनी आरम्भ की। मैना ने कहा, तुम उन्हें गाली मत देना, वे मेरे पति हैं। कुटनी ने मैना से कहा, तू गुदड़ी में नहीं सुहाती, चाँद आकाश में ही भाता है। मैं तुम्हें बालाकुँवर से मिला दूँगी जो बड़ा वैभव सम्पन्न है। यह सुनकर मैना ने कुटनी से कहा, वैभव क्या है ? और उसने ऐसे तीन मित्रों की कहानी सुनायी, जिन्हें जंगल में सोने की ईंट मिली थी। एक मित्र ने भोजन में विष मिलाया, जिससे दोनों मित्र मर जायें और उसे पूरा सोना मिल जाये। शेष दोनों ने भोजन बनाने वाले को तलवार से मार दिया और भोजन करके स्वयं मर गये।

कुटनी ने कहा, लोरक चन्दा को यहाँ लाया तो तुम्हें दासी बनना पड़ेगा। और फिर एक सिपाही की कहानी सुनायी, जिसके दो पत्नियाँ थीं। इस पर मैना ने एक पतिव्रता स्त्री की कहानी सुनायी। अन्त में असफल होकर कुटनी वहाँ से चली गयी। राजा स्वयं कुटनी के साथ मैना के पास आया और कुटनी ने मैना को बहुत समझाया, किन्तु सफलता नहीं मिली। मैना राजा को देख कर सकपका गयी। मैना की सहायता के लिए अचानक एक 'पीर' वहाँ उपस्थित हुआ। राजा घबरा गया और उसने सिर भूमि पर रख कर क्षमा याचना की एवं मैना को माँ कह कर पुकारा। राजा बालाकुँवर ने स्वयं लोरक के पास अपने आदमी भेजे और लोरक के आने पर स्वयं उनके साथ मैना के पास गया। चन्दा भी लोरक की पत्नी बन कर रहने लगी।

राजा ने प्रजा को मैना के घर के सामने एकत्रित किया और मैना की भूरि-भूरि प्रशंसा की। बालाकुँवर ने लोरक को अपना राज्य देकर स्वयं फकीरी अपना ली। कवि मुल्ला गवासी ने दुआ के साथ काव्य का अन्त किया है :—

गवासी कमीने पो करना नज़र, दुआ हक़ सूँ मँगना मरे हक़ उपर।
हुआ नज़्म यो नांव सूँ सब तमाम, बहक़ मुहम्मद अली अल सलाम।

लोरक, चन्दा और मैना इन तीनों पात्रों को लेकर भारत में अनेक कहानियों का प्रचलन रहा है। सर्वप्रथम मौलाना दाऊद कृत चन्दायन में तीनों पात्रों का उल्लेख मिलता है। साधन, खेमदास एवं चतुरभुजदास कृत मधुमालती में लोरक की पत्नी मैना की कथा है। इनकी मूल कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दौलत काज़ी ने अपने काव्य 'सती मैना लोरक चन्दानी' में कुछ अन्तर अवश्य किया है किन्तु उसे भी मूल कथा से अलग नहीं किया जा सकता। उत्तर भारत में आज भी चन्दा, लोरक एवं मैना सतवन्ती के नाम से अनेक लोक गीत प्रचलित हैं। इन गीतों में मैना को पतिव्रता के रूप में चित्रित किया जाता है। इसके भोजपुरी रूप, मिर्जापुरी रूप, भागलपुरी रूप, छत्तीसगढ़ी रूप और संथाली रूप आदि हैं।

गवासी ने 'मैना सतवन्ती' की इसी कहानी को अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि ने स्वयं कहा है कि मैं स्त्रियों को शिक्षा देने के लिए एक पतिव्रता की

कहानी लिख रहा हूँ। कवि ने पतिव्रता को प्रमाणित करने के लिए मैना और कुटनी के द्वारा पाँच कहानियों को भी प्रस्तुत किया है। कुटनी यह सिद्ध करने का प्रयास करती है कि पतिव्रता स्त्रियाँ अपना जीवन नष्ट करती हैं और मैना कहानियों के द्वारा सिद्ध करती है कि सुख वैभव ही सब कुछ नहीं है प्रत्युत स्त्रियों के लिए उनका सत सबसे महान् है। इसमें कवि ने आध्यात्मिक शिक्षा की अपेक्षा नैतिक शिक्षा को अधिक प्रश्रय दिया है :—

कता हूँ किस्सा एक मुनव्वर बयां, शरकदार सत की सुनी सब ज़नां।
सुनो कान धर कर तुमीं बीबियाँ, शेखानियाँ पठानियाँ ओ मुगालियाँ।

भाषा-शैली

गवासी ने 'मैना सतवन्ती' काव्य में बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया है। इस काव्य का अधिकांश भाग मैना और कुटनी के वार्तालाप का है। इस वार्तालाप में यदि एक ओर सहानुभूति है तो दूसरी ओर क्रोध जन्य कटूक्तियाँ हैं। कुटनी ने लोरक को गँवार कहा तो मैना ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा :—

न होवे गावदी ओ चतुर राज है, मेरा पीव मेरा ओ सरताज है।

कुटनी कहती है—

कहीं भागवन्ती जलो तेरा भाग, जो खाती तू अपनी जवानी की आग।
हर यक बात करती है तू ज़ार जार, पड़े तेरे दामन में जलते अंगार।

इस पर मैना क्रुद्ध होकर दूती से कहती है—

बला जीव की मेरे पड़ो तुज उपर, लडो साँप बीछु तेरा जीव-जिगर।
× × ×
दगा देने मगती है कुटनी छिनाल, तू जा बेग याँ सू ऐ डायन खुसाट।

मैना के द्वारा कुटनी के प्रति छिनाल, डायन आदि अपशब्दों का प्रयोग किया गया है।

चरित्र-चित्रण

मुल्ला गवासी ने 'मैना सतवन्ती' के पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़ी कुशलता से किया है। इसमें मैना चरित्र एक आदर्श प्रस्तुत करता है। वह पतिव्रता नारी है। उसका पति एक अन्य स्त्री के साथ चला जाता है, फिर भी वह पतिपरायण बनी रहती है। वह किसी भी दशा में अपने पति की निन्दा सुनने के लिए तैयार नहीं होती है। वह उसे अपना आराध्य समझती है तथा पति के लिए प्राण न्योछावर करने को तत्पर है :—

मँगाये जो यूँ सीस लोरक अताल, मुहब्बत छुरी सूँ उतारूँ अताल।

मैना को कवि गवासी ने एक शीलवती स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि वह अपने पति के लिए व्याकुल रहती है फिर भी दूसरों के प्रति अच्छा व्यवहार करती है।

इस काव्य में दूसरा प्रमुख चरित्र-चित्रण दूती का है। कवि ने दूती को चतुर और मनोविज्ञान वेत्ता चित्रित किया है। वह मकर व जादू सब कुछ जानती है परी, दैत्य और शैतान सभी उसके चाकर हैं। उसका जादू बंगाल तक में चलता है किन्तु वह मैना की चारित्रिक दृढ़ता के समक्ष अपनी पराजय स्वीकारती है।

'मैना सतवन्ती' नारी पात्र प्रधान काव्य है। अतः लोरक के चरित्र का विकास नहीं हुआ है। केवल यही पता चलता है कि वह सरल स्वभाव का युवक है और बिना किसी प्रतिवाद अथवा सोचे विचारे चन्दा के साथ नगर छोड़कर जाने के लिए तैयार हो जाता है।

राजा बालाकुँवर का चरित्र भी उच्चकोटि का है क्योंकि पहले तो वह मैना से भोग करने को लालायित होता है, किन्तु जब उसे विदित होता है कि मैना एक पतिव्रता व सतवन्ती नारी है तो वह स्वयं लोरक को संदेश भेजकर बुलवाता है और दूती को दण्डित करता है तथा स्वयं जनता के सामने प्रस्तुत होकर अपना राज्य लोरक को सौंपकर संन्यास ले लेता है।

तूतीनामा

यह एक प्रौढ़ रचना है। वास्तव में इस ग्रन्थ को कवि के कला-विकास का दर्पण कहा जा सकता है। मुल्ला गवासी ने 'तूतीनामा' को एक रज्जब 1049 हिज्री (1640 ई०) में पूरा किया :—

बरस यक हज़ार होर चालीस पर नौ, हुए थे यूँ मोयाँ पुरोव्या हूँ तो।
लताफ़त भर मसनवी यूँ अजब, मुरत्तिब किया खुश सो पहली रज्जब।

काव्य का आरम्भ ईश-स्तुति से होता है :—

खुदाया जो दाना है तूँ गैब का, है सत्तार बन्दयां केरे ऐब का।
न आकार तुज है निरंकार तूँ, न चूँ व चेरा सूँ धरे कार तूँ।
सदा हुई आपसी खाता सो तूँच, जीवाँ मारता होर जिलाता सो तूँच।
तेरे राज़ ते कोई आगाह नै, तसूर कूँ तेरी तरफ राह नै।
किया खाक ते आदमी याक तूँ, करनहार आखिर कूँ फिर खाक तूँ।

देवदूत मुहम्मद साहब की प्रशंसा करते हुए कवि ने कहा है :—

रतन खास दरियाये लू लाक का, झलक लामकान नूर अफलाक का।
मुहम्मद नबी सैयदुल मुरसलीन, सदा रोशन उस ते है दुनिया व दीन।
अदम में तो आलम कूँ परवरदिगार, उसी के किया नूर सूँ आशकार।

तत्कालीन शासक सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह की प्रशंसा एक वीर सेनानी के रूप में की है :—

सरव दल सूँ तू जाय किस बाट ते, ज़मी घाबरी होवे झलकाट ते।
हो बेताब देख तुज जलालत की ताब, न मू पर खड़ा हो सके आफताब।
जो कड़ी नज़र सूँ चढावे तू यों, झडे डर तो बातां के पंज्यां के नह्यो।

और काव्य का अन्त इन शब्दों में किया है :—

इलाही जो दाना है असरार का, देवे तुज असर मेरी गुफ्तार का।
सर अफ़राज़ दोनों जहाँ पर करे, जो रहे आरज़ू कुछ न दिल में मेरे।
दुआ सूँ किया खत्म यो किताब, इलाही हुआ यो करे मुस्तजाब।

कथा का मूल स्रोत :

कविवर मुल्ला गवासी ने स्वीकार किया है कि 'तूतीनामा' फारसी 'तूतीनामा' का अनुवाद है :—

जो यूँ दास्ता वेबदल फारसी, मेरे इम्तहां का हुआ आरसी।

कवि ने 'बेबदल' शब्द के द्वारा यह भी स्पष्ट किया है कि इसमें यत्र-तत्र परिवर्तन है किन्तु यह सब मेरे मौलिक विचार हैं। जिससे यह एक नई मसनवी बन गई है :—

कि इस धात के नौ रतन रोलिया, होर ऐसी नवी मसनवी बोलिया।

मुल्ला गवासी के 'तूतीनामा' की कथा फारसी में लिखी मौलाना जियाउद्दीन कृत 'तूतीनामा' से ली गई है जिसकी रचना हिजरी सन् 730 में हुई थी किन्तु प्रो० हारुन खाँ शेरवानी का मत है कि "गवासी कृत 'तूतीनामा' संस्कृत के 'शुक सप्तति' ग्रन्थ के फारसी अनुवाद पर निर्भर है जो हिजरी सन् 730 (1329 ई०) में तैयार हुआ था।"[1] इस सम्बन्ध में श्री वाचस्पति गैरोला का मत है—"शुक सप्तति के नाम से एक अज्ञात-कालीन अज्ञात नामा लेखक की कथा कृति उपलब्ध है। इसका चौदहवीं शताब्दी में एक फारसी अनुवाद हो चुका था। हेमचन्द्र भी इस ग्रन्थ से परिचित था। अतः इसका रचना-काल दसवीं शताब्दी से पहले प्रतीत होता है।"[2]

संस्कृत की शुक सप्तति में कुल सत्तर कहानियाँ हैं और श्री ज़ियाउद्दीन बख्शी के ग्रन्थ में केवल 52 कहानियाँ हैं। सैयद मुहम्मद क़ादरी ने श्री बख्शी की 52 कहानियों में से केवल 35 कहानियों का सरल फारसी में हिजरी सन् 1092 में अनुवाद किया था और गवासी ने कविता बद्ध करते समय इनमें से केवल 45 कहानियों को चुना। श्री राम शर्मा ने शुक सप्तति और तूतीनामा की तुलना विस्तार-पूर्वक की है। उनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं—"फारसी के तूतीनामे में शुक सप्तति का

---

1. प्रो० हारुन खाँ शेरवानी - कल्चरल एस्पेक्ट्स आफ दि रेन आफ अब्दुल्ला कुत्ब शाह (केरल)— इस्लामिक कल्चर, पृ० 52, जनवरी 1967
2. वाचस्पति गैरोला—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 921

अनुवाद मानना उचित नहीं है। यह कहना उचित नहीं होगा कि भारत में फारसी में जो कुछ गया, वह संस्कृत के माध्यम से ही गया। भारत के अनेक फारसी लेखकों का ध्यान लोक कथाओं पर गया। उन लोगों ने लोक कथाओं को सीधे फारसी में लिखा। इन कथाओं के आधार पर काव्य लिखे।"[1] यहाँ पर यह भी द्रष्टव्य है कि गवासी के 'तूतीनामा' की कुछ कहानियाँ अभारतीय हैं। उदाहरणार्थ—गवासी के ग्रन्थ की पच्चीसवीं कहानी बहराम और छब्बीसवीं कहानी अब्दुल मलक से सम्बन्धित है। अतः यह कहा जा सकता है कि कवि ने कहानी को फारसी स्रोत से लिया है और उसे अपने ढंग से प्रस्तुत किया है।

मुल्ला गवासी ने अपने काव्य 'तूतीनामा' में कहानियों की गणना नहीं दी है प्रत्युत रातों की गणना दी है।

कथा-सार

एक धनी व्यापारी के घर में बहुत मनौतियों एवं प्रार्थनाओं के फलस्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा होने पर पिता ने उसका विवाह एक सुन्दर युवती से कर दिया। धनिक पुत्र को तोता व मैना से बहुत प्रेम था क्योंकि उसने इन्हीं पक्षियों से देश-देशान्तर की बातें सुनकर ज्ञानार्जन किया था। युवक ने व्यापार के लिए जाते समय दोनों पक्षियों को अपनी पत्नी के देख-रेख में रखा। युवक को घर लौटने में समय लग गया और इधर पत्नी की किसी से आँख लड़ गयी। दूती के द्वारा मुलाकात का समय और स्थान निश्चित किया गया। मैना ने युवती को इस बुरे काम से रोकना चाहा, किन्तु युवती को क्रोध आ गया और मैना को मृत्यु के घाट उतार दिया। इसके बाद युवती ने तोते से परामर्श किया। तोते ने कहा, मैं तुम्हें मना नहीं करता, पर इसका उल्लेख किसी से न करना, वरन् तुम्हारा भी वही हाल होगा, जो अमुक रानी का हुआ था। युवती ने उत्सुक होकर पूछा, क्या हुआ? तोते ने कहानी सुनाना शुरू किया—तोते ने पैंतालिस कहानियों को सुनाया। इसमें एक पतिव्रता स्त्री की कही, दुश्चरित्र की कहानी, एक जुए में सर्वस्व हारने वाले ब्राह्मण की कहानी, प्रेत कन्या की जो मानव से प्रेम करती थी, एक रंगे सियार की कहानी, एक शेर का चमड़ा ओढ़ने वाले गधे की कहानी, तोता बन्दर की कहानी, तोता और राजा की कहानी, रोम का बादशाह और तोता की कहानी, पुरुष की क्रूरता की कहानी, स्त्री की बेवफाई की कहानी, शत्रु को आश्रय मत दो, मित्र का अनुकरण मत करो आदि। उन्नीसवीं रात की कहानी के पश्चात् व्यापारी युवक घर वापस आया। तोता ने युवक से कहा, मैं पीछे से तुम्हारी सेवा करता रहा। मुझे पिंजरे से मुक्त करने की प्रतिज्ञा करो, तो मैं तुम्हें सुनाऊँ। युवक ने मुक्त करने का वचन दिया। तोते ने सब कुछ कह सुनाया और कहा कि मैंने हर रात कहानी सुना कर उसे रोका। कहानी सुनने के बाद युवक ने तोते को मुक्त कर दिया और अपनी पत्नी

---

1. डा० श्री राम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 287

को मौत के घाट उतार दिया एवं धन दौलत गरीबों में बाँट कर भक्ति में लीन हो गया।

काव्य-कला

गवासी ने फारसी गद्य रचना को दक्खिनी में पद्यबद्ध करते समय उसमें काव्य सौंदर्य लाने का विशेष ध्यान रखा है। काव्य में हर समय सुन्दर-सुन्दर उपमाओं और रूपकों का प्रयोग किया है। कवि ने सूर्य को एक स्वर्णिम पक्षी और चन्द्रमा को बगुला पक्षी के रूपक में बड़े सुन्दर ढंग से बाँधा है :—

सुन्ने का पंखी सूर जूं सैर कर, चल्या गुर्ब के आशयाने भितर।
बगूला रुपे सार का साफ चांद, किया देख परवाज़ अंचल सर कूं बांद।

इसकी भाषा परिष्कृत है। इसमें जनसाधारण में बोल चाल के मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग कवि ने किया है। गवासी का सम्बन्ध यद्यपि दरबारों से था किन्तु उसने बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया है :—

तुज देक होर शाहज़ादी कूँ देक, तेरे यूं को देक कैकबादी कूँ देक।
जमी हो गगन सूं न कर रीस तूं, तुहाटी सूं खुजला नको सीस तूं।
हती सात गांडे नको खाने जा, नको संग तू सांप सू ल्याने जा।
सदा सिर कूँ बस यक भभूती तुजे, यू दो वोट की बस लंगोटी तुजे।

प्रेम का महत्व

गवासी ने सर्वत्र प्रेम के महत्व को उद्घाटित किया है। उसने प्रेम की पवित्रता को स्वीकार करते हुए उसे वासना से पृथक माना है। कवि के मतानुसार प्रेम का उद्देश्य क्षणिक सुख नहीं है। प्रेम की अग्नि मनुष्य को सांसारिक सुख की ओर जाने से रोकती है और मन को केन्द्र-बिन्दु पर पहुँचा कर अचेतन बनाती है। वेदना ही प्रेम का लक्ष्य होता है। वासना में भी वेदना है परन्तु उसमें लालसा होती है, जबकि वासना रहित प्रेम में कोई लालसा नहीं होती और प्रेमी कभी सुख की साँस नहीं लेता :—

पिरत की अगन की बड़ी कुछ है सेक, अगर तूं है आरिफ़ तो सन्देश देक।
मजाजी अछो या हक़ीक़ी अछै, करे जिव की पर्वा न ज़र्रा च वो।

मुल्ला गवासी ने आख्यानक काव्यों के अतिरिक्त ग़ज़ल (प्रेम के गीत) और क़सीदे (प्रशंसा के गीत) भी लिखे हैं। इनकी ग़ज़लों की संख्या कई सौ है। इनमें ग़ज़लियात के गुण (प्रेम की बात) के साथ-साथ चारित्रिक विषय भी हैं। इन्होंने भी सुलतान क़ुली क़ुत्ब शाह की भाँति हाफ़िज़ की ग़ज़लों को दक्खिनी में अनुवाद किया है और उसी भूमि पर लिखा है। इनकी ग़ज़लों में प्रेम की प्रशंसा के साथ-साथ तसव्वुफ भी पाया जाता है। गवासी ग़ज़ल, कसीदे के अतिरिक्त कुछ मर्सियों (शोक गीत) भी लिखे हैं। इस कला में भी कवि सफल हुआ है। गवासी के एक मर्सिये के कुछ शेर प्रस्तुत है :—

दिसता नहीं करूँ क्या वह बयान कर्बला का,
फिरता हूँ ज़ार हूँ हैरान कर्बला का।
आसमान ने खुदाया जिब्राइल ऊतर को आया,
रोता ऊपर से लाया फरमान कर्बला का।
× × × ×
गवासिया सतर आलम कूँ सब कहा है,
गोया यूँ मर्सिया है रेहान कर्बला का।

सैयद उमीदी

सैयद उमीदी के जीवनवृत के सम्बन्ध में कोई विशेष ज्ञातव्य नहीं ज्ञात हो सका है। इनके पिता प्रसिद्ध साधक ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ थे और ये हैदराबाद में रहते थे।[1] कविवर उमीदी ने अपने गुरु का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

व गर नै तो मुंज हैदर सानी कुन, लिजा कर नूं अनपडा ऐ शाह दकन।
है शाह अबुल हसन आज उसका खिताब, शफा पाये हैं आसियाँ बेहिसाब।
ऐ शह बुल हसन पीर है दस्तगीर, मेरा ऐब कागज़ तेरा लुत्फ नीर।

सैयद उमीदी, शाह अबुल हसन हैदर (द्वितीय) के शिष्य थे। इन्होंने पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा करते हुए अपने को सैयद वंश का घोषित किया है :—

तेरा आल हूँ होर सैयद हूँ पाक, सकल सैयदाँ का सो हूँ पानूँ ख़ाक।

हज़रत अली के गुणों की चर्चा करते हुए कविवर उमीदी ने अपना सम्बन्ध उनसे जोड़ा है :—

व गर नै तो सानी मुहम्मद कने, मुंजे भेद दे उसकी खिदमत मने।
वही ज़िद में वही पीर है, अगन ऐब उसका क़दम नेर है।
सदर दीं देवा है तो दीन का, तो रोशन है घर तुज ते जगती का।

इससे स्पष्ट होता है कि ये हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज के सुपुत्र थे। किन्तु इन्होंने अपना नाम और पिता का नाम कहीं नहीं लिखा है। केवल हस्तलिखित प्रति पर लिखा हुआ है :—

"किस्सा शमा व परवाना अज़ गुफ्तार सैयद उमीदी"[2]

इन्होंने 'शमा व परवाना' नामक काव्य में अपना काव्य नाम 'उमीदी' लिखा है :—

उमीदी न कुछ मंग तो पीर कन, मंगेगा तो मंग पीर कूं पीर कन।
उमीदी जिसे पीर कहते हैं आज, सो इस्लाम के शहर का है व राज़।
उमीदी न उस रूह कूँ नैरान, न औरत, न पंगरी, न घर, माल धन।
उमीदी शरीअत की जितनी है धान, बती धान वी है उसी धात सात।

---

1. प्रो॰ मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—बुझते चिराग, पृ॰ 309
2. पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ के कोने में लिखा है 'शमा व परवाना' की एक प्रति श्री अहमद खाँ दरवेश, हैदराबाद के पास है।

'शमा व परवाना' काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1070 है। कवि ने स्वयं लिखा है :—

जो हिजरत नबी का अथा यक हज़ार, सत्तर पर बरस वह हुआ था शुमार।

रचना तिथि से स्पष्ट होता है कि कविवर उमीदी, अब्दुल्लाह क़ुत्ब शाह के शासन काल में विद्यमान था।

सैयद उमीदी ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि इस काव्य में 360 शेर हैं और कहा है कि वर्ष में तीन सौ साठ दिन व रात होते हैं इसलिए मैंने एक शेर एक-एक रात में लिखा है :—

यों बैतां तू है तीन सौ साठ सब, हर यक बैत है यो हर यक रोज़ व शव।
यों सब मिलकर बैतां हुए एक साल, अछी जग में सालां अहे एक साल।

किन्तु जो प्रति श्री अहमद खाँ दरबेश के पास है उसमें केवल 338 शेर हैं और अभी तक इस काव्य की केवल एक ही पांडुलिपि का पता चल सका है। अत: शेर संख्या के विषय में निश्चित कहना कठिन है। परन्तु जब कवि ने स्वयं शेरों की संख्या दी है तो उसे ही हमें प्रमाणित मानना चाहिए।

कविवर उमीदी किसी शासक के आश्रय में नहीं थे। अत: इन्होंने किसी शासक की प्रशंसा नहीं की है। न ही इसने किसी के निर्देशन-निवेदन पर काव्य की रचना की है। पुस्तक से पता नहीं चलता कि यह किसी अन्य पुस्तक का अनुवाद है या अनुकृति है। कवि कहता है कि इसमें एक काव्य लिखने की उमंग आयी और इसने 'शमा व परवाना' नामक काव्य की रचना की। यद्यपि इससे पहले भी कई काव्य इस प्रकार के लिखे गये हैं लेकिन यह काव्य अपने आप में भिन्न है। कवि ने स्वयं इसके सम्बन्ध में कहा है :—

उमीदी नवा गंज कुच खोल लूं, दो कानां के कानां मनै रोल तूं।
यो किस्सा न अव्वल हुआ था सो कोई, किया हूँ नवा अखतरा दिल से मैं।
न किसी बुज़ुर्गां ने इशारत हुआ, न कुच शाह ते मुंज इजाज़त हुआ।
मंजे तबअ आज़माई खातिर रफीक़, खिया शेर कर शोर ताज़ा तरीक़।
अगर किस बुज़ुर्गां ते होता रज़ा, तो कहना किस्सा वा लज़्ज़त वामज़ा।
व गर शह ते फरमान होता मुंजे, बड़ा कर बड़ा होता मुंजे।
तू कहता किते फरह की दास्तां, किते तरह की शरह की दास्तां।

शमा व परवाना का कथा-सार

एक दिन एक बाग में जानवर (चिड़ियाँ) आये और वहाँ रुक गये। मैना ने उन सबसे कहा, पश्चिम की ओर शहर है जिसको अहले नजफ़ शाह कहते हैं, उसका बादशाह सुलतान-ए-शाम है और रूमी उसको बदरदीं कहते हैं। मोरज उसका नेता है और अतार दबीर है। तुर्फ़ मुश्तरी और जहल जशी मंत्री है। उनका सेनापति मरीरन है। ज़हरा कोषाध्यक्ष है। उसका महल आसमान से ऊँचा है जिसका नाम

गगन कोट है जिसमें बाहर बुर्ज हैं और बाहर द्वार है। बादल उसके प्यार हैं और बिजुली उसकी तोप है। उसके गोदाम असंख्य हीरे जवाहर से भरे हुए हैं।

सुलतान के एक पुत्री है जो परी और हूर से भी अधिक सुन्दर है। चाँद और सूर्य से अधिक उज्ज्वल है। उसके सौन्दर्य से रात्रि भी रोशन हो जाती है। उसके लम्बे काले बाल सुन्दर एवं घुंघराले हैं। उसका नाम है शमा। उसका सौन्दर्य देखकर सूर्य अपनी ज्योति को भूल जायेगा। अत: वह दिन में बाहर नहीं निकलती। वह सूर्य और चन्द्रमा का दीपक है। वह सुलतान-ए-शाम के घर की रौनक है। उसका हृदय मोम से भी नर्म और तबियत आग से अधिक गर्म है। यदि कोई प्रेम करना चाहे तो उसे शमा से करना चाहिए।

मैना की बातों को सुनकर पक्षियों ने धन्यवाद कहा। परवाना उसके सौन्दर्य और प्रकाश की विशेषताएँ सुनकर मूर्छित हो गया। सात दिन तक एक कोने में बिना पानी दाना के पड़ा रहा। शीरक ने परवाना की ऐसी दशा देखकर हुमा को बुलाया और हुमा ने उसे आशा दिलाई और मुल्ला-चुगद को बुलाकर उसके भविष्य के बारे में पूछा। मुल्ला चुगद ने कहा, शमा आग है और परवाना मिट्टी। दोनों का सम्बन्ध हो सकता है और सदैव ये संसार में स्मरण किये जायेंगे।

हुमा ने प्रसन्न होकर सुलतान-ए-शाम को प्रेम से भरा हुआ एक सुन्दर पत्र लिखा और हुदहुद को बुलाकर उसके सिर में बाँध दिया। वह शाम देश में पहुँचा। चाँद ने पत्र को देखा और उसे अपने सीने से लगा लिया। चाँद में जो धब्बे दिखाई देते हैं, ये उस पत्र के शब्द हैं। सुलतान-ए-शाम के दरबार में पहुँचकर वह पत्र सुलतान को दिया।

सुलतान संदेश को स्वीकार करते हुए उसने हुदहुद को ताज पहनाया। सुलतान ने दहेज की तैयारी शुरू कर दी और जो हो सकता था उसे देकर अपने मंत्री लुकमान के साथ अपनी पुत्री भेज दी। दोनों हुमा के शहर विस्तान में पहुँचे। हुमा ने बहुत हर्ष व्यक्त किया और हंस को आदेश दिया कि पन्द्रह दिन तक खुशी मनायी जाये। इस उत्सव में पक्षियों के अतिरिक्त दीमक और मकड़ियाँ भी बुलाई गयीं। पक्षियों को उनके रंग-रूप, चाल-ढाल और ध्वनि के अनुसार काम सौंपे गये। इस अवसर पर सभी पक्षियों ने अपनी-अपनी कला प्रस्तुत की और अन्त में दुल्हन और दूल्हा ने एक दूसरे पर केवड़ा और गुलाब छिड़का। इसी बीच मंत्री लुकमान आया और तोती ने काज़ी के रूप में आकर चिराग की वकालत को तथा कुलंग एवं कछुए के समक्ष मंगलसूत्र बाँधा। दावत और पुरस्कार के बाद फूल और पान बाँटे गये।

चन्द्रमा ने दोनों को मिलाने का काम किया। इसके बाद दुल्हन को फानूस (लैम्प की चिमनी) की पालकी में बैठाकर ले चले और हुमा दूर से इस तमाशे को देखता था। जब निकट आये तो दोनों (दूल्हा और दुल्हन) ने हुमा के पैर छुए फिर उन्हें दुल्हन के कमरे में भेज दिया गया। दोनों रात भर जागे थे इसलिए शीघ्र ही

सो गये। जब परवाना की नींद खुली तो देखता है कि शमा उसके पहलू में गाढ़ी निद्रा में है। जैसे ही परवाना का हाथ लगा वह जग गई और परवाना को देखकर वह शर्म से मोम की तरह गलने लगी। परवाना, शमा पर न्योछावर होने लगा। जब शमा ने भागना चाहा तो उसके पहलू की एक किरण परवाना के हाथ आ गई जो अब प्रलय के दिन तक उसके हाथ में रहेगी। इस प्रकार परवाना और शमा की मुलाकात हुई।

भाषा

कविवर उमीदी ने अपने काव्य में बोल-चाल की भाषा के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है—मैं—मनैं, को—कूं, वह—वो, मुझ—मुंजे, मुंह—मूं, कहकर-ककर, जलायेंगे और आयेंगे—जलानगे और आनगे, वही—वापच, तेरा ही—तोरायच, मेरा ही —मेरायच, में ही—मंयच आदि। इसमें प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का अच्छा प्रयोग हुआ है।

अन्य सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों के नायकों की भाँति इसमें नायक (परवाना) को कोई कठिनाई नहीं होती है क्योंकि इसकी प्रेयसी को अन्य लोगों ने तलाश कर ला दिया। इसमें कहा गया है कि सच्चा प्रेमी वही है जो दुनिया या दीन की चिन्ता न करके उसे अपनाये। अन्त में कवि ने इश्क हकीक़ी की ओर संकेत किया है :—

उमीदी जो कई आशिक पाक है, सदा इश्क बाजी में चालाक है।
इसे वस्ता सों तिल की मंजिल अहे, यों मंजिल सो आसमान व मुश्किल अहे।
बसा सौ बरस लग जायेंगे मदाम, तो अनपड़ी में जाहिद बजां उस मुकाम।
अगर इसमें यक देस गाफिल हुए, तो गुमराह होर हलें वो पर मूए।
× × ×
तो पावेगे वैसा मरातिब हमे, मरातिब की क्यों कई कि रातिब इमे।
उमीदी यो आशिक ने जब होवता, तो माशूक कातिब हंसा होवता।

मुल्ला नुसरती

बीजापुर का प्रसिद्ध कवि है। मूलनाम मुहम्मद नुसरत है और काव्य नाम नुसरती है। ये कर्नाटक के अधिकारी के निकट सम्बन्धी थे।[1] इनका जन्म कर्नाटक में ही हुआ था।[2] ये कर्नाटक के निवासी भी थे।[3] मौलवी अब्दुल हक़ ने नुसरती के पिता का नाम शेख मखदूम बताया है।[4] नुसरती ने अपने पिता के सम्बन्ध में लिखा है—"मेरे पिता एक शूर वीर सेनानी थे और सुलतान की सेना के सेनापति भी

1. मौलवी अब्दुल जब्बार खाँ मल्कापुरी—शुअरा-ए-दकन, पृ० 1091
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—तजकिए-ए-मखतूतात, पृ० 41
3. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 224
4. डा० मौलवी अब्दुल हक़—मुल्ला नुसरती, पृ० 11

थे। जीवन भर बादशाही आदेशों का पालन करते रहे और बादशाह के लिए जान न्योछावर करने के लिए कटिबद्ध रहते थे। अपने जीवन को निष्कलंक रखने का उन्होंने सदैव प्रयत्न किया।"[1] मौलवी अब्दुल हक़ ने नुसरती के दो भाइयों—शेख मंसूर और शेख अब्दुर्रहमान का भी उल्लेख किया है।[2] इनके बड़े भाई शेख मंसूर सरकारी नौकर थे और छोटे भाई शेख अब्दुर्रहमान पिता के समान सेवा में थे। नुसरती के दोनों भाइयों का होना इससे भी प्रमाणित होता है कि नुसरती ने अपने ग्रंथ 'अलीनामा' में शोक व्यक्त किया है :—

दो बाज़ू मेरे दीन व दुनिया के ज़ोर, तुटे थे सो था जीव में मुंज ऐन शोर।
जमन जुग दिखत दिन को मुंज़ बाग़ बाग, दिया था फलक दाग़ बलाए दाग़।

नुसरती के कोई पुत्र नहीं था। केवल एक पुत्री थी जिसकी सन्तान अब तक बीजापुर में निवास करती है।[3]

कविवर नुसरती ने अपनी शिक्षा-दीक्षा का श्रेय अपने पिता को दिया है। नुसरती ने स्वयं लिखा है कि मेरी शिक्षा और प्रशिक्षण पर दृष्टि रखने के लिए मेरे पिता कभी भी मुझे अपने से अलग नहीं रहने देते थे और सुशिक्षा के लिए सभाओं में ले जाते थे :—

नज़र धर के मुंज तरबियत में सदा, रंख्या ने कधी मुंज अपस में जुदा।
सिकच मुंज ते जाने को निस दिन मने, फिरे लई बुज़ुर्गां की मजलिस मने।

कविवर नुसरती ने अपने प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में 'गुलशन-ए-इश्क' नामक प्रेमाख्यानक काव्य में चर्चा दी है। इन्होंने लिखा है कि हमारा पारिवारिक पेशा सिपाहगीरी है। नुसरती स्वयं सुलतान की सेना में एक सैनिक थे :—

जो मैं असल में सिपाही अथा, फिदाचर दर्गह-ए-पादशाही अथा।

कविवर नुसरती सुलतान अली आदिल शाह के प्रति आदर और श्रद्धा रखता था क्योंकि उसने ही मुल्ला नुसरती को एक सैनिक से कवि के रूप में उजागर किया था :—

मुंजे तरबियत कर तू ज़ाहिर किया, शऊर इस हुनर का दे शाइर किया।

सुलतान अली आदिल शाह स्वयं उच्चकोटि का कवि था और कवियों का प्रशंसक भी था। वह कवियों की प्रतिभा को पहचानता था। नुसरती तो उसे अपना काव्य गुरू ही स्वीकारता है :—

मुंज उस्ताद उस्ताद-ए-आलम अछे, जिता इल्म अज़बर जिसे जम अछे।

मुल्ला नुसरती ने स्वयं लिखा है "अली आदिल शाह (द्वितीय) के साथ उसकी घनिष्ठता थी। मैं सुलतान (अली आदिल शाह) का एक पुराना सेवक था। वे मुझसे

---

1. डा० मौलवी अब्दुल हक़—मुल्ला नुसरती, पृ० 30
2. वही, पृ० 10
3. वही, पृ० 12

स्नेह करते थे। मैं उनसे कभी अलग नहीं होता था। मेरा पालन-पोषण उ
ही किया और जब मुझे कुछ शऊर (ढंग) हुआ तो मैंने पुस्तकें लिखीं। मुझमें ई
के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। एक दिन मैंने स्वयं को भाग्यशाली पाया। मेरा
प्रदर्शक मुझे बादशाह के यहाँ ले गया। उस समय मेरा आश्रयदाता नवयुवक
और उसने गुण को पहचाना"[1] नुसरती ने उन्नति करके आदिल शाह के शा
काल में राजकवि के उच्चासन को प्राप्त किया था।

कविवर नुसरती सादा जीवन व्यतीत करते थे। वे एक चरित्रवान व्यक्ति थे
इनको जो पैसा मिलता था उसमें स्वयं खाते थे और गरीबों एवं भिखारियों में ब
देते थे। इन्होंने अपनी कविता के द्वारा कीर्ति बढ़ाने का प्रयत्न कभी नहीं किया
इनकी केवल एक इच्छा थी कि इनकी कविता लोगों के लिए और कवियों के लि
उपयोगी सिद्ध हो :—

मुझे खूब कामा की तौफीक दे, अछे हक़ सो कर मुंज पर तहकीक दे।
मेरे शेर सूं ज़िन्दा कर हर शऊर, समज मुज वचन ते तू कर जग में पर।
ख्यालां कूं मुज बाव की ओज दे, तबीयत कूं दरया की निज मौज दे।

कविवर नुसरती का सम्बन्ध ख्वाजा बन्दा नवाज की परम्परा से था। इन्होंने
अपनी रचनाओं में उनकी प्रशंसा की हैं। जिस भूमि में सूफी साधक ख्वाजा बन्दा
नवाज़ दफन किये गये, उसका वर्णन कवि नुसरती ने इस प्रकार किया है :—

दखन की अजब बख्तवर खाक़ है, कि जिस बीच तुज खाब गह पाक है।
यह मुई किस खतर ते न होय हौलनाक, कि ह कल ह तिस गुल तेरा कब्र पाक।

मुल्ला नुसरती की मृत्यु के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा
सकता है क्योंकि इस ओर विद्वान मतैक्य नहीं हैं। सालार जंग म्यूजियम पुस्तकालय
में नुसरती के प्रसिद्ध काव्य 'गुलशन-ए-इश्क' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ हैं जिनमें
से दो प्रतियों में लिपिकों ने नुसरती के देहान्त के सम्बन्ध में लिखा है :—

ज़र्ब शमशीर सूं ये दुनिया छोड़, जाके जन्नत के घर में खुश हो रहे।
साल-ए-तारीख आ मलायक ले, यूं कहे नुसरती शहीद अहै।

इस पद से स्पष्ट होता है कि कवि नुसरती हिजरी सन् 1085 में शहीद हुए।
मौलवी मुहम्मद अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी ने नुसरती का देहान्त हिज्री सन्
1095 में माना है।[2] कुछ लोगों ने मुल्ला नुसरती का देहान्त हिजरी सन् 1105
स्वीकार किया है।[3] जनश्रुति के आधार पर नुसरती की मृत्यु स्वाभाविक ढंग से
नहीं हुई थी, किसी ने उनका वध किया था। पांडुलिपियों में भी 'शहीद' शब्द का
प्रयोग हुआ है। इतना होते हुए भी मृत्यु के सम्बन्ध में ठीक-ठीक कह पाना कठिन

1. डा० अब्दुल हक़—मुल्ला नुसरती, पृ० 31
2. मौलाना मुहम्मद अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी—शुअरा-ए-दकन, पृ० 109
3. डा० श्रीराम शर्मा दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 208

है। दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध शोधकर्ता और विद्वान श्री नसीरुद्दीन हाशमी ने हिजरी सन् 1085 में नुसरती के देहान्त को उचित बताया है।[1]

मुल्ला नुसरती के तीन ग्रंथ प्रमुख हैं : --

(1) गुलशन-ए-इश्क (2) अलीनामा (3) तारीख-ए-इश्कन्दरी।

डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर ने नुसरती द्वारा रचित 'गुलदस्त-ए-इश्क'[2] की भी सूचना दी है किन्तु मुझे यह पुस्तक देखने को नहीं मिली। इन्होंने लिखा है कि इसमें ग़ज़लों का संकलन है। मुल्ला नुसरती ने कई कसीदों और रुबाइयों की भी रचना की है।

गुलशन-ए-इश्क

मुल्ला नुसरती की प्रथम दक्खिनी रचना 'गुलशन-ए-इश्क' है जो अत्यन्त लोकप्रिय और बहुचर्चित रही है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1086 है :—

किया इसकी तारीख यूं हिजरती, मुबारक यूं है इदिय-ए-नुसरती।

इसमें 'हदिए-ए-नुसरती' की संख्या को जोड़ने से स्पष्ट होता है कि इन्होंने 'गुलशन-ए-इश्क' की रचना हिजरी सन् 1086 में की।

कविवर मुल्ला नुसरती ने अली आदिल शाह का यशोगान समसामयिक शासक के रूप में किया है :—

खसूसन अली शाह आदिल अली, तेरा नांव कारी जो है अतिबली।
ओ मुंज मनकूँ पर्वर्दा बेहतर किया, मुवा साँसों सब जग मुअत्तर किया।

कथा का मूल स्रोत

नुसरती का काव्य 'गुलशन-ए-इश्क' और उत्तर भारत के सूफ़ी साधक शेख अब्दुल्लाह मंझन की रचना 'मधुमालती' में समानता है। दोनों कथाओं के तुलना करने से स्पष्ट होता है कि दोनों की कथा एक ही है। इसमें नाम मात्र का अन्तर है—नायक-नायिक वही है एवं दृश्यों तथा घटनाओं में अन्तर नहीं है। यदि अन्तर है तो केवल कुछ नामों में है जो इस प्रकार है :—

मंझन कृत मधुमालती	नुसरती कृत गुलशन-ए-इश्क
1. कनैगिरि गढ़ के राजा सूरजभान का पुत्र राजकुमार मनोहर।	1. कनक गिरि के राजा विक्रम का पुत्र राजकुमार मनोहर।
2. महारस नगर के राजा विक्रमराय की पुत्री राजकुमारी मधुमालती।	2. महारस नगर के राजा धर्मराज की पुत्री राजकुमारी मधुमालती।

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 225
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 46

3. चिति विस्राम के राजा चित्रसेन की पुत्री राजकुमारी प्रेमा।	3. कंचन नगर के राजा सूरजभान की पुत्री राजकुमारी चम्पावती।
4. पानैगिरि गढ़ का राजकुमार ताराचन्द।	4 तगलग नगर का राजकुमार चंद्रसेन।
5. सूरजभान ने बारह वर्ष तापस की सेवा की और तापस ने प्रसन्न होकर पिण्ड दिया, उसे राजा ने रानी को खिलाया और पुत्र ने जन्म लिया।	5. विक्रम भोजन करने बैठा कि फकीर ने सदा दी, राजा थाल फकीर को देने के लिए बाहर आया। फकीर ने विक्रम को देखते ही कहा, बाँझ के घर का अन्न नहीं ग्रहण कर सकता और चला गया। राजा फकीर को ढूँढ़ने लगा, परियों की सहायता से फकीर के पास पहुँचा और फकीर ने उसे एक फल दिया। फिर राजा परियों की सहायता से घर वापस आया और रानी को खिलाता है, पुत्र का जन्म हुआ।

नुसरती ने यह लिखा है कि ईद का त्योहार था। लोग ईद की नमाज़ अदा करके आपस में ईद मिल रहे थे। कवि नुसरती भी ईद की खुशी मना रहा था और अपने मित्र से ईद मिलने के लिए गया। मित्र ने उससे कहा :—

कि किया शाइरा फारसी खुश कलाम, गये कर अपस फन में हिकमत तमाम।
वलेकिन दकन यू रह्या हो कुहन, न कोई खूब किस्सा कह्या नेक फ़न।

काव्य-प्रेमी अब्दुस्समद नामक व्यक्ति भी मित्र के घर में था। वह नुसरती की प्रतिभा से अच्छी तरह अवगत था। उसने नुसरती से आग्रह किया :—

जेते जग के किस्याँ में किस्सा नवल, सो मदमालती का च है बेमिसाल।

इससे स्पष्ट है कि मंझन कृत मधुमालती उस समय दक्षिण भारत में भी प्रसिद्ध थी किन्तु कवि नुसरती ने उसका उल्लेख अपने काव्य में नहीं किया है।

कविवर शेख अब्दुल्लाह मंझन ने मधुमालती की रचना हिजरी सन् 952 में की। डा० अब्दुल हक़ ने लिखा है कि फारसी में इसी कथा के आधार पर 'किस्स-ए-कुँअर मनोहर राव मदमालती' नामक आख्यानक काव्य हिजरी सन् 1059 में लिखा गया। इसका रचयिता कौन है ? यह मालूम नहीं हो सका। एक और रचना आक़िल खाँ राजी कृत 'मसनवी माह व महर' हिजरी सन् 1065 की है।[1]

मंझन ने अपनी रचना का मूल स्रोत प्राचीन भारतीय लोक-कथा बताया है किन्तु नुसरती इस सम्बन्ध में चुप्पी साधे हैं। नुसरती का रचना-काल हिजरी सन्

1. डा० अब्दुल हक़—मुल्ला नुसरती, पृ० 17-18

1085 है अर्थात् उपर्युक्त सभी रचनाओं के बाद की रचना है। अतः यह कहा जा सकता है कि नुसरती ने उनमें से किसी को आधार बनाया होगा अथवा कुछ संभावना यह भी है कि मंझन कृत मधुमालती को ही आधार बनाया हो।

कथा-सार

कनक गिरि का राजा विक्रम सन्तान के अभाव में दुखी रहता था। एक दिन राजा भोजन करने बैठा था किसी फकीर ने सदा दी। राजा स्वयं थाल लेकर फ़कीर के पास गया। राजा को देखते ही फकीर वहाँ से जाने लगा। राजा के अनुरोध पर फकीर ने कहा, बाँझ के घर का अन्न मैं नहीं खाता। राजा ने यह बात रानी से कही। रानी ने कहा, जाओ साधु से सन्तान प्राप्ति का उपाय पूछो, आपके वापस आने तक मैं राजकाज देखूंगी।

राजा उस साधु की खोज में घर से निकला। राजा बहुत दिन तक जंगलों में भटकता रहा। एक दिन राजा की कुछ परियों से भेंट हुई और राजा के अनुरोध पर परियों ने राजा को साधु के पास पहुँचाया। राजा साधु की सेवा में छः मास रहा। साधु प्रसन्न होकर राजा को एक फल दिया और कहा, घर जाओ, इसे रानी के साथ खाना। राजा ने परियों का दिया हुआ बाल जलाया और परियाँ उपस्थित हो गईं। उनकी सहायता से राजा घर वापस आया।

इधर रानी ने राजा के बीमार होने की घोषणा कर दी थी, यदि कोई राजा से मिलने आता तो उसे राजमहल में जाने की मनाही कर दी। जिस दिन राजा लौटकर आया उसी दिन स्वस्थ होने की घोषणा की।

कुछ समय पश्चात् राजा को कुंवर प्राप्त हुआ। उसका नाम मनोहर रखा गया। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि जब राजकुमार चौदह वर्ष एक माह का होगा तो उस पर विपत्ति आयेगी।

राजकुमार जब चौदह वर्ष और एक माह का हुआ तो राजकुमार के उद्यान में कुछ परियाँ आयीं। परियों ने राजकुमार को देखकर सोचा कि इतने सुन्दर युवक का जोड़ा कहाँ है? परियों ने पता लगाया—सात समुद्र पार धर्मराज नामक राजा रहता है उसकी कन्या अति सुन्दरी है।

एक रात परियाँ राजकुमार मनोहर को पलंग सहित धर्मराज के नगर ले गईं और धर्मराज की पुत्री मदमालती के पास लिटा दिया। अकस्मात् दोनों की आँखें खुलीं और एक दूसरे का परिचय हुआ और दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गये फिर दोनों सो गये।

परियाँ राजकुमार मनोहर को वहाँ से उठाकर उसके घर ले आयीं। जब प्रातः काल मनोहर की निद्रा टूटी तो वह न खाना खाता और न ही पानी पीता। धाय के पूछने पर उसने पूरी बात बता दी। पिता ने मदमालती की खोज करवायी किन्तु उसका पता नहीं चला। तब राजकुमार स्वयं योगी बनकर खोजने के लिए निकला। पिता ने उसको समुद्री यात्रा का प्रबन्ध किया। समुद्र में दो साँपों ने राजकुमार की

नाव पर आक्रमण किया। एक तख्ते पर राजकुमार बचा और वह एक द्वीप में पहुँचा। वहाँ पर उसे एक सन्यासी मिला और उसने मदमालती के नगर का मार्ग बतलाया। सन्यासी ने कुमार को एक चक्र देकर कहा, यदि कोई संकट हो तो इसे चलाना।

राजकुमार छः मास तक अनेक देशों की यात्रा करते हुए एक उद्यान में पहुँचा, वहाँ उसे एक युवती मिली। युवती ने राजकुमार का समाचार पूछा। जब राजकुमार अपनी कहानी कह चुका, तब युवती ने कहा, मैं तुम्हारी प्रेमिका की अन्तरंग सखी हूँ। मेरा नाम चम्पावती है। पिता का नाम सूरजभान है। कंचन नगर की निवासी हूँ। एक बार मैं सहेलियों के साथ उद्यान में खेल रही थी कि एक दैत्य पुत्र मुझे यहाँ उठा लाया। यह दैत्य कई रूप बदलता है।

राजकुमार ने उसे मुक्त करने का निश्चय किया। जब दैत्य वहाँ आया तो राजकुमार ने उसका सिर काट लिया, किन्तु दैत्य नहीं मरा। थोड़ी देर में सिर जोड़ कर लौट आया।

राजकुमारी चम्पा ने रामकुमार से कहा, इस वन में एक अमरबेल है और उसका पत्ता घाव को तुरन्त भर देता है।

राजकुमार ने राक्षस का सिर काटा और राक्षस अपना सिर ढूंढ ही रहा था कि राजकुमार ने चम्पा के सहयोग से अमर बेल को उखाड़ कर फेंक दिया और राक्षस मर गया।

राजकुमारी चम्पावती और राजकुमार मनोहर कंचन नगर पहुँचे। चम्पावती के माता-पिता प्रसन्न हुए। उधर चम्पावती के लौटने का समाचार सुनते ही मदमालती और उसकी माता एवं सहेलियाँ कंचन नगर आयीं।

चम्पावती की माता को मदमालती मौसी कहती थी। मौसी मदमालती को लेकर चित्रशाला में गयी, जहाँ पर राजकुमार मनोहर बैठा था। राजकुमार मनोहर और राजकुमारी मदमालती ने एक दूसरे को पहचान लिया।

मदमालती देर तक नहीं लौटी तो उसकी माता चित्रशाला में आयी। पुत्री को राजकुमार मनोहर के साथ देखकर उसे क्रोध आया और मदमालती को जादू से तोती बना दिया। तोती उड़ गयी। अब माता पुत्री के लिए विलाप करने लगी।

चन्द्रसेन नामक युवक ने उस तोती को अपने पिंजड़े में बन्द कर दिया। यदमालती ने राजकुमार चन्द्रसेन को अपनी कहानी सुनायी।

राजकुमार चन्द्रसेन उसे लेकर धर्मराज (मदमालती का पिता) के घर आया। माता ने जादू उतारा और राजकुमार मनोहर तथा राजकुमारी मदमालती का विवाह चम्पा से करवाया। दोनों राजकुमार अपनी-अपनी पत्नियों के साथ घर वापस लौटे। दोनों के माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए।

शृंगार वर्णन

नुसरती यद्यपि दरबार से सम्बन्धित थे किन्तु इन्होंने अपने चरित्र को कलुषित

नहीं होने दिया। वे काव्य लिखते थे अर्थ के लिए, किन्तु साथ ही साथ उसको दूसरों के सुख और आनन्द एवं उपदेश का भी साधन समझते थे। यद्यपि इनके काव्य में अनेक सूफ़ी तत्व विद्यमान हैं तथापि इनका सौन्दर्य वर्णन शारीरिक वासना को व्यक्त करता है :—

रहिया यूं सुरंग सात लटपट हो तंग,
कि जूं रुख कूं चन्दन पीछे भुजंग।

कविवर मुल्ला नुसरती ने अपनी कल्पना का उपयोग बड़े सुन्दर ढंग से किया है। एक स्थल पर इसने नायिका की लटों का वर्णन इस प्रकार किया है :—

निगह जग में चन्दना यू क्या है सगल,
नित उस रश्क ते चाँद पड़ता है गल।
सुहै नर्म केस उसके फ्तूल स्याम,
मिटनहार जुल्फाँ सूं बादल पै दाम।

कवि ने काव्य में श्रृङ्गार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग को अपनाया है। इसे संयोग श्रृङ्गार के वर्णन का अवसर दो स्थलों पर मिला है—प्रथम, जब परियाँ राजकुमार को मदमालती के पास रात में ले जाकर सुला देती है और द्वितीय, जब मदमालती को मनोहर चित्रशाला में देखता है। किन्तु काव्य में विशेष श्रृङ्गार ही मुख्य होकर आया है। नुसरती ने मदमालती के विरह का वर्णन बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। उसने कहा है कि मदमालती के विरह-वर्णन से कोयल का गला भी बैठ जाता है एवं चकवी चकवा रात को अलग-अलग रहने लगते हैं। कवि ने विरह में काँटों को भी फूल मानता है :—

दुई खार खास सर में माने फूल,
अबीर उस गुलन्दाम को भुई की धूल।

नायिका मदमालती प्रियतम के विरह में पान के समान पीली हो गयी है :—

दिखाने कूं पोव हाथ लगने सुरंग,
सो पीली हुई पान ते विरह संग।

ऋतु वर्णन

कविवर नुसरती ने ऋतुओं का भी वर्णन किया है, किन्तु ग्रीष्म ऋतु का वर्णन कौशल दर्शनीय है :—

न कह सूर बल आग बादल अथा,
न वो धूप यक आतशीं जल अथा।
मगर खीच दोज़ख के दरियाते बीर,
बरसता अछै जंग में जलता च नीर।

औरंगजेब, शिवाजी और मलाबार के युद्ध का वर्णन है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि का उद्देश्य युद्धों और विजयों का वर्णन करना था। इस आख्यानक काव्य में सात युद्धों का वर्णन इस प्रकार है :—

मुगलों की सहायता से शिवाजी ने पन्हाला पर अचानक आक्रमण कर दिया। लेकिन बहादुर बीजापुरी सैनिकों ने पराजित कर दिया। पन्हाला की विजय अली आदिल शाह की प्रथम विजय थी। नुसरती शिवाजी को कोई महत्व नहीं देता है और सुलतान को उकसाता है कि तुम्हें किसी बड़ी शक्ति से जूझना चाहिये। अर्थात् मुगलों से। शिवाजी के पीछे अपना समय व्यर्थ में नहीं गवाना चाहिए।

सुलतान अली आदिल शाह ने पन्हाला दुर्ग के किलेदार जौहर सलाबत खाँ के विद्रोह का दमन किया।

कुछ समय पश्चात् शिवाजी ने मुगलों को लक्ष्य बनाया। दक्षिण में मुगल सूबेदार शाइस्ता खाँ था। उसने शिवाजी के नगर पूना को अपने अधिकार में कर लिया। शाइस्ता खाँ का सहायक जसवन्त सिंह था।

मुगल और मराठा दोनों बीजापुर के शत्रु थे। शाइस्ता खाँ के वापस चले जाने के बाद औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को शिवाजी से युद्ध करने के लिए भेजा। जसवन्त सिंह उस पर्वतीय क्षेत्र में पहुँचा भी नहीं था कि शिवाजी ने सूरत को लूट लिया। इस लूट से शिवाजी को एक करोड़ रुपये, बहुत सा सोना, चाँदी और रत्न प्राप्त हुए। इससे शिवाजी ने अपने किले को सुधारा, शस्त्रों को खरीदा और नये सैनिकों को भर्ती करके अपनी सेना को शक्तिशाली बनाया।

सूरत की लूट से मुगल शासक औरंगज़ेब शिवाजी पर क्रोधित हुआ और यह समाचार अली आदिल शाह को भी मिला। इस बार मुग़ल शासक औरंगजेब ने सुलतान अली आदिल शाह को अपना सहायक बनाया तथा सुलतान अली आदिल शाह ने मुगलों का साथ भी दिया।

औरंगज़ेब ने जयसिंह को सेनापति बनाकर दक्षिण में भेजा और अली आदिल शाह (द्वितीय) ने शिवाजी के विरुद्ध लड़ने के लिए बीड़ा भी रखा। खवास खाँ ने बीड़ा उठाया और उसने सोचा, जब तक मुग़ल सेना आये तब तक शिवा जी को समाप्त कर देना चाहिये, क्योंकि शिवाजी का विनाश ही बीजापुर राज्य के लिए उचित था।

खवास खाँ घाट उतर आया। शिवाजी ने जो सेना मुगलों से लड़ने के लिए एकत्र की थी, उसे लेकर आगे बढ़ा। दोनों सेनाओं में रात के समय युद्ध हुआ और शिवाजी परास्त होकर भाग निकला। शिवाजी एक ऊँचे किले में रहने लगा। जय सिंह ने उस किले को घेर लिया। इस समय शिवाजी ने नीति से काम लिया और जयसिंह से कहा—मुझे पकड़ने से कोई लाभ नहीं होगा। तुम इतनी बड़ी सेना लेकर खाली हाथ क्यों जाते हो। बीजापुर पर क्यों अधिकार नहीं करते ? इस प्रकार शिवाजी ने उसे बीजापुर के विरुद्ध उकसाया।

उधर बीजापुर के सैनिक तैयार हो गए और किला भी खाली कर दिया गया। एक ओर से शर्जा खाँ (प्रथम) और दूसरी ओर से बहलोल खाँ ने मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। मुगल और मराठा संयुक्त रूप से आगे बढ़े और कई दिनों तक घमासान युद्ध हुआ अन्त में बीजापुर की विजय हुई।

कुछ समय पश्चात् मुगलों और मराठों ने फिर आक्रमण किया। इस समय बीज़ापुर की सहायता के लिए गोलकुण्डा के शासक कुत्ब शाह ने अपनी सेना भेजी। शर्जा खाँ और खवास खाँ ने बड़ी वीरता से सामना किया और शर्जा खाँ लड़ते-लड़ते मारा गया और चारों ओर शोक छा गया। अली आदिलशाह ने शर्जा खाँ के स्थान पर उसके दो पुत्रों को नियुक्त किया। अन्त में मुग़ल सेना पराजित हुई और बीजापुर के सैनिकों ने उनको युद्ध क्षेत्र में पानी तक नहीं पीने दिया :—

न आब उनकूँ मैदाँ में पीने दिते,
सुराब उनपे जमना का पानी किते।

अलीनामा में इतिहास

कविवर नुसरती ने स्वयं स्पष्ट किया है कि मैं इतिहास लिख रहा हूँ।[1] कथा वस्तु से विदित होता है कि कवि ने इतिहास को महत्व प्रदान किया है। काव्य में जितनी घटनाएँ आयी हैं सभी ऐतिहासिक है किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि कवि ने कल्पना प्रसूत कुछ नहीं लिखा है। युद्ध वर्णन तथा प्राकृतिक दृश्यों को उपस्थित करने में कवि ने सर्वत्र कल्पना से काम लिया है। वास्तव में मुल्ला नुसरती ने इसमें इतिहास और कल्पना समन्वय किया है। नुसरती इतिहास मर्मज्ञ था और घटनाओं के संकलन में इसकी प्रतिभा स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

काव्य-कौशल

कविवर मुल्ला नुसरती ने 'अलीनामा' काव्य की रचना मसनवी शैली में की है। इसमें सात कसीदे भी हैं। कसीदों में फारसी काव्य रूढ़ियों को अपनाया गया है। कहा जाता है कि नुसरती से पूर्व किसी भी कवि ने इतने अच्छे कसीदे नहीं लिखे थे। इन कसीदों में केवल सुलतान की प्रशंसा ही नहीं है प्रत्युत इनमें दृश्यांकन, दरबारी ढंग और संधि विग्रह की कथा भी है। इन कसीदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये शब्द एवं अर्थ दोनों दृष्टियों से पूर्ण व समृद्ध हैं। जिन सात कसीदों का संकलन कवि ने अलीनामा में किया है, वे सभी वीर रस से परिपूर्ण हैं। इसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी खूब हुआ है।

---

1. पकड़ अस्ल तारीख लिखत्यां की चाल,
   लिख्या किस्सा दर किस्सा मैं हस्बे हाल।
   सम्पादक अब्दुल मजीद सिद्दीकी—नुसरती—अलीनामा, पृ० 424

नुसरती ने मसनवी शैली में प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करते समय नये-नये उपमानों का प्रयोग किया है। शरद ऋतु का वर्णन इस प्रकार है :—

दी है जमीस्ताँ नो गजी दूँगा उँचा धुँधकार आज,
सरदार हो बादेखजाँ थंड का रच्या है भार आज।
उपट्या हवा का फौज मो शबनम् के गोल्यां छांटता,
डर सूँ अगिन सों झांपले डर राही है ठारेठार आज।
ओ आग कोइ मारे तो दम उठती थी ही सब तन ज़बाँ
वैसे भी सरकश सर नवा पीली दिसे सद हार आज।

\+ \+ \+

न सरफ़राज़ी पा सके दौलत ते थंड की कोंपली,
न वेल अपनी गोद ते लम्बा करे हथभार आज।
गुलशन के आइने उपर पड़ता चल्या सर्दी सों जंग,
हर खारो-खस शबनम सेती होता है जौहर दार आज।
देखे न जों जों थंडते किस यक कली कूँ खन्दारू,
नग्मे बिसर जा बुलबुला हर बन में है बेकार आज।

कसीदों के कारण कथा में शिथिलता कदापि नहीं आने पायी है, प्रत्युत कसीदों द्वारा कई स्थलों पर कथा का विकास हुआ है तथा इसमें चित्रमय भाव निरूपण भी आ गया है।

देशभक्ति

दक्खिनी साहित्य की यह मौलिक विशेषता है कि उसका सम्पूर्ण साहित्य जन्म-भूमि के प्रति गौरव एवं आदर भाव से ओतप्रोत है। नुसरती भी एक देश भक्त कवि था। इसने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि शत्रु के विरुद्ध केवल सेना ही नहीं लड़ती है, प्रत्युत समस्त सेना से कंधा मिलाकर युद्ध करने को सदैव तैयार रहती है और युद्ध करती भी है। इसने व्यक्त किया है कि बीजापुर निवासियों की देश भक्ति क्षणिक नहीं है अपितु यह पूर्वजों की विरासत है। कवि ने दक्षिण को केवल एक निर्जीव भू-भाग ही नहीं माना है वरन् इसे एक सजीव प्राणी कहा है। बीजापुर इसका शरीर और सम्राट प्राण है :—

दखन शख्स है जिस बीजापुर तन,
जूं इन्सां हमें होर अली शाह जिवन।

कविवर मुल्ला नुसरती ने यह भी स्पष्ट किया है कि दक्खिनी सिपाहियों में सभी जाति धर्म के व्यक्ति हैं और सभी लोग एक होकर शत्रुओं के विरुद्ध लड़ते हैं। एकता ही किसी सेना को गौरवशाली बनाती है। केवल सैनिकों की संख्या से कोई

सेना महान नहीं बनती है। देश भक्ति ही देशवासियों को एकसूत्र में बांधने की सशक्त कड़ी है।

तारीख-ए-इस्कन्दरी

यह मुल्ला नुसरती का दूसरा ऐतिहासिक काव्य है। यह बीजापुर के अन्तिम शासक सिकन्दर आदिल शाह से सम्बन्धित है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1083 (1677 ई०) है :—

सहस होर असी पर जौ से तीन साल।

सुलतान अली आदिल शाह (द्वितीय) अपने जीवन के अन्तिम दिनों में रोग ग्रस्त हो गये थे और जीवन से निराश होकर राज्य के महामंत्री अरस्तू-ए-दौरा अब्दुल मुहम्मद को बुलाकर उन्होंने कहा था, अब मुझे जीवन की आशा नहीं है। राज्य की स्थिति शोचनीय है। मेरा प्रस्ताव है कि तुम युवराज को सिंहासन पर बैठाकर राज्य का तंत्र अपने हाथ में ले लो, जिससे किसी को विरोध करने का साहस न हो, किन्तु महामंत्री इस निधि भार को संभालने के लिए तत्पर न हुआ और उसने अस्वीकार कर दिया। मित्रों और हितैषियों ने अब्दुल मुहम्मद को समझाया कि सुलतान को तुम पर अगाध विश्वास है कि युवराज को तुम्हारे हाथों सौंप कर राज्य की स्थिरता अपने जीवन काल ही में देख ले। अतः तुम स्वीकार कर लो। किन्तु अब्दुल मुहम्मद बहुत दूरदर्शी एवं ईमानदार था उसने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

महामंत्री ने स्वयं सुझाव रखा कि खवास खाँ युवराज को गद्दी पर बैठाये और राजधानी एवं आस-पास के क्षेत्रों का प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले मुझे केवल उत्तर पूर्वी प्रदेश, शाह दुर्ग और गुलबर्गा को सुपुर्द कर दे, जिससे मैं मुगलों का मुकाबला कर सकूँ। अब्दुल करीम बहलोल खाँ को पश्चिमी प्रदेश अर्थात् मिरज और पन्हाला गढ़ दिया जाये, जिससे वह शिवा जी को आक्रमण से रोके। मुज़्ज़फर खाँ को दक्षिण का प्रदेश दिया जाये और वह विदनूर आदि के राजाओं पर सत्ता स्थापित रखे और हम सब खवास खाँ के आदेश का पालन करें।

यह प्रस्ताव खवास खाँ के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। उसने स्वीकार कर लिया तथा यह तय किया गया कि सुलतान अली आदिल शाह की मृत्यु के दूसरे दिन ही यह निर्णय कार्यान्वित किया जाये।

सुलतान अली आदिल शाह (द्वितीय) की मृत्यु 13 शाबान 1083 हिजरी (1682 ई०) में हुई। खवास खाँ ने युवराज को गद्दी पर बैठाया और समस्त तंत्र ग्रहण कर लिया। दूसरे दिन स्वामिभक्त एवं ईमानदार अब्दुल मुहम्मद ने संदेशा भेजा कि पूर्व निश्चित बातों को अब कार्यान्वित किया जाये, किन्तु खवास खाँ ने उत्तर भेजा कि सुलतान अभी चार वर्ष का बालक है मैं क्यों शाहीगढ़ और अन्य

किलों को तुम्हारे हाथ सौंप दूँ ? यह वचन भंग सुनकर अब्दुल मुहम्मद बहुत दुःखी हुआ और स्वयं को राजकाज से बिलकुल अलग कर लिया।

राज्य के चारों ओर अशांति और विद्रोह की लहर दौड़ गयी। शत्रुओं ने स्वर्ण अवसर पाकर आक्रमण कर दिया। सर्वप्रथम शिवा जी ने इस अवसर से लाभ उठाया। बीजापुर के वीर सिपाहियों ने नवाब अब्दुल करीम बहलोल खाँ के सेना-पतित्व में आक्रमण करके विजय प्राप्त की। सम्पूर्ण ग्रन्थ में युद्धों का विवरण है।

'तारीख-ए-इस्कन्दरी' नामक ग्रंथ में बहुत कम ऐसे स्थल हैं जहाँ कवि भावुक हो उठा हो। समस्त ग्रंथ ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करता है। युद्ध का वर्णन करते हुए कविवर नुसरती ने लिखा है :—

चलावे अगर धनुक हाती पो तोड़,
पड़े वो हती देक अपस जीव छोड़।
दिखावे तो सुन्डाँ पो तोडां के भांत,
उडे हो चिग्याँ मते गज के दांत।
कमर पर सटे हैं तो नै लग खबर,
निकल जाये यक दिल को फांक कर।

आगे नुसरती कहता है कि नवाब बहलोल खाँ की सेना के घोड़ों के तलवों से इतनी धूल उड़ी कि पृथ्वी और आकाश एक हो गये। तोर रूई बन गये अर्थात् पृथ्वी और आकाश मिलकर रज़ाई के समान दिखायी देने लगे :—

तुरंगा के तल ने इती गर्द उड़ी,
कहे तूं ज़मीं जा फलक सूं जुड़ी।
सितान्यां की रूई जो हो वे खिलाफ,
फलक हौर ज़मी मिल हुआ यक लिहाफ़।

काली भूमि ऐसी रक्तपूर्ण हो गयी जैसे बीजापुर के समीप का कोई योगी मठ हो—रण क्षेत्र में पड़े शवों को देखते-देखते आँखें थक गई हैं :—

हुई लाल भुइं यूँ वो काली सगट,
बिजापुर कन ज्यूं कि जोगी का मठ।
नज़र रन के मुर्द्यां कूँ देखत थकी,
कहे तूं कि पर्दा है यक नाटकी।

एक घड़ी में पूरा आकाश धुवाँ से भर गया और उद्यानों के स्थान पर आग दिखाई देती है। समुद्र का स्थान भँवरों ने ले लिया है। वायुमण्डल के धुवों के कारण बगुले कौवे के समान दिखायी देते हैं :—

घड़ी यक में सब आसमाँ हौर जमी,
धुवे हौर अगिन में मरी तब यकीं।

भरी भुई हो गुलशन के जाग्यां यो नार,
समन्दर लिए छीन भवन्या के ठार।
हवा पर जमे यूँ धुवें के धवे,
जो बैठे बगोले हो निकले कवे।

रचना का उद्देश्य

मुल्ला नुसरती का कथन है कि सभी विजेताओं की इच्छा होती है कि उनके नाम की यश गाथा लिखी जाए। अत: मैंने यह ग्रंथ लिखा है :—

मंगे ज्यूं हना नाम हर कामगार,
ज़माने पो यक नक्श हो यादगार।
वई नुसरती धर को सिर से उमस,
लिख्या फतह-ए-नव्वाब-नामें का जस।

कविवर नुसरती फारसी भाषा व साहित्य के विद्वान थे। इसने दक्खिनी में यदि प्रेमाख्यानक काव्य और कथात्मक काव्य रचे हैं तो ग़ज़लों और क़सीदों की भी रचना की है। दक्खिनी में एक ग़ज़ल के कुछ शेर उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :—

मग़रुर बेखबर है मद सूं मदन की बाली,
आलम के जीव किते सो लोचन में रही लाली।
इस खाम सुन मैं देख्या क्या पुख्तगी का फन है,
देने सो वस्ल का वस्ल लेने कूं जीवा ताली।
बिरहे की निस में ग़म सूं जलता हूं शमा नमने,
दिखला सुबह दरस का ऐ खाविर जमाली।
× × ×
सरपस्त नुसरती सूं जल से न कुछ हरीफ़ी,
खूबियां की बज़्म का है वह रुन्दला ओ बाली।

मुक़ीमी

मुक़ीमी का मूल नाम मुहम्मद मुक़ीमी और काव्य नाम मुक़मी है।[1] इन्हें नुसरती का समकालीन माना जाता है। ये ईरान से भारत आये थे और बीजापुर में बस गये थे। डा० श्रीराम शर्मा के अनुसार—मुक़ीमी का जन्म हिजरी सन् 1010 (1602 ई०) के आस-पास हुआ और हिजरी सन् 1075 (1665 ई०) के आस-पास देहान्त हुआ।[2] प्रो० सिद्दीक़ी ने मुक़ीमी का जन्म सन् 1554 ई० के आस-पास माना है।[3] मुक़ीमी के जीवन वृत के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात है। समकालीन

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 195
2. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 320
3. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—चन्दर बदन व महयार, पृ० 6

इतिहासकार कासिम फरिश्ता ने भी मुक़ीमी के जन्म के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा और न ही कवि ने अपने काव्य में कहीं जन्म तिथि का संकेत दिया है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने मुक़ीमी के सम्बन्ध में लिखा है --"वह असमाबाद (उत्तरी ईरान) में एक सैयद वंश में पैदा हुआ था। अपने बाप के साथ अरब के तीर्थों की यात्रा करता शीराज (दक्षिणी ईरान) में पहुँचा। पिता के मरने पर अनाथ हो गया। दक्खिन के दरबारों में उन दिनों फारसी और ईरानियों की प्रतिष्ठा थी। मुक़ीमी बीजापुर चला आया। यहीं पढ़-लिखकर एक अच्छा कवि कवि हो गया।"[1]

मुक़ीमी के पिता मीर मुहम्मद रज़ा रिज़वी ईरान के मशहद नामक स्थान के रहने वाले थे और सम्भवतः इब्राहीम आदिल शाह (1534-58 ई०) के शासन काल में ईरान से बीजापुर आये थे। वह मुहम्मद आदिल शाह (1627-1657 ई०) के समय में दरबारी कवि था। मुक़ीमी भी राजकाल में भाग लेता था और बीजापुर का राजदूत बनकर अहमद नगर एवं गोलकुंडा गया था।

इब्राहीम ज़ुबैरी ने बीजापुर के कवियों की चर्चा करते हुए मुक़ीमी के सम्बन्ध में लिखा है कि वह स्वाभिमानी बहुत था। इसकी कविता सारे देश में प्रसिद्ध थी। शब्द और अर्थ के सुन्दर प्रयोगों में वह एकाकी था।

मुक़ीमी ने 'चन्दरबदन व महयार' नामक काव्व हिजरी सन् 1050 में लिखा।[2] कवि मुक़ीमी अपने समय का प्रसिद्ध कवि था। अमीन ने अपनी रचना 'किस्स-ए-शाह बहराम व हुस्न बानों' के आरम्भ में इसका उल्लेख किया है :—

यका यक मेरे दिल पर आया ख्याल,
किस्सा यक कहूँ मैं मुक़ीमी मिसाल।

कविवर अमीन अपने काव्य को पूरा भी न कर पाये थे कि इनका देहान्त हो गया। कुछ समय के बाद कवि दौलत ने इसे लिखना आरम्भ किया और हिजरी सन् 1050 में पूरा किया। अतः स्पष्ट है कि 'चन्दर बदन व महयार' इससे पहले की रचना रही होगी। मुक़ीमी ने अपनी रचना में मुल्ला गवासी का उल्लेख किया है :—

ततब्बो गवासी का बांधा हूँ मैं,
सुखन मुख्तसर ल्याके सांध्या हूँ मैं।

गवासी की प्रथम रचना 'सैफुल मुलूक बदीउज्जमाल' का रचना काल हिजरी सन् 1025 है। अतः 'चन्दर बदन व महयार' की रचना हिजरी सन् 1025 से 1050 के बीच की गई होगी।

---

1. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, पृ० 223
2. श्री नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 195

मुक़ीमी ने अपने काव्य 'चन्दर बदन व महयार' में मंगलाचरण करते हुए लिखा है :—

मुझे फ़ैज़ कुछ बख्श तुझ ध्यान का,
इलाही तू हाफ़िज़ कहै ईमान का।
मेरा दीन व ईमान सारा सो तूँ,
मेरे जीव में कीता है ठारा सो तूँ।

कथा का मूल स्रोत

दक्षिण भारत में 'चन्दर बदन व महयार' नामक कहानी बहुत पहले से लोक-प्रिय रही है। इस प्रेम कथा को आधार बनाकर फारसी और दक्खिनी के बहुत से कवियों ने ग्रंथ लिखे। मुक़ीमी के समकालीन कवि मुहम्मद अमीन आतिशी ने यह कहानी फारसी में लिखी। कविवर मुक़ीमी ने बताया है कि यह कहानी मैंने अपने एक मित्र से सुना। श्रोता इस कहानी को सुनकर 'लैला मजनूँ' की प्रसिद्ध प्रेम कथा को भूल जाते हैं :—

क़िस्सा मुज पिरित का कह्या एक दिन,
जो बिसरे तो लैला व मजनूं को सुन।

कथा-सार

रंगरापति नामक राजा सुन्दर पटन नगर में राज्य करता था। उसके चन्दर बदन नामक इकलौती पुत्री थी। वह बहुत सुन्दर थी। उसी नगर में एक शिव मन्दिर था। वहाँ प्रति वर्ष देव यात्रा हुआ करती थी और लाखों की भीड़ होती थी और राजकुमारी भी प्रतिवर्ष पूजा के लिए जाती थी।

एक अन्य नगर में एक मुसलमान सौदागर महयार था। वह भी सुन्दर और बुद्धिमान था तथा उसका हृदय प्रेमपूर्ण था। चन्दर बदन के सौन्दर्य की बात सुनकर वह उन्मत्त हो गया। वह चन्दर बदन को प्राप्त करने के लिए घर से निकल पड़ा और अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ सुन्दरपटन नगर में पहुँचा। संयोगवश उसी दिन देव यात्रा के लिए चन्दर बदन आ रही थी और महयार चन्दर बदन को देखकर मुग्ध हो गया। महयार ने चन्दर बदन की सवारी के पास आकर कहा, ऐ परी ! तूने मुझे पागल कर दिया है और यह कहते-कहते महयार ने उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया।

इस प्रकार के व्यवहार से चन्दर बदन महयार पर क्रोधित हुई और पैरों को दूर हटा कर कहा, ऐ बेडोल, कुछ समझने की कोशिश करो। कहाँ मैं हिन्दू और कहाँ तुम मुसलमान ? दीपक और चन्द्रमा का साथ ही क्या ? क्या तुम दीवाने हो गये हो ?

महयार चन्दरबदन के शब्दों को दुहराता हुआ इधर-उधर घूमने लगा।

कई वर्षों के बाद वह बीजापुर पहुँचा। उस नगर का राजा बहुत ही दयालु एवं धार्मिक था। वह एक दिन घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने जा रहा था कि उसने मार्ग में महयार को पागल की अवस्था में देखा। राजा ने महयार से उसके दुखी होने का कारण पूछा, किन्तु उत्तर नहीं मिला। राजा उसे अन्त:पुर में ले गया और उसके सामने बहुत सी सुन्दरियों को प्रस्तुत किया, किन्तु महयार ने उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। राजा, महयार की दशा देखकर अत्यन्त चिन्तित था। कुछ दिनों के पश्चात् राजा को विदित हुआ कि महयार का प्रेम सुन्दरपटन की राजकुमारी चन्दरबदन से है। उसने रंगरापति के पास दूत भेजकर राजकुमारी का विवाह महयार से करने का प्रस्ताव भेजा।

रंगरापति ने राजा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उत्तर भेजा कि वह अपना राज्य, धन दौलत सब कुछ राजा की सेवा में अर्पित करने को तैयार है पर विवाह से उसके सम्मान को धक्का लगेगा और वह देश के अन्य हिन्दू राजाओं को मुँह दिखाने योग्य न रह जायेगा।

राजा उत्तर सुनकर निराश हुआ, परन्तु महयार और अपने विश्वस्त सेवकों के साथ सुन्दरपटन की ओर चल पड़ा। राजा जब सुन्दरपटन नगर पहुँचा तो देव-स्थान में वार्षिक यात्रा हो रही थी।

अन्य वर्षों की भाँति उस वर्ष भी चन्दरबदन मन्दिर में पूजा के लिए आयी। महयार चन्दरबदन को देखते ही उसके पैरों पर गिर पड़ा। राजकुमारी चन्दरबदन के हृदय में भी महयार के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया था लेकिन लोक-लज्जा के कारण उसने कहा :—

'जिता है दिवाने मुवा नई हनोज़'

इन शब्दों को सुनकर महयार बहुत दुखी हुआ और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। राजकुमारी चन्दरबदन भी वेदना विह्वल होकर घर लौटी।

राजा ने महयार का जनाज़ा (शव यात्रा) निकालने की व्यवस्था की। बहुत प्रयत्न करने पर भी जनाज़ा (शव यात्रा) क़ब्रस्तान की ओर नहीं बढ़ रहा था। फिर राजा ने शव को उस ओर से ले जाने का आदेश दिया जिस ओर चन्दरबदन गयी थी। शव आगे बढ़ने लगा, किन्तु नगर में चन्दरबदन के महल के सामने जाकर रुक गया।

राजकुमारी चन्दरबदन उत्सुकता वश छज्जे पर आकर खड़ी हुई। उसने देखा, अथक प्रयत्न करने पर भी जनाज़ा आगे नहीं बढ़ रहा था। राजकुमारी चन्दरबदन ने पिता से आज्ञा ली और एक मौलवी को बुलाकर इस्लाम धर्म की दीक्षा लेकर विश्राम गृह में चली गयी।

ज्यों ही मौलवी चन्दरबदन के महल से बाहर निकला जनाज़ा आगे बढ़ने लगा। कब्रस्तान पर कफन हटाया गया तो चन्दरबदन और महयार दोनों एक दूसरे से सटे हुए पड़े मिले।

दोनों को अलग-अलग दफन करने का प्रयत्न किया गया, किन्तु दोनों का शरीर एक दूसरे से अलग नहीं हुआ और अन्त में विवश होकर दोनों को एक ही कब्र में दफन किया गया।

कथानक

'तारीख-ए-आदिल शाही' के लेखक काज़ी सैयद नुरुल्ला और 'तुज़्क-ए-आसफिया' के लेखक शाह तजल्ली अली ने लिखा है कि सुलतान इब्राहिम आदिल शाह (द्वितीय) के शासनकाल (1579-1628 ई०) में यह घटना (चन्दरबदन पर महयार नामक सौदागर का पुत्र आसक्त था और दोनों ने प्राण त्याग दिये) घटी थी। इससे स्पष्ट होता है कि यह ऐतिहासिक घटना है। इसे काल्पनिक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है काव्य को अधिक सुन्दर बनाने की दृष्टि से कवि ने कुछ कल्पना का भी सहारा लिया हो, किन्तु कथा मूल तथ्यों पर आधारित है।

भाषा

मुक़ीमी की मातृभाषा फारसी थी। अत: इन्होंने फारसी वर्णमाला का प्रयोग अपने काव्य में किया है—पे, बे, ते, चे, रे, डाल, जीम, डे, दाल, रे, और गाफ की जगह पर क़ाफ का प्रयोग किया है। दक्खिनी के अन्य कवियों की भाँति ही शब्दों को तोड़ा मरोड़ा अधिक है। इन शब्दों को देखने से प्रतीत होता है कि तुक मिलाने की आवश्यकता पर इसने फारसी शब्दों को भारतीय ढाँचे में ढालने का प्रयास किया है। यथा—नज़दीक – नाज़िक, शहर—शहार, अहवाल—हवाल और मशहूर—मशूर इत्यादि।

नाज़िक जाको बोल्या कि सुन ए परी, मुंजे तुझ लताफत दिवाना करी।
दिवाना हूँ तेरा दीवाने के ते, अपसते न कर दूर जाने के तै।

काव्य-सौन्दर्य

कविवर मुक़ीमी परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है। कवि कहता है कि इन्द्रियों ने मुझ पर ऐसे अधिकार जमा लिया है जैसे घुड़सवार घोड़े पर सवार होते ही घोड़े पर अधिकार कर लेता है :—

गालिब हो मुझ पर अहे नफस यूं, तुरंग को चलावे चढ़नहार ज्यूं।

तत्कालीन समाज में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। एक स्थल पर कवि कहता है :—

सो तुज बिन मुझे कोई होना नहीं, कि बिन जल मछी का सो जीना नहीं।

नायिका चन्दरबदन ने स्वयं को चन्द्रमा और नायक महयार को दीपक कहा है। इसके साथ ही एक लोकोक्ति का भी प्रयोग हुआ है—'मुवे तू दिवाना हुवा'। कवि के ही शब्दों में :—

कहाँ मैं चन्द्रमा कहाँ तू दिवा, कता क्या मुवे तू दिवाना हुवा।

प्राय: नायिका के मुख की तुलना चन्द्रमा से दी जाती है, किन्तु मुक़ीमी ने इस काव्य में नायिका के तेज और सौन्दर्य को बताते हुए उसके मुख को सूर्य कहा है :—

सो भू राय राजे कूँ यूँ जवाब दी, अपस मुख के आफताब कूँ ताव दी।

कवि का कथन है कि चन्दरबदन समस्त विश्व की प्रेमिका है। उसके सौन्दर्य को देखकर चन्द्रमा लज्जित होकर छुप जाता है :—

थी महबूब आलम की वो गुलबदन, कि चन्दर जिसे देक करता सरन।

सामाजिक अवस्था

कवि की दृष्टि समाज के प्रत्येक कार्य कलाप का परीक्षण करती है और काव्य में उसे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत भी करती है। कवि ने स्पष्ट किया है कि रंगरापति अपनी पुत्री का विवाह एक मुसलमान से करने के लिए तैयार नहीं होता क्योंकि उसे समाज का भय था। वह कहता है :—

सुनेंगे जो इस बात कूँ राज कोई, न करसी मुलक में मेरा लाज कोई।
करेंगे मलामत मुंजे लक हज़ार, तू जाकर इता शह कूं कह यूं विचार।
सो यूं काम राजा अपे क्या किया, मुसलमान कूँ डर के बेटी दिया।

उस काल में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों में यद्यपि स्वाभाविक प्रेम था किन्तु न तो वे विवाह करते थे और न ही एक दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णु थे। अधिकांश लोग अपने धर्म के प्रति अनुराग करते थे और अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति घृणा करते थे :—

हिन्दू मैं कहाँ होर तुरक तू कहाँ, कहाँ राम सीता ? मूरख तू कहाँ ?

प्रेम का महत्व

मुक़ीमी ने अपने काव्य में सच्चे प्रेम के महत्व को कई स्थलों पर प्रतिपादित किया है। इनका प्रेम सूफ़ियों के प्रेम के समान ही उच्चकोटि का है। इन्होंने कहा है कि जो व्यक्ति अपने शरीर को जलाता है वही प्रेम को प्राप्त करता है :—

कहाँ इश्क इतना जो हासिल करे, करे तन फ़ना जीव वासिल करे।
सचे इश्क का पंथ मुश्किल बहुत, धरे सर बला पर तो कामिल बहुत।

संसार में प्रेम का रत्न सबसे बड़ा है और प्रेम के बिना जीवन निरर्थक है :—

दुनियाँ में बड़ा है पिरित का रतन, पिरित बिन नहीं कोई खाली जीवन।

प्रेम को ईश्वर ने ही बनाया है और सृष्टि की रचना प्रेम के लिए हुई है :—

पिरित को बनाया है करतार वो पिरित सोंच संवार्या है संसार वो।

कविवर मुक़ीमी की मर्सिया भी प्राप्त होती हैं। एक मर्सिया के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

मुख दिखाया चन्दर मगन सूं निकल, अश्क जारी हुए नैन सूं निकल।
खाक जो गी तमन लगा मुख सूं, खलक फिरता है जो कथन सूं निकल।
बे असर ग़म सूं मुंज न कहीं दिसता, मुर्दे रोते हैं कफन सूं निकल।
× × + × ×
जब मुक़ीमी बयान ग़म करता, आग झड़ता है सब बदन सूं निकल।

अबदल

मूल नाम अब्दुल ग़नी और काव्य नाम अबदल था।[1] डा० मसऊद हुसेन खाँ के अनुसार इनका जन्म दिल्ली में हुआ था।[2] कहा जाता है कि अबदल दिल्ली से बीजापुर आया था। यह इब्राहिम आदिल शाह (द्वितीय) (1580-1625 ई०) का दरबारी कवि था। इब्राहीम आदिल शाह (द्वितीय) काव्य और संगीत का प्रेमी था। वह 'जगत गुरू' के नाम से जाना जाता था और स्वयं भी अच्छा कवि था। अबदल ने स्वयं को सुलतान इब्राहिम आदिल शाह का शिष्य कहा है। किन्तु इस काल के लगभग सभी कवियों ने स्वयं को समसामयिक शासक का शिष्य कहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह एक परम्परा मात्र का निर्वाह है।

कहा जाता है कि एक दिन सुलतान ने अबदल को बुलाकर कहा, एक ऐसी रचना करो जो अनुपम हो। अबदल ने उत्तर दिया, जहाँपनाह मुझे केवल हिन्दी (दक्खिनी) भाषा आती है। सुलतान ने आदेश दिया, उसी भाषा में लिखो।[3] इस आदेश को पूरा करने के लिए अबदल 'इब्राहीम नामा' नामक काव्य की रचना की।

'इब्राहीम नामा' का रचना-काल कवि अबदल ने स्वयं लिखा है :—

वचन फूल गूंद यूं ब्राहीम नाम, किया सहस पर बरस बारह तमाम।

अर्थात् इब्राहीम नामा नामक काव्य की रचना हिजरी सन् 1012 (1603 ई०) में हुई। अन्य कवियों की भाँति अबदल ने भी काव्य का आरम्भ ईश-स्तुति से

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 190
2. डा० मसऊद हुसेन खाँ—शेर व ज़बान, पृ० 177
3. उन्ही शाह उस्ताद कर सूं नज़र, बुलाया जो अबदल कूं सर हाथ धर।
 कह्या शाह उस्ताद अबदल सूं यूं, तूं हर इक ज़बां कर शेर कूं।
 फने शेर सब मुल्क में एक धात, इश्क एक परगट छिपि रूप बात।
 ज़बाँ रूप परगट सो जिस मुल्क पर, उसी बचन सूं शाइरी बोल धर।
 —डा० मसऊद हुसेन खाँ (सम्पादक)—इब्राहीम नामा, अज़ अबदल देहलवी, पृ० 18

किया है, किन्तु अबदल ने अन्य कवियों की भाँति ईश्वर प्रार्थना सीधे ढंग से न करके अपनी कल्पना से परमात्मा को एक जादूगर के रूप में प्रस्तुत किया है। इसका विश्वास है कि जिस प्रकार से जादूगर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ प्रकट करता है उसी प्रकार से ईश्वर ने भी शून्य से सृष्टि की रचना की है :—

इलाही ! ज़बाँ गंज तू खोल मूझ, अमोलक भाकर, ना कुच बोल मूझ।
कहूँ बासग अव्वल तू अल्ला लाये, काली मुख खिले, जीभ फकड़ी, डुलाये।
बचन मठि रस चोपडीं बूंद आये, भोर कान आरिफ भूली बास धाये।

× × × ×

किया बाज़ीगर ज्यूं ज़माना दिखाये, करे खेल बाज़ार आलम में आये।
पकड़ रात दिन हाथ दोनों फिराये, सूरज चाँद काँसे अमरत बिस मिलाये।

इसके पश्चात् हज़रत मुहम्मद साहब का गुण गान किया है :—

गुसाईं एक था न होर कुछ मौजूद, बनाया मुहम्मद सूं लक जग बजूद।
जो था गंज मख्फी सो परकट दिखाये, इश्क आरसी मीम मस्क़ल फिराये।
अहद दूर कर मीम अहमद किया, हर्फ चार मिल भेद चारो दिया।
शरीअत, तरीक़त, हकीक़त बयाँ, किया मारिफत ऐन उस पर अयाँ।

अबदल ने चारों खलीफाओं की भी प्रशंसा की है जो इस प्रकार है :—

नबी प्रीत के थे सुनो, चार यार बलिक वो रतन चार चारो किनार।
पदल, दीन मजलिस जुडे वो रतन, कुन्दन सदक़ सूं लग रहे वो जतन।

× × × ×

अव्वल रतन मिल्या अबूबकर जान, कि जिस सदक का कुछ न आवे बयान।
दूजा रतन साँचा भी उमर खिताब, कि जिस अदल सूं दीन सपड्या शिताब।
तिजा रतन जानूं भी उसमान अफान, हया का किया जद्द, सन्ज्या कुरआन।
चौथा रतन जानूं सो मिलकर अली, सुजाअत सखावत, वलायत, वली।

इसके पश्चात् कवि अबदल ने ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज की प्रशंसा की है यद्यपि इससे बहुत पहले ख्वाजा बन्दा नवाज़ का निधन हो चुका था, किन्तु सूफ़ी साधक बन्दा नवाज़ के निधन के बाद भी लोगों की उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। यहाँ तक कि सुलतान अली आदिल शाह द्वितीय ने भी एक उच्चकोटि की कविता ख्वाजा बन्दा नवाज़ पर लिखी। इतना ही नहीं दक्खिनी के कई अन्य कवियों ने भी उन पर आस्था प्रकट की है। अबदल के कुछ शब्द प्रस्तुत हैं :—

ज़बाँ अब सँवर शाह मुर्शिद आवाज़, मुहम्मद हुसेनी जो गेसुल दराज़।
वही है अली के निस्ब का चिराग़, वही है नबी आल का खास बाग़।
वही आशिकों में सचा इश्क बाज़, उन्हीं साँच बूझया है माशूक फाज़।

इब्राहीम नामा

अबदल ने इस काव्य को किसी लम्बी कहानी के रूप में नहीं प्रस्तुत किया है, प्रत्युत इस काव्य को कई उप शीर्षकों में विभाजित करके प्रस्तुत किया है। इसे सुलतान इब्राहीम आदिल शाह का जीवन चरित्र भी नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह कहा जा सकता है कि कवि ने सुलतान गार्हस्थ जीवन को निकट से देखा था और उसका विस्तृत वर्णन दिया है। इससे सुलतान इब्राहीम आदिल शाह के व्यक्तित्व का पता अवश्य चल जाता है और अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ सुस्पष्ट हो जाती हैं जिनसे तत्कालीन इतिहास को हृदयंगम करने में सहायता मिलती है।

काव्य सौष्ठव

इस काव्य में अबदल ने मसनवी शैली का प्रयोग किया है। काव्य में कुछ स्थल ऐसे भी आये हैं जहाँ पर 'इब्राहीम नामा' एक काव्य न होकर फुटकल कविताओं का संकलन मात्र प्रतीत होता है। काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अबदल उच्चकोटि का कवि था।

कवि ने इसमें कई अलंकारों का प्रयोग किया है किन्तु विशेष स्थान उपमा और रूपक का है। इनके सुष्ठु प्रयोग से काव्य सरस बन गया है। इसने काग़ज, क़लम और हरफ (अक्षर) की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

दिसे रूप कागज़ कपूर का मैदान,
क़लम मश्क कान हिरन भर दरम्यान।
शिकारी अक़्ल देख दिल टेक आड,
धनक फिकर काले वचन तीर मार।
लग्या टांग ताने चल्या हास कर,
पड्याँ लोहू धराँ हरफ शक झर।
भँवर नैन आ देख तिस पर फिरे,
खुशियों बास मानी पंक फूल मिल थिरे।
किया रूप काग़ज अमृत हौज़ भर,
चले क़लम दरम्यान ज्यों सांप पर।

अबदल के प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण बड़ा अनोखा है। प्रातःकाल का चित्रण करते हुए कवि कहता है :—

उड़ी रात कोयल गगन बन उपर,
निकल दीस का बार सज सुबह पर।

कवि ने चाँदनी रात के अंकन में कल्पना का पूरा-पूरा उपयोग करके उसे आकर्षक बना दिया है :—

किया रूप कातिब सो कुदरत होकर,
लिखी नेक व बद बर्क मावे उपर।
सफेदी सू भर चाँद दावात कर,
कलम लिख सू कहकश हुरुफ तारे धर।

कविवर अबदल ने तारों भरी चाँदनी रात का जो अंकन किया है, वह दक्खिनी साहित्य में अद्वितीय है। एक स्थल पर कवि ने चन्द्रमा के श्यामल अंक का वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों अँधेरे की शराब चन्द्रमा को किसी ने पिलाई है :—

अंधारे की कोई ले दारु पिलाय,
दिसे चांद मुख बिन सियाही सू आय।

प्राकृतिक दृश्यों के अतिरिक्त कवि ने बीजापुर नगर का विस्तृत वर्णन किया है :—

सुनों अब सिफत शह रहन तख्त थाऊँ,
दिया पूरन कर ही भी इसका टाऊँ।
× × ×
सितारे कनत जोयेगे मन कहूँ की हार,
रखिया मोलाकीं लाई कोशल सू थार।
किया उस शहर दूर खन्दक निशाँ,
रहिया पुल पता तीर बर आसमाँ।
कलावंत कला रूप किस्वत सू यूं,
सोर बाद बदिया खरी आर ज्यूं।
× × ×
समन्द शहर दौलत सूरज शाह भर,
दिसे चांद गिर नाँ सूँ हर एक घर।
× × ×
न पड़ता शहर में को बान्ध्या नज़र,
सो बिन मोतिया होर फूलों की लड़।

सुलतान इब्राहीम आदिल शाह (द्वितीय) को 'नौरस' शब्द अत्यधिक प्रिय था। वह जिस महल में स्वयं रहता था उसका नाम उसने नौ रस रखा था जिसका वर्णन कवि अबदल ने इस प्रकार किया है :—

सुनो अब सिफ़त शाह महल रहन थाँव,
धरिया नाव नौ रस मत्म तिस जो नाँव।
× × ×

गगन सात सीढ़ी होर मिल जोड़ कर,
फलक महल नौ रस की एक खन उपर।
वले गगन आकर छपी तिस मंजार,
रहे वाक़ बंधिया हो बर थार थार।

कविवर अबदल 'नौ रस' उत्सव का वर्णन भी बड़े कौशल से करता है :—

सो यूं खेल कर शाह नौ रोज़ आ,
बरस गांठो कर मज़दानी गिना।
कहूँ मज़वानी बरस गाँटो शाह,
जो हर बरस कर मज़बाजी नौ माह।
न ऐसा सुनिया शह को देखिया कि हर,
जो हर बरस नौ माह अन्दर कहर।
हुआ शाह फरमान आलम ऊपर,
हर एक मुल्क हर दीप हर शहर घर पर।

कवि ने नारी सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है। कवि कल्पना करता है कि सुन्दरियों के समक्ष सूर्य और चाँद दोनों फीके-फीके से लगते हैं—नारी जब मस्तक पर टीका लगाती है तो सूरज उसके सामने लज्जित हो जाता है और जब युवती का मुख चाँद देखता है तो धूमिल सा हो जाता है :—

कोई जड़त टीका पेशानी में लाय,
खड़ा सूरज यू सुबह मैदान आय।
अजब टूट बिजली पड़े चाँद म्याँ,
दिसे खूए बुन्द मुख हो गर्मी निसाँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने 'इब्राहीम नामा' के साथ दक्खिनी साहित्य को एक बहुत बड़ी निधि प्रदान की है। यह यद्यपि कोई इतिहास ग्रंथ नहीं है तथापि इससे इतिहास की अनेक गुथ्थियाँ सुलझती हैं और काव्य को एक नया मोड़ मिलता है।

कविवर अबदल की भाषा तत्कालीन बोल-चाल की दक्खिनी है, इसमें हिन्दी के शब्दों की अधिकता है जिसे हम बीजापुर के साहित्यकारों की एक प्रमुख विशेषता कह सकते हैं। हम अबदल की भाषा को परिमार्जित भाषा नहीं कह सकते। अबदल ने स्वयं कहा है :—

रख्या कम संस्कृत के इस में बोल,
अदक बोलने ते रख्या हूँ अमोल।
जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है,
सो दखनी ज़बान इसको आसान है।

डा० मसऊद हुसेन खाँ ने ठीक ही कहा है—"जो सफाई वजही, नुसरती और गवासी की भाषा में मिलती है, वह अबदल की भाषा में नहीं। इनका कथन उखड़ा-उखड़ा सा लगता।"[1]

आजिज़

मूलनाम अब्दुल लतीफ था[2] और काव्य में 'आजिज' उपनाम का प्रयोग करते थे। आजिज के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अभी तक सामग्री नहीं प्राप्त हो सकी है। आजिज के काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनके गुरू शाह मीरां थे।[3] आजिज के गुरू मीरां जी की मृत्यु हिजरी सन् 1049 में हुई।

कविवर आजिज ने अपने ग्रंथ लैला मजनूं का रचना-काल हिजरी सन् 1046 (1637 ई०) बताया है। उन्हीं के शब्दों में :—

हज़ार होर चहल शश यू हिजरत के साल,
होये परखिया लैला मजनूं का हाल।[4]

आजिज ने अपनी रचना का आरम्भ ईश स्तुति से किया है :—

किया इब्तदा मैं यह नाम खुदा,
हर यक इस्म ऊपर करूं जीव फिदा।
खुदाया तुही, पाक बेऐब रब,
बनाया जगत खास होर आम सब।

इसके पश्चात् कविवर आजिज ने नआत (हज़रत मुहम्मद का गुण-गान) लिखा है :—

मुहम्मद तूं है सरवर अला नबीया,
सो तुज कारने यो जगत सब किया।
है लो लाक तअरीफ मुंज शान में,
किया रब ने सब व सफ कुरान में।
तू है नूर उस नूर में थे अयाँ,
सूरज जोत चन्दर में, चन्द ना जहाँ।

---

1. डा० मसऊद हुसेन खाँ—शेर व जबान, पृ० 192
2. मेरा नाम कहते हैं अब्दुल लतीफ़,
   पढ़े पर यू फातिहा सो पढ़कर हदीस।—लैला मजनूं, पृ० 24
3. मदद पंच तन याक़ द बारा इमाम,
   मदद पीर मीरां मंजा मुकाम॥—लैला मजनूं, पृ० 125
4. डा० गुलाम उमर खाँ—लैला मजनूं अज़ आजिज, पृ० 126

इसके बाद चारों खलीफाओं की प्रशंसा की है :—

अबाबकर ईमाँ का है इमाम,
अदल दाद में है उमर नेक नाम।
थे उसमान हक़ खौफ में बाहया,
अली सले खतम जानसीनी किया।

आज़िज ने अपनी रचना 'लैला मजनूं' में किसी शासक का गुणगान नहीं किया है। ऐसा लगता है कि इसे राजदरबार से कोई सरोकार नहीं था।

कथा का मूल स्रोत

कविवर आज़िज ने प्रसिद्ध 'लैला मजनूं' की कहानी को अपनाया है। यह कहानी अरब से ईरान और ईरान से भारत आयी एवं उत्तर भारत में यह कहानी बहुत लोकप्रिय रही है। सूफी साधक न्यामत खाँ जान ने अवधी भाषा में इसे कविताबद्ध किया। दक्खिनी में इस कहानी को सबसे पहले अहमद दकनी ने लिखा था। आज़िज ने स्वयं लिखा है कि मैंने फारसी पद्य रचना में इस कथा को लिया है जिसका रचयिता हातिफ़ी था :—

कहिए हातिफ़ी फारसी नज़्म सूँ,
किया दक्खिनी किस्सा है इस नज़्म सूँ।[1]

कथा-सार

अरब देश में एक राजा राज्य करता था। उसकी अपने नगर के एक व्यापारी से घनिष्ठ मैत्री थी। राजा के 'कैस' नाम का एक पुत्र था। व्यापारी के 'लैला' नाम की एक पुत्री थी। बचपन से ही दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे। दोनों पाठशाला में जाते और एक दूसरे को दिन भर देखा करते थे। दोनों के प्रेम की चर्चा सारे अरब देश में फैल गई। प्रेम की बात सुनकर लैला की माता दुखी हुई। लैला का पढ़ाना रोक दिया गया। माता चौबीसों घण्टे लैला की चौकसी करने लगी।

कैस (मजनूं) की भी पढ़ाई रोक दी गयी। अब मजनूं पागल की तरह इधर-उधर भटकने लगा। एक बार वह लैला के घर के सामने गढ़े में गिर गया। लैला ने उसे गढ़े से निकाला। इस पर मुहल्ले में शोर मच गया कि मजनूं तो लैला से भेष बदल कर मिलने आता है। मजनूं जंगल में चला गया।

मजनूं के पिता ने लैला के पिता से आग्रह किया कि तुम अपनी पुत्री का विवाह मेरे पुत्र से कर दो। उत्तर में कहा, तुम्हारा पुत्र पागल है, क्या मैं उससे अपनी पुत्री का विवाह करूँगा ?

जब लैला चौदह वर्ष की हुई तो एक सुन्दर युवक से लैला का विवाह कर

---

1. डा० गुलाम उमर खाँ— लैला मजनूं अज़ आज़िज, पृ० 124

दिया गया। पति ने लैला को छुआ ही था कि लैला ने दूल्हे को ऐसा थप्पड़ मारा कि वह दूर जाकर गिरा। युवक लैला को तलाक देकर चला गया। जब मजनूं को यह समाचार मिला कि लैला का विवाह हो गया तो उसने लैला को एक पत्र लिखा, तुमने मुझसे धोखा किया है। लैला ने पत्र का उत्तर देते हुए लिखा, मैं तुम्हारी हूँ। क़बीले वालों के आग्रह पर मजनूं फिर नगर में आया। अकस्मात् उसकी भेंट लैला से हो गई। वह उससे मिलकर फिर जंगल में चला गया।

एक बार नौफल नामक राजा जंगल में आया और उसने कहा, मैं अपना धन दौलत लैला के पिता को दूँगा और बदले में मजनूं के लिए लैला मागूंगा। नौफल और लैला के पिता से युद्ध हुआ और लैला का पिता हार गया। नौफल लैला को साथ लाया। मजनूं बहुत प्रसन्न हुआ, किन्तु तब तक नौफल का दिल बदल चुका था। उसने एक प्याले में विष घोला और दूसरे प्याले में शरबत। संयोग की बात प्याले बदल गये, मजनूं बच गया और नौफल मर गया।

अब लैला का पिता अपनी पुत्री को लेकर चला, रात में लैला का ऊँट काफिले से भटक गया और वह जंगल में मजनूं के सामने पहुँच गया। लैला ने मजनूं को नहीं पहचाना और न हो मजनूं लैला को। कुछ समय बाद एक दूसरे की पहचान हुई और लैला बोली, अब हम कभी अलग नहीं होंगे। मजनूं ने कहा, हमारी बदनामी होगी फिर मजनूं ने लैला को उसके कबीले में पहुँचा दिया। मजनूं के विरह से जंगल जल गया।

एक दिन लैला ने स्वप्न देखा कि मजनूं का देहान्त हो गया है। लैला बहुत दुखित हुई और उसी दिन से वह अस्वस्थ रहने लगी। उसने अपनी माता से कहा, मेरे कारण तुम्हें अपयश मिला है। मुझे क्षमा करो, किन्तु मेरा संदेश मजनूं तक पहुँचा दो, तुम्हारी लैला मिट्टी में मिल गयी है। उससे यथाशीघ्र आकर मिलो।

लैला की मृत्यु हो गयी और कबीले के लोगों ने उसे दफना दिया। कुछ समय बाद माता मजनूं के पास गयी और संदेश सुनाया।

समाचार सुनते ही मजनूं बेसुध हो गया और होश आने पर उसने लैला की आत्मा को देखा और उसका भी देहांत हो गया। जङ्गल के आस-पास सिंह-चीते जमा हो गये। मोर ने मजनूं के शव को स्नान कराया। उसी समय वहाँ से एक काफिला गुजर रहा था और उस काफिले ने मजनूं के शव को दफनाया।

'लैला मजनूं' एक सुप्रसिद्ध शामी परम्परा की विस्तृत कथा है जिसे कविवर आज़िज ने संक्षेप में प्रस्तुत किया है। कथा संगठन एवं कथा निर्वाह दोनों प्रशंसनीय हैं।

सामाजिक दशा

इस कहानी से अरब देशवासियों की उस समय की सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति का पता चलता है, जब वे कबीलों में बटे हुए थे। उस समय कबीले के शासक की अपेक्षा व्यापारी का महत्व अधिक था। मजनूं राजकुमार होते हुए भी व्यापारी

के घर के सामने से नहीं जा सकता था। व्यापारी का पहरेदार उस पर तलवार से वार करता है। मजनूं का पिता लैला के पिता से विवाह करने का आग्रह करता है, किन्तु व्यापारी उसे अस्वीकार कर देता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उन दिनों सहशिक्षा का प्रचलन था। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट होता है कि अरब निवासी उस समय वर्गों में बँटे हुए थे। उनमें पारस्परिक विद्वेष रहता था। यही कारण है कि लैला का पिता मजनूं से अपनी पुत्री का विवाह करना गौरवास्पद नहीं समझता था।

कवि आज़िज ने स्थिति की स्पष्टता देते हुए लिखा है कि बाल्यकाल में मजनूं जब दूध पीता और लैला को न देख पाता तो दूध पीना बन्द कर देता था। पाठशाला में तो वे एक दूसरे को देखते ही रहते थे। मजनूं का प्रेम सकारण नहीं है बल्कि सहज है। हिन्दी के कवियों ने जितनी प्रेम कहानियाँ रची हैं, वे सभी सकारण हैं—स्वप्न दर्शन, रूप वर्णन, चित्र दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन आदि से प्रेम का उदय होता है। उसमें नख शिख वर्णन है। अधिकांश में वासना का भी समावेश है किन्तु 'लैला मजनूं' में मांसल अथवा शारीरिक वासना को कोई स्थान नहीं मिला है। 'लैला मजनूं' का प्रेम शैशवावस्था से है जबकि वे वासना अथवा शारीरिक सम्बन्ध को जानते भी नहीं थे। इतना ही नहीं लैला जब अनजाने में मजनूं के पास पहुँचती है तो मजनूं उसे पहचान तक नहीं पाता है। लैला जब अपना नाम बताती है तब कहीं वह पहचानता है। समाज के भय के कारण वह लैला को उसके कबीले में पहुँचा देता है। उसमें किसी प्रकार की वासना का लेशमात्र भी नहीं दिखायी पड़ता है। लैला स्वप्न मात्र देखने से प्राण त्याग देती है। वह पूर्णतया निष्काम है।

कविवर आज़िज का लगाव तसव्वुफ से था। कवि ने स्वयं कहा है कि 'लैला मजनूं' की लौकिक कथा के माध्यम से मैंने अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है :—

ओ मअशूक आशिक में मअना अहे,
लैला होर मजनूं बहाना अहे।

काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इसमें अलौकिक प्रेम का वर्णन है। इनका प्रेम साधना न रहकर साध्य बन गया है। दोनों का प्रेम शाश्वत है। अन्तिम भेंट में मजनूं ने लैला से कहा था :—

अगरचे मयस्सर हुआ नहीं विसाल,
करूँ याद दिल में सो तेरा ख्याल।
यही ख्याल बस है मैं जीऊँ तलक,
अजल का पियाला मैं पीऊँ तलक।

सूफ़ी कवि कुतुबन, जायसी और मंझन आदि की ही भाँति कवि आज़िज भी इस संसार-रचना का कारण प्रेम बताता है—

बगैर इश्क दुनिया न इक,
किते घात नर नार पैदा किया।

आज़िज ने हिन्दी सूफ़ी कवियों की भाँति प्रेम में विरह को महत्वपूर्ण स्थान दिया है :—

विरह जो सहे सो वही मर्द है,
यूँ आज़िज उसी पांव की गर्द है।

वास्तव में यदि देखा जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रेम की स्वाभाविक परिणति विरह है और विरह ही मन की वासना को धोता है।

'लैला मजनूं' काव्य विश्व के श्रेष्ठतम प्रेमाख्यानक काव्यों में गिना जाता है और सूफ़ी साधक तो 'लैला मजनूं' के प्रेम को आदर्श ही मानते हैं।

कविवर आज़िज ने चरित्रों के निर्माण में पूर्ण सफलता पायी है। इस काव्य में लैला, मजनूं तथा इन दोनों के माता-पिता के चरित्रों को प्रमुख स्थान दिया गया है। अन्य कई पात्र आये हैं किन्तु कवि ने उनके चरित्रों के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है।

सूफ़ी साधक आज़िज ने भावों को व्यक्त करने के लिए कल्पना से काम लिया है। कवि ने लैला के विरह जन्य शारीरिक वर्ण और रात दिन की अश्रुवर्षा का वर्णन किया है :—

कि ज्यू पीपला आंब पीला सो दिल,
गले ना विरह के शहद म्याने मिल।

लैला और मजनूं के प्रेम का प्रभाव वन प्राणियों पर भी पड़ता है और मजनूं की मृत्यु पर कोयल, फाख्ता आदि सभी दुखी हैं :—

फिराक़ो थे कोयल हुई जल कोयला,
रोवे फाख्ता होर बुलबुल ने आ।

'लैला-मजनूं' प्रेमाख्यानक काव्य की कथा का रूपकात्मक पक्ष स्पष्ट एवं सबल है। भाषा शैली की दृष्टि से यह रचना उच्चकोटि की है।

सनअती

सनअती सुलतान मुहम्मद आदिल शाह (1627-1657 ई०) का एक दरबारी कवि था। इसका मूल नाम मुहम्मद इब्राहीम ख़ाँ और सनअती काव्य नाम है। इसका जीवन वृत अज्ञात है। केवल इतना कहा जाता है कि यह सुलतान मुहम्मद आदिल शाह और सुलतान अली आदिल शाह के शासन काल में विद्यमान

था। यह अनुमान लगाया जाता है कि सुलतान आदिल शाह के शासनकाल के अंतिम दिनों में सनअती का देहान्त हुआ।

सनअती अपने समय का प्रसिद्ध साहित्यकार था। अभी तक प्राप्त तथ्यों के आधार पर, इनकी—किस्सा-ए-बेनज़ीर (किस्सा तमीम अनसारी) और गुलदस्ता केवल दो रचनाएँ उपलब्ध हैं।

किस्स-ए-बेनज़ीर

इस काव्य का रचना काल हिजरी सन् 1055 (1646 ई०) है। सनअती ने स्वयं लिखा है—

हजार यक पर साल पंजाह व पंज,
हुए तब हो उपर जवाहर पो गंज।[1]

'किस्स-ए-बेनज़ीर' नामक काव्य में कवि ने एक पौराणिक कहानी को आधार बनाया है। कवि ने स्वयं 'तमीम अनसारी' की कथा को दक्खिनी में लिखने का कारण बताया है—एक दिन जब मैं अध्यात्म-ज्योति की दुनिया में विचरण कर रहा था कि एकाएक मेरे हृदय में भाव उमड़ आये और ऐसा प्रतीत हुआ कि परमात्मा के द्वार खुल गये हैं। हृदय ने कहा कि संसार में यदि नाम को शेष रखना चाहते हो तो कोई स्मरणीय कार्य कर जाओ और इसके लिए सबसे सुन्दर बात है कि कोई कालजयी काव्य लिखा जाये जिसका सुपुत्र से भी अधिक मूल्य होता है। यदि किसी व्यक्ति की कोई चीज़ स्मरणीय नहीं रहती तो उस व्यक्ति का जीना-मरना दोनों समान ही है। इस दृष्टि से मैं बेनज़ीर कथा को कविताबद्ध कर रहा हूँ। मैंने देवों और परियों की कहानी लिखने के स्थान पर प्यारे नबी की रिवायत का वर्णन सबसे अधिक उपयुक्त समझ कर किस्सा तमीम अन्सारी को कविताबद्ध किया है :—

सदा ज़िन्दगागी उसे है शरफ,
जो दुनिया में उसते रहे यक खलक।
जो बाले हैं यों आरिफान-ए-सलक,
कि है शेर बेहतर सो बेहतर खलक़।
अगर तुज से कुछ ना हो यादगार,
तो जीना न जीना तेरा एक सार।
\+ + +
किया बातें मैं फिक्र इस बात में,
कहूँ कौन किस्सा सो किस धात में।
\+ + +

1. अब्दुल कादिर सर्वरी, सनअती—किस्स-ए-बेनज़ीर, पृ० 24

कि प्यारे नबी की रिवायत है यूं,
न देवा-पर्या की हिकायत है यूं।
यूं किस्सा अजब पाक है दिल पज़ीर,
जो पाकां कहे हैं जिसे बेनज़ीर।

स्पष्ट है कि कवि ने स्वयं काव्य का नाम बेनज़ीर रखा है और इसकी इच्छा थी कि इस कथा को फारसी में लिखा जाये, किन्तु मित्रों के आग्रह पर इसने अपने संकल्प को बदल दिया और इसे दक्खिनी में लिखा है :—

इसे फारसी बोलना शौक था,
बले मैं अज़ीज़ां कू यों जौक था।
कि दक्खिनी जबां सो इसे बोलना,
जो सीपी ते मोती नमन रोलना।
+ + +
जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है,
सो दखनी ज़बां उनकूं आसान है।

समसामयिक शासक के रूप में कवि सनअती ने सुलतान मुहम्मद आदिल शाह की प्रशंसा की है—

मुबारक वो है झाड जिस छांव तल,
खलक़ आयें आसूदगी के बदल।
अव्वल उनकूं ल्या छाँव में अनकरीब,
बजां पाक़ मेव्या सो बखशे नसीब।
वही जग में है आवे हैवां तमाम;
कि जिसने सदा फैज़ है खास व आम।
+ + +
बराहीम के बादज हुआ नामदार,
जगत में मुहम्मद शहे कामगार।
+ + +
दखिन का तूं है खुस्रवे ताजदार,
जते ताजदारां वेतै बाजदार।

कथा-सार

खलीफ़ा हज़रत उमर से एक महिला ने आकर कहा, मेरा पति चार वर्ष से गायब है यदि आप अनुमति दें तो दूसरा विवाह कर लूं क्योंकि कोई मेरा सहारा नहीं है। खलीफा ने उनके जीवन निर्वाह के लिए कुछ धन देकर कहा, तीन वर्ष इन्तजार करो। तीन वर्ष बीतने के बाद वही महिला फिर आयी तो खलीफा ने और चार मास प्रतीक्षा करने के लिए कहा। चार मास पश्चात् महिला खलीफ़ा के पास

आयी तो उसका विवाह एक युवक से करा दिया। सुहाग रात दोनों ने व्रत और प्रार्थना में बिताई। उसी रात आँगन में एक बूढ़ा आया, उसने अपना नाम तमीम अन्सारी बताया और कहा, घर मेरा है। सुबह होते ही तमीम अन्सारी को खलीफा के पास ले जाया गया। खलीफा के सामने तमीम अन्सारी ने कहा—एक दिन जाड़े में मुझे स्नान करने की आवश्यकता हुई, मैंने अपनी पत्नी से पानी गर्म करने को कहा, वह झुंझला कर बोली, थोड़ा ठहरो, अभी गर्म करती हूँ, तुम्हें देव भूत तो नहीं उठा ले जा रहा है। उसी समय सचमुच मुझे एक दैत्य उठा ले गया। उसने मुझे परियों के लोक में पहुँचा दिया। शीघ्र ही वहाँ बहुत से दैत्य आये और दैत्य एवं परियों का संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में परियों की विजय हुई। परियों ने मुझे पीर परी के पास पहुँचाया। वहाँ पर मुझे पीर परी के पुत्र को कुरआन पढ़ाने के बाद मुझे आकाश द्वारा भेजा जा रहा था कि ज़मीन पर गिर पड़ा। मुझे मार्ग में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। निराश होकर आत्म हत्या करना चाहता था कि एक युवक मेरे सामने आया। वह युवक मुर्गा बना और मैंने उसके पैर पकड़े। मुर्गे ने मुझे एक महल के सामने खड़ा कर दिया। मुर्गा फिर युवक बन गया। उस महल के ताले पर दो वाक्य थे—एक हज़रत मुहम्मद साहब पर ईमान लाने के लिए था और दूसरा हज़रत सुलेमान के सम्बन्ध में था। युवक ने मुझे जो कपड़ा उढ़ाया था उसे छुआते ही ताला खुल गया। महल में अनेक दैत्य, भूत और प्रेत थे। युवक द्वारा दिया गया कपड़ा मैंने उन पर डाला। उन्होंने मुझे मार्ग दे दिया। आठ महल पार करके नौवें महल में पहुँचा। वहाँ एक व्यक्ति सो रहा था। उस व्यक्ति के चारों ओर अनेक अजगर थे। युवक ने मुझे बताया कि ये महतर सुलेमान सो रहे हैं, इस अँगूठी में बड़े चमत्कार हैं। मैं इसे अभी निकालता हूँ।

युवक वस्त्र का एक धागा फेंक कर अजगरों से बच गया, किन्तु वह जैसे ही सुलेमान के पास पहुँचा, एक हुँकार हुई और युवक की मृत्यु हो गयी। किसी ने मुझसे कहा—युवक राक्षस था। तुम्हें धोखा दे रहा था, तुम तख्त के नीचे से एक अंगूठी लो और यहाँ से चले जाओ।

विभिन्न प्रकार के संकटों को पार करते हुए खिज्र के पास पहुँचा। खिज्र के प्रश्न करने पर बादल ने बताया, वह मदीना पर बरसेगा। खिज्र के कहने पर बादल ने मुझे मदीना में उतार दिया।

अन्त में खलीफा हज़रत उमर और हज़रत अली ने तमीम अन्सारी को उनकी पत्नी को दिला दिया।

इसमें मसनवी की सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं और कुछ स्थलों पर इस्लाम की महत्ता भी प्रतिपादित की गई है। इसमें कवि ने बुद्धि को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। बुद्धि के बिना वाणी शोभा नहीं देती और वाणी की प्रशंसा कवि के शब्दों में :—

न हर कोई सुरवन का सजावार है,
न हर कतरा लुलुप शहबार है।
सुरवन में का भी को काडे रतन,
सुरवन दो समझते हैं कद्र-ए-सुरवन।

प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण में कवि ने कल्पना का अच्छा प्रयोग किया है और इसमें कवित्व शक्ति भी है :—

अथाँ वाँ अजब सब्ज यक मुर्गज़ार,
दरख्ताँ थे कै भांत के बारदार।
दिसे सब्ज रंग आसमाँ सा जमीन,
सिताराँ से उसमें गुले यास्मीन।
+ + +
दिसे जल यों बारेत इस धात मौज,
कि चंबल की जो चखमें गम ज्या की फौज।
दिसे पेच संबुल के लाले में यो,
अरुसाँ के रुखसार पर जुल्फ ज्यो।

प्रात: काल के समय जब सूर्य निकलता है, उस समय का चित्रण कवि ने बड़े कौशल से किया है :—

गगन जब सर्या सुबह पुरनूर में,
छिप्या मिश्के तातार काफ़ूर में।
जो मशरिक का फराश जरीं निकल,
उचाया विलोरी शमाँ दाँ सकल।

कविवर सनअती ने रात्रि का चित्रण इस प्रकार किया है :—

चल्या जगते खुर्शीद साहेब-जमाल,
हुआ खम पी रोशन चन्दर का हलाल।
फूली जब रयन सब ओ नक्शे नमन,
खुले तब गगन के चमकने समन।
गगन पर निकल यों सितारे फिरे,
हर बाग़ में जो चिराग़ाँ धरे।

सनअती ने परियों और देवों के युद्धों का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से किया है। परियों के सौन्दर्य के वर्णन में अपनी कल्पना का कमाल दिखाया है। इसमें विभिन्न अलंकारों का प्रयोग किया है, विशेष रूप से उपमा और रूपक अलंकार निखर कर सामने आये हैं :—

हर यक नूर में हूर पर ताना जन,
हर यक चाँद ते साफ निर्मल बदन।
+ + +
अधर पो दौर हर यक वर्ग़-ए-गुल धरे।
वले कॉं है गुल वर्ग शक्कर भरे।
दसन मस्त उसके हरे जाये पात,
वले कॉं है हरयॉं में यों आब ताब।
दिसे जुल्फ उनकी हूर यक गाल पर,
तू बोले कि सम्बूल है गुल लाल पर।
देखत चख चंचल शोख उनके चरण,
भूली ऐसी सब चंचला इके फन।
दिसे यो जवानी सों जोबन नवल,
उमंग आये जो जलते कॅंवले कॅंवल।
कमर उनकी शेर जे ने देख्या मगर,
जो शर्मों रिल्या हात अपस मूँड पर।

इस काव्य में घटनाएँ बहुत हैं जिससे काव्य कहीं-कहीं कवित्व अलग हो जाता है। घटनाओं के साथ-साथ दृश्यों और पात्रों की भी अधिकता है। पात्रों के चरित्रों का विकास बहुत कम हो पाया है। कविवर सनअती ने प्रश्नोत्तर शैली में सूफ़ी विचारधारा को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है और यह भी प्रभावित करने का प्रयास किया है कि प्रेमी उसे ही मिल सकता है जो ज्ञानी है एवं उसे ज्ञान से भी वशीभूत कर सकता है।

गुलदस्ता

कविवर सनअती ने इसकी रचना हिजरी सन् 1055 (1646 ई०) में की है। यह एक प्रेमाख्यानक काव्य है। इस रचना का उद्देश्य ज्ञान को नये रूप में जग के सामने रखना बताया है :—

गुलदस्ता खास व आलिम कर, किस्से का मैं खुश नाम रख।
तुहफाये अपरूप नौ बना, जग में धरिया रउफान का।

इस रचना का मूल स्रोत कोई फारसी पुस्तक है। प्राचीन कथा वाचकों की रुढ़िगत परम्परा में एक लघु कथानक को विस्तार के साथ लिखा है।

कथा-सार

मिस्र देश का राजा बड़ा दानी, सज्जन और दयालु था। एक बार वह अपने मंत्रियों के षडयन्त्र में फँस गया और वह अपने सुलखन पुत्र एवं पत्नी को लेकर

जीवन रक्षा के लिए मिस्र देश छोड़कर चला गया। राजकुमार एक दिन घर से बाहर निकला और थककर एक वृक्ष की छाया में सो गया। वहाँ राजा का बाज पक्षी उड़कर उसके सीने पर आ बैठा। बाज पक्षी राजा को बहुत प्रिय था। राजकुमार, राजा के पास बाज को लेकर गया। राजा ने राजकुमार का हाल पूछा, उत्तर में राजकुमार ने स्वयं को व्यापारी बताया और कहा, मार्ग में चोरों ने मेरा धन लूट लिया। राजकुमार बलम ने अपने दास को राजा के हाथों बेचा तथा अपने माता-पिता को राजा दास को राजा के हाथों बेचा तथा अपने माता-पिता को राजा के संरक्षण में छोड़कर व्यापार के लिए निकला। मार्ग में अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ वह चीन देश पहुँचा और एक बुढ़िया के यहाँ ठहरा। बुढ़िया ने उसे चीन की राजकुमारी का प्रण बताया कि वह उसी से विवाह करेगी जो उसे प्रश्नोत्तर में पराजित करेगा। प्रश्नोत्तर में हारने वाले व्यक्ति का सिर कटवा कर वह महल के पास वाली दीवार पर लटकवा देती है।

राजकुमार बलम और राजकुमारी खितामी का प्रश्नोत्तर आरम्भ हुआ। इस प्रश्नोत्तर में राजकुमार बलम की विजय हुई और राजकुमारी से विवाह कर अपने देश लौट आया एवं शत्रुओं को भी जीतकर अपने देश पर फिर अधिकार कर लिया।

'गुलदस्ता' नामक काव्य के माध्यम से कविवर सनअती ने ज्ञान को अधिक महत्व दिया है। प्रश्नोत्तर का उद्देश्य इस्लाम धर्म की महानता को प्रतिपादित करना है। इसमें सूफी विचारधारा का भी परिचय मिलता है।

इस प्रेमाख्यानक काव्य में पर्याप्त काव्य सौन्दर्य है किन्तु इसकी भाषा सरल, सहज और प्रांजल है :—

सुनो ऐ सुखन दाँ साहब हुनर,
एता अदबियाँ खोल बोलूं मगर।
अजब यो नज़ाकत भरयां यो बचन,
कि सुन ताज़ा तर होवे दिल के चमन।
खुशी सूं चलया शाहज़ादा निकल,
कि इस काम आने का धर धर शग़ल।
+ + +
वह दुख्तर है खूंरेज़ होर जा निस्ताँ,
नको उस बला में तू पड़ना कहाँ।
कहा शाहज़ादा सुने ऐ अज़ीज,
मेरी बात को दिल में देकर तेज।
जो कोई मर्द होते हैं साबित क़दम,
न होते हैं आप से बलाये अदम।

इब्ने निशाती

इब्ने निशाती का मूल नाम शेख मज़हरुद्दीन था और इनके पिता का नाम

शेख फ़खरुद्दीन था।[1] शेख चाँद के मतानुसार इब्ने निशाती का नाम शेख मुहम्मद मज़हर था और पिता का नाम लेख फखरुद्दीन था।[2] इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में अन्तः साक्ष्य अथवा वाह्य साक्ष्य से कुछ सामग्री नहीं मिलती है। इनके गुरू का नाम भी अज्ञात है।

कविवर निशाती बड़े विनयशील स्वभाव के थे। इन्होंने आत्मश्लाघा कभी नहीं की। कवि ने स्वयं लिखा है—'गद्य लिखने में मुझे अधिक आनन्द आता है क्योंकि इस क्षेत्र में मेरी अभिरुचि है किन्तु जनसाधारण के सम्मुख अपनी विद्वता को प्रकट करने के लिए मैंने काव्य की रचना की।'[3] निशाती फारसी[4] एवं दक्खिनी[5] भाषा में प्रवीण थे।

इब्ने निशाती को इस बात का जीवन भर दुख रहा है कि युग ने उनकी उपेक्षा की है और कवि को पूर्ण विश्वास है कि यदि फीरोज, सैयद महमूद, शेख अहमद हसन शौक़ी और मुल्ला ख्याली जीवित होते तो उसकी अवश्य प्रशंसा करते :—

नई वो क्या करूँ फीरोज उस्ताद,
जु देते शाइरी का कुच मेरी दाद।
है सद हैफ जो नै सैयद महमूद,
कीते पानी को पानी, दूद कूं दूद।
अनई इस वक्त पर वो शेख अहमद,
सुखन का देखते बांद्या सो मैं हृद।
हसन शौकी अगर होते तो फिलहाल,
हजारा भेजते रहमत मुंज उपराल।
अछते तो देखते मुल्ला खयाली,
यू मैं बरत्या हूँ सो साहिब कमाली।

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 130
2. देवी सिंह चौहान—इब्ने निशाती विचरति फूलबन (भूमिका), पृ० 4
3. अहे इनशा पो मेरा मेल दायम, तबीयत को मेरी है हिज़ मुलायम।
   समज हर किस कूँ मेरा तबा होना, ककर मैं यक दिखाया हूँ नमूना।
   देवीसिंह चौहान—इब्ने निशाती विचरति फूलबन, पृ० 82
4. मुझे है फारसी में दस्त-गाह अज, न फारसी तरजुमा वी कोई तुज बाज।
   —वही, पृ० 9
5. सुखन का आज होकर तू गुहर-संज, सुखन का खोलला मैं क्या सबब गंज।
   जगत को के सुनाता नै यो बातां, शकर पर के तू लिखता मैं बरातां।
   —वही, पृ० 8

यद्यपि कविवर निशाती के सम्बन्ध में बहुत कम सामग्री प्राप्त हुई है तथापि जो कुछ प्राप्त है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि वे बहुश्रुत विद्वान थे। अभी तक निशाती का केवल 'फूलबन' नामक काव्य प्राप्त हो सका है। 'फूलबन' नामक काव्य के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि कवि ने इसकी रचना अपनी युवा अवस्था में की होगी :—

मुतव्वन कर तू मेरी ज़िन्दगानी, तू बरखुद्दार कर मेरी जवानी।

इनके काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1076 (1666 ई०) है :—

अथा तारीख लाया तो यूं गुलज़ार,
अग्यारह सो कू कम थे बीस पर चार।

अतः इब्ने निशाती का जन्म कदाचित 1046 से 1036 हिजरी के बीच हुआ होगा।

कविवर निशाती ने 'फूलबन' काव्य का आरम्भ अन्य दक्खिनी के कवियों की ही भाँति ईश-स्तुति से किया है और ईश्वर के अनोखे कार्यों का उल्लेख करते हुए कहा है कि मैं उस परमात्मा की वन्दना करता हूँ जिसने दो अक्षरों (कुन) से सृष्टि की रचना की है एवं स्वयं सदैव रहने वाला है :—

नुखस्ते योजना करता हूँ पर तोहीद-ए-सुबहानी,
जिने दो हर्फ़ में ज़ाहिर किया असरार-ए-पिनहानी।
खुदावन्दा तुजे जम है खुदाई,
हमेशा तुज कूँ साजे किब्रयायी।
अजल कूँ नई समज तेरा बदायत,
अबद कूँ कहम नई तेरा निहायत।
गगन होर धरत कूं देता तूं हस्ती,
बुलन्दी उसकूँ देता इस कूं पस्ती।
सूरज ज़र्रा है तेरे नूर का एक,
चन्दर क़तरा है तुज समुन्दर का एक।
+ + +
दिया खूबाँ के रुख को सुबह का ताब,
बैद्या नैनां यो दो आबरू के मिहराब।

हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा करते हुए कवि ने लिखा है :—

कहूँ मैं नात सरवर का शफील्युजनिबैन बर हक़,
कि जिसके नूर सूं परतू किया तो जग कूं ताबानी।
करूँ मैं ले क़लम हात इब्तदा नात,
सचे हक़ के पैयम्बर का अदा नात।

मुहम्मद पेशवा है सरवरां का,
अहे सर खेल सब पैगम्बरां का।
नबी तू पाक तेरा पाक दीन है,
सचा तूं रहमतुल्ला आलमीन है।

निशाती शिया सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। अतः इन्होंने हज़रत हुसेन के गुणों का उल्लेख प्रशंसा भरे शब्दों में किया है :—

सना उस नयन निरजन का, आहे करतार सामी वो।
उसी की मये - मुहव्वत, सूँ दिखता शिभर की बानी।
अजल के इल्म का आलिम जो है वो,
है सब नाक़िस अपो सालिम जो है वो।
जो है उस्ताद सनअत की नज़र का,
हुनरमन्दों में कुदरत के हुनर का।
मंग्या करने किताब ईजाद वो यक,
मंगे तसनीफ़ करने यादगार यक।
सो कयता इब्तदा ताजीम का सतर,
लिखा फी अहसन तकवीम का सतर।

कवि निशाती ने समसामयिक शासक अब्दुल्ला कुत्ब शाह की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

करूँ तारीफ़ में उस ताजवर का,
समजता है जिने क़ीमत गुहर का।
शहाँ का शाह अब्दुल्ला गाज़ी,
अछो जम हक़ सूँ उसकी पेश बाज़ी।
सआदत के नयन का नूर है तूं,
शुजाअत के गगन का सूर है तूं।
अहे जमशीद का सब दाव तुज में,
सिकन्दर का वो है आदाब तुज में।

काव्य का मूल स्रोत

काव्य के आरम्भ में कवि ने यह उल्लेख किया है कि बिसाती नामक कवि के फारसी काव्य को दक्खिनी में लिख रहा है :—

बिसाती जो हिकायक फारसी हैं,
लताफत देखने को आरसी है।
इबारत सब किसे वो ने समजता,
कहाँ मुश्किल है किसको ने समजता।

तुजे है फारसी में दस्तगाह आज,
न करसी तर्जुमा वी कोई तुज बाज।
उते हर किस के तै समजा के तूं बोल,
दखन की बात सूं सारा बयां खोल।

'फूलबन' दक्खिनी काव्य के प्रेमियों में बहुत लोकप्रिय रहा है। 'फूलबन' को आधार बनाकर कई कथा-काव्यों की रचना की गई है, किन्तु केवल दो मसनवियों का उल्लेख प्राप्त होता है। एक—सैयद मुहम्मद हुनर द्वारा रचित 'नेह दर्पण' और दो—सैयद मुहम्मद बाला कृत फूलबन।

कथा-सार

कंचनपट के राजा ने स्वप्न में एक योगी को देखा। योगी ने बताया कि मेरा पिता खुरासान के राजा का प्रधान था। वह बुद्धिमान था। उसने मुझे एक कहानी सुनायी थी—कश्मीर में एक न्यायी राजा था। माली ने उसे एक फूल दिया। राजा को वह फूल बहुत पसन्द आया और उसने उसका एक पौधा अपने उद्यान में लगाने का आदेश दिया। माली ने पौधा लगाया। उसमें फूल खिलने लगे। एक दिन उस पौधे का फूल मुर्झाया हुआ था। राजा ने उसका कारण पूछा, माली ने बताया, एक बुलबुल पौधे के पास रहती थी। वह आज कहीं चली गयी है। राजा ने बुलबुल को पकड़ने का आदेश दिया। बुलबुल पकड़ी गई और उसे एक पिंजड़े में रखा गया। रो रो कर बुलबुल ने शोक किया। राजा के पूछने पर बुलबुल ने अपनी कहानी कह सुनायी :—

पहले मैं खुतन के व्यापारी का पुत्र था। पिता के साथ व्यापार के लिए गुजरात गया। वहाँ मैं एक सुन्दरी पर मुग्ध हो गये। हम दोनों का प्रेम बढ़ता गया। यह बात शहर में फैल गई। बात सुन्दरी के पिता तक पहुँची। वह बड़ा भक्त था। उसने भगवान से प्रार्थना की कि मेरी पुत्री उसके प्रेमी की योनि बदल जाये। उसकी पुत्री फूल बनी और मैं बुलबुल।

राजा के पास एक अंगूठी थी। उसको यदि योनि परिवर्तन वाले प्राणी पर फिरा दिया जाता तो वे वास्तविक योनि में आ जाते। राजा ने फूल और बुलबुल पर अंगूठी फिराई, दोनों क्षण भर में युवक और युवती बन गये। राजा ने युवक को अपना दरबारी बना लिया।

युवक ने एक दिन राजा को एक कहानी सुनायी—गौढ देश का राजा बहुत ही बुद्धिमान और चतुर था। वह योगियों का भक्त था। एक योगी ने उसे परकाय प्रवेश का मंत्र सिखाया। राजा ने उस मंत्र को अपने मंत्री को बताया। एक दिन राजा की आत्मा हिरण के शरीर में चली गयी और मंत्री की आत्मा राजा के शरीर में। मंत्री ने अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े करा दिए और स्वयं राज्य का स्वामी बन

बैठा। मंत्री के मन में पाप समाया, उसने रानी (सतवन्ती) को अपनी पत्नी बनाना चाहा, किन्तु रानी को उसके रंग-ढंग से पता चल गया कि यह मेरा पति नहीं है।

जब राजा लौटकर आया तो देखा कि उसका शरीर खाली नहीं है तो उसने तोते के शरीर में प्रवेश किया और रानी सतवन्ती के महल में पहुँचा। तोते ने सारी कहानी सतवन्ती से कह सुनायी। तोते के कहने पर रानी ने मंत्री से कहा, तुम कबूतर के शरीर में प्रविष्ट हो जाओ। मंत्री ने ऐसा ही किया और राजा तोते के शरीर से निकल कर अपने शरीर में आ गया।

युवक ने एक अन्य कहानी सुनायी—प्राचीन काल में मिस्र देश का राजकुमार हुमायूँ ईरान की राजकुमारी समनबर के अपूर्व सौन्दर्य को सुनकर विमोहित हो गया और माता-पिता को छोड़कर समनबर की खोज में निकल पड़ा। शहर में जब राजकुमार पहुँचा तो देखता है कि समनबर के बहुत से प्रेमी हैं। वह स्वयं समनबर के महल के नीचे रहने लगा। एक दिन दोनों ने एक दूसरे को देखा। धीरे-धीरे दोनों का प्रेम बढ़ने लगा। एक दिन दोनों वहाँ से भागकर सिंध नगर चले गये। वहाँ समनबर फूल गूँथा करती थी। एक बार राजा ने मालिन से समनबर के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी। राजा ने किसी बहाने हुमायूँ को मार्ग से हटाना चाहा। राजा ने हुमायूँ को शतरंज खेलने के लिए आमंत्रित किया। राजकुमार हुमायूँ हार गया और शर्त के अनुसार उसे कमल लाने के लिए तालाब में कूदना पड़ा। जब हुमायूँ तालाब में कूदा तो उसे एक मछली अपने घर ले गयी। उधर राजा ने समझा कि समनबर का प्रेमी मर गया।

अब सिंध के राजा ने समनबर से विवाह करने का प्रयत्न करना आरम्भ किया, किन्तु समनबर उससे विवाह करने के लिए राजी नहीं थी। इधर मिस्र के राजा को समाचार मिला की उसके पुत्र को धोखे से मार डाला गया। उसने एक बड़ी सेना लेकर सिंध पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। सिंध का राजा परास्त हुआ। सिंध के राजा के सजा पाने से पहले ही विनती की कि मेरे पास एक मछली है। उसकी यह विशेषता है कि वह समुद्र का समाचार ला सकती है। मछली समाचार लायी कि राजकुमार हुमायूँ अभी जीवित है।

उधर समनबर अपने प्रेमी की खोज में निकल चुकी थी। समनबर मलिक आरा नामक परी से मिली। मलिक आरा ने जीवित राजकुमार हुमायूँ और समनबर को मिला दिया। दोनों प्रसन्नता से रहने लगे और हुमायूँ राजा बनकर राज्य करने लगा।

'फूलबन' नामक काव्य की विशेषता यह है कि इसमें एक ही कहानी नहीं है प्रत्युत इसमें पाँच कहानियाँ हैं। एक कहानी दूसरी से मिलती है अर्थात् प्रमुख कहानी में दूसरी कहानियाँ गौण रूप में मिलती हैं। गौण कहानियाँ प्रवेश द्वार का काम करती हैं। संयमी भक्त और कंचनपट का राजा फूलबन के मुख्य पात्र नहीं है। इस काव्य के मुख्य पात्र हैं :—

1. श्वतन के व्यापारी का पुत्र और गुजरात के भक्त की पुत्री।
2. योगी भक्त राजा का धोखेबाज मंत्री और उस राजा की पत्नी सतवन्ती।
3. समनबर, हुमायूँ और सिंध का अदूरदर्शी राजा।

कविवर इब्ने निशाती ने काव्य में वस्तु और व्यक्ति के चित्रण में अपनी कुशलता दिखायी है जब वह किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का चित्रण करता है तो समस्त स्थिति चित्रात्मक हो उठती है।

काव्य-कला

'फूलबन' काव्य की शैली सरस, सरल और प्रसाद युक्त है। कवि की कल्पना शक्ति सराहनीय है। यद्यपि निशाती ने स्वयं कहा है कि यह फारसी ग्रंथ का केवल अनुवाद है, किन्तु ऐसा नहीं है। यह मूल कृति से भी सुन्दर एवं रसपूर्ण है। इसमें वस्तु चित्रण तथा व्यक्ति चित्रण सरलतापूर्वक देखा जा सकता है। मालिक आरा के पत्र में वस्तु चित्रण की अपूर्वता दर्शनीय है :—

अगर चे जाहिराँ वो विरहनी नार थी,
थी हँसती खेलती उस सूँ मिल यक ठार।
× × ×
कि यक कोई, शाहज़ादा इस तरफ का,
हसन खाक्याँ मन इज़्जो शरफ का।
अवाचीते उधर जाकर पड़्या है,
पिन्याँ के बन्द में वो संपड़्या है।
देकर इस धात की लिख कर जवानी,
किया काफूर पर अम्बर फशानी।
तबीअत सूँ लिख्या तक़रीर ताजा,
किया मक़सूद का तहरीर ताजा।
निछल सकहे उपर सतराँ दिसे यूँ,
कि ज़ुल्फ़ाँ मह-रूखा के रूख पो है ज्यूं।
दिखाया कर अजायब कारबाराँ,
दुन्या पर दूद के कैफे के माराँ।
किया खत्म नामें कूँ वो दाना,
दे यक सियाने के हत तकियते खाना।

व्यक्ति चित्रण में भी कवि खूब रमा है। योगी का उसने ऐसा चित्रण किया है मानों योगी पाठक के सामने ही खड़ा हो :—

है तन पर पैरहन उजला छबीला,
कमर बांधा है यह बारीक सेला।

बन्धा है छोड शमला सरयो दस्तार,
असा पकड़ा है यकरंगी तरहदार।
अगर चे लहू सूं था सब अंग खाली,
वले सिजदे की थी उस मुख पै लाली।

'फूलबन' नामक काव्य अलंकारों का एक अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी भंडार कहा जा सकता है। निशाती का कथन है कि जो लोग अलंकार शास्त्र के ज्ञाता होंगे, वही उसकी उन सूक्ष्मताओं को समझेंगे और रसास्वादन करेंगे। कवि का यह भी दावा है कि जिस कला को अभी तक किसी ने नहीं दिखाया है उसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ :—

जो कोई सनअत समजता हो सो ग्यानी,
वही समजे मेरी यो नुक़ता-दानी।
× × ×
हुनर कोई नै दिखाया सो मैं दिखाया,
सनअ एक कम चालीस लाया।
हर एक मिसरा उपर होकर बजिद खूब,
रख्या हूँ काफिया ल्या मुस्तनद खूब।
दिखाया मैं हुनर कर सबको हल्का,
सनअत करता हूँ शस्तो शश महल का।

उपर्युक्त पंक्तियों में यद्यपि कवि ने स्पष्ट लिखा है कि मैंने 39 अलंकारों का प्रयोग किया है किन्तु काव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इस काव्य में 39 से अधिक अलंकार हैं।

'फूलबन' में प्रमुख रस शृंगार, वीर, वीभत्स और शान्त हैं। इस काव्य की भाषा बोलचाल की दक्खिनी है। इसमें तत्कालीन समाज में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग खूब हुआ है। शब्दों के चयन में भी कवि ने अपने कौशल का प्रमाण प्रस्तुत किया है :—

नई हूँ वो कँवल जो उस सुरज बाज,
शिगुफ्ता होऊँ फिर कर चाँद सूं आज।
वो चातक महेबू पिऊँ बरसात की कर,
हर यक पानी सूं लब अपना करूँ तर।

मीराँ हासमी

मूल नाम सैयद मीरान था। हाशमी काव्य नाम था।[1] कुछ विद्वानों का

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 246

मत है कि इनका नाम मिया खान था। मीराँ हाशमी सुलतान अली आदिल शाह के शासन काल (1657-1672 ई०) के कवि हैं। मीराँ हाशमी, सैयद हाशिम शाह गुजराती के शिष्य थे। अतः इन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरू के नाम पर अपना काव्य नाम हाशमी रखा। इनका सम्बन्ध महदवी सम्प्रदाय से था। कहा जाता है कि आलमगीर औरंगजेब ने बीजापुर पर जब अधिकार कर लिया तो हाशमी अर्काट चले गये और मुगल सुबेदार जुल्फिकार खाँ की प्रशंसा में कसीदे लिखने लगे। कुछ आलोचकों का कथन है कि हासमी जन्मान्ध थे।[1] 'युसुफ जुलेखा' नामक प्रेमाख्यानक काव्य में कवि ने स्वयं को अंधा कहा है।[2] कवि घुमक्कड़ सूफ़ी प्रवृत्ति का था। इसने कुछ स्थलों के सम्बन्ध में बड़े पते की बातें लिखी हैं :—

बुरहानपुर :—देखो बुरहानपुर में कोई जी आशिक धन गुन्डी हुई है,
उन्हो के दिल मने कुछ को उसी बी का गुन गुन्डी हुई है।[3]

अहमदनगर :—जाते च मिल गयी वो धन अहमदनगर में,
अटक रखी है मेरा जो मन अहमदनगर में।[4]

मलाबार :—साती हमारे गये वहाँ जो मुल्क है मलाबार कर,
वाजिब न था जाना सो यूं मुझ बेगुनह कूँ मार कर।[5]

मीराँ हाशमी लोकप्रिय कवि थे। इनकी कविताओं को सुनकर श्रोता बहुत प्रसन्न होते थे। परन्तु वे इसके लिए कोई पुरस्कार नहीं चाहते थे। न ही वे किसी के पुरस्कर को स्वीकार करते थे। हाशमी ने स्वयं लिखा है कि एक स्त्री के बहुत अनुरोध पर इन्होंने उसकी एक अंगूठी स्वीकार की थी :—

सुनती थी नाव लेकिन मिलना न था तुमारा,
लइ शेर मैं सुनी हूँ भाती च की ज़बानी।
दखनी सलीस जग में क्या शेर है तुम्हारा,
बोली है खूब मोती च ग़ज़लाँ भी कह जनानी।
मुहरा रुपये सवाँ सू देते हैं कर लेते च नईं,
इतनी तो भी अंगूठी रहन देव मेरी निशानी।

हाशमी ने अपने काव्य की रचना किसी विशेष शासक अथवा शासक वर्ग

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 49
2. सकल इल्म के फन सूँ मैं दूर हूँ,
   यूं दोनों आख्यां तिस पो माज़ूर हूँ।
   —मीराँ हाशमी—युसुफ जेलेखा, पृ० 241
3. हफ़ीज़ कतील—दीवान-ए-हाशमा, पृ० 291
4. वही, पृ० 176
5. वही, पृ० 63

के लिए नहीं की, किन्तु इनकी कविता समस्त मानव जाति के लिए है किन्तु इसकी यह भी इच्छा रही है कि कविता को शासक वर्ग भी सराहे :—

मेरा शेर कर बादशाहां पसन्द,
पसन्द करके राखे जो सब होशमन्द ।

यद्यपि हाशमी का जीवन वृत अज्ञात है किन्तु कुछ विद्वानों की स्थापना के अनुसार हाशमी का निधन हिजरी सन् 1109 के लगभग हुआ।[1] इनके काव्य एक 'युसुफ ज़ुलेखा' की सूचना है जिसका रचना काल हिजरी सन् 1099 है :—

मुरत्तब किया मैं तो किस्से कूँ तो,
हज़ार बरस पर जो थे नव्बद पै नौ।[2]

कथा-सार

तैमूस नामक एक मुसलमान राजा था। उसके जुलेखा नामक एक अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी। एक रात स्वप्न में उसने यूसुफ को देखा और मुग्ध हो गयी। दाई उसे हर तरह समझाती है, किन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक वर्ष के बाद फिर अपने प्रियतम को स्वप्न में देखती है और उसका नाम व पता पूछती है। उसने अपना नाम अज़ीज़ और देश का नाम मिस्र बताया। स्वप्न भंग होने पर उसने राजा को अपने स्वस्थ होने का संदेश भेजा।

राजा ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए ज्योतिषियों से परामर्श किया और उनके परामर्श पर राजा ने मिस्र के मन्त्री अज़ीज़ के साथ विवाह का संदेश भेजा। इधर जुलेखा उत्सुकता से प्रियतम से मिलन की घड़ी की प्रतीक्षा करने लगी। जुलेखा का विवाह मिस्र के मन्त्री अज़ीज के साथ हो गया और जब वह अपने स्वप्न वाला प्रेमी नहीं पाती है तो अत्यन्त दुखी हो जाती है और उसमें विरह वेदना फिर से जाग उठती है।

युसुफ के पिता याकूब थे। एक दिन युसुफ़ ने स्वप्न देखा कि चांद और तारे मुझे प्रणाम कर रहे हैं। युसुफ ने पिता से अपने स्वप्न की बात बताई। याकूब ने कहा, तुम मिस्र के राजा होने वाले हो और तुम्हारे राज्य में प्रजा बहुत प्रसन्नचित्त रहेगी। याकूब ने यह भी कहा कि इस बात को तुम अपने भाइयों से मत कहना। लेकिन युसुफ ने अपने भाइयों से यह बात कह दी। भाइयों को युसुफ के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। एक दिन युसुफ अपने भाइयों के साथ जङ्गल गया, वहाँ पर भाइयों ने युसुफ को कुएँ में ढकेल दिया और पिता से आकर कहा कि युसुफ को आकाश पक्षी उड़ा ले गया। पिता पुत्र के वियोग में रो रो कर अन्धा हो गया।

---

1. मुहम्मद मुबीन कैफ़ी—जवाहर-ए-सुखन, पृ० 64
2. मीराँ हाशमी—युसुफ ज़ुलेखा, पृ० 243

उधर उसी मार्ग से व्यापारी जा रहे थे, उन्होंने युसुफ को कुएँ से निकाला और उसे अपने साथ मिस्र देश लेकर गये। सारा नगर युसुफ के सौंदर्यावलोकनार्थ एकत्रित हो गया। जुलेखा को भी दाई ने समाचार दिया और वह भी देखने के लिए आयी। वह देखते ही पहचान गई, किन्तु युसुफ को मिस्र के शासक ने खरीद लिया था। जुलेखा शाहे मिस्र को एक प्रार्थना-पत्र भेजा और कहा कि मेरी गोद खाली है। अतः मुझे युसुफ को दे दो, मैं उसे पुत्रवत रखूंगी।

एक अन्य देश की रानी आगन्तुक के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर उसे खरीदने के लिए मिस्र में आयी, किन्तु उस समय तक युसुफ बिक चुका था। अन्त में वह अपने प्रिय पात्र के दर्शनार्थ पहुँची और अपने प्रणय को व्यक्त किया तथा युसुफ के चरणों पर गिर पड़ी। युसुफ ने उसे उठाकर उपदेश दिया कि अपने जन्म देने वाले से प्रेम करो। इश्क-ए-मिजाज़ी व्यर्थ है और इश्क-ए-हक़ीकी ही लाभदायक है। उसने युसुफ को मुर्शिद (गुरू) मानकर उसके कथन पर चलने, फ़क़ीरी और गोशेनशीनी धारण करने की अपनी इच्छा व्यक्त कर विदा ले ली।

इधर युसुफ को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये जुलेखा भरसक प्रयत्न करती है, किन्तु युसुफ उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता। कुछ समय तक वह अपने मन को समझाती रही कि युसुफ अभी जवान नहीं हुआ है। नादान है और वह प्रेम को नहीं समझता। दाई ने जुलेखा को बताया कि युसुफ टस से मस नहीं होता। युसुफ ने अपने नैतिक आचरण का परिचय दिया। इसके बाद जुलेखा ने खुलकर अपने प्रेम को व्यक्त किया, किन्तु फ़िर भी युसुफ अडिग रहा। जुलेखा ने युसुफ में काम भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। उसकी सेवा में अनेक दासियों को जो किसी न किसी बहाने अपने अंगों के प्रदर्शन द्वारा युसुफ में काम वासना जगाने का असफ़ल प्रयत्न करती रहीं। जुलेखा ने फिर दाई से परामर्श किया। दाई ने कहा—नहीं इश्क बेटी यू खाला का घर—अतः कुछ सब्र से काम लो।

जुलेखा ने एक चित्रसारी बनवायी, जिसमें एक के भीतर एक सात कक्ष थे। प्रत्येक कक्ष में वासना को उद्दीप्त करने वाले अनेक चित्र बनवाये और एक दिन वह अकेले में युसुफ को ले गयी। दासी ने द्वार बन्द कर दिये। युसुफ के गले में जुलेखा ने बाहें डाल दी और बहुत ही अश्लीलता पर उतर आयी, पर युसुफ टस से मस नहीं हुआ। इस पर जुलेखा ने आत्मघात करने की धमकी दी, पर युसुफ पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में युसुफ ने तंग आकर खुदा एवं अपने पिता नबी याक़ूब का स्मरण किया, जिससे द्वार स्वतः खुल गये और वह भाग निकला। जुलेखा पीछे दौड़ी, परन्तु अन्तिम द्वार पार कर चुका था। सामने अज़ीज़ आते हुए दिखाई दिया। वह युसुफ का हाथ पकड़ कर चित्रसारी की ओर आया। जुलेखा को शंका हुई कि सम्भवतः युसुफ ने अज़ीज़ को सभी बातें बताई हों और वह उसे साथ लेकर प्रमाणित करने के उद्देश्य से लाया हो। अतः उसे अपनी पवित्रता को जताने के लिए युसुफ

पर झूठा आरोप लगाया कि उसने उसे सोती अवस्था में छेड़ा है और युसुफ को दण्ड देने की सिफारिश की।

अज़ीज़ बहुत क्रोधित हुआ। युसुफ ने कहा, जुलेखा की खाला का बच्चा जो चार मास का है उससे न्याय कराया जाय। बच्चे ने कहा, अगर युसुफ का कुर्ता आगे से फटा हो तो युसुफ अपराधी है और यदि पीछे से फटा हो तो जुलेखा। कुर्त्ता पीछे से फटा था। अतः अज़ीज़ ने जुलेखा से कहा, अपना अपराध उस पर क्यों डालती हो?

इससे समस्त मिस्र देश में जुलेखा बदनाम हो गयी और स्त्रियाँ आपस में उसके सम्बन्ध में चर्चा करने लगीं। जुलेखा ने स्त्रियों को सबक़ देने के लिए आमन्त्रित किया और भोजनोपरान्त प्रथानुसार सबके सामने तुरंज (मीठा नीबू) और छुरी रख दी एवं युसुफ को भी मजलिस में गुलाबदानी के बहाने बुलाया तथा सभी स्त्रियों से तुरन्त काटने के लिए कहा, सबने तुरंज के स्थान पर अपना अपना हाथ काट लिया अर्थात् सभी स्त्रियाँ युसुफ के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गयीं।

इधर जुलेखा ने युसुफ को राज़ी करने के लिए बहुत प्रयास किया। यहाँ तक कि उसे बन्दीगृह में रखा, उसे गधे पर बैठाकर पूरे शहर में फिराया, किन्तु युसुफ पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

एक दिन सुलतान ने स्वप्न देखा और युसुफ को बन्दीगृह से निकालकर उससे स्वप्न का रहस्य पूछा, युसुफ ने स्वप्न का रहस्य बताया।

उधर अज़ीज़ का देहान्त हो गया और जुलेखा विधवा हो गयी। जुलेखा विरह के कारण बूढ़ी हो गयी। लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे। जुलेखा युसुफ को देखने के लिए मार्ग में बार-बार खड़ी हो जाती। उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि युसुफ को दिखा दे। ईश्वर ने उसकी प्रार्थना सुन ली। युसुफ ने उसे बुलवाया। किन्तु उसे पहचान न सका। जुलेखा ने अपना परिचय दिया। युसुफ ने परमात्मा से प्रार्थना की हे प्रभु! जुलेखा को आँखें और जवानी लौटा दे। ईश्वर ने तथास्तु कहकर प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसके बाद जुलेखा ने युसुफ से विवाह की अभिलाषा व्यक्त की। युसुफ ने उसे स्वीकार कर लिया और दोनों का विवाह हो गया। वे आनन्दपूर्वक रहने लगे।

प्रेम-पद्धति

'युसुफ़ जुलेखा' नामक प्रेमाख्यानक काव्य का मुख्य विषय प्रेम है। कवि ने लिखा है कि प्रेम के कारण ही सूर्य और चन्द्रमा संसार को प्रकाश देते हैं। यदि प्रेम न होता तो धरती वर्षा ऋतु में हरा परिधान क्यों करती? यदि प्रेम न होता तो रात सजकर अपने साथ तारों को क्यों लाती? सौंदर्य जहाँ है वहाँ प्रेम है। सौंदर्य की सार्थकता प्रेम ही में है। वास्तव में कवि का मूल स्वर यह है कि प्रेम सर्वोपरि है।

चन्द्र चकोर, पंतिगा और दीपक आदि उदाहरणों से अपनी बात सुस्पष्ट करते हुए कवि कहता है :—

अगर इश्क नै है तो की यू चकोर,
नयन में दिया है तो चन्द्र को ठौर।
अगर इश्क नै है तो की यू पतंग,
दीवे पर जो पड़ता है जाकर फिसंग।

कवि सूफ़ी मनोवृत्ति का है। अतः इसे लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की झलक मिलती है और कह देता है :—

मजाजी यकीं इश्क सब ठौर है,
हकीक़ी वले इश्क कुछ और है।[1]

सूफ़ी साधक प्रेम के महत्व को व्यक्त करते हुए कहता है :—

जो आशिक अहे सोच जीव सार है,
जो आशिक अहे सो च अवतार है।[2]

हाशमी का मत है कि प्रेम-व्यापार सरल कार्य नहीं है, यह तो ईश्वर की कृपा से प्राप्त होता है :—

अजू क्या हुआ है अंग है जरर,
नहीं इश्क बेटी यूँ खाला का घर।[3]

इन्होंने प्रेमाख्यानक काव्य में प्रेम के संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष को अधिक महत्व दिया है। इनकी दृष्टि में विरह कोई अधिक नहीं है यह तो जीवन संगी है।

कवि हाशमी ने जिस प्रकार के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये हैं वैसे किसी अन्य दक्खिनी के कवि ने विचारों को नहीं बल्कि जीवन को चित्रित किया है। तत्कालीन रीति रिवाजों का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है। इसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं है। स्वाभाविकता ही हाशमी की कविता का सबसे बड़ा गुण है।

'युसुफ़ जुलेखा' नामक काव्य में बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें किसी प्रकार का बनावटीपन नहीं है। इसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का भी खूब प्रयोग हुआ है। काव्य-कला की दृष्टि से इस काव्य का दक्खिनी साहित्य में विशेष स्थान है। भाव, भाषा एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से रचना उच्चकोटि की है।

---

1. मीराँ हाशमी—युसुफ़ जुलेखा, पृ॰ 7
2. वही, पृ॰ 7
3. वही, पृ॰ 7

मीराँ हाशमी ने ग़ज़ल, रेखती और मर्सिया के क्षेत्र में अपनी तूलिका से ऐसे रंग भरे हैं, जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं। ग़ज़ल और रेखती के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

ग़ज़ल—ऐ मदमती भाता तेरा कैफी हो दुलदुल बोलना,
तुज लब के मय के जाम का होर शीशे का कलकल बोलना।
हलना तेरी, नथ का मुझे लगता है झुमके का झपक,
झनकार पंजन का तेरे घुँघरू का खल खल बोलना।
हैं गाल गोरे गुलगले मुख गुल सूरत लगी,
गोरा कला तुझ गुलगुला बेगी सो गुलगुल बोलना।

× × ×

तुज लब के लब की मय सूँ मस्त हो फिर फिर किए 'हाशमी'
ऐ मदगती माना तेरा कैफी हो दुलदुल बोलना।

रेखती—जाता सूँ ऐ मुसाफिर रहने की भी खबर है,
आया अता किधर सूँ जाता सो कहू किधर है।
दिन में रया है थोरा आती हमें बूंद झोके,
भूते जिगर है तिस पर रहबर भी बेखतर है।
भरकर नदी चली है तारों भी भाक गये हैं,
छाया आ यहाँ तिस पर आन के खल गुज़र है।

× × ×

जग शेर हाशमी का भरा अपस सो मुह हुए हो,
ऐसियाँ के करने खिदमत लिए कुछ मुझे आजर है।

शेख अहमद जुनैदी

'दकन में उर्दू' नामक ग्रन्थ के लेखक श्री हाशमी ने इनका मूल नाम अहमद और काव्य नाम 'जुनैदी' दिया है।[1] डा० ज़ोर ने जुनैदी का मूल नाम अली अकबर बताया है।[2] किन्तु सुलतान अब्दुल्ला कुत्ब शाह के शासन-काल में यह कवि विद्यमान था। एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी की पांडुलिपि में जुनैदी का नाम स्पष्ट रूप से मिलता है :—

कि अहमद जुनैदी तूं रख ये विचार,
देख्या चांद कूँ फाड बुरके थे बहार।

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 126
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 70

इसी प्रकार उसी प्रति में एक अन्य स्थल पर कवि ने स्वयं लिखा है :—

कि अहमद जुनैदी तूं पैकर की बात,
कि जा बोल यू राज महल में संगात ।

इससे स्पष्ट होता है कि डा० ज़ोर का मत आलोचना का विषय है । जुनैदी ने कुछ समय तक सरकारी नौकरी की और बाद में नौकरी छोड़कर बुरहानपुर में जाकर बस गये । इसके अतिरिक्त कवि जुनैदी के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानकारी नहीं है ।

शेख अहमद जुनैदी ने 'माह पैकर' नामक काव्य की रचना हिजरी सन् 1064 अर्थात् 1654 ई० में की । इस काव्य की पूर्ण प्रति अभी तक अप्राप्त है । अतः इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित मत व्यक्त करना कठिन है । कवि ने इसका नामकरण स्वयं किया है :—

क्या माह पैकर सो इस नेक नाम,
इलाही तूं कर इस नज़्म कूं तमाम ।

कविवर जुनैदी ने स्वयं इस काव्य का प्रेरणा स्रोत निम्न प्रकार से वर्णित किया है :—

कि तक दिन सो गुज़रे सो इस बात कूं ।
यकायक ऊ इलहाम हुआ रात कूं ।
नको कर ग़िला तूं सो यूं बोलने,
फिर दुर जग जवाहर के तो खोलने ।

सम्पूर्ण रचना में शेख अहमद जुनैदी का आध्यात्मिक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है । 'माह पैकर' के बारह वर्ष पीछे (हिजरी सन् 1076 में) 'फूल बन' नामक काव्य की रचना करते हुए निशाती ने शेख अहमद का उल्लेख किया है ।[1] इससे स्पष्ट होता है कि जुनैदी की रचना को पर्याप्त प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि मिल चुकी थी ।

कला-सार

ग़ज़नी में हसन मेमन्दी नामक एक मंत्री था । उसके कोई सन्तान न थी और निःसन्तान होने के कारण वह दुखी रहा करता था । कुछ समय के अनन्तर उसे एक कन्या रत्न प्राप्त हुआ, जिसका नाम 'माह' रखा गया । जब वह 4 वर्ष 4 मास और 4 दिन की हुई तो उसे पढ़ने के लिए बैठाया गया ।

उधर ग़ज़नी के अब्दुल्ला नामक व्यापारी को बहुत समय के बाद एक पुत्र प्राप्त हुआ । ज्योतिषियों के परामर्श से उसका नाम 'पैकर' रखा गया । संयोगवश जिस दिन 'माह' पाठशाला में प्रवेश करती है उसी दिन 'पैकर' भी पाठशाला में प्रवेश करता है । दोनों में घनिष्ठ मैत्रीभाव उत्पन्न हुआ । प्रेम की बात माह की

---

1. नहीं इस वक़्त पर वह शेख अहमद,
सुखन का देखते बान्द्या सो में सद ।

माता को मालूम हो गयी और परिणामतः माह का महल से बाहर जाना निषिद्ध कर दिया।

मालिन गुलेलाला पैकर का संदेश माह तक पहुँचाती और माह का पैकर तक। दोनों छिप-छिप कर रात में मिलने लगे। राजा ने पैकर को चोरी के आरोप में पकड़वा लिया और पिता ने पुत्र की जमानत तक नहीं दी। मलिक ज़ादे ने जमानत दी। राजा ने छुप कर मलिक ज़ादे और पैकर की और माह व पैकर की बातों को सुन लिया और पूरा हाल जान लिया। इधर माह ने बहुत दुखी होकर ददा नामक स्त्री से अपना रहस्य प्रकट किया। पैकर को चोरी के आरोप में फाँसी की सजा सुनाई गई, उस समय माह काले वस्त्र पहनकर वहाँ पहुँची। राजा ने हसन मेमन्दी से उसके विषय में पूछा तो उसने काले वस्त्र वाली स्त्री के अपरिचित होने की बात कही। अन्त में राजा ने पैकर को मुक्त कर दिया। हसन मेमन्दी ने माह-पैकर के विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसे उसने स्वीकार कर लिया और दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ।

'माह पैकर' नामक प्रेमाख्यानक काव्य का विषय विन्यास की दृष्टि से विशेष महत्व है। इस काव्य के कुछ अंश विशेष रूप से रुचिकर हैं। उदाहरणार्थ—माह के उद्यान का दृश्य, विभिन्न रंगविरंगी फूलों की बहार आदि। माह के विवाह के अवसर पर जिन रीति-रिवाज़ों का वर्णन आया है वे अत्यन्त हृदयहारी हैं।

भाषा और शैली की दृष्टि से यह रचना सुन्दर कला कृति है। इसकी भाषा बोलचाल की दक्खिनी है, इसमें देशज शब्दों की अधिकता है। अरबी-फारसी के कवि ने बोलचाल के रूप में ही रखा है :—

फहम को फाम, बेफहम को बेफाम, वजह को वजा,
उरुस को अरुस, सिर को सीर, दोस्ती को दुस्ती आदि-आदि।
इसी प्रकार मुहावरों और लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग हुआ है।

मलिक खुशनूद

खुशनूद गोलकुण्डा के सुलतानों का दास था। वह खदीजा सुलताना (मिर्जा मुहम्मद अमीन कुत्ब शाह की पुत्री और मुहम्मद आदिल शाह की पत्नी) के साथ बीजापुर गया था। खदीजा सुलताना स्वयं एक साहित्यिक अभिरुचि की महिला थी। उसने खुशनूद की योग्यता और स्वामिभक्त को देखकर उसे एक अच्छे पद पर नियुक्त किया। धीरे-धीरे वह उन्नति करता रहा और फिर शाही राजदूत के रूप में (1045 हिजरी अर्थात् 1636 ई०) गोलकुण्डा भेजा गया। गोलकुण्डा में इसका अभूतपूर्व स्वागत हुआ और एक बहुत अच्छे महल में इसके निवास का प्रबन्ध किया गया। खुशनूद ने सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह की प्रशंसा में एक क़सीदा लिखा। सुलतान हर भेंट में इस कवि एवं राजदूत को पुरस्कार देता था। खुशनूद वहाँ अपने उद्देश्य

में सफल रहा और जब वह गोलकुण्डा से बीजापुर वापस जाने लगा तो गोलकुण्डा के दरबारी कवि गवासी को भी इसके साथ भेजा गया। खुशनूद के जन्म और मरण के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं मिल सकी।

श्री हाशमी अपने ग्रन्थ 'दकन में उर्दू' में लिखा है—"मलिक खुशनूद की दो मसनवियाँ प्राप्त हुई हैं—(1) हश्त बहिश्त और (2) बाज़ार-ए-हुस्न। प्रथम मसनवी की एक पाण्डुलिपि ब्रिटिश म्यूज़ियम में सुरक्षित है। यह मसनवी अमीर खुसरो की 'हश्त बहिश्त' मसनवी का दक्खिनी अनुवाद है। इस मसनवी की रचना-काल इसके एक शेर के आधार पर लगभग हिजरी सन् 1056 रहा होगा :—

मलिक खुशनूद मोती साफ रोल्या,
अपस के नाँव का तारीख बोल्या।"[1]

मलिक खुशनूद की दूसरी रचना 'हुस्न-ए-बाजार' है। यह राजदूत के रूप में गोलकुण्डा निवास करते हुए लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त श्री हाशमी ने खुशनूद की एक अन्य रचना 'युसुफ जुलेखा' का भी उल्लेख किया है, परन्तु उन्होंने स्वीकारा है कि इसकी कोई हस्तलिखित प्रति उन्हें प्राप्य नहीं है। डा० ज़ोर के अनुसार मलिक खुशनूद ने अनेकानेक क़सीदों और ग़ज़लों के रचनाकार हैं।[2] मलिक खुशनूद फारसी का कवि था किन्तु दक्खिनी भाषा पर भी इसे पूर्ण अधिकार था।

हश्त-बहिश्त

हश्त-बहिश्त का शाब्दिक अर्थ है आठ स्वर्ग। इसकी रचना सुलतान मुहम्मद आदिल शाह के प्रेरणा से हुई। 'हश्त बहिश्त' नामक काव्य का नायक बहराम गौर है और नायिका हुस्न बानो है। इस काव्य का मूल विषय नैतिकता से सम्बन्धित है। इसके साथ-साथ इसमें सांस्कृतिक वातावरण और प्रेम का निवारण भी है। कवि ने स्वयं कहा है कि मैंने इसमें आठ कहानियों का संकलन किया है जो आठ स्वर्ग और उसके निर्झर हैं।[3]

काव्य का आरम्भ मंगलाचरण से होता है। इसमें परमात्मा और उसके दूत (हज़रत मुहम्मद साहब) की वन्दना और प्रशंसा की गयी है :—

सराऊँ तुज जो तूं है पाक माबूद,
हुआ समब खल्क व आलम तुज सों मौजूद।
संवार्‌या घन उपर तू चाँद-तारे,
किया पैदा अरस - कुर्सी - चमारे।

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 206
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 42
3. कहानी आठ बोल्या सून सुखनबर, कि जो आठ जन्नत आठ कौसर। (हश्त-बहिश्त)
डा० सैयद मुहिउद्दीन ज़ोर—यूरोप में दक्खिनी सखतूतात, पृ० 226

जमीं पैदा किया होर कोह अलवंद,
फलक सब छन्द सों कीता तूं पैबंद।
मुहम्मद मुस्तफा महबूब रब का,
कहे सोर नबी तूं ताज सब का।

आश्रयदाता के रूप में मलिक खुशनूद ने सुलतान आदिल शाह की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

तूं सुलतां मुहम्मद शाह ग़ाज़ी,
जहां कूं शाह सों है सरफराज़ी।
कहूं सानी सिकन्दर पा कि जम है,
नहीं शाहां कि जिसके दरसों तुम है।

कथा का आरम्भ करते हुए कवि ने शाह बहराम की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उसे विभिन्न आभूषणों से संवारा है :—

अथा यक बादशाह संसार म्याने,
सोरन का फूल जो गुजलार म्याने।
किया अदल सूं रोशन जहां कूं,
कि जो रोशन किया सूर आस्मां कूं।
अथा ओ खुशखराम होर नेक फरजाम,
अचम्भा नांव उसका शाह बहराम।

'हश्त बहिश्त' काव्य में वर्णित कुछ कहानियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

प्राचीन काल में एक बुद्धिमान राजा था। उसके तीन पुत्र थे जो एक से एक बुद्धिमान और चतुर थे। एक दिन राजा ने तीनों पुत्रों को एक-एक करके अपने पास बुलाया। उसने राजकाल में सर्वाधिक निपुण राजकुमार छांटने के लिए उनकी परीक्षा ली। ज्येष्ठ पुत्र सुकर्मी निकला :—

सरासर आजमाया शाह गुफतार,
किया दिल में कि है यों नेक बरदार।
किया दिल में खुशी जब आजमाया,
वले ज़ाहिर ग़ज़ब कर भार आया।

दूसरे पुत्र की परीक्षा ली और उसने उत्तर दिया—

बड़े पर्ज़न्द कूं दे तख्त बयानी,
तेरे बादज़ करेगा जग नूरानी।

तीसरे पुत्र को बुलाया और उसकी परीक्षा ली। उसने उत्तर दिया—

दिया जवाब उसने ऐ शाहे सुबहानी,
किया तिफलां सो न होसे का खानी।

जब इस फर्जन्द कू शह आजमाया,
बहुत कुछ शादमानी दिल में यारा।

राजा ने एक दिन तीनों पुत्रों को निर्वासन का आदेश दिया। वे घर से निकल गये और उनकी भेंट एक हब्शी से हुई। वे तीनों भाई चोरी के अपराध में पकड़े गये और राजा के समकक्ष बाँध कर लाये गये। राजा के पूछने पर इन तीनों ने बताया कि वे यात्री हैं और तपस्या कर रहे हैं। इस प्रकार उनको मुक्ति मिली।

इसी प्रकार की अन्य सात कहानियों का संकलन है।

मलिक खुशनूद ने अपने काव्य में व्यक्त किया है कि यह संसार क्षणिक है और संसार के लोग स्वार्थी हैं। कवि के शब्दों में :—

अजब बेमेहर् दुनिया बेवफा है,
मुहब्बत ऐन इसका सब ज़फा है।
जिते हैं दोस्ताँ फ़र्ज़न्द साती,
सकल हैं गोरलग ओ सब सगाती।
× × ×
मिले हैं बाप भाई सब मिरासी,
वले कोई गोर में हरगिज़ न आसी।
कहाँ दारा सिकन्दर शाह ग्यानी,
कहाँ जमशीद जम हातिम दुरानी।
× × ×
चले जो नेक मर्दा चल तू खुशनूद,
खुदा हासिल करेगा दिल का मकसूद।

बाजार-ए-हुस्न

मालिक खुशनूद की दूसरी प्रसिद्ध रचना 'बाजार-ए-हुस्न' है। कवि ने इस मसनवी की रचना गोलकुंडा से बीजापुर गमन से पूर्व की थी।[1] इस काव्य की अभी तक पूर्ण हस्तलिखित प्रति नहीं प्राप्त हो सकी है। इस काव्य में कवि ने तत्कालीन शासक की प्रशंसा न करके मीर मुहम्मद मोमिन की स्तुति है जो कुत्ब शाही अमीर था और पेशवा की सेना में नियुक्त था।

कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है :—

ज़ईफ़ाँ कूँ न रख सी दर्द में तूँ,
हस्ती शोज़ है मिलादे गर्द में तूँ।

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—उर्दू शह पारे, पृ० 205

जिसे मँगता नहीं काड्या वजीरी,
मरोड्या कान इसके दे फ़क़ीरी।
करीम कर करम मुझ हाल तूं,
मेरे सब हाल और अहवाल पर तूं।
+ + +
नबी के लुत्फ का अमृत पिला तूं,
गुनह सब दूर कर फिर मुझ जिला तूं।

मीर मुहम्मद मोमिन की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

करूं तारीफ मैं अहले सफा की,
वह फर्ज़न्द मुहम्मद मुस्तफा की।
शर्फ में गौस है सारे जहाँ का,
कुत्ब सा क़ौल जमी होर आसमाँ का।
मुहम्मद मोमिन है इस्म शरीफ पाक,
इतन के सैर का भैदा है अफलाक।
सगल शावाँ मुरीदाँ ओ वज़ीराँ,
करे खिदमत सो कल सूफ़ी फकीराँ।
करे सब मोमिनाँ की रहनुमाई,
करे ज़ाहिर खुदा की सब खुदाई।

इन कसीदों के अतिरिक्त मलिक खुशनूद ने बहुत अच्छे मर्सिया भी लिखे हैं। यथा :—

माता मुहर्रम का अम्बर फिर जगमने आया अजब,
धरती गगन पाताल में फिर आग सुलगाया अजब।
टूट्या क़लम तुरखी ज़बान क्योंकर लिखूं ग़म के बयान,
खम हो रहे सात आसमान ग़म का बादल छाया अजब।
+ + +
शह का बन्दा खुशनूद है देखत चरन मक़सूद है,
शाहिद मेरा मअबूद है जिन जग में पंजाया अजब।

तबई

तबई का मूल नाम अज्ञात है किन्तु प्रो० सिद्दीक़ी ने लिखा है कि इनका जन्म हैदराबाद में हुआ था,[1] परन्तु कोई तिथि नहीं दी है। इनका जीवन-वृत भी अज्ञात है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तबई कुत्ब शाही शासन-काल के अन्तिम

1. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—बुझते चिराग, पृ० 115

समय का महाकवि था जिसे काव्य की विशेषताओं का अच्छा ज्ञान था। श्री हाशमी के अनुसार "वह (तबई) खालिस दक्खिनी शायर था। वह न सिर्फ शायर बल्कि बुलन्द पाया का मुसन्निफ (श्रेष्ठ गद्यकार) भी था।"[1]

तबई ने अपने प्रेमाख्यानक काव्य 'बहराम व गुलदाम' के आरम्भ में अन्य दक्खिनी के कवियों की भाँति ही ईश स्तुति की है :—

इलाही यो तबई तेरा दास है,
दे ईमान इसको तेरा आस है।
इलाही वचन का मुंजे ताव दे,
मेरी जीभ की तेग कूँ आब दे।

कवि ने अपने काव्य में हज़रत मुहम्मद साहब का गुणगान इस प्रकार किया है :—

मुहम्मद नवी तूं खुदा का रसूल,
यों पैगम्बरां बाग हैं तू सों फूल।
नबीयां जग में यक लाख असी हजार,
यो सारे पियादे हैं तूं है सवार।
नहीं कोई जोड़ा तेरा तूं है ताक़,
गया आसमां के ऊपर ज्यूं बराक़।
लगी सम की ठोकर सो सब जां तहां,
इसी ते हुआ यो कबूद आसमां।

तबई सुलतान अबुल हसन ताना शाह (कुतुब शाही का अन्तिम शासक 1672-87 ई०) का दरबारी कवि था। इसने अपने आश्रयदाता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है :—

शाह अबुल हसन सच तूं शाहे दखन,
तुजे शाह राजू मदद अबुल हसन।
दिया है खुदा पादशाही तुझे,
सोहाता है जल्ले हलाही तुझे।
शहंशाह तूं आज दिन सूर है,
तेरे परते शहा बला दूर है।
महालत में ज्यों सूर चन्दर है तूं,
सलावत मने ज्यों सिकन्दर है तूं।

× × ×

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 134

शहंशः तू राजा अहै छत्रपती,
गगन तेरे दरबार का है हती।

शाह राजू हुसेनी सुलतान अबुल हसन ताना शाह के गुरु थे एवं कवि तबई के भी उपास्य थे। सम्भव है तबई इनका शिष्य ही रहा हो। कवि ने शाह राजू की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

वली तू बडा है कि कर शाह राजू,
चल आया है शह तेरे घर शाह राजू।
फलक पर तू उडता है शहबाज नमने,
करामात की ला शाह उपर शाह राजू।

× × ×

खड़ा होके खिदमत ने तेरी सूरज,
उडाता कज़न की चँवर शाह राजू।
किसी का नहीं ऐब चिन्ता तूं हर्गिज,
बड़ा तुझमें है यो हुनर शाह राजू।
कदम तेरे पकड्या हूँ उम्मीद लेकर,
मेरे बख्त तेरी नजर शाह राजू।
खुदा पास उचा हांथ करता है तबई,
हुआ तुज कूँ शमो सेहर शाह राजू।

रचना काल :

कवि तबई ने 'बहराम व गुलदाम' नामक प्रेमाख्यानक काव्य की रचना हिजरी सन् 1083 में की है :—

अथा साल तारीख का खूब दीन,
सन यक हज़ार होर हश्ताद तीन।

कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रेमाख्यानक काव्य को मैंने चालीस दिन में लिखा है और इसमें कुल 1340 शेर हैं :—

किया हूँ मैं चालीस दिवस में किताब,
बहुत फिक्र कर रात दिन बेहिसाब।
यों नामा पढ़ेंगे तो बहरे खुदा,
पढ़ो फातिहा नाम लेकर मेरा।
कीता बैत बैतां कूँ मै एक जो दिल,
हज़ार और है तीन सौ पर चहल।

कथा-सार

रोम में एक राजा था उसके कोई सन्तान न थी। वह चिन्तित रहा करता था। कुछ समय पश्चात् उसके घर में पुत्र ने जन्म लिया और उसका नाम बहराम रखा गया। पिता ने उसे राजनीति सिखाई। राजनीति में दक्ष होने पर उसे राजकाज सौंप दिया गया।

बहराम ने एक रात स्वप्न में चीन के शासक केसूर की पुत्री गुलन्दाम को देखा और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। वह पिता से अनुमति लेकर शिकार खेलने के लिए जंगल में गया और वहाँ पर बाघ का गला दबोच कर उसे मार डाला। जंगल में बहराम को एक हिरन दिखाई दिया और वह उसके पीछे दौड़ा। इतने में उसके साथी बिछुड़ गये और उसे हिरन भी नहीं मिला। बहराम एक घने जंगल में फँस गया और छः दिन बाद तक पर्वत पर पहुँचा, वहाँ उसे एक गुम्बद वाले भवन में एक पीर दिखाई दिया। उसी भवन में गुलदाम का चित्र भी दिखाई पड़ा। उसे देखते ही बहराम मूर्छित हो गया। पीर ने उसे उठाया और चित्र का परिचय दिया और कहा, मैंने एक बार झरोके से देखा था और मैं उसका प्रेमी बन गया एवं उसी को प्राप्त करने के लिए एकांकी साधना में लग गया। इसके पश्चात् बहराम ने कहा, मैं उसका प्रेमी हूँ। मीर ने कहा कि उसे देखकर न जाने कितने लोग दीवाने हो चुके हैं और उनके दीवाने बेमौत मर गये। अतः वहाँ जाने का विचार छोड़ दो। लेकिन उसने जब बहराम की दृढ़ता देखी, तो प्रसन्न हुआ और उसने वहाँ जाने का मार्ग बताया। बहराम एक मास के बाद एक सुन्दर उद्यान में पहुँचा। वहाँ पर एक महल था उसका आधा द्वार खुला था। उस महल के मालिक छः भाई—सेफ़ूर, सेमास, केतूर, क़ताल, ससाग और हमीता थे। उनकी एक छोटी बहन सनमबू थी। बहराम उस महल के बाहर सो गया और सनमबू की दृष्टि उस पर पड़ी एवं आसक्त हो गई। उसने बहराम को वहाँ से चले जाने को कहाँ, क्योंकि वह उसके भाइयों की दृष्टि पड़ते ही जल जायेगा। सनमबू के भाइयों से लड़ाई हुई और बहराम ने छवों भाइयो को हरा दिया और उन्हें मारने के लिए वृक्ष में बाँध दिया। इस पर सनमबू ने उसे स्मरण दिलाया कि तुम्हें तुम्हारे पिता ने शिक्षा दी थी कि अधीनस्थ लोगों के प्रति विनम्र बनना चाहिए। बहराम सनमबू की बातों को सुनकर आश्चर्य में पड़ गया, लेकिन प्रसन्न भी हुआ। बहराम ने उन्हें छोड़ दिया और छवों भाइयों ने आजीवन उसकी सेवा करने का वचन दिया। बहराम उन छवों भाइयों के अनुरोध पर उनके शत्रु अफण देव को मारने के लिए कुएँ के अन्दर गया। उस समय देव सो रहा था। बहराम ने उसे जगाकर उससे युद्ध करके मार डाला और उसकी कैद से शाह परी को मुक्त कराकर सनमबू के बड़े भाई सैफ़ूर को सौंप दिया। जब वह उनसे विदा होने लगा तो सभी ने अपने अपने सिर के बाल उसे दिए और कहा, जब आवश्यकता पड़े तो उसे आग में डाल देना, वे उसकी सेवा के लिए उपस्थित हो जायेंगे।

बहराम नौका के द्वारा सागर पार कर रहा था कि उसे एक पहाड़-सा प्राणी मिला। बहराम ने दो तीनों से उस जलकर की दोनों आँखों को फोड़ दिया और विपत्ति को टाल दिया। जब बहराम चीन पहुँचा तो देखा कि चीन को बलगार का सुलतान शाह बहज़ाद पाँच लाख सेना से घेरा डाले हुए था। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि शाह केसूर अपनी पुत्री गुलदाम का इससे विवाह करने से इनकार कर दिया तो शाह बहज़ाद ने धावा बोल दिया। चीन का शासक इससे घबरा गया और युद्ध हो रहा है। शाह बहराम भी युद्ध के लिए तैयार हो गया और वह अपने शस्त्र मंदिर के पुजारी के पास रखकर सितार वादक के रूप में शाह बहज़ाद के दरबार में पहुँचा और वहाँ से सभी रहस्य का पता लगा कर वहाँ से लौटा और छः भाइयों को बुलाया। उन्होंने कहा, कि यदि शाह बहराम का आदेश हो तो वे शाह बहज़ाद का सिर काट लायें, किन्तु बहराम ने स्वयं युद्ध किया केवल उन्हें सहायतार्थ साथ रखा। बहराम ने बहजाद को युद्ध में मार डाला। यह समाचार सुनकर चीन का शासक केसूर आश्चर्य में पड़ गया कि इतनी बड़ी सेना को कैसे पराजित किया और बहज़ाद कैसे मारा गया ?

शाह बहराम ने रात के अँधेरे में कम्बल ओढ़कर महल में प्रवेश किया और गुलदाम के दर्शन करके चला आया। वार्षिक त्योहार के अवसर पर शाह बहराम ने दासी सखी दौलत के द्वारा अँगूठी भेजी और गुलदाम के पूछने पर दौलत ने बताया कि एक दीवाने ने दी है। गुलदाम उसका पता लगाया। इधर शाह बहराम ने दौलत से चिट्ठी भेजवायी और गुलदाम ने उसका उत्तर दिया।

उधर शाह बहराम के पिता ने अपने पुत्र को खोजने के लिग अयार शबरंग को भेजा, वह ढूँढते-ढूँढते चीन पहुँचा और बहराम के भाले को पहचाना। वह शाह केसूर के पास गया और शाह केसूर ने उसका बड़ा स्वागत किया।

इधर शाह बहराम अपने मंत्री महंदास द्वारा केसूर से गुलदाम का हाथ माँगा और राजकुमारी गुलदाम की स्वीकृति के बाद दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। इसके पश्चात् शाह बहराम स्वदेश लौट आया।

शाह बहराम की कथा को लेकर दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि अमीन और दौलत ने भी काव्य रचे हैं, किन्तु तबई का काव्य उनकी अपेक्षा कहीं अच्छा है। यद्यपि तबई ने कहानी को फारसी से लिया है लेकिन उन्होंने अँधाधुन्ध नकल नहीं की है। कथानक का स्रोत एक ही है फिर भी कवि की अपूर्व कवित्व और कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है। कथा संगठन सुन्दर है। इसमें रूपात्मक पहलू भी स्पष्ट है। कथा का आधार बहराम का उज्ज्वल चरित्र है। कवि को चरित्रों के स्वभाव की रक्षा करने में पूरी सफलता मिली है।

कवि ने स्वदेश प्रेम को महत्व दिया है :—

जे कोई याद करता न अपना वतन,
ओ मर्द है पैरन असल का कफ़न।

अगर कोई गुर्बत में शाही करे,
अगर माल होर मिलक लाखाँ धरे।
अपस कूँ देखे खोलकर जो अखियाँ,
देवे खाक तन का वतन न निशान।
वतन सब कूँ दुनिया मैं प्यारा अहै,
सफर है सो जो वादे वाराँ अहै।

इसमें काव्य सौन्दर्य आद्यन्त भरा है। कवि ने कल्पना की उड़ान खूब भरी है। नायिका सौन्दर्य वर्णन में कवि ने उपमा, रूपक तथा अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की सहायता से नायिका के केशों, आँखों, गालों आदि के सौन्दर्य को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

अजब सीस पर उस लम्बे बाल थे,
भुजंग शाख-सन्दल पर रखवाल थे।
जबी देख उसकी छुपे आफताब,
तो मुख पर अपस के रयन का नकाब।
भवाँ पर उसी के नजर कर हलाल,
किया तन कूँ लागिर रयन का नकाब।
नयन देख आहू परेशान हो,
चमन आँख नर्गिस हो हैरान हो।
अजब उसकी आँख में डोरे थे लाल,
कि जिन नयन कारन बनाई जो चाल।
दो गालाँ सफाकी सना की ना जाय,
देखत आशना उसके रशकत लियाय।

नायिका के ओष्ठों के सौन्दर्य और माधुर्य का सुन्दर चित्र खींचा है तथा उसके दाँतों को हीरे के समान बताया है :—

दो लब आब-ए-हैवाँ से लब्रेज थे,
किया शहद शक्कर सो आमेज थे।
अथे दाँत मुख बीच हीरे जड़े,
दहन के सदक़ बीच गिर्दाब है।

कवि ने प्रातःकालीन दृश्य का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। वहाँ सूर्य हंस के समान है और रात्रि भ्रमर की भाँति है :—

उड्या फाड पंखियाँ कू सूरज का हंस,
पड्या सुबह ज्यूँ फूल कर हंस हंस।
रैन का गया ज्यूँ कि भंवरा अकल,
सूरज का खोल्या फूल जैसा कंवल।

ज़मीं होर आसमाँ रोशन हुआ,
यो गुलखन जहाँ का सो कलश हुआ।
सूरज का उड़्या बाज ज्यूं पंख मार,
कुवारीन का छप जैसा एक ठार।

तबई ने भी अन्य सूफ़ी कवियों की भाँति विरह को बहुत महत्व प्रदान किया है। इसने नायक की विरह-व्यथा का वर्णन करते हुए कहा है :—

हुआ मजनूं विरह ते सुध गवाँ मैं,
अथा दाना सो दीवाना हुआ मैं।
× × ×
उचाया हूँ तेरे ग़म के पहाडां,
अजब है नै सीना फटकार मुवा मैं।

नायिका गुलदाम की स्पष्टोक्ति है कि विरह के बिना कोई प्राप्ति नहीं होती और दुख ही सकल फल प्राप्ति का साधन है :—

तुझे हासिल नहीं है बिन ग़म,
नको कर ग़म में अपना पांव मुहकम।
तेरा दिल हो गया फोड़ा दुखो ते,
नहीं इस जख्म का मुंज पास मरहम।

सूफ़ी साहित्य में विरह को विशेष स्थान दिया है। साधक इष्ट के लिए तड़पता है और विरह विह्वल रहता है। उनका विश्वास है कि विरह में प्रेम निखरता है।

उद्देश्य

काव्य के उद्देश्य को बताते हुए कवि की स्वीकारोक्ति है कि वह काव्य के द्वारा अजर और अमर बना रहे :—

तबई तू जो करम कर अख्तियार,
कि रहे ता क़यामत तेरा यादगार।

भाषा

यद्यपि उस समय तक दक्खिनी के कवियों में अरबी फारसी के शब्दों के प्रयोग की अधिकता आ गयी थी किन्तु तबई ने अपने साहित्य में अरबी-फारसी शब्दों की अपेक्षा देशी शब्दों का अधिक समावेश किया है। इसने प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों को उचित स्थान प्रदान किया है। भाषा व शैली सुन्दर, सरल, सरस और प्रांजल है।

कवि ने अपने प्रेमाख्यानक काव्य की कहानी के बीच-बीच में ग़ज़लें भी कही हैं जो काव्य के सौन्दर्य को चौगुना बढ़ा देती है। इसमें प्रवाह और सरसता इतनी है कि पाठक झूम जाता है। एक ग़ज़ल उदाहरणार्थ इस प्रकार है :—

तेरे हाथ में शाह ज़म जाम अछो,
बगल में हमेशा दिल आराम अछो।
अछे लग ज़मी होर गगन बरकरार,
तेरे पग पो क़ुर्बान बहराम अछो।

एक अन्य स्थल पर बहराम के द्वारा इस प्रकार कहता है :—

मेरे शहर ते यार खातिर क्या,
बरहमन होर नार खातिर क्या।
प्याले ते दिल का लहू घूंट कर,
मैं वो यार खूंखार खातिर क्या।
यो दरिया मने ग़म के ऐ दोस्तां,
मैं उस दुर्दशा हो खातिर क्या।

कविवर तबई ने प्रेमाख्यानक काव्य में समसामयिक रीति रिवाज़ों, लोगों के सोचने का ढंग एवं धार्मिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

फायज़

फायज़ गोलकुन्डा के प्रसिद्ध कवियों में से है और यह सुलतान अबुल हसन तानाशाह के शासन काल में विद्यमान था। कविता करना इसका व्यवसाय नहीं था। केवल आनन्द के लिए कविता करता था। कवि ने तत्कालीन मुग़ल सम्राट आलमगीर औरंगज़ेब की प्रशंसा की है। कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात है। बाह्य साक्ष्य तथा अन्तः साक्ष्य से कोई जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी।

फायज़ की केवल एक रचना 'रिज़वान शाह रूह आफ़ज़ा' उपलब्ध है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1094 (1685 ई०) है :—

अथा जिस वक़्त साल हिजरत हज़ार,
दस उपर नव्वद उसके ऊपर चहार।

काव्य के आरम्भ में कवि ने ईश्वर-वन्दना की है :—

अव्वल नाम हक़ का ले बोलूं सुखन,
बन्दों उसकी तौहीद खोलूं सुखन।
है अल्ला मअबूद बरहक़ कदीम,
कि रहमान है खलक़ पर होर रहीम।

वही जुमला मखलूक का है खुदा,
न कर याद उसे क्यों करूँ इब्तदा।

× × ×

शुक्र उस खुदा कूँ जो खलक़त किया,
हमन को मुहम्मद की उम्मत किया।

काव्य में दूसरा शीर्षक हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा का है। कवि ने उसे इस प्रकार प्रस्तुत किया :—

बनियाँ जो सुने उस उम्मत का सिफ़ुत,
बिसर जा अपस का कुर्ब मंज़लत।
कहे काश होते यो उम्मत हमें,
यो सुनकर पकड़ते थे हिम्मत हमें।
न कर हमको महरुम तू या नबी,
बद व नेक तेरे हैं उम्मत सभी।
सगल अम्बिया का है सरताज तूँ,
चल्या महर मति सूँ मअराज कूँ।

× × ×

तेरी छाँव तन नूर को थावँ नै,
तेरे क़द मुबारक के तें छावँ नै।

× × ×

हुआ दान रोशन नबूअत सती,
मिट्या कुफ्र सारा वलायत सती।

इसके पश्चात् कवि ने सहाबा का उल्लेख किया है :—

जिने भाई के दीन का था वज़ीर,
है मूसा को हारून तुज को अमीर।
नबूअत के रबते में यो थे नबी,
सो वह बेगमाँ शाह मरदाँ अली।
अमीर अरब शाहे दुलदुल सवार,
शिहा ला फता साहबे जुल्फिक़ार।

× × ×

किया फिक्र जिन्या जो मक़दूर है,
कहा बे नवा होर मअजूर है।

रचना का मूल स्रोत

कवि फ़ायज ने लिखा है कि मैं कई दिन तक सोचता रहा कि कोई फारसी

का ऐसा काव्य दक्खिनी में रूपान्तरित करूँ जिसे पहले किसी ने प्रस्तुत न किया हो। अन्त में मैंने फारसी गद्य की एक कहानी चुनी :—

अथा फारसी नस्र में वह अव्वल,
उसे नज़्म कोई नै किये थे अव्वल।
यो मैं बन्दा फायज़ होस धर को तब,
यो क़िस्से को दखनी किया नज़्म सब।

सैयद मुहम्मद के मतानुसार बाकर आगाह कृत 'गुलज़ार-ए-इश्क' में रिज़वान शाह व रूह अफ़ज़ा' की कथा संकलित है जिसको बाकर आगाह ने फारसी गद्य से हिजरी सन् 1211 (1796 ई०) में उर्दू पद्य में अनुवाद किया है। फायज़ और आगाह दोनों की कथा में कोई अन्तर नहीं है।"[1]

कवि ने कृति को बड़ी विनम्रता से पाठकों को सौंपा है। उसे अपनी रचना पर गर्व नहीं है, न ही वह अपनी रचना के लिए पुरस्कार चाहता है। वह अपना काव्य गुणियों, कलाकारों एवं महान साहित्यकारों के सम्मुख प्रस्तुत करता है :—

मुझे शायरी की कधी मश्क नै,
किया हूँ बुजुरगाँ की तलकीद नै।
कि तलक़ीद सूं सब ही फाज़िल हुए,
मगर एक आक़िल से आक़िल हुए।
यो बांद्या हूँ यारा की, तलक़ीद पर,
नहीं है नज़र मुज को तारीफ़ पर।
न शोहरत मुझे शायरी की हवस,
न इनाम पाने की दिल में उमस।
मेहरबान जब मुंज पो रब्बी हुआ,
मेरा फिक्र मुज को मरब्बी हुआ।

इससे स्पष्ट है कि कवि ने किसी महापुरुष अथवा धार्मिक नेता अथवा सुलतान के आदेश पर नहीं अपितु स्वांत:सुखाय की रचना की है। फायज़ एक लोक कवि था।

फायज़ की रचना से स्पष्ट होता है कि वह दृश्यों का चित्रण करने में निपुण था। प्रेम और सौन्दर्य वर्णन बहुत ही आकर्षक है। इसके काव्य की भाषा बड़ी सरस, सहज और प्रांजल है।

कथा-सार

चीन के एक राजा के कोई पुत्र न था। अतः वह दुखी रहा करता था। बहुत पूजा और आराधना के पश्चात् उसके घर में पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम रिज़वान रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तो उसे राजकाज सौंप दिया गया। रिज़वान

---

1. सैयद मुहम्मद — रिज़वान शाह व रूह अफ़ज़ा, भूमिका, पृ० 9

शाह को शिकार खेलने का बड़ा शौक था। एक बार शिकार करते समय उसे एक मृगी दिखायी पड़ी और उसने उसका पीछा किया किन्तु मृगी आयी और एक सरोवर के पास अदृश्य हो गयी। रिज़वान शाह वहीं पर महल बनवाकर रहने लगा। एक दिन अपनी धाय की सहायता से रिज़वान शाह उस मृगी को पकड़ने में सफल हो गया। वास्तव में वह हिरणी नहीं थी प्रत्युत एक परी थी। उस परी ने अपनी कहानी कह सुनाई। मेरा पिता परियों का राजा है। समुद्र में 'शीस' नामक द्वीप में रहता है। मैं यहाँ पर घूमने आया करती हूँ। मेरा नाम रूह अफ़ज़ा है।

धाय ने परी से बताया कि राजकुमार तुमसे प्रेम करता है तो उसने उत्तर दिया कि परी और मनुष्य का प्रेम कैसे हो सकता है? धाय के कहने पर परी रिज़वान शाह से भी मिली, किन्तु उसी समय परी के पिता का देहान्त हो गया और वह चली गयी।

मैमूना और मनोछर के कारण रिज़वान शाह और रूह अफ़ज़ा दोनों बन्दी हो जाते हैं और दोनों एक दूसरे के प्रेम में व्यथित रहते हैं। अन्त में अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए, एक सन्यासी और याकूब की सहायता से रिज़वान शाह रूह अफ़ज़ा को मुक्त कराकर अपने देश को वापस लौटता है। यहाँ पर दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। दोनों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

कथा संगठन एवं कथा-निर्वाह में कवि ने अपनी योग्यता का परिचय दिया है। कहीं भी रचना शिथिल नहीं होने पाई है। चरित्रों का भी विकास अच्छा हुआ है। आध्यात्मिक पक्ष का अंकन स्पष्ट रूप से हुआ है।

रचना का उद्देश्य

कविवर फायज़ ने स्वयं स्पष्ट किया है कि इस रचना का उद्देश्य स्मृति चिह्न छोड़ना है :—

कितेक फारसी को भी दक्खिनी करे,
ओ लोगाँ क़यामत तलग नहीं भरे।
दुनिया में जिने गर रख्या यादगार,
वह जीते हैं बरसों हज़ारा हज़ार।
× × ×
कि मुंज सूं भी कुछ यादगारी अछे,
जो मुज बाद कोई खुश यादगारी कहे।

दक्खिनी के प्रसिद्ध कवियों—नुसरती, गवासी और इब्ने निशाती आदि ने अपने काव्यों में जो शीर्षक दिए हैं वह प्राय: पद्य में है किन्तु फायज़ ने शीर्षकों को गद्य में लिखा है। उदाहरणार्थ—

प्रथम शीर्षक : हम्द।
द्वितीय शीर्षक : दर नआत हज़रत सैयद अल मुर्सलीन मुहम्मद मुस्तफ़ा।

तृतीय शीर्षक : दर मदर सहाबा ।
चतुर्थ शीर्षक : यह ओ है इब्तदाए क़िस्सा ।
पंचम शीर्षक : यह ओ है फरजन्द को वास्ते तालीम से उस्तादाँ मुक़र्र किया बया सूं । आदि

इन्हें हम गद्य का प्रारम्भिक रूप कह सकते हैं ।

ज़ईफ़ी

मूल नाम शेख़ दाऊद था और ज़ईफ़ी इसका काव्य नाम है ।[1] ज़ईफ़ी धार्मिक मनोवृत्ति का व्यक्ति था । कवि कुतुब शाही शासन-काल के अन्तिम दिनों में विद्यमान था । इसका जीवन-वृत अज्ञात है । कविवर ज़ईफ़ी की तीन पुस्तकों की सूचना मिलती है—(1) हिदायत-ए-हिन्दी, (2) इश्क-ए-सादिक और (3) नसीहत-ए-वदन । कुछ विद्वानों ने 'हिदायत-ए-हिन्दी' नामक ग्रन्थ का नाम 'हिदायतनामा हिन्दी' बताया है जो उचित नहीं है क्योंकि कवि ने स्वयं 'हिदायत-ए-हिन्दी' लिखा है :—

हिदायत-ए-हिन्दी फिकर इसका नाँव,
रखया होर ल्याया हूँ हिन्दिया के ठाँव ।

हिदायत-ए-हिन्दी

यह एक वृहत ग्रन्थ है । कवि ने इसे 25 भागों में विभाजित किया है और इसमें 3638 शेर हैं । इसका वर्ण्य विषय मुख्य रूप से धार्मिक है । इसके दार्शनिक विचार कवि की विद्वता के परिचायक कहे जा सकते हैं :—

मसायल्न यो फिक़कहाँ के असनाद सूं,
निकाये किया पड़ के उस्ताद सूं ।
कि अगर 'ज़बाँ हिन्द' की इस तरफ,
लगे खुश जो पड़ते हैं दखनी हरफ ।

कवि ने अपने ग्रन्थ का रचना-काल इस प्रकार अंकित किया है :—

जो तारीख हिजरत हज़ार एक सौ,
हिदायत हिन्दी हुआ यों तो बीच ।
इग्यारह सो उसमें भरे थे तमाम,
उसी बीच तम्मत का देखया मुक़ाम ।
सदी बारहवीं का लग्या था बरस,
उसी नीच बाजा यो दखनी जरस ।

---

1. लक़ब उस हुआ शेख दाऊद नावँ,
 ज़ईफ़ी है उसके तखल्लुस का ठावँ ।

बलेकिन शहंशाह दह में,
मुबारक ओ जुलहज्ज के शह में।
अथी सात तारीख दिन मुश्तरी,
यो नुस्खा मुरत्तब हुआ मुश्तरी।

अर्थात् ज़ईफ़ी ने काव्य को हिजरी सन् 1100 (1691 ई०) में लिखना आरम्भ किया और वृहस्पतिवार सात जिलहज्ज 1101 हिजरी को पूर्ण किया।

सूफी साधक ज़ईफ़ी ने अपने काव्य के अन्त में तत्कालीन मुग़ल शासक आलमगीर औरंगजेब की प्रशंसा की है :—

ये दौर - ए - जहाँदार औरंगजेब,
कि जिसते हुआ इस ज़माने कू ज़ेब।
शहंशाह आदिल अहै दौर आमूद,
कि बिदअत ज़लालत हुआ जिसते दूर।
दिया इक़ तअला ने यों जिसकूं जस,
जो दुश्मन हुआ उस अंगे ख्वार व खस।
धऱ्या सिर पो जो पन शहीफ़ा व ताज,
दिली होर दखन का हुआ एक राज।

इश्क़-ए-सादिक़

इस काव्य के द्वारा कवि ने सच्चे प्रेम के महत्व को प्रदर्शित किया है। इस काव्य का रचना काल अज्ञात है। श्री हाशमी का मत है कि इसकी रचना हिजरी सन् 1100 (1691 ई०) के बाद हुई है।[1] इस रचना के द्वारा कवि ने लोगों के मन में हज़रत मुहम्मद साहब के प्रति प्रेम भाव जगाया है। ऐसा लगता है मानों यह रचना हज़रत मुहम्मद साहब के जीवन की हो। कवि ने स्वयं कहा है कि यह कहानी मैंने सुनी और उसे अब दक्खिनी में प्रस्तुत करना चाहता हूँ :—

अथा सुन कहूँ नकल उस नार का,
जो सगवेत-कदम नार-अवतार का।
सुन्या हूँ नबी के ज़माने में एक,
अथा जो मुसलमाँ कोई मर्द नेक।
नबा आ नबी के सो इस्लाम में,
अथा नेक नेकी केरे काम में।
सो बख्ताँ सो होम देख मारी उसे,
मिली एक अजब नेक नारी उसे।

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 335

निछल पाक - पैकर परी - साखी,
परी बल्कि अछी न उस सारखी।

कथा-सार

एक स्त्री अपने पति की अनुमति लिए बिना प्रतिदिन प्रातःकाल हज़रत मुहम्मद साहब के दर्शनार्थ जाया करती थी। एक दिन पति ने उसे जाते हुए देख लिया और उसे सन्देह हुआ। उसने पत्नी को धमका कर पूछा। पत्नी ने सच्ची बात बता दी। पति ने उसे नबी के दर्शनार्थ जाने से मना नहीं किया। किन्तु एक शर्त रखी कि यदि तुम्हारा मुँह किसी पुरुष ने देख लिया तो तुम्हें तलाक़ दे दूँगा। पत्नी ने शर्त को मान लिया एवं उसने रातो रात बुरका तैयार किया तथा प्रातः काल हज़रत मुहम्मद साहब के दर्शनार्थ गई। एक दिन मार्ग में एक यहूदी ने कामुकतावश उसे रोका। स्त्री ने यहूदी को बहुत फटकारा और अपने प्यारे के दर्शनार्थ जाने की बात कही। यहूदी ने नबी की सौगन्ध खिलाकर उसे मुँह दिखाने के लिए विवश किया। उसने उस यहूदी को मुँह तो दिखाया मगर वह अपने पति के सामने लज्जा महसूस करने लगी एवं उदास रहने लगी। पति ने एक दिन उदासी का कारण पूछा। उसने सब सच बता दिया। पति ने उसकी परीक्षा लेने के लिए तन्दूर जलाया और गर्म करके पत्नी से नबी के प्रेम की दुहाई देकर अन्दर जाने का आदेश दिया। स्त्री ने अपने बच्चों से विदा लेकर तन्दूर में प्रवेश किया। चारों ओर धुँआ फैल गया। पति पछताने लगा और हज़रत नबी के पास जाकर सारा वृतान्त सुनाया। हज़रत नबी को लेकर वह तन्दूर के पास आया। हज़रत नबी ने तन्दूर का मुँह खोला तो वह अन्दर ईश्वर की वन्दना करती हुई दिखायी दी और जीवित बाहर निकल आयी। इसने अपने सच्चे प्रेम का परिचय दिया।

'इश्क-ए-सादिक़' नामक काव्य यद्यपि धार्मिक दृष्टिकोण से लिखा गया है तथापि रचना प्रभावशाली है। कवि तत्कालीन वातावरण प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। इस काव्य का कथा संगठन और चरित्र चित्रण सुन्दर बन पड़ा है। इसमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की भाषा में हिन्दी के शब्द अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। भाषा शैली आकर्षक है। इसमें समसामयिक मुहावरों और लोकोक्तियों का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया है।

नसीहत-ए-बदन

सूफ़ी सन्त ज़ईफ़ी की यह रचना भी इश्क-ए-सादिक़ की ही भाँति उपदेशात्मक है। इसके द्वारा कवि ने यह बताया है कि स्त्री को क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? कवि ने इस काव्य की रचना स्त्रियों के लिए की है। इसका रचना-काल अज्ञात है किन्तु श्रीराम शर्मा ने अनुमान लगाया है कि इसकी रचना हिजरी सन् 1100 (1689 ई०) से पहले हुई होगी।[1]

---

1. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 397

कवि ने अपने वर्ण्य विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है :—

एता मैं कहूँ कि नेक नारी कूँ पंद,
है बीबी जो कोई सत की नारी सूँ पंद ।

सूफ़ी साधक ज़ईफ़ी शरीअत का पाबन्द है और स्त्रियों को नसीहत करता है कि उन्हें गीत नहीं गाना चाहिए और न ही कहानी सुने :—

न गावें कधी गीत न गावें राग,
न कन्यां कहें रात कूँ बैठ जाग ।

कवि ने कहा है कि स्त्रियों को पति भक्त होना चाहिए उन्हें कभी कठोर शब्द नहीं कहना चाहिए प्रत्युत मीठे वचन से आकृष्ट करना चाहिए :—

न देवें कधी मर्द कूँ सख्त जवाब,
हैं आतिश अगर मर्द तो होवें आब ।
मर्द सात हर वक़्त मीठा बचन,
करें होर अछे एक दिल एक मन ।

कविवर ज़ईफ़ी ने अपने कथनों की पुष्टि के लिए कई कहानियों को कविता-बद्ध किया है ।

किस्सा कफन चोर

कवि ने इसे फारसी से दक्खिनी में अनुवाद किया है । एक कफन चोर था वह कब्र को खोदकर कफन की चोरी किया करता था । एक बार उसने कब्र खोदी तो उसमें मुर्दा जीवित हो गया । कफन चोर डर गया और उसने चोरी न करने की प्रतिज्ञा की । इस मसनवी के कुछ शेर इस प्रकार हैं :—

हया होर शर्म का था लाज उसकूँ,
जती तारीफ कूँ तो साज उसकूँ ।
जमाली व हुस्न में कामिल व सब थी,
वले कोई हयात उसकी अजब थी ।
अथी ओ यार सादुनिया में पूरी,
व लेकिन मौत नै कीथी सबूरी ।
सो ऐसे गुलबदन नाजुक तन कूँ,
ले जाया मौत में जब अलवतन कूँ ।
बरां सब खवीश इसके मन में हो चोर,
मिले सब रंज में राहत दोई दूर ।
× × ×
बजां नाचार हो इस गुलबदन कूँ,
गुस्ल दे कर मिलाये तन कफन कूँ ।
× × ×

गया उस सालेहा की गोर कन ओ,
क़ब्र कूँ खोल कर काढ़्या कफन ओ।
कफन बी काड उस गुल रुख उपर ते,
निछा उस मुख कूँ देखा जूँ नज़र ते।

अमीनुद्दीन अली 'अमीन'

शाह अमीनुद्दीन अली अपने काव्य नाम 'अमीन' से अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। इनके मूल नाम के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। मौलवी अब्दुल हक़ ने इनका मूल नाम अमीनुद्दीन 'आला' माना है।[1] मौलाना अब्दुल जब्बार मल्कापुरी ने इनका नाम अमीनुद्दीन अली दिया है।[2] यद्यपि दक्खिनी के अधिकांश विद्वानों ने अमीनुद्दीन 'आला' ही स्वीकार किया है, किन्तु अमीनुद्दीन अली अमीन की परम्परा के एक मुरीद तुराब अली शाह ने अपनी मसनवी 'किस्स-ए-मला' में इनका नाम अमीनुद्दीन अली दिया है :—

तुराब अपने तो मुर्शिद की सिफल कर,
हुसेनी पीर है सानो हैदर।
उसका नाम अमीनुद्दीन अली है,
देखो बरहक़ ओ खुदा का वली है।
शहोद नाज़ ऊस पास आया,
विसाल यावरी उसको दिलाया।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि इनके नाम के साथ 'आला' (सर्वश्रेष्ठ) शब्द इसलिए जोड़ दिया गया क्योंकि ये समसामयिक सूफ़ी साधकों में श्रेष्ठ माने जाते थे।

शाह अमीनुद्दीन अली 'अमीन' प्रसिद्ध सूफी साधक शाह बुरहानुद्दीन 'जानम' के पुत्र थे। इनके जन्म के कुछ समय पूर्व इनके पिता का देहान्त हिजरी सन् 990 में हुआ था। अतः शाह अमीनुद्दीन अली का जन्म भी उसी सन् अर्थात् हिजरी सन् 990 में हुआ होगा।

अपने पिता और पितामह की भाँति शाह अमीनुद्दीन अली 'अमीन' भी साधना के क्षेत्र में प्रसिद्ध हुए। इनके शिष्यों की संख्या सैकड़ों थी। इनमें से मीराँ जी खुदानुमा, सैयद हाशिम निशापुरी और शाह अब्दुल कादिर लगबन्द आदि अधिक प्रसिद्ध हुए हैं।[4]

---

1. डा० मौलवी अब्दुल हक़ —उर्दू की इब्तदाई नशो नुमा में सूफिया-ए-कराम का काम, पृ० 70
2. मौलाना अब्दुल जब्बार मल्कापुरी— तज़किरा औलिया-ए-दक़न, पृ० 116
3. नसीरुद्दीन हाशमी —दकन में उर्दू, पृ० 239
4. मौलाना अब्दुल जब्बार मल्कापुरी—तज़किरा औलिया-ए-दकन, पृ० 121

शाह अमीनुद्दीन अली 'अमीन' की सन्तानें बचपन में ही मर जाती रहीं। केवल एक पुत्र बाबा शाह हुसेनी बड़े हुए और पिता के बाद तक जीवित रहे। शाह अमीनुद्दीन अली 'अमीन' का निधन हिजरी सन् 1086 में हुआ।[1] डा० श्रीराम शर्मा ने शाह अमीन की मृत्यु को हिजरी सन् 1078 (1668 ई०) में प्रमाणित करते हुए लिखा है कि "इनके समकालीन लेखक मीरा याकूब ने इनकी मृत्यु 1078 हिजरी (1668 ई०) मानी है। शाह अमीनुद्दीन आला ने माँ याकूब से कहा था कि वह शुमाइतुल आत्किया कर अनुवाद करे। उस समय मीराँ याकूब तत्काल अनुवाद नहीं कर सका, उस वक़्त मुजे फब्या नहीं, ताके उनी एक हज़ार सत्तर पर आठवें साल कूँ रेहलत किये।"[2] प्रो० सिद्दीकी का मत है कि हज़रत अमीनुद्दीन आला की मृत्यु 24 रमज़ान 1085 हिजरी सन् में हुई न कि 1086 हिजरी में जैसा कि मौलवी अब्दुल हक़ ने लिखा है।[3] इनकी समाधि बीजापुर से पाँच किलोमीटर दूर शाहपुर में है।

आध्यात्मिक मनोवृत्ति इनको अपने बाप दादों से उत्तराधिकार में मिली अवश्य थी, किन्तु इनको पूर्वजों की भाँति कविता में भी रुचि विशेष थी। कविता के साथ इन्होंने गद्य में भी रचनाएँ की। इनकी रचनाओं की सूची इस प्रकार है :—

(1) रमूज अल सलाकीन, (2) नज़म वजूदिया, (3) रिसाला कुरबीया, (4) मुहब्बत नामा, (5) नारीजा, (6) रिसाला सुलूक, (7) मरग़बुल कुलूब, (8) ज़िक्रनामा, (9) वजूद नामा, (10) वसूल नामा, (11) नूर नामा, (12) चक्की नामा, (13) गंज-ए-मरफ्फी, (14) इश्क नामा, (15) रमूज अल आरफीन, (16) गुफ्तार शाह अमीन, (17) रिसाला इरशादात और निकात, (18) रिसाला निकात व मारिफत, (19) रिसाला तसव्वुफ, (20) रिसाला मारिफ़त, (21) इरशादनामा, (22) कुर्सीनामा और रिसाला अख्लाक, (23) रिसाला सुबूरू, (24) रिसाला वजूदिया।

इन सभी पुस्तकों का मूल विषय तसव्वुफ है। कविता के माध्यम से कवि ने अपने विचारों को जन साधारण तक पहुँचाना चाहा है। यही कारण है कि कवि यद्यपि अरबी-फारसी का विद्वान् था तथापि जनसाधारण की भाषा दक्खिनी में बहुत से ग्रन्थ रचे।

सूफ़ी सन्त 'अमीन' ने अपनी रचना रमूज अल सलाकीन में वहदत (एकत्व),

---

1. डा० मौलवी अब्दुल हक़ —उर्दू की इब्तदाई नशो नुमा में सूफिया-ए-कराम का काम, पृ० 70
2. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 31
3. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—बुझते चिराग, पृ० 65

नूर (ज्योति), दिल (हृदय), रूह (आत्मा) और नफ़्स (इन्द्रिय) पर विशेष ध्यान दिया है। रचना की समाप्ति कवि ने इन शब्दों से की है :—

नाव रमूज़ अल सलाकीन,
सालिक फिर देख लाव यक़ीन।
न असल् सुनकर होये खुदा
आशिक खुद थे होये जुदा।
जिसकूँ अल्लाह देवे राह,
उसकूँ देवे सब समझाइ।
हक़ को राह पकड़ यक़ीन,
क्यूँ ना उसकूँ होपे अमीन।
तमत्त उस थे किया तमाम,
हक़ थे बोल्या हक़ क़लाम।

'नज़्म वजूदिया' नामक काव्य में कवि शाहअमीन ने रूह, वहदत, अलवजूद, और अन्य सूफ़ी सिद्धान्तों पर विशेष ध्यान देकर विचार किया है :—

नफ़्स का दौड़ना सही न सठार,
यूँ तो आहें नफ़्स विचार।
रूह को सहज बन राखे रे,
होर तिल तिल पीप कूँ माँगे रे।
अक़्ल कूँ तो बादशाह जान,
अक्ल रूह को है प्रधान।

सूफ़ी साधक शाह अमीन ने अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए ही इस काव्य को प्रश्नोत्तर शैली में लिखा है। इसमें गुरु से शिष्य प्रश्न करता है और गुरु तसव्वुफ ऐसे कठिन विषय को बड़े ही सुन्दर और सरल ढङ्ग से शिष्य को समझाता है। काव्य को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो पाठक के सामने ही बात-चीत हो रही है। गुरु से शिष्य प्रश्न करता है कि पहले मैं कहाँ था ? और मुझे यहाँ कहाँ से लाया गया ? हे गुरुवर मेरे इस भ्रम को दूर कीजिये :—

शिष्य का प्रश्न—सवाल तालिब का बूज यू,
अल्ला की रे शनास क्यूँ।
चरनों तेरे में बलिहार,
तुज बिन कौन उतारे पार।
× × ×
तोड़ मेरा भ्रम गुमान,
मुझमें मेरा देव पछान।

गुरु का उत्तर—माटी पानी आग हवा बाव,
खाली में लिया किया जमाव।

सूफ़ी सन्त अमीनुद्दीन अली 'अमीन' ने अपनी रचना 'रिसाला-ए-कुरबीया' में 'सलूक' और मारिफत से सम्बन्धित बातों को बड़ी सरल व सरस भाषा में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है :—

अल्ला बिन नहीं दूजा कोई,
अल्ला सूँ देख कुछ होये।
शाहिद मुतलक का परकार,
मुतलक परीक शाहिद बार।

शाह अमीन की एक रचना 'मुहब्बत नामा' है। इसमें सूफी सन्त ने हज़रत मुहम्मद साहब के नख शिख का वर्णन किया है। पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब के चरणों के सौन्दर्य का चित्रण इन शब्दों में किया है :—

तेरे क़दम मुबारक सूं,
सब ज़हूर जलवा।

पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब के सम्पूर्ण शरीर का वर्णन करते हुए कविवर शाह अमीन ने अच्छे गुणों का कोष कहा है :—

खूबी तुजे सुहावे तू सब खूबी का गंज है।
है नाजानी मुनव्वर मौसूफ़ सिफ़त तुझी कूँ॥
तुज गंज के गौहर सब परकार सूँ बिखेरे।
तारीफ कर तारीफ है हर नक़्श में नक्काश कूँ॥

इस काव्य में कवि ने क़सीदे के ढंग से प्रेम की बातों को प्रस्तुत किया है। यह प्रेम आध्यात्मिक है किन्तु इसमें तनिक भी ओछापन नहीं आने पाया है। प्रेम पवित्र है। इसे पढ़कर पाठक ऊबता नहीं प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने प्रेम की मूर्ति ही प्रस्तुत कर दिया है।

'नारीजा' नामक काव्य में केवन 27 पद हैं। इसके कुछ छन्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

कि एक यह खाकी तन,
होर दूजा मुमकिन मन।
इस खाकी तन के ठार,
है मुमकिन बरतन हार।
होर जेते खतरे बार,
है सब मुमकिन का विस्तार।

जे इतना बूजनहार,
सू दिल है ग्यान विचार।
\+ + +
सू आला उलवी जान,
सू दिल रुहुल कुद्दूस मान।

कविवर अमीन ने ग़ज़लों की भी रचना अच्छी मात्रा में की है। इन गज़लों में भी कवि की धार्मिक मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। परमात्मा को सूफी साधक अमीन ने प्रियतम के रूप में प्रस्तुत किया है—

प्यारे पीव पाया मैं पीव सूँ,
ओ महीत दिस्ता है पीव सूँ।
उरफत रबी अली बोले जीव सूँ।
पीव कूँ बूझया मैं हूँ फानी,
पिया दिस्ता है वजह अल्लाह के माली
पीव महीत कल शशी समानी
दनी इक़ फकद ओ कहा दी
वही याद जो अपसी गवाँ दी
एक बात मैं देखे कूज में
नास्परी किस के बूज में
अली बूज देख ऐसा है फौज में।

ग़ज़लों और क़सीदों के अतिरिक्त कवि ने दोहरों (दोहों) की भी रचना की है। इनकी सभी रचनाओं में धार्मिक विचारों का उद्घाटन हुआ है। अभी तक सूफी सन्त अमीनुद्दीन अली 'अमीन' की कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। यत्र तत्र कुछ लेख मात्र प्रकाशित हुए हैं। अमीनुद्दीन अली 'अमीन' की भाषा अन्य दक्खिनी कवियों की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है।

गौण कवि और काव्य

शाह अली मुहम्मद गाँवधनी

इनका मूल नाम अली मुहम्मद है[1] और इन्होंने अपना उपनाम 'माशूक अल्ला' रखा था। शाह अली मुहम्मद गाँवधनी का जन्म अहमदाबाद (गुजरात प्रदेश) में हुआ और वहीं पर इन्हें शिक्षा-दीक्षा मिली। इनकी जन्म-तिथि अज्ञात है। इन्हें एक गाँव की जागीर मिली थी इसीलिए इनके नाम के साथ गाँवधनी लगाया जाने लगा। इनका देहान्त 1561 ई० में माना जाता है। ये अपने समय के प्रसिद्ध सूफी साधक थे। इनकी सूफी विचारधारा से सम्बन्धित एक छोटी-सी पुस्तक 'जवाहरुल

---

1. अली मुहम्मद नाम मुझे बनदास कहाऊँ।

अस्रार' प्राप्त है ।[1] इस ग्रन्थ में इनकी दक्खिनी कविताओं का संकलन है जिसे इनके शिष्यों ने किया था । गाँवधनी ने अपनी कविता में हिन्दी के छन्दों को अपनाया है जिनमें चौपाई और दोहे का प्रयोग विशेष उल्लेख हैं ।

शाह अली मुहम्मद गाँवधनी का मत है कि आँख मिचौनी के खेल में छिपनेवाला और खोजने वाला भिन्न नहीं कहा जा सकता है । वास्तव में दोनों अभिन्न हैं । इनके मतानुसार एक ही शक्ति है जो भिन्न-भिन्न रूपों में खेल रही है :—

आप खेलूं आप खिलाऊँ,
आपे अपस ले कल लाऊँ ।
मेरा नांव मुझे अत भावे,
मेरा जीव झुंकी पर जावे ।
मेरा निया मुझी सूं माती,
रह री अपनै रूप लुभाती ।

सूफी साधक गाँवधनी ने कुरआन को समस्त विद्याओं का भण्डार बताया है । कुरआन में स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि भगवान के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है । जिधर भी आप भगवान को खोजें उधर भगवान हैं :—

हासिल सब कुरान का है इतना जानो ।
वहम हुई का दूर करो होर मुझे पछानो ।।
ढूढन निकली पीव कूं, अपस गई सो खोय ।
जिधर देखूं एक हूँ, मुंज बिन और न कोय ।।
\+ \+ \+
है सो हो हो हाय रही है ।
जिधर देखूं एक वही है ।।

शाह गाँवधनी का मत है कि व्यष्टि में ही समष्टि का वास है :—

जग में मुझ बिन कोई नहीं है अपने दासा ।
ए जी महके फुलरी सब मेरी बासा ।।
ये जग मेरी आरसी कर अपस देखूं ।
अपना रूप बखेर करि मुंझ जन धन देखूं ।।
सूरज-तारों चाँद-माँही में खाल अछाय ।
की उजाली मांझ जगे होर दिया विदाय ।।
इन सब कलियों माँ मही रंग आप दिखाऊँ ।
राती माती होय सही मुझ वारी जाऊँ ।।

---

1. जवाहरुल अस्रार— पाण्डुलिपि क्रम संख्या (तसव्वुफ) 1669, स्टेट लाइब्रेरी, हैदराबाद ।

लोग अज्ञानता के कारण ही भिन्न रूप में देखते हैं और भेद बुद्धि के कारण ही जीव और परमात्मा अलग-अलग दिखाई देते हैं। वास्तविकता तो यह है कि समुद्र और बूंद दोनों एक ही हैं अर्थात् बूंद जीव है और परमात्मा समुद्र :—

लोक अयाना भेद न पावे,
लहर लहर मंह समंद दिखावे।

कवि ने शतरंज का उदाहरण देकर बताया है कि यद्यपि शतरंज के मोहरे अलग-अलग दिखाई देते हैं किन्तु वे अलग नहीं है :—

मांड विसात सुरंग भर साथी
अपे खेली आप संगाती
दोनों रुख भर भर धरी दुहरे
ज्यूं मन भाया धरीं सो मुहरे
हो शह फर्जी अपे आया
मुहरे होकर भैंस चराया
छोटे हाथी आप कहाया
हर रुख प्यादे नांव धराया।

इससे स्पष्ट है कि शाह गांवधनी यह बताना चाहते हैं कि ईश्वर कण-कण में व्याप्त है। इन्होंने कहा है कि परमात्मा का स्मरण हम किसी भी नाम से कर सकते हैं। अन्य सूफ़ी सन्तों की भाँति इन्होंने भी प्रेम को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है और कहा है कि जो व्यक्ति भगवान से प्रेम करता है वह भगवान से दूर नहीं होता। द्रष्टव्य है :—

अभरन मेरा सही से पिव है
पिव का जिव सो मेरा जिव है।

कवि ने हज़रत मुहम्मद साहब और हज़रत अली की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। कुछ कविताएँ ऐसी भी मिली हैं जिनसे प्रतीत होता है कि ये वेदान्त से भी प्रभावित थे :—

कहीं सो नारी कहीं सो पुरखा,
कहीं सो छोकरा होकर आवे।
कहीं सो बिन जीव ते च दिखावे,
कहीं सो ठाना प्रगट थावे।

शौक़ी

मूल नाम शेख हसन था और काव्य नाम 'शौक़ी' था।[1] शौक़ी शाह

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ॰ 199

हबीबुल्लाह के शिष्य थे। कवि का सम्बन्ध दक्षिण भारत के तीन दरबारों—कुतुब शाही, आदिल शाही और निज़ाम शाही से था। इनका अधिकांश जीवन बीजापुर में व्यतीत हुआ था। इससे अधिक कवि के सम्बन्ध में अभी तक कोई जानकारी नहीं है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शौक़ी को जीवन काल ही में प्रसिद्धि मिल गयी थी क्योंकि इब्ने निशाती ने अपने काव्य 'फूलबन' में इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और इनके जीवित न होने पर दुःख भी व्यक्त किया है :—

> हसन शौक़ी अगर होता तो फिलहाल।
> हज़ारा भेजता रहमत मुंज उपराल ॥[1]

इससे स्पष्ट है कि 'फूलबन' की रचना (हिजरी सन् 1066) के समय तक कवि शौक़ी जीवित नहीं था।

कविवर शौक़ी के दो काव्य उपलब्ध हैं, वे ये हैं—(1) मेजबानी नामा, (2) फतहनामा निज़ाम शाह। इनके अतिरिक्त कुछ ग़ज़लें भी मिलती हैं।

मेजबानी नामा

इस काव्य में सुलतान मुहम्मद आदिल शाह के विवाह का विवरण है। यह विवाह सुलतान ने अपने मंत्री मुस्तफा खाँ की पुत्री से किया था। 'मेजबानी नामा' की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

> सदा दार पर तुझ मंगल गज़गजीं,
> मंगल गज़गजी ज्यूँ बदल गज़गज़ी।
> हस्ती मस्त पीलिया मस्त है,
> जबरदस्त पों किया ज़बरदस्त है।
> सदावार पर तुज तबल बाजते,
> तबल बाजते होर मंदल काजते।
> बहुत देस ते शह की घर काज है,
> शहर गश्त की रात सो आज है।
> शहर गश्त का शाज़ व सामाँ हुआ,
> नफीरियाँ तराये दमामाँ हुआ।[2]

फतहनामा निज़ाम शाह

इस काव्य में तली कोटा के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में दक्षिण के चार शासकों ने मिलकर बीजापूर के राजा रामराज से युद्ध किया था और इसमें विजय प्राप्त की थी। इस काव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि शौक़ी इस युद्ध के समय निज़ाम शाही दरबार में था। इसी कारण इसने विजय का सेहरा निज़ाम शाह के

---

1. देवीसिंह चौहान (सं०)—इब्ने निशाती विरचित फूलबन, पृ० 82
2. मेज़बानी नामा, पाण्डुलिपि, पृ० 45, जामा मस्जिद पुस्तकालय, बम्बई।

सिर पर बांधा है और उसी के नाम पर ग्रन्थ का नाम दिया है। कवि शौक़ी ने लिखा है कि निज़ाम शाह की वीरता के कारण ही बीजापुर पर विजय सम्भव हो सकी और उसी के आदेश से राजा रामराज का सिर काटा गया था। इस ग्रन्थ का प्रमुख पात्र निज़ाम शाह है।

'फतहनामा निज़ाम शाह' नामक कथात्मक काव्य का आरम्भ कवि ने ईश-स्तुति से किया है :—

इलाही करम का कर निहार तूं,
है अव्वल व आखिर रहनहार तूं।
सो क़ादिर है कायम तू परवरदिगार,
तू क़ादिर है दायम आपे बरक़रार।

कवि शौकी इतिहास प्रेमी था। अतः इसने अपने काव्य में ऐतिहासिक तथ्यों को ही आधार बनाया है। वह इतिहास का उलंघन कहीं नहीं करता है किन्तु कल्पना शक्ति से भी काम लेता है जिससे काव्य में आकर्षण आ सका है। दक्षिण के चारों मुस्लिम शासकों ने मिलकर राजा रामराज पर आक्रमण किया था उसका विवरण इस प्रकार है :—

अपस में आपे दोस्त सब मिल हुए
मुहम्मद सूं एखलास यक दिल हुए
नज़अ दिल में दूर कीते निफाक़
अपस में आपे मिल किए इत्तफाक़
यो सब मिल के ऐसा किए यक पता
जो इस कुफ्र को मार करना फना
किए भाग सो कुन्द व अहद उस्तवार
यो गाजी गजा पर हुए बरकरार
न को डर बुलाते जो शब दरमियाँ
देखीं किया चरख फेर है आसमाँ।

'फ़तह नामा निज़ाम शाह' नामक ग्रन्थ में कवि शौक़ी ने राजा रामराज और निज़ाम शाह के बीच जो पत्र व्यवहार हुआ था उसे बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है—

राजा रामराज के प्रताड़ना भरे पत्र का एक रूप प्रस्तुत है :—

न तुरकाँ को छोड़ूं न तुरकी कमान,
अगर गीव रुस्तम हो हाजिर जमान।
न छोड़ूं मुलाना न छोड़ूं फकीर,
न बड़का न लड़का न बरना न पीर।

अदिक दूर बुनियाद इस्लाम की,
जो माने दुराही जगत राम की।

उपर्युक्त पत्र का उत्तर निज़ाम शाह ने इस प्रकार लिखा :—

न पत्याओं कुछ ज़ोर बाज़ू कीते,
निगह राख वज़न तराज़ू कीते।
फिक्र कुछ भरोसा कि अपार माल,
घना माल जिस तिस घना ग रामाल।
बत्ती जाल ना जाल फानूस कूँ,
निगाह राख तूँ अपने नामूस कूँ।

इन दोनों पत्रों से तत्कालीन वातावरण की झलक मिलती है। कविवर शौक़ी ने अपनी कविता में देशी शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है। काव्य की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं जिससे देशी देशों की बहुलता का परिचय मिलता है :—

बैठा नाग काला उड्या राजहंस,
उठी स्याम सुन्दर सीता राज उन्स।
पड्या फूल पर जब भँवर पंख पसार,
छिपा तुरक जंगी खरा आश्कार।

कवि शौक़ी की वर्णन शैली सरल एवं सुन्दर है। इसे साधारण से साधारण व्यक्ति सरलतापूर्वक समझ लेता है :—

वह महबूब निस की सवारी अपस,
मर से ज़रीना निगारी अपस।
सो कुमकुम न केसर चवा होर चन्दन,
येता मुश्क के ऊँट चन्दर बदन।
खुले बाल सर के सो काने दराज़,
सँवारे बैठी लेख अपना सो साज़।
दो मोती गगन के सो तारे हुए,
वो सीस फूल सारे सितारे हुए।

शौक़ी की ग़ज़लें सरसतापूर्ण हैं। शब्दों का प्रयोग कवि ने बड़े कौशल से किया है। एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

दिलबर सलोनी नैन पर खींची है सो का खूबतर,
खतात जीव मार्या रक़म छन्दों सलत के साद पर।
याचक दवात है सेम की केकी सो मर स्याही रखे,
सोका क़लम जीव वास्ते कातिब गया उसमें बसर।

या नैन मोती थाल में सोका सोता गा तेल का,
मोती पिरोकर खींचे तो राह्या है टूट करके।
हुई खल्क हैराँ सब देख यों,
कि अटका जनाज़ा यहाँ आके क्यों ?

मुहम्मद कुली कुतुब शाह

सुलतान कुली कुतुब शाह (1580-1612 ई०) ने ग़ज़ल, क़सीदा और मर्सिया की रचना की है। इनकी रचनाओं का संकलन इनके भतीजे और दामाद मुहम्मद कुतुब शाह ने इनकी मृत्यु के पश्चात् हिजरी सन् 1025 में कराया।[1] कवि मुहम्मद कुली कुतुब शाह ने फारसी, तुर्की और दक्खिनी तीनों भाषाओं में कविता लिखी है एवं इसने तीनों भाषाओं में अलग-अलग काव्य चुने हैं—फारसी में 'कुतुब शाह', तुर्की में 'तुर्कमान' और दक्खिनी में 'मआनी'। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि मुहम्मद कुली कुतुब शाह दक्खिन में फारसी और ईरानी संस्कृति का प्रचारक था। मुहम्मद कुलो कुतुब शाह भारतीय रीति रिवाज़ से भली प्रकार परिचित था क्योंकि इसकी माता हिन्दू थी।[2]

मुहम्मद कुली कुतुब शाह भावुक और रसिक व्यक्ति था। इसका अधिकांश समय प्रेमिका के साथ बीतता था। सौन्दर्य प्रेमी था। इसकी अधिकांश ग़ज़लें प्रेम और सौन्दर्य से पूर्ण हैं। सौन्दर्य और प्रेम के साथ-साथ यह संगीत का भी प्रेमी था।

ग़ज़ल

दक्खिनी ग़ज़ल के क्षेत्र में मुहम्मद कुली कुतुब शाह का अपना विशेष स्थान है। इनकी ग़ज़लों में स्थूल वर्णन नहीं है किन्तु आन्तरिक अनुभूतियों को व्यक्त करने का प्रयास सर्वत्र दिखाई देता है। इनकी ग़ज़लों में प्रेयसी के स्वभाव का चित्रण है। सौन्दर्य आसक्ति उत्पन्न करता है और यदि प्रिय क्षण भर के लिए ओझल हो जाये तो प्रेमी विह्वल हो जाता है :—

तुज जुल्फ सदा लालन के ऊपर ढलती,
क़द फूल उपर कधीं शकर पर ढलती।
मुंज नैन की मछल्याँ तेरे मुख जाल में तिरे,
यक तिल जो न देखे तुज जो भर भर ढ़लती है।[3]

---

1. टी० ग्राहम बेलो—ए हिस्ट्री आफ उर्दू लिटरेचर, पृ० 27
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—कुल्लियात मुहम्मद कुली कुतुब शाह (भूमिका), पृ० 22
3. वही, पृ० 102

मुहम्मद कुली कुतुब शाह यद्यपि विप्रलम्भ श्रृंगार का कवि नहीं था लेकिन कुछ ऐसे स्थल आये हैं जहाँ पर कवि ने विरह का चित्रण किया है। इनकी एक प्रसिद्ध रचना में वियोगिनी कहती है :—

पिया बाज प्याला पिया जाये ना,
पिया बाज यक तिल जिया जाये ना।
कहते पिया बिन सबूरी करूँ,
खया जाये अम्मा किया जाये ना।
नहीं इश्क जिस वह बड़ा कूड है,
कधीं उससे मिल बैसिया जाये ना।
कुतुब शाह न दे मुंज दीवाने कूँ पंद,
दिवाने कूँ कुच पंद दिया जाये ना।

कविवर मुहम्मद कुली कुतुब शाह को वर्षा ऋतु विशेष प्रिय थी क्योंकि इस ऋतु में हैदराबाद और उसके आस-पास के प्रदेश विशेष आकर्षक होते हैं।

मृगशिरा नक्षत्र के लगते ही यहाँ वर्षा आरम्भ होती है जिसे हैदराबाद में मृग लगना के नाम से पुकारा जाता है। मुहम्मद कुली कुत्ब शाह की एक नज़्म है 'मिरग'। इसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

मिरग महीन कूँ मिलाये मलूकाँ मिल गगनाँ में,
समद मोतियाँ के जो बरसाये सो भरे अँगनाँ में।
धरत बन्द चीर जौहर चोली रंग पाच कर अंक पर,
बर भूटियाँ लालाँ सूँ उतरे हैं यमुना में।
कूके चौंधरे थे मेवराँ हरे बन चौतरफा देखा,
पखी रंगारंगी नगमें करे मस्त है चमना में।

× × ×

खुश बनी होर अली के सदके ग़ज़ल मिरग की कहीं;
सो कुतुब नवासों जम तेरे कि जूँ सूरज किरना में।

इसी प्रकार अन्य कई कविताओं की रचना की है जो वर्षा ऋतु से सम्बन्धित हैं।

मसनवी

सुलतान मुहम्मद कुली कुतुब शाह ने कई मसनवियों की भी रचना की है जो अत्यन्त लोकप्रिय रही है। इनकी मसनवी के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

नबी की दुआ थे बरस गांठ पाया,
खुशियाँ की खबर के दमामे बजाया।

पिया हूँ मैं हज़रत के हत आब कौसर,
तू शाहाँ ऊपर मुझ कास को बनाया।
+ + +
खुदाया अमानी की उम्मीद बर लिया,
कि ज्यूं सान्त की हूँ ते जग सब अखाया।
खुदा की रज़ा सूं बरस गांठ आया,
सही शुक्र कर तूं बरस गांठ पाया।

कसीदा

दक्खिनी में क़सीदा लिखने की प्रथा मुहम्मद कुली कुतुब शाह ने ही प्रारम्भ की थी। कसीदे के क्षेत्र में यद्यपि इनका कोई स्थान नहीं है किन्तु इनका 'बाग-ए-मुहम्मद नामक कसीदा विशेष महत्व का है। इसमें कवि ने अपने बाग में लगे हुए पेड़ों और फलों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है :—

मुहम्मद नानूं थे बसता मुहम्मद का ए बन सारा,
सो तोबाँ सूं सुहाता है जन्नत नमने चमन सारा।
दे फानूस के दरमियाने थे जूं जोत देवी काम,
सौतियों दिसता दवालाँ में थे मेवयावाँ का बदन सारा।
भे दम इस्वी दानम चमन में गुल लाने तें,
हरे नहालां के जलवे में मशाता हो पवन सारा।
+ + +
नारां में सुहे दाने सो जूं याकूत पुतलियाँ,
हर एक फल उस अनाराँ पर सुहे सके नमन सारा।
खजूराँ के दसीं झूके कि जूं मरजान के नीचे,
सुपारयाँ लाल खोशे जूं दिसीं दिन होर बन सारा।
दिसी नारियल के फल यूं जमरद मरतबानाँ जूं,
होर उसके ताज कूं कहता है पियाला कर दिखें सारा।

कवि ने तेलुगु भाषी स्त्रियों की आँखों की सुन्दरता और उसके रंग की प्रशंसा करते हुए उनकी आँखों की तुलना जामुन से की है जो देखते ही बनता है :—

दिसीं जामुन के फल बन में नीलम के नमन सालिम।
नज़र लागे त्यूं मेव्याँ कूं राख्या है जतन सारा।।

आगे कवि कहता है :—

सिफ़त करने कूं सो सुन भी कहल्या है दस ज़बान अपने।
दखन सब सुन्दरियाँ के ते खिल्या नर्गिस ने सारा।।
चमन आवाज़ सुन बुलबुल अपस में आप अलापै है।
सो तिस आवाज़ सूं मोरां करें रक्सा अपन सारा।।

मर्सिया

मुहम्मद कुली कुतुब शाह मर्सिया लिखने में निपुण थे। इनके मर्सियों में हज़रत इमाम हुसेन के वध से सम्बन्धित शोक गीत (मर्सिया) अनेक हैं :—

वह जग इमामां दुख थे सब जीव करते जारी बाय बाय,
तम रूँ की लकड़ियाँ जाल करती हैं ख्वारी बाय बाय।
सातो गगन, आठो जन्नत, सातो दरिया, सातो धरत,
एकस थे एक अपस में आप दुख करते कारी बाय बाय।

× × ×

क़तबा को है अल्ला मदद बसता है उस दिल में अहद,
तू मुज मदद हैदर दिल दबीरयाँ को नारी बाय बाय।

इब्राहीम आदिल शाह (द्वितीय)

सुलतान इब्राहीम आदिल शाह (1580-1627 ई०) केवल कवियों का आश्रयदाता और प्रशंसक ही नहीं था प्रत्युत स्वयं उच्चकोटि का कवि भी था। इसका काव्य नाम 'इब्राहीम' था। इतिहासकारों ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह मसनवी, क़सीदे और ग़ज़लें लिखा करता था। सुलतान इब्राहीम आदिल शाह की एक पुस्तक 'नौरस' उपलब्ध है। इस पुस्तक में गीतों का संकलन है जो भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में गाये जाते हैं। इस पुस्तक की रचना हिजरी सन् 995 के पश्चात् और हिजरी सन् 1015 के पूर्व हुई होगी, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। प्रो० नजीर अहमद ने इसको प्रकाशित कराया है जिसका पाठ इन्होंने कई प्रतियों के आधार पर शुद्ध करके तैयार किया है। 'नौ रस' पुस्तक की कुछ पंक्तियाँ, जिनमें दुर्गा व सरस्वती आदि देवियों का वर्णन हुआ है, उदाहरणार्थ प्रस्तुत है : —

नौ रस सोर जग जग जोती आँड सरद दुगुनी,
यो सत सरस्ती माता इब्राहीम प्रसाद भई दूनी।
हज़रत मुहम्मद जगत तर गर गुसाईं,
तो दुर्गा चमक हीरो मन साज़।

कवि के काव्य-कौशल का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है :—

किमत दिसे ज्यों खुसरो मदीना,
कभी खलीफ धर सों त्यूं खोना।
जो दीपक में दिसे नगीना,
मुश्क अबतर बिछाई आँगना।

कवि ने अपने काव्य में रूपक, उपमा आदि अलंकारों का सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है :—

सैयद मुहम्मद पती पीर, ज्यूं रतन में आतम हीरा।
महल महल सदर सँवारे, इस नमूने बहिश्त अपारे।
आनन्द होता है सदा बहारे, आरती लिपाती अम्बर भर तारे।
कदम कस्तूरी जवा चन्दन लाये, बादल कान से हर नग दस पर साये।
शुमाली अब्ज़ बस्तियाँ फिराये, शरबत घोल अमृत पिलाये।

+ + +

जो गुन तूं है गौने कौन कर गुन लाये रे।
इब्राहीम दे गुन बस मुझे इस मियाने आये रे।।

सुलतान अब्दुल्लाह क़ुतुब शाह

मुहम्मद कुली कुतुब शाह के देहान्त के पश्चात् उसका भतीजा और दामाद अब्दुल्लाह कुतुब शाह सिंहासनारूढ़ हुआ, जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। सुलतान अब्दुल्लाह कुतुब शाह को भी साहित्य के प्रति अभिरुचि थी। इसके शासन काल में दक्खिनी साहित्य की बहुत उन्नति हुई। प्रो० हारून खाँ शेरवानी ने सटीक बात कही है—"यह युग केवल राजकाज की फारसी हेतु ही नहीं था, प्रत्युत अरबी, तेलुगु और दक्खिनी साहित्य के लिए पिछले शासकों से बहुत आगे बढ़ गया था।"[1]

सुलतान अब्दुल्लाह स्वयं एक कुशल कवि था। इसने गज़ल, दोहे, मर्सिया आदि की रचना की है। अब्दुल्लाह की ग़ज़लों में भाव की दृष्टि से बहुत गहराई है। इन्होंने ग़ज़लों को बहुत लम्बी नहीं किया है। इनकी ग़ज़लें छोटी-छोटी हैं जिससे भावों में सुसम्बद्धता आयी है। सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह की अधिकांश ग़ज़लों में प्रेयसी के सौन्दर्य की चर्चा है और उपमेय के आगे उपमान हेय बताया गया है। कवि ने प्रियतमा के स्वर की मधुरिमा का वर्णन करते हुए लिखा है :—

हुए कुर्बान तेरी तान पर थे।
तम्बूरा, सुरमंडल, जन्तर, दुतारा।।

कवि ने उपमाओं का चुन-चुन कर प्रयोग किया है। प्रेमिका के मुख के तिल की उपमा अंगूठी के नग से देकर इसने उपमा क्षेत्र में प्राथमिकता प्राप्त की है :—

पियाली पियाली पियालो यूं पीना,
दुन्या में दुन्या में यहीं कुछ है जीना।
मेरे नयन में ख्याल धन तेरे तिल का,
अंगूठी पै जानों जडे हैं नगीना।

---

1. प्रो० हारून खाँ शेरवानी—कल्चरल अस्पेक्ट्स आफ द रेन आफ़ अब्दुल्लाह कुत्ब शाह (लेख) इस्लामिक कल्चर, पृ० 45, जनवरी 1967

सुलतान अब्दुल्लाह् कुतुब शाह् पार्थिव प्रेम का चितेरा है। वह प्रेम के मामले में किसी भी प्रकार का भ्रम उत्पन्न करना नहीं चाहता। इसके प्रेम में लेशमात्र भी अलौकिकता नहीं है। इसका कथन है कि प्रेमी धर्म और अधर्म से ऊपर होता है। प्रेमी के लिए संसार के माधुर्य का अस्तित्व प्रेमिका के स्वर की मिठास में निहित है। समस्त वाद्य प्रेमिका के प्रेम की मिजराव से बज रहे हैं:—

देखता हूँ तो उसी के इश्क के मिजराब थे,
बोलते तूं तूं ककर बजन्तर तम्बूरे होर खाब।

कवि ने भारतीय लोक विश्वासों को भी अपने काव्य में प्रचुर-मात्रा में स्थान दिया है। यथा—प्रेमिका प्रातःकाल कौए का बोलना अच्छा शकुन समझती है क्योंकि वह सोचती है कि आज उसका प्रिय मिलन अवश्य होगा। ग़ज़लों में भारतीय आख्यानों और परम्पराओं को भी स्थान मिला है।

सुलतान अब्दुल्लाह् ने अरबी काव्य साहित्य की प्रसिद्ध विधा मर्सिया को भी अपनाया। यह एक प्रकार का शोक गीत होता है जिसमें प्रमुखतया हज़रत इमाम हुसेन के निर्मम वध का उल्लेख किया जाता है। सुलतान अब्दुल्लाह् कुत्ब शाह् के मर्सिया का दक्खिनी साहित्य में विशेष महत्व है।

उदाहरणार्थ—अली होर फातुमा करते हैं दोनों आज जारी भी,
हसन का होर हुसेन का डोला लिया जग पो खोरी भी।
हुसेनाँ जब चले लड़ने सुराँ पर लगे पड़ने,
शहीदाँ हर तरफ चरने लग्या पो दुख पियारी भी।
वसीयत यो किए जाते नको रो तुम आप भाते,
नहीं तो फिर को नै आते अजल आयी हमारी भी।

\+ \+ \+

देखों तिफलाँ मँगे पानी, न कर जर्रा महरबानी,
सितम सूं तीर मारने गये, वह नाबकारी भी।
हुसेन पानी पीने आये, नीराँ तीर बरसाये,
सो पानी पीने नैं पाये लगी, मुख लहू की धारी भी।

\+ \+ \+

यजीद देखा हुसेन सर फिरया पेट सूं भर भर,
सो देखो लुग़ती काफिर, किया कुफ्र अख्तयारी भी।
करो ऐ दोस्ताँ मातम सवाव है बहुत करना ग़म,
मदद होंगे इमाम हर दम की है उम्मीदवारी भी।
हुसेन का दुख दिल में आन लगा यक चट सूं वायम वहाँ,
करे कुत्ब अब्दुल्ला सुलतान दुखों लूं शहर्याँ भी।

इसके अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि वास्तव में स्वयं शोकाकुल हो गया है एवं दुख का अनुभव कर रहा है। उपयुक्त शब्दों का चयन कवि की निपुणता का द्योतक है। कर्बला का करुण दृश्य पाठक को बिना प्रभावित किए नहीं रह सकता।

अली आदिल शाह (द्वितीय)

सुलतान अली आदिल शाह (1657-1672 ई०) का काव्य नाम 'शाही' था। इसके दरबार में दक्खिनी के कई प्रसिद्ध कवि थे। वह साहित्यिक मण्डलियों में स्वयं भाग लेता था तथा दूसरों को भी उत्साहित करता था। 'शाही' ने क़सीदा, ग़ज़ल, मसनवी, रुबाई, खमसा और मर्सिया आदि की रचना बड़ी कुशलता से की है। इसका एक काव्य संग्रह प्रकाशित भी हो गया है। इसमें हर प्रकार की कविताओं को स्थान मिला है। यह कहा जा सकता है कि इस काल में दक्खिनी में कविता की जितनी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं उन सबका समावेश इसके काव्य में है। दक्खिनी साहित्य के बहुत से काव्यों का महत्व केवल भाषा सम्बन्धी विकास की दृष्टि से है किन्तु यह संकलन भाषा के साथ-साथ काव्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। संकलन का आरम्भ क़सीदे से हुआ है। अली आदिल शाह ने यद्यपि काव्य के विभिन्न अंगों में अपना कौशल दिखाया है किन्तु उसे क़सीदा लेखन में ही अधिक सफलता मिली है। शाही ने अनेक राग-रागिनियों में गीत लिखे हैं। यथा झूलना, भूपाली, असावरी, नट, बिहागरा, देसी टोडी, केदारा, कांगडा, सारंग, श्री गौड़ी, भरूँ, अडाना, गोड मल्लार, यमन, रामकली, पूरबी, पूरिया, मलार, बिलावल आदि। शाही ने गीतों की रचना करते समय शब्दों के चयन का विशेष ध्यान रखा है। न तो कहीं व्याकरण का उल्लंघन है, न ही शब्दों का तोड़-मरोड़। वर्ण मैत्री पर पर्याप्त ध्यान रखा गया है। शाही के काव्य से स्पष्ट होता है कि वह भारतीय साहित्य परम्परा-काव्य-रूढ़ि, कवि-मान्यता और हिन्दुओं के पौराणिक गाथाओं से भलीभाँति परिचित था। इसने प्रेम और सौन्दर्य के वर्णन में पूरी तरह से भारतीय उपमानों से काम लिया है।

क़सीदा सदैव भूमिका से आरम्भ होता है। हज़रत मुहम्मद साहब के क़सीदे में एक उद्यान का वर्णन भूमिका के रूप में किया है। उद्यान के जलाशय को देखकर कवि कल्पना करता है :—

> उदक जल थल भरे हौज़ाँ नहीं है जानो भूमी पर,
> चन्दर का मुख दिखाने तई सूरज अरस्याँ मँगाया है।

हौजों में पानी नहीं है किन्तु चन्द्र का मुख दिखाने के लिए सूर्य ने मानो पृथ्वी तल पर दर्पण जड़े हैं :—

> अबर शरबत के मश्काँ कर दरख्ताँ तई पिलाया है,
> मयूरा नाचते ठारे बदल विरदंग बजाया है।

पाताँ मने डाल्याँ दिसे नारंज की मुज यूँ,
तरुन सुन्दर के जोबन पर सब्ज वाला उढाया है।

उद्यान वर्णन के पश्चात् कवि ने हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा की है :—

रवया माली न कर दावा बड़ा ओ नाव पाया है,
···(बड़ा) वो इस्म अहमद का जिने दीं अप निभाया है।
दिस्या जो नूर का झलका चंदर तुम सम पड़्या हलका,
सुरिज ने काम भा हल्का बँद्याँ में अप लिखाया है।

हज़रत अली के कसीदे में सुरा की माधुरी भूमिका के रूप में दी गयी है। यह सुरा न तो लौकिक है और न साधारण। इस मधु का पान सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता। कवि सूफ़ी की भाँति हज़रत अली के सम्बन्ध में कहता है :—

हँस चाल ले पिया ने आते लटकते देखे,
परदा नयन के म्याने राखूँ न तूतिया का।

हज़रत अली विद्वान थे और परम पराक्रमी भी। उनके पराक्रम का वर्णन करते समय कवि शाही की वाणी का ओज इस प्रकार व्यक्त हुआ है :—

तुज कहर के आतिश कने इस्पन्द होय हासिद जिते,
शमशीर के पानी मने दुश्मन के सिर हैं बुड़े बुड़े।
रज तज के सट घर बार सब,
चकपक गवाँ दुश्मन अड़े।

कवि के क़सीदों में जहाँ वीर रस का उद्भव हुआ है, कवि की भाषा बड़ी सरल रही है और दक्खिनी के प्रचलित शब्दों और मुहावरों का प्रयोग सुन्दरता से है। यद्यपि ये शब्द देखने में ग्राम्य प्रतीत होते हैं किन्तु उनमें भावों को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है।

संकलन में दो मसनवियाँ हैं। एक मसनवी 'खैबर नामा' हज़रत अली के एक युद्ध से सम्बन्ध रखती है और दूसरी मसनवी श्रृंगार रस से सम्बन्धित है। मसनवी के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

बनाई है सारी अपस कूँ श्यन,
इसी थे कबाई रयन ने मोहन।
रयन के अम्बर पर नुमायाँ दिसे,
सोने की सलायां हबायां दिसे।
चन्दर जोत टोका लगाये रयन,
फटाखाँ के तिरें उतारे मोहन।

× × ×

सिना है सकी का सोने सार का,
सोना होर मोती गले हार का।
सोने का जरीना सोने का है आंग,
सोने का है टीका सोने की है माँग।
सुधन जब सँवारी है पैजन का नग,
सोना आ सरन लग धर्या सीस पग।
करम तुज रे 'शाही' का दिसता है आज,
सोने का आंचल ओट करती है लाज।

ग़ज़ल का निर्माण कवि की दक्षता और साधना का प्रतिफल होता है। इनके लिखने में 'शाही' सफल रहा है। शाही की ग़ज़लों का विन्यास और बाह्य रूप ईरानी है किन्तु इनके वर्ण्य विषय पर भारतीयता का प्रभाव है। फारसी काव्य के शृंगार के साथ-साथ भारतीय ढंग का शृंगार रस भी इन ग़ज़लों में दिखाई देता है। प्रेमिका ने सौन्दर्य प्रेमी को बन्दी बनाया है :—

फांदे करे दो ज़ल्फ घुंघबाल खवाले,
मुज नैन पखेरू के बदल तिल रखे चारा।

कई स्थलों पर भारतीय नारी का दिव्य और साधनारत रूप मूर्तिमान हुआ है। भारतीय नारी अपनी अलकों से प्रिय को बन्दी बनाने की बात ही नहीं करती अपना सर्वस्व समर्पण करने में वह अहोभाग्य मानती है। तप में अपने आपको गला देती है जिससे जन्म-जन्मान्तर तक वह अपने प्रिय की दासी बन सके। उसे अपना पृथक और वरिष्ठ पद अभीष्ठ नहीं, वह अर्द्धाङ्गिनी के गौरवमय पद पर आसीन होकर तृप्ति अनुभव करती है :—

अर्दंग हो मैं पिया की दिसती हूँ छाँव सम हो,
कइ भाव ते रिझा कर लेती हूँ मन में जम जम।
रुँ रुँ छकी हुई हूँ पी वस्ल का पियाला,
पिव जीव हो के हरदम बसता हमन में जम जम।
कीती हूँ चक कसौटी रंग रूप जो परखते,
पिव सूर-सा झलकता बत्तिस लछन में जम जम।

संकलन में एक मुखम्मस और एक मुसम्मन है। मुखम्मस सुनने में गीत प्रतीत होता है। एक मुखम्मस में विरहिणी की वेदना किस सफलता से ध्वनित हुई है :—

ला दीपक बिरहा अपने में
तन जाली झुक झुक जपने में
तुज याद कर तलमलाती हूँ
लहुउ तेल में दिल तलती हूँ
तन मोम बस्ती हो जलती हूँ।

राज़ी

मूल नाम अब्दुल अली है और काव्य नाम राज़ी। कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है। राज़ी की एक रचना—'अलीनामा' का पता चलता है। इसमें हज़रत अली के एक चमत्कार का उल्लेख किया गया है। यद्यपि कवि ने कथानक को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने का प्रयास किया है। किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों को इसमें कोई विशेष स्थान नहीं मिला है। इसका कथानक पूर्ण रूप से कल्पित है।

कवि राज़ी ने काव्य का आरम्भ इस प्रकार से किया है :—

कि एक दिन मुहम्मद अलै अस्सलाम,
जो बैठे थे असहाब याराँ तमाम।
अबाबक्र होर उमर उसमान थे,
अली मुर्तजा शाह मर्दां थे।
दस नको बैठे थे आस पास,
शफाअत का शरबत पिये आम खास।

हज़रत मुहम्मद साहब, हज़रत अली से कहते हैं :—

मुहम्मद कहे या इमाम अली,
तेरे हक़ पे उतर आया है नादे अली।
कि तू पीर पीराँ का ख़ूब पीर है,
कि तूँ मीर मीराँ का तू मीर है।
कि ज़ाहिर व बातिन तुझे है अयाँ,
कि ता बया में है बयां।
कुफ़ तोड़ने का तुझे जस दिया,
कि शेर मरदाँ अली है इमाम हुदा।
अली कूँ वलायत इनायत अथा,
अजायब इल्म वे निहायत अथा।
अली ने कहे ऐ मुहम्मद रसूल,
रजा दे मुझ में करूँगा वसूल।

काव्य का कोई विशेष साहित्यिक महत्व नहीं है। धार्मिक दृष्टि से इसका महत्व है। भाषा सरल है।

ज़ौकी

मूल नाम सैयद शाह हुसेन है और काव्य नाम ज़ौकी है। ये धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। इनके आध्यात्मिक गुरू शाह खान मुहम्मद थे जो ज़ौकी को 'बहर-उल इरफान' के नाम से पुकारा करते थे। ये तत्कालीन कवियों में सिद्ध हस्त कवि माने जाते थे। कवि ज़ौकी ने विसाल अल आशक़ीन, गौस नामा, वफात नामा, मन्सूर

नामा और माँ बाप नामा आदि मसनवियों की रचना की। इसके अतिरिक्त इनकी ग़ज़लों और मर्सिये भी मिलते हैं।

सूफ़ी सन्त ज़ौकी किसी शासक अथवा सूबेदार के न तो आश्रय में थे और न ही कोई विशेष सम्बन्ध था किन्तु इन्होंने आलमगीर औरंगजेब के शासन काल में जन्म लेने के कारण सराहा है और अपने आपको धन्य समझा है।

कवि ज़ौकी ने कालजयी बनने के लिए अपने काव्य 'विसाल-अल-आशकीन' की रचना की है। कवि को अपनी कविता पर गर्व है और वह स्वयं को नुसरती से महान समझता है। 'गौस नामा' में हज़रत शेख अब्दुल कादर जीलानी की प्रशंसा की है और उसके बाद उनके चमत्कारों का उल्लेख किया है। 'गौस नामा' का रचना काल हिजरी सन् 1109 है। अधिकांश काव्य धार्मिक है।

'गौस नामा' के कुछ शेर उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

बक़ा इब्न बतू कहे एक रोज़,
थे मनबर पो ओ सरूर नेक रोज़।
तज्जली किया उनके दिल पर खुदा,
हुए उस तज्जली में खुद सूँ जुदा।
करी अव्वल को बेखुद तजल्ली रब,
लगी मवे पो करने न ला ताब तब।
रसूल खुदा हाथ पकड़ उन के तई,
रखी साबित ऊस वक़्त मेज़ पोदी।

\+ + +

बड़्या शेख का जिस्म उसते तया,
कि होने होल देखें सूँ उसकी सदा।

एक मर्सिया के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

ऐ शमा बज़्म मुरतज़ घर आते क्यों नहीं,
तारीक़ है तुम बिन जहाँ जलवा दिखाते क्यों नहीं।

\+ + +

सुनते हो तुम ऐ मोमिनाँ, शह की शहादत का बयान,
सब खाक व खूँ के दरम्याँ तन को मिलाते क्यों नहीं।
ज़ौकी तुम्हारा है गुलाम फज़ल व करम से पा इमाम,
अपनी ज़ियारत को मदाम इसको बुलाते क्यों नहीं।

सैयद शहबाज़ हुसेनी

सैयद शहबाज़ हुसेन, ख्वाज़ा सैयद मुहम्मद हुसेनी बन्दानवाज़ गेसूदराज़ की सन्तान में से थे। शाह हिदायतुल्ला हुसेनी के उत्तराधिकारी थे। इन्होंने अपना नाम ही कविता में प्रयोग किया और ख्वाजा मुहम्मद हुसेनी के उपनाम शहबाज़ के आगे

हुसेनी लगाकर अपने उपनाम में भेद किया है। इब्राहीम आदिल शाह (1580-1624 ई०) ख्वाजा बन्दा नवाज़ की सन्तानों का बड़ा आदर करता था। अतः शहबाज़ हुसेनी का भी बीजापुर में बहुत आदर व सम्मान था। इनकी मृत्यु बीजापुर ही में हुई और मुहल्ला शाह पेटा में दफन किये गये। इनकी कुछ ग़ज़लें प्राप्त हैं।

कवि शहबाज़ हुसेनी की ग़ज़लों में सूफी विचारधारा की स्पष्ट छाप है। कवि ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए उपमा और रूपक का सहारा लिया है :—

तू तो सही है लश्करी कर नफ्स घोड़ा सार तूं।
हुए नरम न तुझ उचडे पस खायेगा आजार तूं॥
सखतीच घोड़ा खोड है बदख्याल इसका होर है।
तन लूटने का जोड है ना छोड़ उस बदहार तूं॥
जब क़ैद घोड़ा आवे का तुझ ला मकाँ ले जावेगा।
तू इश्क झगड़ा पावेगा खुश मारे तलवार तूं॥
शहबाज आप खुद खोय कर हर दो जहाँ दिल धोय कर।
अल्ला की जानिब होय कर तब पायेगा दीदार तूं॥

एक अन्य रचना का कुछ अंश प्रस्तुत है। इसमें भी कवि ने अपनी धार्मिक मनोवृत्ति का परिचय दिया है :—

सोने न देऊँ खलक़ कूँ शहबा निस दिन रोय कर।
सोते सने पर कूं मरे मत कोई देखे माय कर॥
जिस रात शह सूं नामों इस बाज जीव मैं तलमलों।
आप आह की आग में जलूं आपस लू जाऊँ रोय कर॥
शहबाज़ दूजा नाम नहीं जब जीव ऊपर ले आऊँ मैं।
आरे ले सर ता पाँव लग आपस चराऊँ देखकर॥

इससे स्पष्ट होता है कि सैयद शहबाज़ हुसेनी का तत्कालीन कवियों में उच्च स्थान रहा होगा। अभी तक इनकी कोई कृति नहीं प्राप्त हुई है। किन्तु इन कविताओं के अध्ययन से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्होंने अवश्य ही किसी महाकाव्य की रचना की होगी।

सन्त तुकाराम

तुकाराम महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त थे। इनका जन्म 1609 ई० में पूना के पास इन्द्राइन नदी के किनारे बसे हुए देहुग्राम में हुआ था। इनके जीवन का अधिकांश समय लोह गाँव में बीता था। तुकाराम ने व्यापार करके जीवन यापन करना चाहा, किन्तु इन्हें व्यापार में हानि ही नहीं उठानी पड़ी, अपमानित भी होना पड़ा। इसी बीच देश में अकाल पड़ गया और इनकी पत्नी रखूबाई अन्न के बिना तड़प-तड़प कर

मर गई और फिर भाभी, पुत्र और परिवार के अन्य लोग भी अन्न के बिना तड़प कर मर गये। तुकाराम ने दूसरा विवाह जीजा बाई से किया, जिसका स्वभाव कठोर था। इससे इनका जीवन कष्टपूर्ण रहा। इनके कष्टपूर्ण जीवन में कविता और भजन आत्म शान्ति का साधन बने।

उस समय तुकाराम की भक्ति के सामने ज्ञान का प्रभुत्व समाप्त हो गया था और इनकी तल्लीनता के आगे शास्त्र चर्चा मौन हो गई थी। इनकी वाणी आज भी महाराष्ट्र में उसी प्रकार प्रचलित है जिस प्रकार उत्तर भारत में कबीर और गुरुनानक की। सन्त तुकाराम की कविता का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इनका हृदय भक्त हृदय था। इन्हें न तो अपनी आस्था का आग्रह है, और न ही दूसरों के विचारों का विरोध। वे तो अडिग विश्वास के साथ परमात्मा भक्ति में लीन थे :—

राम भजन सब खार मिठाई
हरि सन्ताप जनम दुख राई
दूध भात घृत सकर पारे
हरते भूक नहि अन्त तारे
खावते तुम सब चलि जावे
खटा मिठा फिर पचतावे
कहे 'तुका' राम रस जो पीवे
बहुरि ही फेरा वो कबहु न खाये।

इन्होंने स्पष्ट कहा है कि भक्त का परमात्मा से इस प्रकार का प्रेम होना चाहिये जैसे पतंग दीपक से प्रेम करता है :—

तुका प्रति राम सूं तैसी मीठा राख,
पतंग जाप दीप परे करे तन की खाक।

सन्त तुकाराम ने दोहों, गीतों और चौपाइयों में कविता लिखी है। इनकी हिन्दी अन्य महाराष्ट्रीय सन्तों की अपेक्षा अधिक परिनिष्ठित है। इन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है :—

काफर सो ही आपण बूझे अल्ला दुनिया भर।
कहे 'तुका' तुम सुनो रे भाई हिरवा जिन्ह का कठोर॥

सन्त तुकाराम ने अपनी चौपाइयों में भक्ति भाव को प्रधानता दी है। इनकी एक चौपाई प्रस्तुत है :—

मंत्र तन्त्र नहिं मानत साखी।
प्रेम भाव नहिं अन्तर राखी॥
राम कहे त्याके पग हौ लागूं।
देखत कपट अभिमान दूर भागूं॥

अधिक जाति कुल हीन नहिं जानूं।
जाने नारायन सो प्रानी मानूं॥
कहे तुका जीव तन डारू वारी।
राम उपासि हूँ बलियारी॥

सन्त तुकाराम ने हिन्दी में अनेक भक्ति पदों की रचना की है। कवि का हृदय भक्त हृदय है। अतः इसकी धारणा है कि जीवन का फल है राम की प्राप्ति :—

राम कहो जीवना फल सोही।
हरि भजन सूं बिलम्ब न पायी॥
कवन का मंदिर कवन की झोपरी।
एक राम बिन सबहि फुकरी॥
कवन की काया कवन की माया।
एक राम बिन सब ही जाया॥
कहे 'तुका' सबहि चलनार।
एक सम बिन नहिं वा सार॥

कवि ने उपदेशात्मक चौपाई में कहा है कि मनुष्य व्यर्थ में धन वैभव में डूबा है जो क्षणिक है। मनुष्य को माया के पाश से बचना चाहिए। इस संसार में न कोई छोटा है, न कोई बड़ा, सभी का संरक्षक राम है :—

काहे रे भुला धन-सम्पत्ती घोर
राम नाम सुन गाउ हो बाय रे
राजे लोक सब कहे तू अपना
जब काल नहिं पाया ठाना
माया मिथ्या मन का सब धंदा
तजो अभिमान भजो गोविन्दा
राना रंक डोगर की राई
कहे 'तुका' करे इलाही।

कवि का कथन है कि इस संसार में सभी लोग सांसारिक माया जाल में फँसे हुए हैं और वही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है जो इस संसार को भुला दे :—

क्या गाउँ कोई सुनने वाला
देखे तो सब जग ही भूला
खेलो अपने राम ही सात
जैसी वसी कर ही, मात
कहाँ से लाऊँ मधुर बानी
रीझे ऐसी लोक विरानी

गिरधर लाल तो भाव का भूका
राम कला नहिं जानत 'तुका'।

सन्त तुकाराम ने अपने एक दोहे से स्पष्ट किया है कि मनुष्य जो चाहता है उसी ओर मुड़ता है। यह मनुष्य के स्वभाव पर निर्भर करता है कि वह किसे अपनाये और किसे त्यागे :—

लोभी के चित धन बैठे, कामनी चित काम।
माता के चित पूत बैठे, तुका के मन राम ॥

शाह अबुल हसन क़ादरी

शाह अबुल हसन क़ादरी उत्तर भारत से इब्राहीम आदिल शाह के शासन काल (1580-1627 ई०) में बीदर आये थे। यही कारण है कि इनकी दक्खिनी में मूल हिन्दी का भाव मिलता है। सूफी मनोवृत्ति के कारण काव्य में सूफी मान्यताओं को अपनाया है। इनकी भाषा अन्य दक्खिनी के सूफ़ी कवियों की भाषा की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है। शाह अबुल हसन क़ादरी की रचना 'सुख अंजन'[1] की एक प्रति इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद में उपलब्ध है। इस काव्य में कवि ने सूफ़ी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। काव्य के आरम्भ में लिखा है कि इस संसार में ऐसा खेल खेला जाय जिसमें परमात्मा के मिलन का उपाय हो :—

खेलन ऐसा खेल होवे,
पिया मिलन का मेल होवे।

सूफ़ी साधक शाह अब्दुल हसन कादरी ने आँख मिचौनी खेल द्वारा ईश्वर और जीव में एकता प्रतिपादित करने का प्रयास किया है :—

खेल में खेल कुछ खेल दिखाये
लड़को कूँ ये खेल सिखाये
आपे बालक आपे दाय
आपे होवे चोर बुलाय
आँख मिचौनी खेलनहार
आपे जग पर हो आधार।

अबुल हसन क़ादरी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि आँख मिचौनी में छिपने वाला और खोजने वाला अलग-अलग नहीं होते क्योंकि दोनों अभिन्न हैं। कवि का विचार है कि प्रभु एक शक्ति है जो अनेक रूपों में भासती है।

सूफ़ी सन्त ने एक लोक प्रचलित खेल (आँख मिचौनी) के द्वारा परमात्मा और

1. सुख अंजन, पाण्डुलिपि क्रम संख्या 532, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद।

जीव की अभिन्नता को बड़े कलात्मक ढङ्ग से प्रस्तुत किया है जिससे पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। भाषा में सरलता, सहजता और प्रांजलता है।

मुहम्मद अमीन 'अयागी'

मुहम्मद अमीन 'अयागी' बीजापुर के शासक अली आदिल शाह (द्वितीय) के समकालीन सूफ़ी साधक थे और धार्मिक मनोवृत्ति के थे एवं शरीअत के नियमों का पालन दृढ़ता से करते थे। राग सुनने, गीत गाने और शतरंज खेलने को बहुत बड़ा पाप मानते थे।

मुहम्मद अमीन 'अयागी' ने तत्कालीन शासक अली आदिल शाह (द्वितीय) के न्याय की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है और उस समय जन्म देने के कारण परमात्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है :—

अगर रास्ती सो किया अदल यहाँ,
तुझ उसने बड़ी बादशाही है वहाँ।
करूँ हर घड़ी शुक्र परवरदिगार,
कि इस दौर में है अली शहरयार।

कवि अयागी की दो पुस्तकों—नजात नामा और मसनवी फराइज़ का उल्लेख मिलता है। कवि ने अपनी रचना 'नजात नामा' में यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य को किस प्रकार मुक्ति मिलेगी? इसमें शरीअत के पालन की ओर संकेत किया है। दूसरी पुस्तक मसनवी 'फराइज़' में संकेत किया है कि कौन-सी बातें करनीय हैं और कौन-सी बात अकरनीय है।

मुहम्मद अमीन अयागी ने ग़ज़लों की भी रचना की है। इन ग़ज़लों में भी सूफ़ी विचारधारा का प्रतिपादन हुआ है :—

देखने पर कहाँ है ख्याल आँखियाँ
क्या कहूँ क्यों रखूँ संभाल आँखियाँ
जमा अथा दिल हुआ परेशान आज
काँते देख्या व ज़ुल्फ गाल आँखियाँ
परसाई तमाम गई मेर
जब से देख्या हूँ ऊ जमाल आँखियाँ
आज दीदार होगा शक नहीं
मुझ फड़क बोलत्याँ है फाल अँखियाँ
ले दुआअे खुदा कने मंगता
तिलमिलातियाँ है माह व साल अँखियाँ
........आदि।

बुलबुल

बुलबुल एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं किन्तु इनका अभी तक मूल नाम ज्ञात नहीं हो सका है और इसी प्रकार इनका जीवन वृत्त भी अन्धकार में है। बुलबुल की 'चन्दर बदन व माहयार' नामक एक रचना उपलब्ध है। दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डा० ज़ोर का कथन है कि इस ग्रंथ की रचना हिजरी सन् 1100 से पहले हुई है।[1] श्री हाशमी ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'दकन में उर्दू' में इस ग्रंथ के विषय में अपना अभिमत इस प्रकार दिया है—"वही किस्सा नज़माया (पद्यबद्ध) गया है जिसको मुक़ीमी ने दक्खिनी में नज़्म किया था। मालूम होता है कि बीजापुर में मुक़ीमी की दखनी तसनीफ (रचना) के बाद आतिशी ने जो इस ज़माना में बीजापुर में था और फारसी शायरी के लिहाज से मशहूर था। इस वाकया (कहानी) को फारसी मसनवी में कलम बन्द किया (रचा) और जमान-ए-मावाद (उसके कुछ समय बाद) बुलबुल ने इसका तरजुमा (अनुवाद) दखनी नज़्म में किया।"[2]

कवि बुलबुल के काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कवि को काव्य क्षेत्र में अधिकार था। शब्दों का चयन, अलंकारों का प्रयोग आदि अत्यन्त सुन्दर हैं :—

बना नक़्श बन्द नक़्श इजाद,
किया क़ुदरत के नक्शे का दो बुनियाद।
बन्दा नक्शा ज़मी व आसमाँ का,
बहार-ए-गुलशन व जान जहाँ का।

एक अन्य काव्य-कला से सम्बन्धित उदाहरण प्रस्तुत है :—

क़दम पर जा किया आदाब सजदा,
बजा लाया ऊ सर से दाब-ए-सजदा।
जुनू बेताब हो मइल दुआ में,
न्याज़ - ए - अर्ज़ कीता मदअ में।
तू नहीं सुलतान खूबियाँ शह परी है,
यो सूरत तुज दिवाना मुझ करी है।
छुराई मुजको परे जान माँ सूँ,
करी ताराज मुज कूँ दिल व जाँ सूँ।

कवि ने नायिका की लटों का सुन्दर चित्रण किया है :—

तेरी ऐ ज़ुल्फे मश्कीं गिरह गीर,
हुए हैं दाम दिल ज़ुन्नार व जंज़ीर।
तेरे बुत का सफा बुतखाना दिल है,

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 106
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 347

कविवर बुलबुल ने कहा है :—

हुआ बुलबुल ऊपर उत ते ज़रूरत,
दिखाना फर्स की हिन्दी में सूरत।
× × ×
वह सुन बहरे मुबारक बाद आवाज़,
कहा बुलबुल अछूं परवाना परवाज़।

कवि बुलबुल के काव्य में अरबी-फारसी शब्दों की अधिकता है। शैली में प्रवाह एवं सरसता है।

दरिया

दरिया का मूल नाम अली बख्श था। दरिया का जीवन वृत्त ज्ञात नहीं है। इनकी केवल एक रचना की सूचना है जो 'वफात नामा' के नाम से जानी जाती है। इस रचना की हस्तलिखित प्रति इदार-ए-अदबियात उर्दू, सालारजंग म्यूजियम, पुस्तकालय, हैदराबाद में है। इस पुस्तक का मूल विषय हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु से सम्बद्ध है जिसे बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य में लगभग 350 शेर हैं। इस काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1111 (1700 ई०) है।[1]

दक्खिनी के अन्य कवियों की भांति 'वफात नामा' नामक काव्य के लेखक ने भी आरम्भ में ईश-स्तुति की है :—

बना अव्वल करूँ हम्द ख़ुदा में।
ज़बाँ ऊपर अपस की इब्तदा में॥
किया कुदरत सूँ ज़ाहिर अपनी कुदरत।
बनाकर जग दिखाया अपनी हिकमत॥

लेखक ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इस काव्य के कथानक का मूलस्रोत कोई अरबी-फारसी रचना है :—

अरबी फारसी सूँ है बयान यूँ।
कब तक ईमाँ···बयाँ यूँ॥
हर यक दखनी ज़बाँ सूँ पर को बूजे।
न रहे मुहताज कूँ अब सोजे॥

प्रस्तुत काव्य में चारों खलीफाओं का भी उल्लेख हुआ है :—

उमर कहे बीस, उसमान कहे मुंज में तीस।
अही कहे मुंजुमलों और कंको चालीस॥

---

1. वफात नामा (पाण्डुलिपि क्रम संख्या 100, सालार जंग म्युज़ियम, पुस्तकालय, हैदराबाद

कह्या ओ मर्द सार्‌यां कू निकार।
तमैं हमेशा रहो सारी अपस ठार ॥
इमाम दो जहाँ हर दो बिरादर।
कहे इसी मर्द सूं वूं इलतजा कर ॥

यह रचना साधारण कोटि की है। इसके अतिरिक्त दरिया की किसी अन्य रचना का पता नहीं है।

गुलाम अली

गुलाम अली कुतुब शाही शासक अबुल हसन ताना शाह का अत्यन्त प्रिय दरबारी था। यह काव्य की एक विधा-ग़ज़ल में अत्यन्त निपुण था। इसके जन्म एवं मृत्यु के सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य दोनों से कोई सूचना नहीं मिलती है। गुलाम अली कृत पद्मावत नामक प्रेमाख्यानक काव्य प्राप्य है जिसे कवि ने हिजरी सन् 1091 (1680 ई०) में लिखा है। रचना के अध्ययन से पता चलता है कि जायसी कृत पद्मावत का दक्खिनी में रूपान्तर मात्र है। इसकी हस्तलिखित जो प्रतियाँ मिलती हैं वह सभी खंडित हैं।

गुलाम अली ने अपने ग्रन्थ के सम्बन्ध में लिखा है कि एक बहुत प्रसिद्ध और रुचिकर ग्रन्थ को मैंने दक्खिनी में लिखा है :—

यो किस्सा अथा भीत शीरीं-सुख़न।
हवस करके लाया हूँ दखनी वचन ॥

अर्थात् जायसी कृत पद्मावत इतनी प्रसिद्ध रचना थी कि इसे फारसी में बज्मी[1] और अक़िल खां[2] लिखा और गुलाम अली ने दक्खिनी में।

तत्कालीन शासक के रूप में कवि ने सुलतान अबुल हसन ताना शाह की प्रशंसा की है। कवि ने सुलतान के न्याय, वीरता और योग्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है :—

कतेक शाह उसका अदालत देखत,
हुए जुल्म सुट देख आदिल निपट।
हर यक इल्म में होर बलाग़त मने,
नहीं कोई है ता सुजाअत मने।

गुलाम अली ने मूल कथा का आरम्भ इस प्रकार किया है :—

कि है सब जगतर मने सात दीप।
सिंगल दीप उसमें का है एक दीप ॥

---

1. मुल्ला अब्दुश्शकूर बज़्मी—पद्मावत (पद्यानुवाद 1618 ई०)
2. आक़िल खाँ—शमा-परवाना (पद्यानुवाद 1658 ई०)

कि ओ दीप में है सकल पद्मनी।
न चित्रित न हास्तिन नहीं शंखनी।।
सकल दीप के नार का बात है।
सुनो मैं कहूँगा ओ किस घात है।।
अथा एक राजा सो भूखन कनीर।।
सिंहल दीप के मुल्क में बेनज़ीर।।
तिका नांव कंदर्प सेन अथा।
जगत में बड़ा राजा उस बिन न था।।

कवि गुलाम अली ने पाठकों को उपदेश दिया है :—

गुलाम अली जिसके तैं है हया।
जिये हक़ को तौफ़ीक़ सो कोई धात।।
अगर जावेगा बाधकन घेट कर।
खड़ा मूं फिरा उस तरफ पेट कर।।
पड़े जा अगर आग में नाग हाँ।
होवे ओ अगिन उस उपर गुलिसताँ।।

सांसारिक जीवन के सम्बन्ध में कवि का कथन है :—

गुलाम अली नई दुनिया में वफ़ा।
कधों है खुशी होर कधों है जफ़ा।।
कि जो कांद का है चूना ज़िन्दगी।
तो हर्गिज़ नहीं किसकूं पायदगी।।

कवि उपदेश देता है कि मनुष्य को संसार में भलाई करनी चाहिए। किसी की बुराई नहीं करनी चाहिए और जो व्यक्ति भलाई करेगा उसे भलाई का फल भलाई से मिलेगा :—

गुलाम अली कह भला हर किसे।
बुरा कहने सों जग में दुश्मन दिसे।।
भलाई सते तू भलाई पायेगा।
बुराई सो सिर पर बला मल्यायेगा।।
होव कोई बुरा तू भलाई न छोड़।
बुरा बोल किस कूं अपस मूं न तोड़।।

इससे स्पष्ट होता है कि कवि गुलाम अली मनुष्यों में पारस्परिक सद्व्यवहार पर बल देता है। पूरे काव्य में आद्यंत तसव्वुफ की झलक मिलती है। भाव चित्रण, विषय वर्णन तथा शैली की दृष्टि से रचना साधारण कोटि की है। चरित्र-चित्रण में भी विशेष सफलता नहीं मिली है।

मुख्तार

मुहम्मद मुख्तार आदिल शाही शासन के अन्तिम शासक सिकन्दर आदिल शाह के शासन-काल (1672-1686 ई०) के कवि थे। इनके गुरू शाह हज़रत (मुहम्मद हुसेनी) थे। शाह हज़रत बीजापुर के प्रसिद्ध सूफ़ी साधक थे।[1] इन्होंने अपने गुरू की प्रशंसा के साथ-साथ गुरू के गुरू शेख अब्दुल समद की भी प्रशंसा की है।[2] मुख्तार का जीवन वृत अन्धकार में है किन्तु इनकी रचना 'मअराज नामा' के अध्ययन से विदित होता है कि मुख्तार केवल कवि ही नहीं, अपितु तसव्वुफ के बहुत बड़े विद्वान थे। ये सुन्नी सम्प्रदाय के थे। बीजापुर के अन्य कवियों की भाँति इन्होंने तत्कालीन शासक की वन्दना नहीं की। इससे स्पष्ट होता है कि कवि का दरबार से सम्बन्ध नहीं था। मुख्तार की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं :—

(1) मअराज नामा, (3) मौलूद नामा।

मअराज नामा

यह कविवर मुख्तार की एक प्रसिद्ध रचना है। इसमें लगभग तीन हज़ार शेर हैं जिनमें कवि ने हज़रत मुहम्मद साहब के मअराज का वर्णन किया है। हज़रत मुहम्मद साहब का आकाश गमन, स्वर्ग और नरक का निरीक्षण, सात आसमानों की सैर आदि का विस्तृत वर्णन किया है।

रचना-काल

मअराज नामा का रचना-काल कवि मुख्तार के हिजरी सन् 1094 (1683 ई०) दिया है जिसको इन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया है :—

यो मअराज नामा हुआ है तमाम।
सलाम अली रूह खैरुल्ला नाम॥
सन था यो हिज्रत का उस दिन क़रार।
थे गुज़रे नव्वद चार पर एक हज़ार॥

---

1. मौलवी अब्दुल जब्बार मलकापुरी—औलिया-ए-दकन, भाग 2, पृ० 795
2. इतन का मुहम्मद हुसेनी है नावं, मेरे सर पे उसकी हमेशा है छावं।
कि और शाह हज़रत सूं मशहूर है, कि कब्ज उसका दो जग में मअमूर है।
सना अलफना सूं पड्यां उस कूं काम, बका अल बक़ा का उसे है मक़ाम।
ज़हे बख्त बेमिस्ल पाया हूं पीर, कि है और दो जग में मंजे दस्तगीर।
मुहब्बत का पर्दा रचाया है जब, अपस कूं अपीं बां सो पाया है तब।
(मुहम्मद मुख्तार—मअराज नामा)

काव्य के आरम्भ में ईश-स्तुति का स्वरूप इस प्रकार है :—

कहूँ हम्द अव्वल इस राज़ का,
नवीं कूँ दिया ताज मअराज का।
खलायक सारी किया है ज़हूर,
वले सब ते अव्वल नबी का ज़हूर।

इसके पश्चात् हज़रत मुहम्मद साहब, हज़रत अली और इमाम हुसेन की भूरि-भूरि प्रशंसा में कवि वाणी सुभग बनी है।

सूफ़ी साधक कविवर मुख्तार ने 'मअराज नामा' नामक अपने काव्य में आकाश और पृथ्वी के सम्वाद द्वारा दोनों के महत्व पर प्रकाश डाला है :—

यह मअराज का है सबब पाचवाँ,
सुनो ऐ अज़ीजाँ उसी का बयान।
ज़मीं आसमाँ जब कि पैदा हुए,
अदम के क़दम से हुवैदा हुए।
पड्या बहस दोनों के म्याने तमाम,
किया फख्र दोनों में आकर मुक़ाम।
बुलन्द आसमाँ ने बुलन्दी किया,
बुलन्दी सते खुद पसन्दी किया।
+ + +
ज़मी पर किया किबरिया जब मुक़ाम,
कए फख्र यू आसमाँ पर तमाम।
कहीं बरदबारी बजाती हूँ मैं,
कि हर बार कूँ सब उचाती हूँ मैं।

मौलूद नामा

इस काव्य में चार सौर शेर हैं। इसमें कवि ने हज़रत मुहम्मद साहब के जन्म, नख शिख, सूरत मुबारक आदि शीर्षकों में लिखा है। हज़रत मुहम्मद साहब गौर वर्ण के हैं और उनके अंग-प्रत्यंग का अलंकारिक उल्लेख किया है :—

अथा रंग गोरा सो लाली भर्‍या,
सिफत सब जलाली जमाली भर्‍या।
भवाँ खम अथ्याँ बाट दोनों मिल्याँ,
जूं जन्नत में क्याँ ऊँदियाँ दो जल्या।
खोले दाँत भी जूंकि हीरे जड़े,
वले ऐसे हीरे नज़र में पड़े।
लबद तंग था जूं धानी कली,
वले कान सिफ्त यों कली में चली।

जब बहुत रुखसार थे सूं ऊपर,
ऐसी ज़मी कान है सो रेशमी भितर।

इसकी शैली वर्णात्मक है जिसमें प्रवाह और लचक है। भाषा में सरसता व सरलता है।

अफ़ज़ल

अफ़ज़ल इनका काव्य नाम है। मूल नाम शाह मुहम्मद अफ़ज़ल था। ये कुतुब शाही शासन काल के प्रसिद्ध सूफ़ी साधक थे। इन्होंने आध्यात्मिक शिक्षा मीरां शाह से प्राप्त की थी। शाह ने अफ़ज़ल खलीफा शाह सुलतान की देखभाल में रखा था।

मीरान शाह मअरूफ और दस्तगीर,
कि दिल मेरा कर पाक रोशन ज़मीर।
दिए दस्त पंजा मरे साथ में,
दिए मुझ कूँ सुलतान के हाथ में।

अफ़ज़ल की एक मसनवी 'मुहिउद्दीन नामा' मिलती है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ क़सीदे भी मिले हैं। मसनवी में कवि हज़रत सैयद अब्दुल क़ादर जीलानी ने चमत्कार और उनके अनेक गुणों का उल्लेख किया है—

तू ही कुत्ब आलम मुहिउद्दीन क़दीर,
दो जग है तेरे पास दस्तगीर।
तू ही चांद तुज नूर दो जग मने,
तू सुलतान रोशन मरबी किते।
मुहम्मद की औलाद में तू रतन,
अली फातिमा के तू दिल का चमन।

मसनवी की भाषा शैली सरल, सहज और आकर्षक है। अलंकारों के प्रयोग में अपूर्वता है।

क़सीदा लिखने में अफ़ज़ल को एकाधिकार प्राप्त था। वह स्वयं अपने को क़सीदा का हादी (पथप्रदर्शक अथवा नेता) मानता है :—

मैं उस वादी में हूँ हादी हिदायत मुझ ते पाया है।
जिते आतुर, जिते चातुर, जिते ग्यानी, जिते गंभर ॥

खेद है कि अफ़ज़ल के जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं मिल सकी। परन्तु इतना स्वीकार किया जाता है कि ये अब्दुल्लाह कुत्ब शाह के शासन काल में विद्यमान थे।

अफ़ज़ल के एक क़सीदे की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

मेरा मुख भाग लोचन लब ते पाया है मोहन सुन्दर,
जला सूरज गला चन्दर सिताए जोत रंग अम्बर।

तेरे लब, दन्त होर जोबन, वचन देख लाज थे पकरे,
गले सुर्खी सो मोती खोये हीरा सख्त जल जौहर।
नयन घायल है, दिल जख्मी, सो तन मजरूह सीगा रेश,
तो कद बरछा फरंग सो का पलक कफवा भनवा खजर।

इससे स्पष्ट है कि कवि ने अपने क़सीदों में जनसाधारण की भाषा का प्रयोग किया है और इसमें हिन्दी शब्दों की अधिकता है।

मुल्ला कुत्बी (राज़ी)

मुल्ला कुत्बी का मूल नाम कुतुबुद्दीन था[1] और काव्य का नाम कुत्बी और राज़ी था।[2] इनके आध्यात्मिक गुरू शाह अबुल हसन थे जो सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह के समकालीन थे। इन्होंने अपने गुरू के आदेश पर शेख युसुफ देहलवी की रचना 'तुहफ़ल निसायह' को हिजरी सन् 1045 में तुहफा नाम से दक्खिनी में अनूदित किया था।[1]

हिजरत थे दस सौ साल होर,
चालीस पर भी पाँच अथे।
तब यह मुरत्तब सब हुआ,
तुहफ़ा से दकनी नामवर।[3]

यह ग्रंथ पैतालिस अध्यायों में विभक्त है और इसमें इस्लाम धर्म की नियमावली दी गई है। फ़र्ज (आवश्यक) व सुन्नत (जिन कामों को हज़रत मुहम्मद साहब ने किया था) आदि का विस्तारपूर्वक उल्लेख है। इसमें सात सौ पचास बैत हैं। अन्त में कवि ने अपने गुरू के गुणों की चर्चा की है।

काव्य का आरम्भ ईश-स्तुति से हुआ है :—

बोलूं सिफल मैं बेगिनत,
उस खालिक़-ए-जन व बसर।
निरधार कर आसमान रख्या,
सूरज सितारे होड़ चन्दर।
जूं दी बुज़ुर्गी अर्श कूँ,
पंखे उडे इस पाइते।

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 115
2. (अ) नाजिश जहाँ में मैं कीता, कीता बुराई के जो भी।
   कुत्बी धर्‌या उम्मीद यो, लाया हूँ सब साहबे नज़र॥
   (ब) बन्दयाँ मैं सब कमतर बन्दा, राज़ी तखल्लुस कुत्ब का।
   तुहफ किया दकनी ज़बान, शह की रज़ा से सीस धर्‌या॥
3. सैयद शमसुल्लाह क़ादरी—उर्दू-ए-क़दीम, पृ० 67

जूं बीच बरसां चार सो,
आं पडे बज़ां पाये दिगर।

डा० ज़ोर ने इन्हें बीजापुर का निवासी माना है।[1] इसके अतिरिक्त कोई जानकारी नहीं दी है।

जान मुहम्मद 'महरमी'

'महरमी' इनका काव्य नाम है। मूल नाम जान मुहम्मद है। ये चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। इनके गुरू अमीनुद्दीन अली थे। महरमी का देहान्त हिजरी सन् 1093 में हुआ।[2] इन्होंने अपने गुरू का प्रतिनिधित्व प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कोई विशेष सामग्री नहीं प्राप्त हो सकी।

प्रो० सिद्दीकी ने इनकी एक मसनवी 'शिकार नामा' का उल्लेख किया है और बताया है कि यह मसनवी हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज की फारसी रचना 'शिकार नामा' का अनुवाद है।[3] परन्तु प्रस्तुत लेखक को यह मसनवी देखने को नहीं मिली।

मध्यकाल के सूफी साधक अपने मत का प्रचार एक तो भाषणों द्वारा घूम-घूम कर करते थे तथा दूसरे काव्य के द्वारा भी अपने विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाया करते थे। सूफ़ी साधकों ने तसव्वुफ के प्रचार के लिए दक्खिनी में रचना की।

ग़ज़ल लिखने में इन्होंने साज-सज्जा अथवा किसी नियम विशेष के बन्धन को नहीं स्वीकारा है। एक ही शब्द को कई स्थलों पर बिना किसी हिचक के लिखा है। काव्य के सौन्दर्य के लिए उपमा, रूपक आदि अलंकारों के साथ-साथ समसामयिक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। कुरआन और हदीस को अपनी कविताओं का विषय चुना है, यहाँ तक कि कुरआन की आयतों का दक्खिनी में अनुवाद भी किया है।

अभी तक महरमी की कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है और न ही इनके काव्य का संकलन किसी ने प्रकाशित किया है। लेखक को केवल 29 ग़ज़लें देखने को मिली हैं। उनमें से कुछ अंश प्रस्तुत हैं :--

जे दीन के है मर्दां उनमें अहवाल नई है तन का।
उनकी नज़र में दुनिया दिसती है ज्यूं की तन का॥
जो तू खुदा सूं मिलकर अचते थे मफरक अपसे।
कुच नै खबर उधर ते उस रात होर दिन का॥

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—उर्दू शहपारे, पृ० 106
2. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग, पृ० 140
3. वही, पृ० 140

अछ कर दुनिया में किस सूँ कुज ने सगाई धरते।
हक़ याद बिन अनो कूँ ने याद है सूँ किन का ।।
कोई खूब किए तो खुश ने होर किए बूरा तो हँसते।
यक साँ अनो समजते उनका अछो या उन का ।।
अव्वल तूँ महरमी हो अपने वजूद सेती।
बाद अज़ खबर होये तुज उस होर जिनका ।।

महरमी के मूल नाम के आगे कहीं-कहीं ख्वाजा लिखा हुआ मिलता है इससे स्पष्ट होता है कि कवि का समाज में बहुत आदर था और वे सम्माननीय सूफ़ी साधक थे।

शाह सादिक़

शाह सादिक़ के जीवन वृत के सम्बन्ध में इतिहास मौन है और इनके काव्य संग्रह में भी कोई संकेत नहीं है। प्रो० सिद्दीकी ने मुहम्मद बिन उमर के संदर्भ से लिखा है कि शाह सादिक़ फतहाबाद, धारूर, सूबा खजस्ता बुनियाद औरंगाबाद में काज़ी अब्दुल कुद्दूस के पास आकर रहने लगे थे और वहीं पर वजीहुद्दीन वजदी भी थे। इन्होंने वजदी की विद्वता को देखकर फारसी मसनवी के अनुवाद की सलाह दी और वजदी ने उनकी सलाह स्वीकार करके 'मख्ज़न-ए-इश्क' हिजरी सन् 1144 में लिखी।[1] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि शाह सादिक़ एक महापुरुष थे जिनके परामर्श पर वजदी ने मसनवी का अनुवाद किया।

शाह सादिक के ग्रन्थ 'शमसुल हकायक' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ये अब्दुल लतीफ क़ादरी के शिष्य थे :—

दोसन लतीफ की सूँ परसन होकर मुहिउद्दीन,
कीता है सादिक़ पर यो राज़ आशकार।
अब्दुल लतीफ हादी मस्त अत्न मस्त है तूँ,
यक जाम सादिक़ कूँ दुनिया है पुरअसर का।

एक स्थल पर कवि ने अपने पीर की प्रशंसा इस प्रकार की है :—

दिया पीर मुज शाह अब्दुल लतीफ,
किया यक नज़र लुत्फगी वह शरीफ़।
मेरे मिस को होवे नज़र कमियाँ,
किया कैस को बार अम्बर तला।

कविवर शाह सादिक ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि इनका सम्बन्ध सूफियों के कादरिया सम्प्रदाय से है :—

---

1. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग, पृ० 220-21

सादिक क़ादरी यूँ कह हज़रते नबी,
नज़ले बला हुए जभी भाग खुदा की तरफ।
ज़ाहिर वबूदियत में आबा तन वबूदियत नफा,
यूँ सादिक़ हो हक़ नुमा गर क़ादरी असरार है।

मौलवी अब्दुल जब्बार मलकापुरी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'औलिया-ए-दकन' में अब्दुल लतीफ नामक दो कवियों का उल्लेख किया है किन्तु इनके पीर सैयद अब्दुल लतीफ सानी (द्वितीय) पुत्र सैयद शाह मूसा उर्फ बड़े पीर रहे होंगे। सिकन्दर आदिल शाह के यहाँ इनका बहुत सम्मान था किन्तु इन्होंने जागीर अस्वीकार कर दिया था। इनके शिष्यों की संख्या एक लाख तक थी।[1]

इनके ग्रन्थ 'शमसुल हकायक' में तसव्वुफ का दिग्दर्शन कराया गया है तथा साथ ही इसमें कई तसव्वुफ से सम्बन्धित समस्याओं का वर्णन भी आया है। शीर्षक अरबी में है और कहीं-कहीं आयत और हदीस को भी शीर्षक के रूप में रखा है।

'शमसुल हक़ायक' काव्य का आरम्भ इस प्रकार है :—

अहमद का करूँ हम्द मैं बेशुमार,
कि अहमद है जिस हम्द में आशकार।
अहमद अहदियत ज़ात सूँ मस्त था,
इसी तन के मद सूँ मस्त था।
अपीं वहाँ अशारात से मनक़तअ,
अपीं वहाँ अशारात सब मुमतग़।

अन्त में कवि ने अपने ग्रन्थ का नाम लिखा है और विषय तथा शेरों की संख्या दी है जो इस प्रकार है :—

जहाँ तक लिखा फारसी में किताब,
क़बूलियत उन पर सूँ को कामयाब।
किया दो लिसानी सूँ जब तो अयाँ,
ज़बान बीच दखनी किया मैं बयान।
खुदाया वह सब है तेरा फ़ैज आम,
कि ना रहें, न महरूम आली मक़ाम।
रिसाला शमसुल हक़ायक़ हक़ीर,
कर इस खात्में को हर इक दिल पज़ीर।
अग्यारह सो उस बीच बतयाँ हैं सब,
खुलासा हक़ायक़ का सब मुख्तखन।

कवि ने काव्य को आकर्षक बनाने के लिए उपमा, रूपक आदि अलंकारों का

1. मौलवी अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी—औलिया-ए-दकन, पृ० 564

प्रयोग किया है तथा समसामयिक मुहावरों और लोकोक्तियों को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। इनकी कविताओं में क्षेत्रीय रंग भी पाया जाता है। उपमा अलंकार का प्रयोग प्रस्तुत है :—

नूर लतीफ़ हक़ में मेरा कशैफ तन में,
घुल मिल गया है यूं ज्यूं मिल दूध में बतासा।
शैतान होर दुनिया की जफती सती जना हो,
है नफ़स ओलखन यो नाती मुवा नवासा।

इससे स्पष्ट होता है कि सादिक़ अपने समय के प्रसिद्ध सूफी सन्त ही नहीं प्रत्युत उच्चकोटि के कवि भी थे।

प्रो० सिद्दीक़ी ने शाह सादिक के एक अन्य काव्य संग्रह का उल्लेख किया है और बताया है कि इसमें गज़लें हैं जो तसव्वुफ़ पर आधारित हैं। इस काव्य संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें विषय के अनुसार ग़ज़लों के शीर्षक दिये हैं। कुछ ग़ज़लों के शीर्षक इस प्रकार हैं :—

(1) ग़ज़ल अव्वल पर हसन मतलअ शमसुलशमूस हक़ीक़त मुहम्मदिया वज़ीह कलाम कुदसिया कनत कन्जा मुखफिया बहस्त ज़ातिया।
(2) ग़ज़ल वेबदल अज कुत्फे हाल अमर कन फीकुवान बहस्बे ज़ातीव हक़ीक़त नूर मुहम्मदी सल्लाहु वलैहेवसल्लम बा हक़ीक़त इन्सानी।
(3) दर कैश्फे ज़ुहर मुहम्मदिया बा जलवा गाहे रुहखानिया।
(4) दर तरतीब करदन फेसल मस्त नफ़सातिया।
(5) दर कश्फे हक़ीक़त शकर दर ज़र्फे हुरूफ शुक्र।
(6) दर कश्फे हक़ीक़त खबर मातबर मन उर्फ नफसा फक़द अर्फ रबा।
(7) दर कश्फे हक़ीक़त सालिके काहिल व शायक़ कामिल।
(8) दर कश्फे हक़ीक़त वाजे सतूराँ व आइनादारी कूराँ।
(9) दर कश्फे व हक़ीक़त अमानत व खिलाफते आदम अलै अस्सलाम।
(10) दर कश्फे व हक़ीक़त महाल बाहर किस व नाकिस।

इस काव्य संग्रह में कुल 147 पृष्ठ हैं उनमें 121 गज़लें, 3 क़सीदे, 10 मुखम्मस और 20 रुबाइयाँ हैं।"[1]

शाह सादिक़ ने वली को देखा था और सिराज एवं बहरी उनके समसामयिक थे इसलिए इन्होंने सभी के काव्यों की विशेषताओं को अपनाया है। उदाहरणार्थ एक ग़ज़ल प्रस्तुत है :—

भलाई मुझ सती मुज कूँ सजन ! नित मुझ में बस बस बस,
जलाई मर जिया कर मुझ पिला अमृत का रस रस रस।

---

1. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—बुझते चिराग, पृ० 225-26

रसीले रस भरे रसिया का रस लेने को कस कस कस,
मगर दो रंग इसकी सेज, जिस सेजाई हंस हंस हंस।
मेरे घर सूं सजन के दर लगूं मंजिल में कई बूझेये,
सहेली ने मेरी बोली कि सब मंज़िल है दस दस दस।
करे अलमास कूं याकूत, होर याकूत कूं नीलम,
सजन जब पान खा, मिसी लगा दें दांत घस घस घस।
अथा मैं सादिक़ खस पन मेरे मुर्शिद ने इस खिस का,
निकाला अतर निरमल होर दिया मुझ खस कूं जस जस जस।

सामान्य प्रवृत्तियाँ

पूर्व मध्यकाल दक्खिनी साहित्य का स्वर्ण युग माना जा सकता है। इस काल में दक्खिनी में विविध काव्य विधाओं का प्रयोग हुआ और विपुल साहित्य रचा गया जिसकी सामान्य प्रवृत्तियों को निम्नलिखित शीर्षकों में रखा जा सकता है :—

(1) मसनवी शैली, (2) हिन्दू संस्कृति का व्यापक समावेश, (3) प्रेम गाथाओं की रचना का आधार, (4) आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना, (5) खड़ी बोली का व्यापक प्रयोग, (6) प्रबन्धात्मक शैली, (7) भावात्मक एकता पर विशेष बल, (8) प्रबन्ध काव्य में नायक, (9) प्रेम पद्धति, (10) राष्ट्रीय चेतना, (11) मुक्तक शैली, (12) छन्दों का प्रयोग, (13) भाषा एवं शैली।

1. मसनवी शैली

दक्खिनी के साहित्यकारों ने भारतीय काव्य परिपाटी को न अपनाकर फारस की मसनवी शैली को अपने काव्य के लिए चुना। फारसी मसनवी पद्धति के अनुसार कथा के आरम्भ में ईश-स्तुति, हज़रत मुहम्मद साहब के गुणों की प्रशंसा, तत्कालीन सुलतान की विरुदावली, चारों खलीफाओं की प्रशस्ति, आध्यात्मिक गुरू अथवा काव्य गुरू की प्रशंसा और कहीं-कहीं काव्य परिचय आदि भी मिलता है। यद्यपि भारतीय कवियों ने इस काल में चरित काव्य की सर्गबद्ध शैली को अपनाया था किन्तु दक्खिनी के कवियों ने सर्ग के स्थान पर शीर्षक दिए हैं जो मसनवी शैली की अपनी विशेषता है। इन कवियों ने आपे काव्य में वर्णनात्मक शैली को ध्यान दिया है। इसमें उपवन, बारात, नदी व सरोवर आदि का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से मिलता है।

यद्यपि दक्खिनी के कवियों ने भारतीय, ईरानी और अरबी कथाओं के काव्य में प्रयुक्त किया है किन्तु इन्होंने भारतीय कथाओं में व्यवहृत अधिकांश कथानक रूढ़ियों को ही अपनाया है। उदाहरणार्थ—चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन और रूप वर्णन आदि। कुछ स्थानों पर ईरानी कथानक रूढ़ियों को भी प्रश्रय मिलता है। जैसे—प्रेम व्यापार में परियों, देवों का सहयोग, प्रेमी को बन्दी बना लेना इत्यादि। भारतीय कथानक रूढ़ियों-पक्षियों के सहयोग से प्रेम की जागृति अथवा दूती के द्वारा प्रेम स्फुरण आदि का समावेश खूब हुआ है।

2. हिन्दू संस्कृति

यद्यपि दक्खिनी साहित्य के रचयिता प्रमुखतया मुसलमान सन्त थे किन्तु उनके काव्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनमें हिन्दू संस्कृति का पर्याप्त समावेश था और हिन्दू परिवारों में प्रचलित आचार-विचार, रहन-सहन आदि का चित्रण स्वा-भाविक ढंग से हुआ है। गवासी कृत तूतीनामा, मैना सतवन्ती, नुसरती कृत गुलशन-ए-इश्क, निशाती कृत फूलबन, तबई, बहराम व गुलदाम और अमीन कृत चन्दरबदन व महयार आदि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू जीवन पद्धति और दर्शन का इन कवियों को अच्छा ज्ञान था। मधुमालती और मनोहर के पाणिग्रहण के समय कंगन जुआ के खेल को बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। विवाह के अवसर पर बताशे, लड्डू, रेवड़ी और जलेबी आदि के बाँटने का उल्लेख किया गया है तथा विभिन्न प्रकार के पकवानों का वर्णन है।

३. प्रेम गाथाओं की रचना का आधार

दक्खिनी के साहित्यकारों की प्रेम कथाओं के आधार ऐतिहासिक व काल्पनिक, भारतीय जन कथाएँ तथा अरबी-फारसी की कथाएँ हैं। कवियों ने परम्परा से चली आती ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं के मिश्रण से काव्य का ढाँचा खड़ा किया है। इस्लामी धर्म में प्रचलित आख्यानों को भी महत्व प्रदान किया गया है। युसुफ जुलेखा की प्रेम कहानी इनमें प्रमुख मानी जा सकती है। अरबी की प्रसिद्ध प्रेम कहानी लैला मजनूं व किस्सा वेनज़ीर आदि भी मुख्य हैं। गुलशन-ए-इश्क, चन्दरबदन व माहयार और फूलबन आदि प्रेम कहानियाँ भारतीय घरों की कहानियाँ हैं।

4. आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना

दक्खिनी के अधिकांश कवि सूफी थे। अत: इन्होंने आध्यात्मिकता पर अधिक बल दिया है। इन्होंने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। इन्होंने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऐतिहासिक अथवा पौराणिक कथाओं में कल्पना का समावेश किया है। साधकों के मतानुसार परमात्मा एक है और आत्मा उसी का अंश मात्र है। आत्मा परमात्मा की ओर अग्रसर होती है। आत्मा साधक है और परमात्मा साध्य। जब आत्मा रूपी साधक परमात्मा रूपी साध्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है तो उसे अनेक कठिनाई को पार करना पड़ता है। सूफियों का विश्वास है कि आत्मा और परमात्मा के मिलन में शैतान अवरोधक है जिसे दूर करने के लिए गुरु की सहायता आवश्यक होती है। उस गुरु की सहायता के बिना साधक परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रयत्न एवं प्राप्ति का वर्णन सूफ़ी कवियों की प्रेम गाथाओं का प्रतिपाद्य है।

5. खड़ी बोली का व्यापक प्रयोग

दक्खिनी साहित्य की भाषा प्रारम्भिक खड़ी बोली हिन्दी है। दक्खिनी के अधिकतर कवि उत्तर भारत से दक्षिण भारत में आकर बसे थे और वे धर्मप्रचारार्थ इसी भाषा का प्रयोग करते थे। हिन्दी प्रदेश के निवासी होने के कारण इन्होंने हिन्दी भाषा को ही काव्य के लिए चुना। कुछ समय तक यह भाषा राजभाषा के पद पर भी आसीन रही। अतः इसे उन्नति का सुअवसर प्राप्त हुआ।

6. प्रबन्धात्मक शैली

इस काल के अनेक कवियों ने प्रबन्धात्मक शैली को अपनाया। इससे कथानक की रमणीयता के साथ-साथ उनमें सम्बन्ध निर्वाह भी सुव्यवस्थित है। यद्यपि वस्तु वर्णन एक साधारण शैली है किन्तु अलौकिक वर्णन के साथ-साथ वस्तु वर्णन भी सुन्दर बन पड़ा है।

7. भावात्मक एकता पर विशेष बल

दक्खिनी के कवियों की यह बहुत बड़ी विशेषता रही है कि इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों में सदैव प्रेम को जगाया एवं उनमें एकता स्थापित करने का भरसक प्रयास किया। यद्यपि दक्खिनी के अधिकांश कवि मुसलमान थे तथा इस्लाम धर्म के अनुयायी थे किन्तु इन्होंने किसी अन्य धर्म की आलोचना नहीं की। इनका मुख्य उद्देश्य समाज में शान्ति स्थापित करके मानव को शान्ति का पाठ पढ़ाना था। यही कारण है कि दक्खिनी का साहित्य एक उच्चकोटि का साहित्य है जिसमें सर्वधर्म समता की भावना पायी जाती है। दक्खिनी साहित्य का यद्यपि अधिकांश भाग दरबारों में रचा गया है किन्तु कहीं भी यह नहीं पाया जाता है कि इसमें किसी धर्म विशेष का खण्डन किया गया हो। इसमें मंडन की भावना ने ही सर्वत्र स्थान पाया है। इन कवियों का दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य को प्रत्येक प्राणी से प्रेम करना चाहिए। इनके यहाँ घृणा का कोई स्थान नहीं है।

8. प्रबन्ध काव्य में नायक

दक्खिनी के साहित्यकारों ने नायक के चरित्र-चित्रण को बहुत महत्व दिया है। वे विभिन्न परिस्थितियों एवं कठिन से कठिन समस्याओं से उबर कर सफल होते हैं। अन्त में नायक-नायिका का विवाह सम्पन्न होता है। दक्खिनी के कवि को नायक के चरित्र के विकास तथा निर्वाह के अतिरिक्त नायक को अपने आदर्शों के अनुरूप बनाने के लिए पूर्णतया सजग रहना पड़ता है। नुसरती कृत गुलशन-ए-इश्क, अमीन कृत चन्दरबदन व माहयार, निशाती कृत फूलबदन आदि में नायक को विविध कठिनाइयों से निकलकर नायिका की प्राप्ति होती है। चन्दरबदन व माहयार में तो मृत्यु के बाद दोनों मिलते हैं। इन काव्यों में नायक सदैव नायिका मिलन के लिए व्याकुल रहते हैं तथा पूरे काव्य पर छाये रहते हैं।

9. प्रेम पद्धति

कवियों ने प्रेम के चित्रण में भारतीय, अरब एवं फारस की विदेशी प्रेम पद्धतियों को अपनाया है। अरब और फारस की प्रेम पद्धति के अनुसार प्रमुखतया नायक को प्रेम से विह्वल और प्रेम-पात्र की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बताया है किन्तु भारतीय शैली के अनुसार नायिका प्रेम में विह्वल होती है और वही प्रेमी को प्राप्त करने का प्रयास करती है। फारसी की शैली के अनुसार आत्मा को पत्नी और परमात्मा को प्रियतम के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। यही बात दक्खिनी के साहित्य में प्रमुख रूप से पाई जाती है। किन्तु हम इसे पूर्णरूपेण विदेशी नहीं कह सकते हैं क्योंकि इन कवियों पर भारतीय शैली का भी प्रभाव पड़ा है एवं इन्होंने प्रारम्भ में नायक को प्रियतमा की प्राप्ति में प्रयत्नशील दिखाने के बाद नायिका के प्रेमोत्कर्ष को भी दिखाया है। कुत्ब मुश्तरी, सैफुल मुलूक व बदीउज्जमाल, चन्दर बदन व माहयार, गुलशन-ए-इश्क, फूलबदन और मैना सतवन्ती आदि को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है।

10. राष्ट्रीय चेतना

दक्खिनी साहित्य की अपनी विशेषता है कि इसका पूरा-पूरा साहित्य जन्म भूमि के प्रति गौरव एवं आदर भाव से ओत-प्रोत है। दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि नुसरती ने दक्खिन को केवल एक भू-भाग न मानकर एक पूर्ण मनुष्य माना है :—

दकन शख्स है जिस बीजापूर तन,
जू इन्सा हमे होर अली शाह जिवन।

कविवर तबई ने देश भक्ति को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है :—

जो कोई याद करता न अपना वतन,
ओ मर्द है पैरन असल का कफन।

+ + +

वतन सब कूँ दुनियाँ में प्यारा अहै,
सफर है सो जो वादे वारां अहै।

11. मुक्त शैली

इस काल में प्रबन्ध शैली की अपेक्षा मुक्तक शैली का अधिक प्रचलन था। सूफी साधकों और सूफी कवियों ने मुक्तक शैली में ही अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की। वली दक्खिनी इसमें अग्रणी हैं। प्रायः सभी कवियों ने जिनमें शाह तुराब चिश्ती, आगाह, बहरी, इशरती, फिराकी, वली वेल्लूरी आदि ने मुक्तक शैली में विशेष योग दिया।

12. छन्दों का प्रयोग

दक्खिनी के कवियों ने दोहा-चौपाई आदि छन्दों को विशेष रूप से अपनाया है। उत्तर भारत के प्रसिद्ध भक्तिकालीन कवि जायसी और तुलसी ने भी उसे चुना था। मसनवी शैली में भी ये खप सके थे। अतः दक्खिनी के कवियों ने इन्हें ही अपनाना उचित समझा।

13. भाषा-शैली

इस युग की भाषा में परिवर्तन की मात्रा अधिक आ गई थी एवं भाषा पहले की अपेक्षा अधिक पुष्ट हो गयी थी। साथ ही उसमें अरबी-फारसी के शब्दों का समावेश अधिक होने लगा था और शैली में प्रवाह आ गया। तत्कालीन प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सरलता एवं प्रांजलता आ गई थी।

पंचम अध्याय

उत्तर मध्य काल

(1691-1850 ई०)

पीठिका

मुग़ल शासन काल (1687-1726 ई०)

अलाउद्दीन खिलजी के पश्चात् सर्वप्रथम सम्राट जहीरुद्दीन मुहम्मद अक़बर ने दक्षिण विजय की ओर ध्यान दिया और उसने 1587 ई० में दक्षिण पर आक्रमण किया। मुगल सम्राट शाहजहाँ का आरम्भिक जीवन विशेषकर दक्षिण की लड़ाइयों में व्यतीत हुआ। सम्राट शाहजहाँ ने 1614 ई० में अहमदनगर को जीत कर मुग़ल साम्राज्य का दक्षिण से दृढ़ सम्बन्ध स्थापित किया। शाहजहाँ ने अपने रणकुशल पुत्र औरंगजेब को दक्षिण विजय के लिए भेजा और औरंगजेब का आरम्भिक जीवन भी पिता की भाँति दक्षिण में ही व्यतीत हुआ। यहाँ तक कि जिस समय मुग़ल सम्राट शाहजहाँ का देहान्त हुआ, वह उस समय दक्षिण में ही था। आलमगीर औरंगजेब ने दिल्ली के सिंहासन को अधिकार में लेने के बाद पूरे दक्षिण को अपने साम्राज्य में मिलाने का दृढ़ निश्चय किया और सन् 1686 ई० में बीजापुर और सन् 1697 ई० में गोलकुण्डा पर विजय प्राप्त करके दोनों राज्यों को मुग़ल साम्राज्य का अंग बना लिया। आलमगीर औरंगज़ेब सन् 1658 ई० में दिल्ली का शासक बना और मृत्यु पर्यन्त (1707) सिंहासनारूढ़ रहा। औरंगज़ेब का अधिकांश जीवन औरंगाबाद में व्यतीत हुआ और देहावसान भी औरंगाबाद में ही हुआ।

आलमगीर औरंगज़ेब की मृत्यु के उपरान्त गृह युद्ध आरम्भ हो गया और उसका प्रभाव दक्षिण पर भी पड़ा। दक्षिण भारत को मुग़लों ने विभिन्न प्रान्तों में विभाजित किया था तथा प्रत्येक प्रान्त के लिए एक गवर्नर नियुक्त किया था किन्तु कुछ समय पश्चात् ये लोग स्वतन्त्र शासक की भाँति शासन करने लगे थे और अरकाट, सधोट और सरा आदि के किलेदार अपने-अपने क्षेत्रों के अधिकारी बन गये थे। मुगल शासन की ओर से पूरे दक्षिण भारत पर सूबेदारों को अभी तक स्वतन्त्र घोषित नहीं किया गया था और न ही किसी स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई थी किन्तु सन् 1727 ई० में नवाब कमरुद्दीन खाँ निज़ामुल मुल्क आसफजाह ने शकरकहरा की लड़ाई में विजय प्राप्त करके आसफिया शासन को स्थापित किया।

दक्षिण के राज्य अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुर के दरबारों में कवियों, साहित्यकारों और कलाकारों को पुरस्कार व वृत्तियाँ दी जाती थीं। यहाँ तक कि

दक्षिण के अमीर भी दक्खिनी के कवियों और कलाकारों को पुरस्कार और पारिश्रमिक दिया करते थे। यद्यपि मुग़लों के दक्षिण पर अधिकार करने के बाद इन लोगों की प्रतिष्ठा कम हो गयी तथापि साधारण जनता में विशेष रूप से दक्खिनी साहित्य के प्रति रुचि बनी रही और दक्खिनी में साहित्य संरचना होती रही। जब आलमगीर औरंगजेब ने बीजापुर को अपने राज्य में सम्मिलित किया तो उसने दक्खिनी के साहित्यकारों को आश्रय प्रदान किया। औरंगजेब ने औरंगाबाद को अपना सदर मुकाम बनाया और उसकी शोभा बढ़ाई। पहले कुत्ब शाही राजधानी गोलकुण्डा और आदिल शाही राजधानी बीजापुर दक्खिनी साहित्यकारों और कलाकारों के केन्द्र थे तो अब औरंगाबाद ने उनका स्थान लिया। गोलकुण्डा और बीजापुर के कवि और कलाकार औरंगाबाद में आ गये। उधर दिल्ली के भी बहुत से अमीर विद्वान कवि व कलाकार औरंगाबाद में आकर बस गये और अब औरंगाबाद दक्षिण और उत्तर के साहित्यकारों एवं कलाकारों का संगम स्थल बना। औरंगाबाद में साहित्य सरिता का प्रवाह वेग से प्रवाहित होने लगा। यहाँ तक कि यह नगर ही सम्पूर्ण भारत की राजधानी प्रतीत होने लगा। मुग़ल साम्राज्य के 37 वर्षों के राज्यकाल में अनेक उच्चकोटि के कवि और कलाकार हुए और सुन्दर कला कृतियों का निर्माण हुआ। परन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इन रचनाकारों के पीछे पूर्व कालीन दोनों राज्य-परिवारों का हाथ था क्योंकि उन राज्य परिवारों ने साहित्यिक वातावरण को दृढ़ बना दिया था। इस युग में हमें अनेक सुन्दर एवं रोचक कला-कृतियाँ मिलती हैं जिनमें अमीन, काज़ी महमूद बहरी और इशरती जैसे महाकवियों की अनुपम कृतियाँ प्रमुख हैं। इस काल में काव्य की विविध विधाओं का विकास हुआ और परिणामस्वरूप सुन्दर एवं सरस रचनाओं का सृजन हुआ।

आसफ़िया काल
(1726-1850 ई०)

मुग़ल सम्राट आलमगीर औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली के सिंहासन पर बहादुर शाह बैठा। बहादुर शाह के चार वर्ष बाद जहाँदार शाह और फिर फर्रूखसियर आदि दिल्ली के सिंहासन पर बैठते रहे। सुलतान फर्रूखसियर के शासन-काल में नवाब निज़ामुल मुल्क आसफ शाह दक्षिण के सूबेदार (राज्यपाल) के पद पर नियुक्त हुआ। उस समय तक कोई भी मुग़ल शासक सशक्त नहीं रह गया था। अतः गृह युद्ध में मुगल साम्राज्य निर्बल होने लगा तथा मराठा, सिक्ख और राजपूत फिर जोर पकड़ने लगे थे। मुग़ल शासक अब केवल कुछ अमीरों की कठपुतली बन कर रह गये थे। उधर अंग्रेज और फ्रांसीसी भी भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे थे। मुहम्मद शाह ने सन् 1722 ई० में निजामुल मुल्क आसफ शाह को दिल्ली का प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। निज़ामुल मुल्क आसफ शाह ने अभी दिल्ली के प्रबन्ध को हस्तगत किया ही था कि नादिर शाह ने अचानक आक्रमण कर दिया। यद्यपि मुग़ल शासक बहुत निर्बल हो गये थे तथापि निज़ामुल मुल्क ने प्राणप्रण से प्रयास किया कि

बिगड़ी दशा ठीक हो जाये; किन्तु मुहम्मद शाह के कान लोगों ने इसके विरुद्ध भर दिये थे। अब निज़ामुल मुल्क ने बादशाह से दूर रहने की बात सोची और सुलतान से आज्ञा लेकर दक्षिण की ओर ध्यान दिया।

निज़ामुल मुल्क जब दिल्ली का प्रधान मन्त्री था उस समय इमादुल मुल्क मुबारिज़ खाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया था। जब निज़ामुल मुल्क दक्षिण में वापस आया तो शकरहरा के स्थान पर उससे सेनापति आलम अली खाँ से सामना हुआ और मंसूर मुज़फ्फर और औरंगाबाद को जीतकर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। पीछे यही आफजाही शासन काल कहलाया। आसफ जाह (प्रथम) ने लगभग 22 वर्षों तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्रों में अधिकार के लिए युद्ध छिड़ गया और नवाब जंग का तीन वर्षों में ही वध कर दिया गया। नवाब मुजफ्फर जंग तो एक ही वर्ष शासन कर सका। नवाब सलाबत जंग ने आठ नौ वर्ष राज्य किया किन्तु उसने राज्य छोड़ दिया और नवाब निजाम अली खाँ आसफ जाह (द्वितीय), जो आसफ जाह का चौथा पुत्र था, शासक बना। आसफ जाह (द्वितीय) के उपरान्त 1806 ई० में समस्त भारत का राजनीतिक वातावरण विदेशियों के हस्तक्षेप के कारण क्षुब्ध था कि प्रत्येक राज्य ने सुरक्षा के लिए अंग्रेजों को प्रसन्न करने में ही अपनी कुशलता समझी।

विदेशियों के हस्तक्षेप एवं कुछ सामाजिक कारणों से राजनीतिक वातावरण साहित्य एवं कला के अनुकूल नहीं रहा और आसफ़िया काल के शासक भी अन्य शासकों की भाँति दक्खिनी के प्रेमी नहीं रहे। इस काल में दक्खिनी के स्थान पर फारसी को राजभाषा का गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि ये शासक दक्खिनी के विरोधी थे। आशफ जाह (प्रथम) स्वयं दक्खिनी भाषा में कविता करता था। यद्यपि वह फारसी का विद्वान और कवि था। आसफ जाह (प्रथम) की दक्खिनी रचनाएँ आज भी हैदराबाद के पुस्तकालयों में सुरक्षित है। आसफ जाह (प्रथम) के दो काव्य नाम—आसफ और शाकिर थे। नवाब नासिर जंग फारसी का अच्छा कवि था। उसके फारसी काव्य-संग्रह विद्यमान हैं। यह भी दक्खिनी में कविता करता था। उसकी कुछ ग़ज़लें आज भी मिलती हैं। इस काल का सर्व प्रसिद्ध कवि वली दक्खिनी है जिसने काव्य विद्या को प्रभावित किया। वली दक्खिनी ने मसनवी के स्थान पर ग़ज़ल को अधिक प्रोत्साहन दिया और इसकी ग़ज़लों से समसामयिक कवि इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने ग़ज़ल के संग्रह तैयार करने प्रारम्भ कर दिए। परिणामतः कवियों का ध्यान प्रेम गाथाओं की ओर से हट गया। इस कारण कवि प्रबन्ध काव्य के स्थान पर मुक्तक रचनाओं में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने लगे। इस काल के प्रमुख प्रेम गाथाकार और प्रेमगाथाएँ इस प्रकार हैं—(1) हुनर कृत नेह दर्पल, (2) वजीहुद्दीन वजही कृत बाग़े जाफिज़ा अथवा मखज़न-ए-इश्क, पंछी बाछा, तुहफ आशिकाँ और (3) सिराज कृत मसनवी

बूस्ताने ख्याल कहने का तात्पर्य यह है कि इस काल में कवि मुक्तक काव्य की ओर झुक गये। इसका यह तात्पर्य भी नहीं है कि जो प्रबन्ध काव्य इस काल में लिखे गये वे साहित्यिक दृष्टि से निम्न स्तर के हैं। इस काल में भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उच्चकोटि के काव्य रचे गये हैं।

प्रमुख कवि और काव्य

वली दक्खिनी

वली का मूल नाम वली मुहम्मद था। ये दक्खिन के निवासी थे। अली अहसन महरवी का कथन है—"वली शब्द केवल काव्य नाम नहीं है प्रत्युत यह कवि के नाम का अंश है। वली मुहम्मद अथवा वलीउल्ला शम्सुद्दीन की अपेक्षा वलीउद्दीन नाम अधिक प्रसिद्ध है।"[1] एक अन्य आलोचक का कथन है—"नाम के विभिन्न रूप वलीउल्लाह, वली उल्लाह, मुहम्मद वली, वली मुहम्मद पाये जाते हैं।···इसका पूरा नाम मुहम्मद वली अल्लाह होगा।"[2] अभी तक के शोध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस महान कवि का नाम वली मुहम्मद था।

वली मुहम्मद का मूल निवास-स्थान कहाँ था ? अभी तक इसका निर्णय नहीं हो पाया है। कुछ आलोचक इन्हें गुजरात का, तो कुछ औरंगाबाद का और कुछ वली को दक्खिन का निवासी कहते हैं। कहने का तात्पर्य है कि विद्वानों का इस सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। दक्खिनी भाषा व साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान श्री हाशमी का मत है—"वली के समकालीन और मित्र शाह अबुल मआली के पत्र का हस्तलिखित काव्य संग्रह इण्डिया आफिस, लन्दन के पुस्तकालय में विद्यमान है। उसमें उन्होंने वली को दक्खिनी कवि स्वीकार किया है और गुजरात के दखन में शामिल नहीं किया जा सकता।"[3] उर्दू के अधिकांश विद्वान इन्हें औरंगाबादी मानते हैं और कुछ इन्हें गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद नगर का निवासी स्वीकार करके गुजराती इनके नाम के साथ जोड़ते हैं। पहले औरंगाबाद हैदराबाद राज्य का अंग था इसलिए हैदराबाद के विद्वान इन्हें दक्खिनी स्वीकारते हैं।

वली का जन्म कहीं भी हुआ हो, किन्तु इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वली अहमदाबाद (गुजरात) में काफी समय तक रहे और वली ने अहमदाबाद के हज़रत शाह वजीहुद्दीन गुजराती से आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। इतना ही नहीं वली को गुजरात से बहुत प्रेम था जिसका उल्लेख इन्होंने स्वयं किया है। इन्होंने अपनी एक कविता में गुजरात वियोग का वर्णन किया है :—

---

1. अली अहसन महरवी—कुल्लियात-ए-वली, पृ० 14 (भूमिका)
2 डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 387
3. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 324

गुजरात के फिराक सों है खार खार दिल ।
बेताब है सूनेमने अतिल बहार दिल ।।
मरहम नहीं है इसके जख्म का जहाँ मने ।
शमशेर-ए-हिज्र सों ओ हुआ है फिगार दिल ।।

सूरत शहर की प्रशंसा में कवि कहता है :—

अजब शहरों में है पुरनूर यक शहर ।
बिला शक वह है जग में मक़सद-ए-दहर ।।
अहै मशहूर उसका नाम सूरत ।
कि जावे जिसके देखे सब कदूरत ।।

मुगल सम्राट आलमगीर औरंगजेब के शासन-काल में पहली बार वली दिल्ली गये और अपने काव्य के द्वारा दिल्ली वासियों के दिल में बैठ गये । दूसरी बार मुहम्मद शाह के शासन-काल में दिल्ली आये । उस समय इनके साथ अब्दुल मआली भी थे । दिल्ली वासियों ने इन दोनों का बड़ा सत्कार किया था ।

वली के देहान्त के सम्बन्ध में भी आलोचक मतैक्य नहीं हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि वली का देहान्त हिजरी सन् 1155 में हुआ तो कुछ का कथन है कि वली का देहान्त सन् 1143 में हुआ, किन्तु डा० अब्दुल हक़ के अनुसार वली का देहान्त सन् 1111 में हुआ । मुख्यतया लोग डा० अब्दुल हक साहब के मत को स्वीकार करते हैं । इनकी समाधि अहमदाबाद में है ।

उर्दू साहित्य के विद्वान् वली को उर्दू साहित्य का जन्मदाता स्वीकार करते हैं । दक्खिनी साहित्य में भी वली का महत्वपूर्ण स्थान है । वली दक्खिनी साहित्य के ऐसे मील स्तम्भ सिद्ध हुए हैं जिसके बाद दक्खिनी काव्यधारा की पुरानी परम्परा समाप्त होती है और नयी परम्परा पनपने लगती है । वली के समय से दक्खिनी की कविता में सुधार हुआ और भाषा प्रांजल हो गई । ये जन्मना कवि थे । इनका काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुका है जो अत्यधिक प्रसिद्ध है ।

डा० ज़ोर का कथन है, "आरंगाबादी वली धार्मिक व्यक्ति नहीं थे । प्रख्यात ग़ज़ल वक्ता हाफिज़ और ग़ालिब की तरह इसका काव्य धार्मिक पक्षपातों से मुक्त है । इसने अत्यन्त आशिकी से प्रेम पंथी का जीवन व्यतीत किया । स्पष्ट है कि एक व्यक्ति जिसने विशेष रूप से सुन्दर लड़कों और मद्यपान की अभिलाषा के सम्बन्ध में ग़ज़लें लिखी हों, किस प्रकार धार्मिक समझा जा सकता है । वह एक सांसारिक व्यक्ति और कवि था और कभी-कभी ग़ालिब की भाँति उसके काव्य में सूफीमत या तसव्वुफ का रंग झलकता है । यह बिलकुल एक स्वाभाविक बात थी क्योंकि जो मुसलमाल स्वतन्त्रचेता रहना चाहते थे और अपने सधर्मियों के नाते सुनना नहीं चाहते थे, अपने आपको सूफी प्रकट करते हैं । उन लोगों को दैनिक धार्मिक कर्त्तव्यों की पाबन्दी नहीं

रहती।"[1] आगे चलकर डा० ज़ोर लिखते हैं—"इससे हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि वली नास्तिक थे। मुसलमानों के दो बड़े सम्प्रदाय अर्थात् सुन्नी और शिया दोनों में से प्रत्येक वली को अपने सम्प्रदाय का मानता है।·· वली की योग्यता के सम्बन्ध में पक्ष-विपक्ष में कितने ही विचित्र तर्क किये गये हैं। यह विचारा जाता है कि उसके अरबी-फारसी का ज्ञान बहुत ही सीमित था और इसी कारण से उसकी कविता में अशुद्ध अरबी और फारसी शब्द पाये जाते हैं। वस्तुतः यह दोषारोपण ठीक नहीं है। वली अपने समय का सच्चा प्रतिनिधि था। उससे यह आशा रखनी कि वह शब्दों का प्रयोग उसी प्रकार करेगा, जैसा आज किया जाता है, अनुचित है। लखनऊ के कवियों ने उर्दू कविता में अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग करने के लिए जो अद्विवतापूर्ण नियम बनाये थे, वली के समय वह प्रचलित नहीं थे। वली से पहले के उनके समकालीन कवि स्वाभाविक कवि थे, जो केवल कविता के रस से आप्लावित होने के लिए पद्य कहा करते थे। उनका उद्देश्य शब्दों और मुहावरों का प्रयोग करके अपनी कविता को अरबी और फारसी भाषा के ज्ञान की पुस्तक बनाना अथवा तैयार करना कदापि नहीं था। वह जिस भाषा का प्रयोग करते थे, वह उनके समकालीन जनता के बोल-चाल की भाषा थी। वह अरबी और फारसी कोशों से शब्द नहीं लेते थे प्रत्युत दिन प्रतिदिन साधारण तौर पर बोलचाल में जो शब्द प्रयोग किए जाते हैं उन्हीं का प्रयोग करते थे।···वली के काव्य संग्रह में कई प्रकार की कविता के नमूने मिलते हैं—450 ग़ज़लें, भिन्न-भिन्न प्रकार के बन्द, 6 क़सीदे, 2 मसनीवयाँ (कथा काव्य) और 25 रूबाइयाँ (चौपदे) हैं लेकिन मीर और गालिब की तरह उसकी प्रसिद्धि निर्भर करती है ग़ज़लों पर ही। उनके कविता के उत्कृष्ट गुण विद्यमान हैं।···प्रेम और शृङ्गार में उसकी ग़ज़लें मीर और दर्द से स्वतन्त्र विचार में गालिब और हाफिज़ से और सौंदर्य चित्रण में नज़ीर की ग़ज़लों से मिलती-जुलती हैं।"[2]

वली के समय में तसव्वुफ का बोलबाला था एवं स्वयं वली ने अपनी कविताओं की रचना में सूफियाना ढङ्ग अपनाया, यही कारण है कि इनका काव्य भाषा और विषय की दृष्टि से उस काल की मुखर प्रतिभा है।

वली ग़ज़ल के उस्ताद थे ही, इन्होंने मसनवी, कसीदा, मर्सिया और रुबाई के क्षेत्र में भी चमत्कार दिखाया है। वली की कविता का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि वली ने फारसी साहित्य का पर्याप्त अवलोकन किया था और उससे यथाशक्य लाभ उठाया था। इसने अपनी कविता में उक्ति वैचित्र्य और विरोधाभास का पूरा-पूरा उपयोग किया था। वह काव्य रचना में सर्वत्र कल्पना से काम लेता हुआ दिखाई देता है। वह कल्पना से अपनी कविता को सुसज्जित करता है जबकि दक्खिनी के अधिकांश कवि यथार्थवादी रहे हैं। वली ने भाषा और शैली के मामले में भी फारसी

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—उर्दू शहपारे, पृ० 150
2. वही, पृ० 270

का अनुसरण किया है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने ठीक ही कहा है—"वली की एक बड़ी विशेषता यह ज़रूर मानी जायेगी, कि इस दक्खिनी कवि के देशी भाषा में लिखे पद्यों के चमत्कार को देखकर औरंगज़ेब कालीन दिल्ली के कवि देवताओं का आसन डगमगा उठा। अभी तक शाहों, शहज़ादों तथा उसके दरबार की भाषा फारसी थी, फारसी ही काव्य की भाषा भी समझी जाती थी। कोई सम्भ्रान्त कवि हिन्दी में छन्द जोड़ना अपनी शान के खिलाफ समझता था। लेकिन अब उन्हें साफ दिखाई देने लगा कि यदि हम नहीं चेते, तो जिस तरह भाषा की कविताओं पर दरबार के लोगों के सर झूम रहे हैं, उसमें वली और उसके चेले बाज़ी मार ले जायेंगे और हम मुँह देखते रह जायेंगे।"[1]

वली का दीवान (काव्य संग्रह) प्रसिद्ध है। उसी में से हम वली की विभिन्न विधाओं की कविता के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं :—

ग़ज़ल—साफ दिल को अगर मदाम रखो,
जाम जमशेद का मक़ाम रखो।
गर तुमें ताब इन्तकाम नहीं,
बेसमझ मत किसी से काम रखो।
ख्याल की मत करो तरफदारी,
खातिर-ए-ज़ुल्फ-ए-मुश्क-ए-काम रखो।
नाज़ से सरकशी कौन देखूंगा,
आज मेरा नियाज़ नाम रखो।

रुबाई मेहरबानी व लुत्फ व दिलबर बा,
साबक़ा था सो अब नहीं दिस्ता।
या मगर ख्वाब वह ज़माना था,
कि मुझे ख्वाब में नहीं दिस्ता।

मर्सिया—गूंगा हुआ जहाँ में शह के विसाल का,
सीने मने पड़ा है छाला इस मलाल का।
मुहताज हैं जहाँ के महबाँ तमाम मिल,
दीदार चाहते हैं मुबारक जमाल का।

\+ \+ \+

जो कोई करे ज़बान सूं अदनों का दर्द मदाम,
है यह वली खुलासा जवाब व सवाल कार।

कसीदा—हर एक रंग में जो देखा हूँ चरख के नैरंग,
हुआ है गुंचा सिफत जग के बाग़ में दिल तंग।

---

1. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पृ० 305

जहाँ के गुलबदनाँ जलवागर हुए हैं जहाँ,
उडा है इनकी तअल्ली सूँ आशिकाँ का रंग।
यह आशिकाँ के जलाने कूँ मुस्ताद है मदाम,
गवाहे इसके ऊपर नूर शमअ वह हाल पतंग।
सिवाय दाग़ के पाया नहीं हूँ बाग़ में गुल,
दराये खूब जिगर नहीं बसा मुझे गुल रंग।

\+ + +

जगत के देख के हालात ला अला जी सूँ,
हुए हैं गोशा नशीन अहल दानिश व फरहंग।
हो दस्तगीर मुझे या अली वली अल्ला,
कि इस फलक ने किया है कमाल मुजकूँ नंग।

मसनवी—अजब शहराँ में है पुरनूर एक शहर,
बिला शक वह है जग में मक़सद पहर।

\+ + +

जगत की आँख का गोया है यह नूर,
अछों इस नूर सूँ बर चश्म बदनूर।
शहर ज्यूँ मुन्तखिब दीवान है सब,
मलाहत की वह गोया कान है सब।
सूरज सुन आब उसकी जग में काँपा,
समुन्दर मौज ज़न रग रग में काँपा।
किनारे इसके एक दरिया-ए-तपती,
कि दुनिया देखने कूँ उसके तपती।

\+ + +

हर एक जानिब देखूँ मैं फौज-दर-फौज,
तजल्ली के समुन्दर की उठे मौज।

कवि वली ने इसी प्रकार साहित्य की कई विधाओं को अपनाया है और इन्हें उपमा, रूपक तथा अन्य अलंकारों के प्रयोग से सजाया है। कवि वली को दक्खिनी से प्रेम था और इन्होंने इस इसे प्रकार प्रकट किया है :—

चाँद के नमन मने तू खूबी के गगन मने।
मशअल के नमन तू है इक अंजुमन मने॥
गुलज़ार है बहार सो बेशक़ दकन मने।
जो थे तमाशबी दकन के चमन मने॥

क़ाज़ी सैयद महमूद 'बहरी'

मूल नाम सैयद महमूद है और काव्य नाम 'बहरी' है। इनका जन्म गोगी

नामक ग्राम, तालुका-शाहपुर, जिला—गुलबर्गा शरीफ है[1], जो इस समय कर्नाटक प्रान्त में है। इनके पिता काजी सैयद बहरुद्दीन थे। सैयद महमूद बहरी के गुरू शेख मुहम्मद बाकर उर्फ मजन बहरी थे।[2] काज़ी शेख मुहम्मद बाकर अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् और सूफ़ी साधक थे। महमूद बहरी ने स्वयं कहा है कि मैंने किसी से कविता और गद्य लिखना नहीं सीखा है। मेरे आध्यात्मिक गुरु ही मेरे मार्ग-दर्शक थे :—

ना संग किसी सखूदरां का,
ना रंग है इश्क परोदां का।
ना नज़्म के दोस्त नसर के यार,
इस मत सूं कैसे मुझे खबरदार।
खोल्या नहीं मुझ पे कोई पो बीच,
बिन पारे की परोदश दीगर हीच।

बहरी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इन्होंने 20 वर्ष की आयु में कविता करना आरम्भ किया और लगभग 80 वर्ष तक कविता करते रहे।

काज़ी सैयद महमूद बहरी के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है और अभी तक इनकी जन्म-तिथि संदिग्ध है। बहरी ने सूफियाना ढङ्ग से इस प्रकार कहा है :—

अमे मूरख गर बतारीख तोलद पर मीम।
मन अज़ां दोज़म कि इरफ़ान शद बनूर अन्दर नमूद॥

श्री मुहम्मद सखावत मिर्ज़ा ने इनके जन्म के सम्बन्ध में अनुमान लगाया है कि बहरी का जन्म लगभग हिजरी सन् 1042 में हुआ होगा।[3] श्री हाशमी का कथन है कि इनका जन्म हिजरी सन् 1030 में हुआ।[4] इससे यह स्पष्ट होता है कि बहरी सुलतान मुहम्मद आदिल शाह (हिजरी सन् 1038-1067) में विद्यमान रहा होगा।

कवि महमूद बहरी ने अपनी शिक्षा के बारे में कहा है कि मुझे किसी से शिक्षा नहीं प्राप्त हुई प्रत्युत मेरी शिक्षा ईश्वर प्रदत्त है :—

ऐं रा बखदान्हा शायरी दां।
ऐं इल्म अताए बाकरी दां॥

---

1. मुहम्मद सखावत मिर्ज़ा—बहरी कृत मन लगन, पृ० 12
2. वही, पृ० 13
3. वही, पृ० 16
4. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 329

काजी सैयद महमूद बहरी को अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी, दर्शन और आयुर्वेद आदि का अच्छा ज्ञान था। बहरी सुन्नी सम्प्रदाय के हनफी इमाम को मानने वाले थे। ये शरीअत का पूर्णरूप से पालन करते थे। सूफी सम्प्रदायों में महमूद बहरी चिश्ती और कादरी दोनों को मानते थे। कादरी सम्प्रदाय के शाह बाकर और शाह अशाक़ मुहम्मद सत्तार हादी अधोनवी से इनका सम्बन्ध था और चिश्तिया सम्प्रदाय से इनके पिता का सम्बन्ध था जो शाह बुरहान बीजापुरी के खलीफा थे :—

था बाप मेरा मुरीद इस कुहर,
इस कुहर सूं किया अपस कूं कुहर।
इस कुहर सूं मुजे बी बन्दगी है,
मुझ ज्यूं मैं जोत हो चुकी है।

महमूद बहरी का विवाह मीर सगीरुल्लाह की पुत्री से हुआ जो इनके चाचा थे। बहरी के एक पुत्र शाह हुसेन बहरी थे जो खलीफा और सज्जादा नशीन हुए।[1]

काजी महमूद बहरी का प्रारम्भिक जीवन आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था किन्तु अन्तिम दिनों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रही। सुलतान सिकन्दर आदिल शाह ने बहरी को नुसताबाद सगर को पुरस्कार में दिया था जो आलमगीरी औरंगजेब और आसफिया शासन द्वारा स्वीकृत रहा।

विद्वानों का मत है कि बहरी ने लगभग सौ वर्ष का जीवन पाया था। इन्होंने आदिल शाही और कुतुब शाही के शासन की समृद्धि देखी थी। श्री सखावत मिर्ज़ा के मतानुसार बहरी का देहान्त हिजरी सन् 1130 (1718 ई०) में हुआ। इन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए यह काव्य अंश प्रस्तुत किया है :—

बहरी बकमाल हक़ आगाह
शेख महमूद आरिफ व अल्लाह
बूद दर अहद बादशाह ज़मन
खत्म शाहान सिकन्दर आदिल शाह
दस्त गहिश यह इल्म हक़ यह चुनाँ
कह तवाँ याफत इल्म व दानिश राह
मीर वो दर हवाये आलम कुद्दूस
तीर वो दर हवाये इश्क अल्लाह
गोश करदम निदाये रहलत वो
दाखिल मजलिस रसुल्लाह।[2]

1. मुहम्मद सखावत मिर्ज़ा—बहरी कृत मन लगन, पृ० 28
2. वही, पृ० 27

अर्थात् काज़ी सैयद महमूद बहरी का देहान्त हिजरी सन् 1130 (1718 ई०) में हुआ और अपने पीर (आध्यात्मिक गुरु) की दरगाह में दफन किए गए।

महमूद बहरी की रचनाएँ

बहरी की तीन दक्खिनी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं—(1) मन लगन, (2) बंगाब नामा और (3) ग़ज़ल संग्रह। इसके अतिरिक्त बहरी की अनेक रचनाएँ फारसी में मिली हैं जिनमें अधिकांश मसनवी हैं। कहा जाता है कि बहरी बीजापुर शासन के समाप्त होने पर 1686 ई० में हैदराबाद जा रहे थे कि कुछ डाकुओं ने मार्ग में इनकी रचनाओं को छीन लिया। बहरी ने स्वयं इस घटना का उल्लेख 'मन लगन' में किया है।[1]

मन लगन का रचना-काल

इस काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1112 (1705 ई०) है :—

बहरी तू यहो कितेक बरस थे
बारा ऊपर एक सो सहस थे
तब सीस अपस किया है बाला
इस जग सूं यो कुदरती रिसाला।[2]

काजी महमूद बहरी ने सूफ़ी सिद्धान्तों का वर्णन अपने काव्य 'मन लगन' में किया है। 'मन लगन' नामक काव्य में ईश्वर, जीव, शरीर, वासना, ज्ञान, प्रेम का वर्णन क्रम से किया गया है। कवि ने स्पष्ट किया है कि धर्म एवं दर्शन के गूढ़ एवं सूक्ष्म विवेचन से पूर्व पाठक उनके मुख्य सिद्धान्तों को समझें और उनका परिचय प्राप्त करें। इस गूढ़ विषय के विवेचन में कवि ने अरबी के पारिभाषिक शब्दों का विवेचन बहुत कम किया है, जहाँ तक सम्भव हो सका है कवि ने तत्सम अथवा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। 'मन लगन' नामक काव्य के अन्त में कवि बहरी ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है कि अरबी के अमुक शब्द के स्थान पर संस्कृत का अमुक तद्भव अथवा तत्सम शब्द का प्रयोग किया गया है :—

मैं स्थूल कहूँ बजाय मलकूत
सूक्ष्म तो इसे समज तू मलकूत
कारन जिबरुत, महाकारन
लाहूत अपस हिसब में गिन
मैं नूर कूँ जोत कर कया हूँ
जू जीव कूँ भाय त्यूँ भया हूँ

---

1. था पूर जो इश्क बड़ा पिटारा, सो भाग नगर में खाये सारा।
   मुहम्मद सखावत मिर्ज़ा—मन लगन, पृ० 21
2. मुहम्मद सखावत मिर्ज़ा—बहरी कृत मन लगन, पृ० 126

मैं मन जो कहूँ इसे तूं दिल जान
इस दिल कूँ सगल में मुश्तमिल जान
होर जीव की जा परान बोल्या,
इरफान न बोल ग्यान बोल्या।

अर्थात् मलकूत के स्थान पर स्थूल, नूर के स्थान पर ज्योति, दिल के स्थान पर मन और इरफान के स्थान पर ज्ञान शब्द का प्रयोग किया है।

कविवर महमूद बहरी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ईश्वर निराकार है लेकिन इस जगत में जो भी आकारवान है सबको ईश्वर से ही आकार प्राप्त हुआ है :—

है नूर अगर निरूप लेकिन,
रूप इससे ज्यूं रबी सेती दिन।
सच दिन कूं रबी तो कुछ लाया नईं,
बिन वाज रबी के दिन जग्या नईं।

सूफ़ी साधक महमूद बहरी ने यह भी कहा है कि जीव भी वही है, जीवन भी वही है और शरीर भी वही है :—

बूजे न बगैर तुज यू दूजा,
तू देव तू बिरहमन तू पूजा।

कवि ने काव्य की प्रारम्भिक पंक्तियों में स्पष्ट किया है कि परमात्मा कण-कण में व्याप्त है। हम कहीं भी परमात्मा की खोज करें वह मिलेगा :—

है रूप तेरा रत्ती रत्ती है,
परबत परबत पत्ती पत्ती है।
परबत में अधिक न कम पत्ती में,
यक सा रहे रास होर रत्ती में।

कवि ने सन्तों और साधकों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि साधक को सदाचार का पालन करते हुए सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। कबीर के समान बहरी ने भी कहा है कि मन हाथी के समान है यदि वह वश में हो तो आत्मा ऊर्ध्वगामी बनती है। सन्त को असत्य भाषण नहीं करना चाहिए। सदाचार, ज्ञान और सत्य आदि से ही आत्मा साधना के मार्ग पर अग्रसर होती है।

बहरी के कथनानुसार सभी धर्म समान हैं। जब हम अन्य धर्मों का अवलोकन करते हैं तो हमें उन सबमें कुछ अच्छाइयाँ और कुछ त्रुटियाँ मिलती हैं :—

हर मत धरम-अधरम तो है एक,
यक अर्त है गरचे भास भौतेक।

काजी सैयद महमूद बहरी अपने समय के महाकवि और महापुरुष थे। इनकी रचना 'मन लगन' में जहाँ एक ओर भाव वैविध्य है, वहाँ दूसरी ओर अनुभव की गहराई एवं हृदय की पुकार है जिससे इनकी रचना में प्रभावात्मकता आ गई है। 'मन लगन' एक अनूठी रचना कही जा सकती है। इस काव्य में भी प्रियतमा द्वारा परमात्मा रूपी प्रियतम के खोजने की भावना बहुत सुन्दर ढंग से वर्णित है :—

क्यों पा सके ऐ सुघड़ सुलच्छन।
तुझ तान कूँ ग्यान का गुनी जन।
ग्वाल हमीं तू ब्रह्म ग्यानी।
सेवाल हमीं तू पाक पानी।।
गर दिल तुजे ढूढने पर आगा।
तो फेर फिर अपने घर आगा।।
याने न तेरा जहूर इस तौर।
जो दिल अछे और दिलरुबा और।।
आगे छिपे ऊपर तले तूँ।
हर हर जानिब में झलकते तूँ।।
घर बाहर व घर भितर तिरा ताब।
सब ताब तिरे सूँ सब कूँ महताब।।

बहरी के प्रस्तुत काव्य में माधुर्य, सरलता और भावों की सबलता तथा स्पष्ट के विशेष गुण विद्यमान हैं। बहरी ने इसमें अरबी-फारसी के शब्दों की अपेक्षा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्दों को अधिक स्थान दिया है। भाषा में कहीं भी शिथिलता नहीं आने पायी है।

कथानक

'मन लगन' नामक काव्य में कवि ने राजा और मन्त्री के प्रेम का परिचय प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है :—

एक राजा था उसका एक वृद्ध मन्त्री था। मन्त्री जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने को ईश्वराधना में लगाना चाहता था। किन्तु राजा उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। मन्त्री ईश्वराधना की उत्कट अभिलाषा को दबा नहीं सका। राजा टाल-मटोल करता रहा। जब मन्त्री ने बार-बार छुट्टी के लिए अनुनय विनय किया तो राजा ने टालने के लिए कहा, जो कुछ मैंने तुम्हें दिया है लौटा दो, तुम्हें छोड़ दूँगा। राजा तो इतना जानता ही था कि जितना उसे मिला है वह उसे लौटाने में समर्थ नहीं है। किन्तु मन्त्री बहुत चतुर और ज्ञानी था। उसने उत्तर दिया, मुझे स्वीकार है, पर आप मेरी सेवा की सम्पूर्ण आयु, जो कि मैं आपको भेंट चढ़ा चुका हूँ वापस कर दें। इस पर राजा निरुत्तर हो गया। इसके बाद वृद्ध मन्त्री ने राजा को ज्ञान

की शिक्षा दी और बीच-बीच में कई छोटी-छोटी कहानियों को भी दृष्टान्त के रूप में लिया गया है।

यह रचना सूफ़ी विचारधारा से ओतप्रोत है। यह सैद्धान्तिक रचना सूफ़ी भावधारा पर तथा उसके विभिन्न पहलुओं पर सुचारुता से प्रकाश डालती है। कवि अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल हुआ है।

बंगाब नामा

यह एक प्रतीकात्मक रचना है। कवि ने इसमें सिद्धान्त और अनुभूति का समन्वय करने का प्रयास किया है। उमर खय्याम की रचना में यदि सुरा प्रतीकात्मक है तो बहरी की रचना में भंग प्रतीकात्मक है और यह आध्यात्मिकता से खाली नहीं मानी जा सकती है। कवि महमूद बहरी भंग को ब्रह्मानन्द ही नहीं प्रत्युत ब्रह्म का प्रतीक ही समझते हैं।

'बंगाब नामा' को कवि ने बारह ज़ामों में विभाजित किया है। बहरी ने इस काव्य में भंग के वण, मिश्रण आदि की भी चर्चा की है। यद्यपि कई सूफ़ी साधकों ने शराब को अनेक लाक्षणिक अर्थों में व्यक्त करके ईश्वर और जीव की एकता का प्रतीक माना है और उसे (शराब) अत्यधिक श्रेष्ठ माना है किन्तु बहरी ने भंग को शराब से भी अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसमें भंग प्रतीक है 'मारिफत' की और आध्यात्मिक प्रेम केवल भंग (मारिफत) के द्वारा ही हो सकता है।

काज़ी महमूद बहरी भाषा शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। अतः इन्होंने बंगाल शब्द की रचना दो शब्दों—बंग (भंग) और आब (पानी) से की है। जब तक भंग में पानी नहीं मिलाया जाता तब तक उसका विशेष महत्व प्रकट नहीं होता, परन्तु जब पानी में भंग मिलायी गयी तो बस :—

आब सुँ हिकमत के दिय बंग कूँ जोश।
बंग लगी बंगाब हो करने खरोश ॥[1]

कवि बहरी ने भंग को प्रशंसा करते हुए कहा है कि भंग के सागर को पृथ्वी के समुद्र से श्रेष्ठ समझना चाहिए :—

बंग के सागर कूँ न कफ़ है न मौज।
बंग के सुलतान कूँ न सफ़ है न फौज ॥[2]

कवि आग्रह करता है और कहता है कि लोगों को भंग के अतिरिक्त कोई अन्य पेय वस्तु नहीं पीनी चाहिए :—

पी नको बंगाव के खुश आब बाज।
सब कूँ डूबा आब में बंगाब बाज ॥

---

1. डा० मुहम्मद हफीज़ सैयद—कुल्लियात-ए-बहरी, पृ० 269
5. वही, पृ० 98

गर तुजे पा चुके होंगे महल।
कर उसे बंगाब के घट सूं बदल ।।[1]

वे लोग धन्य हैं जो कि भंग का सेवन करते हैं :—

आज जो सरमस्त तो बंगाबियां।
रोज जबर्दस्त तो बंगाबिया ।।[2]

यह स्मरण रखना चाहिए कि भंग केवल प्रतीक है। वह भक्ति है। वही मनुष्य धन्य है जो परमात्मा के मनन में लीन रहता है। सूफ़ी साधक होने के कारण वह हाल की स्थिति का वर्णन भंग के माध्यम से करता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि काजी महमूद बहरी शरीअत के पाबन्द थे तो फिर वास्तविक भंग का प्रश्न ही नहीं उठता। वह तो प्रतीक मात्र है।

काज़ी सैयद महमूद बहरी के ग़ज़लों और मर्सियों की संख्या भी अधिक है। डा० अब्दुल मजीद फारुक़ी का कथन है—"बहरी ने मर्सिये, ग़ज़लें, रूबाइयाँ, क़सीदे आदि कुल मिलाकर पचास हजार शेर लिखे हैं।"[3] बहरी की ग़ज़लों में भी उच्च-कोटि के साधक की अनुभूति का परिचय मिलता है जो परमतत्व की उपासना में बहुत सा समय बिता चुका है। ग़ज़लें—विद्या और भाव की दृष्टि से भी परिष्कृत हैं। इन ग़ज़लों में प्रेम के दोनों रूपों पर विचार व्यक्त किये गये हैं। बहरी के मतानुसार ईश्वरी प्रेम हो अथवा मानवी प्रेम हो, दोनों विरह से ही दीप्त होते हैं। विरह से ही प्रेम को जीवन मिलता है। कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि साधना के द्वारा ही भक्त यह जान सकता है कि लोकोत्तर सौन्दर्य पार्थिव सौन्दर्य के गर्भ में होता है।

बहरी की ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

चाल कर आई चंचल उस चाल होर छुप कूं सलाम।
पटपटाते लब होर उसके मतलब कूं सलाम ।।

\+ \+ \+ \+

सूरत चन्द बदन बस आरसी मने।
सो देख लब कहे कि ससी आरसी मने ।।

\+ \+ \+

इश्क का तोल दे बिसार ऐ दोस्त।
दिल की देहली कूं ज्यूं जमाना कन ।।

\+ \+ \+

कुछ भी ले जाना तो है पन हम निगोड़े क्या ले जायें।
ओते लिपाये तोले जाए अपस संगात कुछ ।।

---

3. डा० मुहम्मद हफ़ीज़ सैयद--कुल्यियात-ए-बाहरी, पृ० 276
4. वही, पृ० 286
3. डा० दशरथ राज—दक्खिनी हिन्दी का प्रेम-गाथा काव्य, पृ० 168

कविवर बहरी को मर्सिया के क्षेत्र में भी सफलता प्राप्त हुई है :—

जब शाह के वजूद मुबारक पे ग़म हुआ,
तब सब जहां के हरफ़ खुशी का अदम हुआ।
+ + +
गुलज़ार गुलिस्तां बने ग़म ते हो चाक चाक,
रोता है हर शजर न कि शबनम ते ग़म हुआ।
+ + +
बहरी मदाम शाह के मातम है यो गिले,
जूं चांद आसमां पे गल गल के कम हुआ।

सैयद मुहम्मद 'फिराक़ी'

सैयद मुहम्मद मूल नाम है और काव्य नाम फिराक़ी है। फिराक़ी के पिता सैयद करीम मुहम्मद हुसेनी थे और माता अजी साहबा मंसूब थीं। इनके एक बड़े भाई हाफिज़ सैयद अब्दुल कादर थे जो अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए। दो छोटे भाई हाफिज़ सैयद कासिम हुसेनी और सैयद अज़ीज़ुल्लाह थे। इनकी एक बहन भी थीं। सैयद मुहम्मद केवल कुरआन के हाफिज़ ही नहीं थे बलिक अपने समय के महान विद्वान थे।[1] प्रो० सिद्दीक़ी ने फिराकी की जन्म-तिथि हिजरी सन् 1081 और मृत्यु तिथि हिजरी सन् 1144 लिखी है।[2] श्री हाशमी के मतानुसार सैयद मुहम्मद फिराक़ी आदिल शाही काल के अन्तिम दिनों में जीवित थे एवं औरंगाबाद गये थे तथा फिर वहाँ से उत्तर भारत गये और अन्त में बेल्लूर (तामिल नाडू) में आकर बस गये।[3] किन्तु प्रो० सिद्दीक़ी का कथन है कि वे 31 वर्ष की आयु में दिल्ली गये थे और बीजापुर वापस आकर उन्होंने 'मरातुलहश्र' नामक ग्रन्थ की रचना की और अपने भाई सैयद अब्दुल कादर के उत्तराधिकारी हुए और अपने मत के प्रचार में व्यस्त रहे।[4] इसका विवाह ज़ैनब बीबी बनत से हुआ। फिराक़ी की तीन सन्तानें थीं—एक पुत्र—करीम मुहम्मद (द्वितीय) और दो पुत्रियाँ—फातिमा और बीबी थीं।[5]

कवि फिराक़ी ने अपना, अपने पिता और अपने पुत्र का परिचय अपनी पुस्तक में इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

फिराक़ी तखल्लुस है मेरा मदाम,
वले अस्ल सैयद मुहम्मद है नाम।

---

1. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग़, पृ० 157
2. वही, पृ० 162
3. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 375
4. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग़, पृ० 158
5. वही, पृ० 162

मैं कुरबान इस नानूं पर हूँ सदा,
न मुझ नाम हसन का है नाम इब्तदा।
पिसर है मुझे गरचे अब खुर विसाल,
अंगे उभर कूं उसके दे यो कमाल।
दिखा फ़जल अपना तो उस पर अज़ीम,
कि जूं नानूं है त्यूं कर उसकूं करीम।
मेरे बाप का नानूं तेरा रख्या,
कि ज्यूं बाप का बाप में रख्या।
करम कर तो है नानूं तेरा करीम,
कि बोले हर इक़ शख्स मेरा करीम।

फिराक़ी के पूर्वज बड़े विद्वान थे और उच्च पदों पर आसीन थे किन्तु उनके वंश में कोई व्यक्ति कवि नहीं हुआ। फिराक़ी ने इस तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

न शायर हुआ कोई मेरी पुश्त में,
सहज यो रख्या कोई नै मश्त में।
अथे फाज़लां सारे मेरे बड़े,
अलम इल्म काले के जग में खड़े।

इन्होंने पहले फारसी में काव्य रचना की। तदुपरान्त दक्खिनी के नुसरती और शौक़ी आदि प्रसिद्ध कवियों की कविता को सुनकर इन्होंने स्वयं दक्खिनी में काव्य की रचना की :—

किया नुसरती बोल बैठा वचन,
रहया नानूं होकर जवाहर का खन।
जो शौक़ी अथा मौत अपस शौक़,
किता था सुख बेबहा ज़ौक का।

फिराक़ी ने अपने पुत्र सैयद मुहम्मद करीम मुहम्मद हुसेनी को उपदेश देते हुए कहा है :—

मेरी बात ले कान में ऐ फिसर,
तू कर नेक बख्ती का पैदा हुनर।
मिला नेक बख्तां तने आप कूं,
कि तेरे ते हुए नफ़ा मान बाप कूं।
मेरी सुन है चालीस ते चार कम,
तू चौथे में अब लिया रख्या है क़दम।

उक्त कथन से स्पष्ट है कि कवि फिराक़ी ने जिस समय 'मरातुलहश्र'[1] नामक ग्रन्थ की रचना की, उस समय उसकी आयु केवल 36 वर्ष की थी और पुत्र की आयु केवल चार वर्ष की थी। 'मरातुलहश्र' नामक ग्रन्थ का रचना काल हिजरी सन् 1117 है :—

किया कसद तारीख जब बोलना,
यो अजमाल तफसील कर खोलना।
तो मुछ दिल किया उस वज़ा इन्तखाब,
यो देखो जो है बा बरकत किताब।

इससे स्पष्ट होता है कि कवि फिराक़ी का जन्म हिजरी सन् 1081 में हुआ और इनके पुत्र का जन्म हिजरी सन् 1113 में हुआ होगा।

रचना का मूल स्रोत

कवि ने अपने ग्रन्थ के मूल स्रोत के विषय में लिखा है। कवि ने स्वीकार किया है कि उसने फारसी मसनवी 'आखिरत नामा' को देखा है और उसे दक्खिनी में लिखा है।

फिराक़ी का सम्बन्ध कादरी सम्प्रदाय से था। अतः इन्होंने कादरी सम्प्रदाय के सूफ़ी साधकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इनके दादा भी कादरी सम्प्रदाय के थे। कवि फिराक़ी ने अपने दादा मुहम्मद मदरस की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

अथा इल्म सूँ वारिस मुस्तफा,
तू सैयद मुहम्मद मदरस हुआ।
बडाया अपस की वह शान रफ़ी;
वसाया अपीं जाज़ में बक़ी।

इसके पश्चात् कवि ने अपने पिता की प्रशंसा की है :—

तू रहमत का सराफ़ है ऐ करीम,
वलायत है व कान तेरे क़दीम।
हमें जो मुरीदाँ गुनहगार हैं,
तेरी मगरूरत के खबरदार हैं।
करम की नज़र कर मेरे पर करीम,
समझ देख बन्दा हूँ तेरा क़दीम।
तेरे पास मंगने जबान नै मुझे,
जिता मैं मगूं जा तूई उसते दे।

---

1. मरातुलहस्र, पांडुलिपि क्रम संख्या 350, स्टेट पुस्तकालय, हैदराबाद।

फिराक़ी की वंशावली
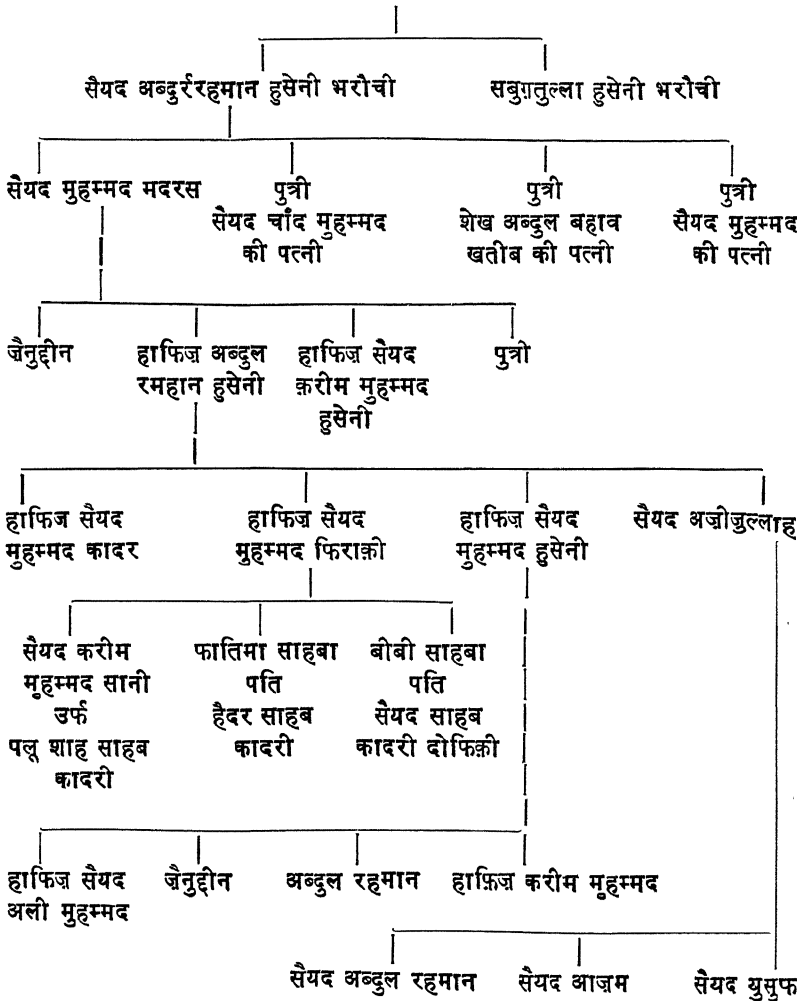
सूफ़ी साधक फिराक़ी के काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे और इनका तसव्वुफ पर पूरा अधिकार था। इनकी प्रसिद्ध रचना 'मरातुलहश्र' का विषय ही तसव्वुफ है जिसमें बड़ी विद्वता से तसव्वुफ की समस्याओं का उल्लेख किया गया है। कवि ने तसव्वुफ ऐसे जटिल विषय को इतनी कुशलता से प्रस्तुत किया है कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी सरलतापूर्वक समझ

सकता है। इस ग्रंथ के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कवि विद्वान और काव्य शास्त्र का ज्ञाता था। एक स्थल पर वह कहता है—

खुदा के अजायब हैं कुदरत के खेल,
न किसी की भी है अक़्ल का नसी कूँ मेल।
जो कुछ है सवाद अक़्ल ते बहार है,
उस की नछा पाता सजावार है।
हमारी समझ में न आता है ओ,
हमारा न दिल कन्द पाता है ओ।

सूफ़ी सन्त फिराक़ी एक सफल ग़ज़लकार थे और इन्हें ग़ज़लों के कारण ही विशेष प्रसिद्धि मिली थी। कहा जाता है कि इनकी ग़ज़लों को दिल्ली के कवियों ने बड़े आदर से स्वीकार किया और वे ग़ज़ल को ओर उन्मुख हुए। इनकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

फक़ीरों कूँ तमा कुछ नै जहाँ की कारसाज़ी का।
कि है सन्दूक में दिल के खज़ाना बेनियाज़ी का।।
खिलाफ-ए-नफ्स का खन्जर पकड़ सैयदाच हो रहना।
सैयदाँ के मरातिब ने बड़ा रुतबा है गाज़ी का।।
सर अपना फक़ीर की रह में ज़रा बी काम आवे तो।
समजना वक़्त पोछ्या है निहायत सरफराज़ी का।।
+ + +
फिराक़ी पीर के भौं पे दिसे तो फर्ज़ है सजदा।
कि जायज नीच है होना यो किबला बेनियाज़ी का।।

इससे स्पष्ट होता है कि कवि धार्मिक मनोवृत्ति का है। इसे सांसारिकता से लगाव नहीं है।

कवि के काव्य-सौन्दर्य की छटा इस ग़ज़ल में देखिए :—

मैं जाँ अछ मुझ दिल कूँ शौक़ उस गुलबदन का खींचता।
बुलबुल के दिल कूँ दाम भा रिश्ता चमन का खींचता।।
मैं आप से आता न था लियाया है मुंज कूँ आप खुर्द।
चंक के कोरे कूँ क्या सकत दूर अयूँ का खींचता।
सब हाथ कोई दस्तार पर करता तकाज़ा कर्ज़ का।
दामाँ कोई रोये बदल मुझ पैरहन का खोंचता।।

वली वेल्लूरी

मूल नाम मीर वली फय्याज़ है और इन्होंने अपना काव्य नाम 'वली' रखा है। इनका निवास स्थान वेल्लूर (तामिलनाड) में था। इन्होंने सात गढ़ के सूबेदार

फरासत खाँ के अधीन सैनिक के रूप में नौकरी की। तत्पश्चात् ये कडप्पा चले गये और वहाँ के सूबेदार नवाब अब्दुल मजीद खाँ के परम मित्र बन गये। नवाब ने बहुत सम्मान के साथ इन्हें सिघोंट में एक ऊँचे पद पर नियुक्त कर दिया। वली वेल्लूरी की 'चटपेट्टा' जागीर थी और अन्त में अपनी जागीर में आकर एकान्त वास ले लिया। इनका देहान्त अरकाट में हिजरी सन् 1150 (1737 ई०) से पहले हुआ।[1] किन्तु श्री हाशमी का मत है कि इनके जीवित रहने का पता हिजरी सन् 1162 तक चलता है।[2] अतः इनके देहान्त की तिथि संदिग्ध है और जन्म तिथि भी ज्ञात नहीं है। इनकी समाधि अरकाट के मुहल्ला असदपुर में है।

वली वेल्लूरी की रचनाएँ :—(1) रोज़तुश्शेहदा, (2) रोज़तुल अनवार, (3) रोज़तुल अक़बा (4) दुआऐ फातिमा और (5) मसनवी स्तन व पदम।

रोज़तुश्शोहदा

एक वृहत कथा काव्य है। इसमें 5500 अर्द्धालियाँ हैं। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1137 (1728 ई०) है :—

किया हूँ खत्म यूं दर्द का काल।
इग्यारह सो पो था सैंतीसवाँ साल॥

रचना का मूलस्रोत मुल्ला हुसेन वायज़ अल काशफी कृत रोज़तुश्शोहदा है। यद्यपि वली वेल्लूरी ने कहानी को काशफी की पुस्तक से लिया है किन्तु इसका क्रम अपना है। यह काव्य हज़रत मुहम्मद साहब के वंशजों के युद्धों और वीरगतियों का संक्षिप्त इतिहास कहा जा सकता है।

कविवर वली ने इस काव्य को दस अध्यायों में विभाजित किया है जिसे 'दस मजलिस' भी कहते हैं जो इस प्रकार है :—

1. हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु।
2. हज़रत मुहम्मद साहब की पुत्री फातिमा की मृत्यु।
3. हज़रत मुहम्मद साहब के जामाता अली की वीरगति।
4. बीबी फातिमा के पुत्र हुसेन की वीरगति।
5. हज़रत हुसेन के चचेरे भाई अक़ील पुत्र मुस्लिम हाबी और उन्स पुत्र मुहम्मद की वीरगति।
6. मुस्लिम के पुत्रों की वीरगति।
7. हुसेन की मक्का से कर्बला तक की यात्रा और वीरगति।

---

1. महापंडित राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पृ० 313
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 363

8. हुसेन के साथियों की वीरगति ।
9. हुसेन के पुत्र और सम्बन्धियों की वीरगति ।
10. कर्बला-युद्ध-सम्बन्धी कुछ घटनाएँ ।

कवि ने मंगलाचरण इस प्रकार दिया है :—

करूँ नामे कूँ बिस्मिल्ला सों आगाज़ ।
अछूँ ता मैं फसाहत सों सरफराज़ ।।
सराऊँ क्या उसे जिन यक सखुन में ।
बन्दया जीव दम के रिश्ते सो बदन में ।।

यद्यपि यह काव्य पूर्णरूपेण धार्मिक रंग में रंगा है तथापि इसमें काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं । हज़रत हुसेन के जन्म का वर्णन कवि ने विविध प्रसंगों के आधार पर किया है :—

नवा गुल मदह के गुलशन सों लाकर ।
करे भी शाह की मजलिस मुअत्तर ।।
शिकारी था अक़ीदे का सचा एक ।
नबी कूँ ला दिया आहू-बचा यक ।।
क़बूल उसकूँ शहे-आलम ने फरमाया ।
जो इतने में हसन मजलिस में आया ।।
देखे आहू बचा हज़रत कने दो ।
हसन कूँ खुश किया है दिल मने वो ।।
उसी साअत नबी ने उस हिरन कूँ ।
करम फरमा के बख्शे हैं हसन कूँ ।।
यकायक आ हुसेन जुल्करामात ।
हसन कूँ खेलने देखे हरिन साथ ।।

वली के काव्य सौन्दर्य का दिग्दर्शन कई स्थलों पर चरम सीमा को स्पर्श कर गया है । कारुण्य भाव काव्य में आरम्भ से अन्त तक है जो पाठक एवं श्रोता को द्रवित कर देता है । हसन-हुसेन के प्रति श्रोता के मन में सहानुभूति उत्पन्न होती है । एक दृश्य इस प्रकार है—हज़रत मुहम्मद साहब का निधन होने वाला है और दोनों नवासे उनके चरणों पर विलाप करते हैं :—

लगे आ पाँव पर हज़रत के पड़ने ।
लगे पावाँ पै रो रो यूँ रगड़ने ।।
कहे रो रो हमारा तू छतर था ।
सकल आफात सूँ हमना सिपर था ।।

वली वेल्लूरी की भाँति ही असरफ कृत नौसरहार भी कर्बला की घटना पर आधारित है किन्तु कई बातों में भिन्नता भी है ।

रोज़तुल अनवार

यह ग्रन्थ भी किसी फारसी रचना का अनुवाद माना जाता है किन्तु अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो सका है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय हज़रत मुहम्मद साहब के चारित्रिक गुणों से सम्बन्धित है। श्री हाशमी ने इसका रचना काल हिजरी सन् 1159 माना है।[1] लेखक को यह पुस्तक देखने को नहीं मिल सकी है। अतः विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता है।

रोज़तुल अक़बा

यह पुस्तक लेखक को नहीं मिल सकी है किन्तु श्री हाशमी की खोज के आधार पर इसका रचना-काल हिजरी सन् 1162 है।[2]

दुआये फातिमा

श्री हाशमी ने इस ग्रन्थ की एक पांडुलिपि इण्डिया आफिस लन्दन में बताई है।

मसनवी रतन व पदम

इसकी कथा प्राचीन कथा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम से सम्बन्धित है। इसको हिन्दी और दक्खिनी के कवियों ने बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि वली वेल्लूरी जिस समय 'रतन व पदम' नामक प्रेमाख्यानक काव्य लिख रहे थे उस समय मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत भी उनके सामने थी। यह चार हज़ार अर्द्धालियों का वृहत काव्य है। स्प्रिगर ने इस काव्य की एक प्रति टीपू सुलतान के पुस्तकालय में देखी थी, किन्तु इसकी कोई प्रति इस समय प्राप्त नहीं है।

काव्य का आरम्भ कवि ने ईश-स्तुति से किया है जो इस प्रकार है :—

> खुदाया तू है पाक परवरदिगार।
> निरंकार वो आधारो अछे उतार॥

अपने आश्रयदाता फरासत खाँ और नवाब अब्दुल मजीद खाँ की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

> फरासत खाँ अमीर यक नामवर था।
> सकूनत गाह उस कूं सात गढ़ था॥
> अथा ओ अहल दर्द व नेक आमाल।
> रफाक़त में अथा मैं उसके खुशहार॥

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 362
2. वही, पृ० 362

नवाब अब्दुल मजीद इब्न अब्दुल हमीद एक ।
अथा वाँ नामवर सूबा सईद एक ।।
सो ओ बहरे शुजा परवाना लिखकर।
सलुक नौकराँ में मनसबत कर ।।
तयैयन कर मुज सिघवट खाना ।
किया वह साहबे - शीरीं ज़माना ।।

अमीन गुजराती

अमीन साहब गुजरात के निवासी थे किन्तु किसी कारणवश ये गुजरात छोड़कर औरंगाबाद चले आये थे और अन्त में इसे ही इन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया था। यहीं पर इनके जीवन का अधिकांश समय बीता। यही कारण है कि इन्होंने दक्खिनी में काव्य रचना की। अमीन ने कई स्थलों पर अपनी भाषा को गुजरी कहा है। अमीन की एक रचना 'युसुफ जुलेखा' प्राप्त है। इस प्रेमाख्यानक काव्य में कृतिकार ने लिखा है कि काव्य की रचना गोधरे (गुजरात प्रदेश) नामक स्थान पर की गई है :—

वैता चालीस सौ पर चौदह और सौ ।
है लिखिया गोधरे के बीच सुन लो ।।

इस काव्य में 4114 अर्द्धालियाँ हैं और गोधरे नामक स्थान पर इसे लिखा गया है।

इस पौराणिक कथा को अमीन से पूर्व भी कई कवियों ने आधार बनाया है। यह कुरआन की एक कथा पर आधारित है। अरबी-फारसी के कवियों ने इस कथा पर कई काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। भारतीय कवियों में सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने इस अरबी प्रेम कहानी को फारसी में लिखा और फिर उत्तर भारत के अवधी साहित्य में सूफ़ी साधकों ने इसका समावेश किया है।

कवि अमीन ने स्थल-स्थल पर स्वयं कहा है कि यह कहानी फारसी में बहुत से लोगों ने लिखी है और मैं इसे गुजरी में लिख रहा हूँ :—

सुनो मतलब अहे यूँ अमीन का।
लिखी गुजरी मने युसुफ जुलेखा ।।
हर यक जागे किस्सा है फारसी में।
अमीन उसको उतारे गुजरी में ।।

अर्थात् कवि अमीन ने 'युसुफ जुलेखा' नामक काव्य को लिखने के लिए किसी फ़ारसी ग्रन्थ को आधार बनाया है।

इस प्रेमाख्यानक काव्य का रचना-काल अमीन ने इस प्रकार लिखा है :—

इग्यारह सौ उपर जब नौ गुजरे।
बरस हिजरते मुहम्मद मुस्तफा के ।।
जमादील अव्वल में इतवार के रोज़।
अथौ तारीख दूजी के दिला-अफरोज़ ।।

अमीन के प्रेमाख्यानक काव्य 'युसुफ जुलेखा' का कथानक कहीं भी शिथिल नहीं दिखाई पड़ता है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भी एक सफल रचना कही जा सकती है। कवि की नवनवोन्मेषिणी कवित्व शक्ति और प्रतिभा का इससे परिचय मिलता है।

कविवर अमीन ने इश्क हक़ीकी (आध्यात्मिक प्रेम) और अलौकिक सौन्दर्य के वर्णन करने में विशेष रुचि दिखायी है। काव्य में उपदेशात्मकता की झलक भी स्पष्टतया विद्यमान है और इसका मूल स्वर तसव्वुफ है। काव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कवि जब काव्य की रचना कर रहा था तो उस समय वह वृद्ध था :—

पिता साक़ी शराब अरब गानी।
अमीन कूं दे कि फिर पकड़े जवानी ।।
ज़ईफ़ी ज़ात जावे सो सब टल।
आवे हाथों पगों में कोर कर बल ।।
बदन सब हो गया है ताजीर दी।
हुआ सुख जाफरां मानिन्द ज़र्दी ।।

जहाँ कहीं अवसर मिला है कवि ने सदाचार, सत्य प्रियता, उदारता और नीतिमय आवरण में आस्था रखने का उपदेशात्मक संदेश दिया है।

प्रेमाख्यानक काव्य का आरम्भ प्राचीन अथवा पूर्व कवियों की ही भाँति ईश-स्तुति से किया गया है :—

अव्वल तारीफ सुत खालिक की ऐ यार।
कि वह दोनों जग का है करनहार ।।
सुनो मतलब रही अब यो अमी का।
लिखे गुजरी मने युसुफ जुलेखा ।।

समसामयिक शासक के रूप में आलमगीर औरंगज़ेब की प्रशंसा भी की है :—

ज़माने शाह औरंगजेब के मैं।
लिखी युसुफ जुलेखा कू अमीं मैं ।।
इलाही तू ऐसा आदिल शाहंशाह।
रखे जब जग रहे कायम मेहर माह ।।

साधारणतया देखा जाता है कि सूफ़ी कवियों ने इश्क मज़ाज़ी (लौकिक प्रेम)

इश्क को हक़ीकी (आध्यात्मिक प्रेम) का सोपान माना है। किन्तु कवि अमीन गुजराती ने इश्क मजाज़ी की कड़े शब्दों में आलोचना की है और उसे ही दुख का मूल कारण माना है :—

अरे बन्दे हक़ीक़त इश्क जानो।
मजाज़ी इश्क कूँ दिल पर न आनो।।
मजाज़ी इश्क कूँ जिन हवी किया है।
दग़ा उन कूँ सो शैतान ने दिया है।।
हक़ीक़त इश्क बीच जु कोई ज़ज़्ब पैठे।
वे तो खाये खुदा के होके बैठे।।
दग़ा उन्हीं दिया शैतान कूँ रे।
रखा साबित उन्हीं ईमान कूँ रे।।

सूफ़ी साधक अमीन गुजराती ने जो वास्तव में शरीअत को मानने वाले थे और इस्लाम के नियमों और सिद्धान्तों के अच्छे ज्ञाता थे, अपने काव्य में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि जुलेखा को जो कष्ट मिला वह उसके लौकिक प्रेम के कारण ही मिला। कवि ने उसके प्रसंग से जनसाधारण को उपदेश दिया है कि मनुष्य को लौकिक प्रेम से दूर रचना चाहिये :—

मजाज़ी इश्क जो रखते हैं जग माँ।
उनो कूँ ख्वार करता है ज़माना।।
हक़ीक़त इश्क जो रखते हैं दर दिल।
नहीं पड़ता उन्हीं को कधीं मुश्किल।।
ख़ुदा के इश्क भीतर वह शब व रोज़।
रखते हैं दिल खुशहाली सूँ दिल-अफरोज।।
जो आशिक कोई इन्सान पर जुलेखा।
पड़ी तो उस उपर देख विपत क्या।।
अगर अल्लाह पर आशिक वह होती।
उने इन्सान के सामने न जोती।।

यद्यपि सूफ़ी सन्त कवि अमीन ने धार्मिक कथा को अपने काव्य के लिए चुना है तथापि उसमें एक नयापन है। रचना में कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं दिखायी पड़ती है। अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह एक सफल प्रेमाख्यानक काव्य है और कवि अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण सफल रहा है।

हातिम दकनी

हातिम दकनी का जीवन-वृत अज्ञात है। इनकी रचना 'मसनवी हुस्न व दिल' मिलती है। उत्तर भारत के प्रसिद्ध सूफ़ी साधक नूर मुहम्मद कृत 'अनुराग बाँसुरी' के समान हातिम दकनी की यह रचना है। इसमें मानवी भाव शरीर धारण

करके कथानक अग्रसर करते हैं। हातिम दकनी से पूर्व दक्खिनी के प्रसिद्ध साहित्यकार मुल्ला वजही ने भी अपनी रचना 'सबरस' में इसी प्रकार मानवी भावों को पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। नूर मुहम्मद के काव्य में जीव नामक राजा का एकमात्र पुत्र अन्त:करण है और उसके मित्र संकल्प और विकल्प हैं। इसके अतिरिक्त बुद्धि, चित्त एवं अहंकार नाम के भी साथी हैं। इन्हीं पात्रों के द्वारा कथा का विस्तार किया है। मुल्ला वजही कृत सबरस और मसनवी हुस्न व दिल के पात्रों में अधिक निकटता पाई जाती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि हातिम दकनी के सामने सम्भवत: सबरस थी किन्तु हातिम ने यह स्वीकार नहीं किया है। केवल कवि इतना स्वीकार करता है कि उसने कहीं इस प्रकार की कथा सुनी थी। हो सकता है 'सबरस' की ही कहानी को सुना हो क्योंकि वह भी दक्खिनी रचना है और दक्षिण भारत में लिखी गयी।

कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है :—

यों सुन्या हूँ शहर मशरिक का नक़ल।
बादशाह उस शहर स्याने था अक़ल।।
हक़ ने जब ओ बादशाह वहीं का किया।
दौलत व न्यामत उसे बेहद दिया।।
जो कुछ उसकूँ चाहिये सो अब अथा।
लेकिन उसके घर में फरजन्द न था।।
हक़ सूँ मगता था हुआ ओ सुबह शाम।
आरज़ू फरजन्द का रखता था मदाम।।
हक़ ने अपना फ़जल जब उस पर किया।
यक पिसर मक़बूल तब उसको दिया।।[1]

कथा-सार

अक़्ल नामक एक राजा था। उसके कोई सन्तान न थी। बहुत भक्ति के पश्चात् एक पुत्र ने जन्म लिया और उसका नाम दिल रखा गया। उसका पालन-पोषण बहुत अच्छी तरह से हुआ। जब वह चौदह वर्ष का था और अपने मित्रों के साथ खेल रहा था तो किसी ने कहा, जो कोई अमृत पी लेता है उसे मृत्यु का मुँह नहीं देखना पड़ता। दिल घर पर आया और माता-पिता से कहा। राजा ने अपने सभी सभासदों को बुलाया तथा पूरी कहानी कह सुनायी। सभी लोग आश्चर्य चकित हो गये। इसी बीच नज़र नामक व्यक्ति ने कहा, मैं अमृत को खोजकर लाऊँगा। नज़र ने राजा से आज्ञा ली और अमृत की खोज में निकल पड़ा।

मार्ग में नज़र की भेंट हिम्मत से हुई और उसने नज़र से कहा, अरब में

---

1. किस्सा हुस्न व दिल, पृ० 1, पांडुलिपि संख्या 69, स्टेट लाइब्रेरी, हैदराबाद

दीदार नामक नगर है उसका राजा इश्क है तथा उसकी पुत्री हुस्न जिस उद्यान में सैर करती है, वहीं अमृत है। हिम्मत ने आगे कहा, मेरा भाई अकामत उस राजकुमारी का सेवक है, वह तुम्हारी सहायता करेगा।

जब नज़र आगे बढ़ा तो मार्ग में नफ्स ने नज़र को बन्दी बनाना चाहा, लेकिन नज़र ने कहा, मैं रसायन जानता हूँ और उसके लिए जिन वनस्पतियों की आवश्यकता पड़ती है वे सब दीदार नगर के उद्यान में हैं। नफ्स ने नज़र को अपने कंधे पर बैठाया और दीदार नगर के उस उद्यान के पास पहुँचा दिया, किन्तु नफ्स स्वयं उद्यान से बाहर रह गया और जब संध्या तक नज़र उद्यान से बाहर न आया तो नफ्स वापस चला गया।

उधर हुस्न की सेविका गमज़ा ने नज़र को पकड़ लिया और नज़र ने उसे सब कहानी सुनायी और कहानी सुनकर गमज़ा ने कहा, हम दोनों भाई बहन हैं। गमज़ा नज़र को इश्क की पुत्री हुस्न के पास ले गयी। नज़र को हुस्न ने कुछ रत्न परखने के लिए दिये। एकाएक नज़र एक लाल को देखकर रोने लगा। हुस्न ने उससे रोने का कारण पूछा, नज़र ने उत्तर दिया, इस लाल को देखकर मुझे अपने राजकुमार की याद आ रही है। फिर नज़र ने राजकुमार दिल की कहानी सुनाई और उसे सुनकर हुस्न उस पर मुग्ध हो गयी। कुछ विघ्नों के पश्चात् दोनों का विवाह हो गया। यहाँ आकर कहानी समाप्त होती है।

हातिम दकनी ने कथानक को अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि कहानी का विस्तार अस्वाभाविक ढंग से नहीं करता प्रत्युत कहानी को स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ाता है। इस कहानी के द्वारा कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि हृदय (दिल) के लिए (हुस्न) ही अमृत है।

सूफ़ी साधकों के मतानुसार सौन्दर्य के कारण ही जीव परमेश्वर की ओर अग्रसर होता है और परमात्मा का साक्षात्कार करता है। इनका विश्वास है कि सौंदर्य और हृदय के बीच में एक पर्दा होता है और जैसे ही पर्दा हटता है दोनों का मिलन हो जाता है :—

हुस्न होर दिल बीच था पर्दा हिजाब।
दिल हुआ उस कूँ मरातिब बेहिजाब॥
हुस्न ने दिल कूँ लगाकर तब गले।
इश्क होर अक़्ल सूँ दोनों मिले॥
हुस्न का एहसास हुआ अफ़ंजू तदा।
दिल हयाते आब पिया तब बाद जाँ॥[1]

इस काव्य में नायक दिल भक्त का प्रतीक है और नायिका हुस्न परमात्मा

---

1. किस्सा हुस्न व दिल, पृ० 14, क्रम संख्या 69, स्टेट लाइब्रेरी हैदराबाद

की। सूफ़ी साधकों के यहाँ प्रेम और ज्ञान दोनों को महत्व प्राप्त है। अतः नायक दिल का पिता अक़्ल है और नायिका हुस्न का पिता इश्क है। कवि ने प्रेम और बुद्धि के संघर्ष को बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।

इशरती

मूल नाम सैयद मुहम्मद खाँ है और काव्य नाम इशरती है। इनके पिता सैयद युसुफ हुसेन थे और पितामह सैयद हुसेन थे। ये हैदराबाद के रहने वाले थे। सैयद मुहम्मद युसुफ भाग्य परीक्षा के लिए बसरा से दक्षिण भारत (बीजापुर) आये। इशरती अभी 12 वर्ष के ही थे कि पिता का देहान्त हो गया किन्तु वे पूज्य सैयद वंश की सन्तान थे इसलिए इनकी शिक्षा दीक्षा में कोई विशेष बाधा नहीं पड़ी। बीजापुर के दरबार में इशरती का काफी सम्मान हुआ।[1] इनका परिवार सादात दरवेश के नाम से प्रसिद्ध था।[2] इनकी सज्जनता, सद्व्यवहार और कुलीनता के आधार पर मुगल सम्राट आलमगीर औरंगज़ेब ने भी इन्हें आश्रय दिया और जागीर दी तथा मनसबदारी के पद पर नियुक्त किया। आसफिया शासन काल में इनकी सन्तानें उच्च पदों पर आसीन थीं। हैदराबाद में औरंगज़ेब के शासन काल में इशरती का देहान्त हुआ।[3] इन्हें शाह राजू हुसेनी की गुम्बद में उत्तर की ओर दफन किया गया।[4]

इशरती अपने समय के महाकवि थे। श्री हाशमी ने इशरती की तीन मसनवियों—(1) चित्त लगन, (2) नेह दर्पण, (3) दीपक पतंग और कुछ ग़ज़लों की सूचना दी है किन्तु 'नेह दर्पण' नामक काव्य इनके पुत्र हुनर का लिखा हुआ है जिसका उल्लेख आगे किया जायेगा। शेष दो पुस्तकें इनकी कृति हैं। इनके पोते सैयद अली के अनुसार भी इशरती के केवल दो काव्य ग्रंथ दक्खिनी में हैं।[5]

चित्त लगन

इस काव्य की एक अधूरी प्रति सालार जंग म्युज़ियम पुस्तकालय में है।[6] इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रति नहीं प्राप्त हो सकी है। अधूरी प्रति के आधार पर कथानक इस प्रकार है :—

---

1. महापंडित राहुल सांकृत्यायन – दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पृ० 292
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 101
3. सैयद शमसुल्लाह क़ादरी—उर्दू-ए-क़दीम, पृ० 98
4. नसीरुद्दीन हाशमी—यूरोप में दक्खिनी मख़्तूतात, पृ० 374
5. है दकनी में दीपक पंतग चित्त लगन। दो किस्से कि बस है वह आली सुखन॥
   तखल्लुस है मशहूर उसे इशरती। मारिक सुखन का था खुद नुसरती॥
6. पांडुलिपि, चित्त लगन, क्रम संख्या 112, सालार जंग म्युज़ियम पुस्तकालय, हैदराबाद

हिन्द में एक राजा था। सन्तान के अभाव से वह दुःखी रहा करता था। बहुत दिनों के पश्चात् उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम जहाँदार रखा गया। वह चार वर्ष की आयु में पढ़ने के लिए बैठाया गया और चौदह वर्ष की आयु में वह सभी कलाओं में निपुण हो गया। उसे शिकार का बहुत शौक था। एक दिन राजकुमार ने उड़ते हुए पक्षी पर अस्त्र चलाया और उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया। जाते-जाते वह एक उद्यान में पहुँचा। वहाँ पर एक युवक ने उसका स्वागत किया। युवक के पास एक तोता था। उसे देखकर राजकुमार लालयित हो गया और एक लाल देकर उसे क्रय कर लिया।

राजकुमार की प्रेयसी महरपरवर है जिससे वह एकान्त में मिलता है। जब दोनों में प्रेम की वार्ता होती है तो तोता हँस पड़ता है। प्रेयसी महरपरवर तोते से हँसने का कारण पूछती है। फिर राजकुमार भी पूछता है। तोते ने उत्तर देते हुए कहा यह बात न पूछी जाय तो अच्छा है।...(इसके बाद पृष्ठ नहीं अतः कथा कैसे आगे बढ़ती है कुछ कह पाना कठिन है)

'चित्त लगन' नामक प्रेमाख्यानक काव्य की जो खंडित प्रति मिलती है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि रचना का भाव पक्ष सशक्त है एवं भाषा भी उच्च-कोटि की है। इसमें सूफी विचारधारा का भी संकेत मिलता है।

दीपक पतंग

इसमें पद्मावत की कथा-वस्तु को अपनाया गया है किन्तु सर्वत्र मौलिकता का परिचय मिलता है। इसमें सूफी विचारधारा पद्मावत के समान ही है। इस काव्य का रचना काल हिजरी सन् 1107 है।

पद्मावत और दीपक पतंग के कथानक में अन्तर

दीपक पतंग के लेखक ने शंकर और देवताओं को राजा रत्नसेन की सहायता के लिए बुलाकर राजा कन्दर्पसेन को पराजित कर रत्नसेन से पद्मिनी के विवाह के लिए विवश नहीं किया है। दीपक पतंग का हीरामन तोता राजा कंदर्पसेन को रत्नसेन की पूर्ण जानकारी देता है और राजा कंदर्प सेन आगे बढ़कर स्वागत करता है। इशरती की रचना में दैवी सहायता का अभाव है। दीपक पतंग में कवि ने सागर में डूबने के पश्चात् पद्मावती और रत्नसेन का मिलन संयोगवश कराया है। रत्नसेन लाल को बेचकर वापस जाने का सामान जुटाता है। इशरती ने रत्नसेन को पथभ्रष्ट करने के लिए नहीं भेजा है और न ही समुद्र का राज पक्षी उस राक्षस को ले जाता है। न ही समुद्र को मानव वेश में भीख माँगने के लिए भेजा है। इशरती ने अपने काव्य में जायसी कृत पद्मावत में अस्वाभाविक वर्णनों को कम कर दिया है। शेष कथानक समान ही है।

यद्यपि इशरती भाव चित्रण एवं सशक्त भाषा की दृष्टि से जायसी की ऊँचाई

को नहीं पा सका है तो भी कथा संगठन की दृष्टि से एवं कथा निर्वाह में इशरती का रचना पद्मावत से किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं मानी जा सकती। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इशरती जायसी से अधिक सफल है और इसने चरित्र-चित्रण करते समय स्वाभाविकता को अधिक महत्व दिया है। इशरती के पात्र हाड मांस के जीवपिंड प्रतीत होते हैं।

स्नान निमन्त्रण

सब सहेलियाँ पद्मावती के पास जाकर स्नान करने का निमन्त्रण देती हैं :—

अवल सब जल्याँ जाके पद्मिन के घर।
अदब सो रख्या उसके पावाँ पो सर ॥
जोबन के मेहर सों थी मन में उमंग।
दरया जोश दिल का जवानी तरंग ॥
क्यों तुजते ऐ शहपरी नेक नाम।
सिक्या हंस चलन होर सनोबर क़याम ॥
यों दो दिन की दुनिया में दुख सब बिसार।
आनन्द कर ले सुट फिक्र गमते बहार ॥
कि कल परसों की आस चुप हवस।
खुशी जग में हमना यही दम है बस ॥
किसे क्या खबर है कि यों आसमाँ।
रच्या क्या है पर्दे में बाजी निहाँ ॥
हो गमते मुकत कर लेवे कुछ आज।
सुवाकिन देख्या है धरे रुच आज ॥
सुबह सासुरे जायगी नेह जोड़।
चले सब सगे होर माँ बाप छोड़ ॥

इशरती ने इसे केवल दक्खिनी में ही नहीं लिखा बल्कि फारसी में भी लिखा है। डा० ज़ोर का कथन है कि इन्होंने प्रसिद्ध हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पद्मावती (जायसी कृत) को फारसी मसनवी के रूप में हिजरी सन् 1110 अर्थात् 1690 ई० में लिखा था।[1]

वजदी

प्रसिद्ध विद्वान सैयद शमसुल्लाह कादरी के मतानुसार वजदी का मूल नाम

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 102

हिदायतुल्लाह खाँ था।[1] डा० ज़ोर, श्रीराम शर्मा और श्री हाशमी का कथन है कि इनका मूल नाम वजीहिउद्दीन था।[2] इस प्रकार कवि वजदी का मूलनाम संदिग्ध बना हुआ है। इनके निवास स्थान के सम्बन्ध में सैयद शमसुल्लाह क़ादरी ने लिखा है— "सूबा औरंगाबाद की सरकार थारूर में कीज नामी एक कस्बा आबाद है, वजही इसी कस्बे के रहने वाले थे।"[3] डा० ज़ोर ने भी श्री क़ादरी के इस मत का समर्थन किया है।[4] किन्तु श्रीराम शर्मा ने इनको आँध्र राज्य के कर्नूल का निवासी बताया है और आगे चलकर लिखा है कि इनकी कर्नूल में बहुत दिनों तक नवाबी रही है।[5] लेकिन श्री हाशमी का कथन है कि इनका पेशा हिकमत (वैद्य) था। इनका जीवन सूफियाना था। ये सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक चिन्तन को भलीभाँति जानते थे। वजदी एक खुशहाल, खुश फिकर और फारिगुलबाल (निश्चिन्त) कवि थे।[6] कवि के जन्म और मृत्यु का समय अज्ञात है।

रचनाएँ

(1) मख्ज़न-ए-इश्क, (2) पंछी बाछा और (3) मसनवी तुहफा आशिकाँ। इसके अलावा वजदी की कुछ ग़ज़लें भी मिलती हैं।

मख्ज़न-ए-इश्क

यह एक वृहद् ग्रन्थ है। यह रचना 'बाग़ जाँ फिज़ा' के नाम से भी जानी जाती है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1144 (1731 ई०) है। कवि ने इसका उल्लेख इन शब्दों में किया है:—

यो है बयाँ खात्मा जी शकर सूं बोल्या हूँ मैं।
तारीख जिसके खत्म का आया है 'बाग़ 'जाँफिज़ा'॥

एक अन्य स्थल पर कवि इस प्रकार कहता है:—

अगर तारीख का है दिल मने इश्क।
कर अबजद सूं हिसाब मख्ज़न-ए-इश्क॥

---

1. सैयद शमसुल्लाह कादरी—उर्दू-ए-क़दीम, पृ० 103
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 107
   नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 351
   डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 401
3. सैयद शमसुल्लाह क़ादरी—उर्दू-ए-कदीम, पृ० 103
4. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी जोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 107
5. श्रीराम शर्मा—दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० 493
6. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 351

निकाल इसते अदद वजदी के तेवीस ।
रहेंगे तब ग्यारह सौ चौव्वालीस ।।

कवि ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि इसकी रचना मैंने शाह सादिक़ औरंगाबादी के अनुरोध पर की है ।

कथा-सार

शाह फरीदून के बाद ईरान का शासक मनोहर हुआ । वह अपने मन्त्री बेदार दिल से बहुत प्रेम करता था । सुलतान बेदार दिल से एक क्षण भी अलग रहना पसंद नहीं करता था । एक दिन नवरोज के उत्सव के अवसर पर बेदार दिल ने सैर व शिकार के लिए अनुमति माँगी । बड़ी मुश्किल से सुलतान ने तीन दिन की आज्ञा दी । शाह ने अपना घोड़ा भी दिया और बेदार दिल सुन्दर वन में शिकार के लिए पहुँचा । वहाँ पर इसने एक गोरखर का पीछा किया और मार्ग भूल गया । घोड़े को बाँध कर एक स्थान पर सो गया । स्वप्न में देखता है कि वह एक भव्य महल में प्रवेश करता है और सुन्दर-सुन्दर रमणियाँ उसका स्वागत करती हैं और वे चित्रशाला में ले जाकर एक चित्र से पर्दा हटाकर उसे शाहे चीन की पुत्री परीरुख का दर्शन कराती है । बेदार दिल उस पर आसक्त हो जाता है । आँखें खुलते ही वह विरह में पड़ जाता है । साथी ढूंढ़ते हुए आये और उसका समाचार पूछा । वह सब बातें कहता है और परीरुख को खोजने के लिए उद्यत होता है । अपने भाई हमराज के साथ अनेक विपत्तियों का सामना करता हुआ अपनी प्रेयसी को खोजता है ।

मार्ग में उसे खाबिर की सेना मिलती है । वे अपने सुलतान ज़मीरा शाह की मृत्यु के बाद एक मुसाफिर ढूंढ़ने निकले थे कि उसे बादशाह बनायें । सबसे पहले उन्हें बेदार दिल ही मिला और उन्होंने अपने रीति-रिवाजों के अनुसार उसे शासक बनाया तथा हमराज़ मन्त्री बनकर राजकाज चलाने लगा ।

उधर शाह मनोहर बेदार दिल के लिए बेचैन था । शाह मनोहर ने बेदार दिल को खोजने के लिए उसके चचेरे भाई हमराज़ को भेजा । वह चीन से होता हुआ खाबिर में बेदार दिल के पास पहुँचा ।

इधर हमराज़ और महर अफ़ज़ा से और हमसाज व शमा बानूँ से प्रेम हो जाता है ।

बेदार दिल रात को स्वप्न में परीरुख को देखता है और अपने को व्यक्त करता है तो परीरुख उसके प्रेम को कच्चा बताती है और कहती है कि तुम तो तख्त व ताज के पीछे प्रेम भूल बैठे हो । बेदार दिल कामकाज छोड़कर प्रेमिका की खोज में निकल पड़ा । अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए कंचन नगर पहुँचा । वहाँ पर शाह चीन के बड़े भाई खक़ाँ चीन की पुत्री परीनोश को एक जादूगर ने बन्दी बना रखा था । उसने उस जादूगर से परीनोश को मुक्त कराया और उसने परीरुख से मिलने का वचन दिया । वहाँ का सारा खजाना लेकर व्यापारी सैद के साथ चीन

की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग में कंचन दुर्ग के जादूगर का बड़ा भाई मकूकाल अपने दलबल सहित भाई का बदला चुकाने के लिए उस पर आक्रमण करता है किन्तु बेदार दिल की विजय होती है। चीन पहुँचने पर सैद शाहे चीन को परीनोश के मुक्त होने का समाचार भिजवाता है। शाहे चीन उनका स्वागत करता है और बेदार दिल की वीरता पर प्रसन्न होता है। इसी बीच छज्जे पर खड़ी परीरुख को देखकर बेदार दिल मूर्छित हो जाता है। बुद्धिमान सैद बात को बना लेता है और उसे उठाकर अपने निवास-स्थान पर ले जाता है।

उधर परीनोश ने अपने बन्दी होने और बेदार दिल की वीरता का सारा वृत्तान्त परीरुख को सुनाया। लेकिन उसने परीरुख से बेदार दिल के आसक्त होने की बात नहीं कही।

दूसरे दिन बादशाह के आमन्त्रण पर सैद, बेदार दिल के साथ दरबार में पहुँचा। परीरुख की दृष्टि बेदार दिल पर पड़ी और मुग्ध हो गई। सुअवसर पाकर परीनोश ने परीरुख से बेदार दिल के प्रेम की बात कह सुनाई। फिर परीनोश ने परीरुख से बेदार दिल के मिलाने का वचन दिया।

बेदार दिल रात के समय बागे तूबी की तरफ घूमा और कमन्द फेंक कर बाग में घुस गया। एक बार वादक का साज लेकर उस पर अपने दिल के दर्द भरे दास्तानों को गुनगुनाया। परीनोश समझ गयी और परीरुख को एकान्त स्थान में भेजकर दोनों को मिलाया तथा दोनों की बेसुधी में रात कट गयी।

शाहे चीन को जब यह समाचार मिला तो उसने कपट से इसे बन्दी बना लिया, किन्तु माहरुख की सहायता से वह मुक्त हो गया। माहरुख ने उसे शास्त्रादि भी दिए।

अन्त में शाहे चीन और बेदार दिल में युद्ध हुआ और बेदार दिल की विजय हुई। सैनिक शाहे चीन मग़फ़ूर को पकड़ कर बेदार दिल के पास लाये और बेदार दिल ने उसे क्षमा करके उसका राज्य वापस कर दिया।

बेदार दिल और परीरुख का विवाह सम्पन्न हुआ और जानबाज़ का परीनोश से विवाह हुआ। स्वदेश लौटते समय मार्ग में रुकसार ज़मीरा शाह की पुत्री बानूँ का विवाह दमसाज़ से और महर अफ़ाज का विवाह हमराज से कराया तथा दमसाज को वहाँ का शासक बनाकर हमराज़ को साथ लेकर स्वदेश लौट आया।

'मख्ज़न-ए-इश्क' की कथा सुखान्त है। इसकी भाषा शैली सरल, सरस और प्रांजल है। श्री हाशमी का कथन है कि यह वजदी की मौलिक रचना है, किन्तु सैयद शमसुद्दीन कादरी का मत है कि यह फारसी ग्रन्थ का अनुवाद है। कवि वजदी ने स्वयं अपनी रचना को अनुवाद बताया है। वजदी के शब्दों में :—

निझाया जू उसे मैं शौक़ सू खोल।
दिस्या रोशन मुजे खुरशीद की तोल॥

न जानूं मैं कि है यह शेर किसका।
कि दीबाचा न था इज़हार तिसका।
न उसे मैं जानकर माशूक प्यारा।
पिना दखनी लिबास उस कूँ सँवारा॥

तोहफा-ए-आशिकाँ

यह रचना शेख फरीदुद्दीन अत्तार की मसनवी 'गुल व हूरमज' का अनुवाद है जो खुसरोनामा तथा खुसरो व गुल के नाम से भी जानी जाती है। इसका वजदी ने शाब्दिक अनुवाद न करके स्वतन्त्र रूप से किया है। इसमें कई स्थलों पर अपनी ओर से भी जोड़ा गया है। कवि ने स्वयं रचना काल लिखा है जो हिजरी सन् 1153 (1738 ई०) है :—

दिसे इसकी तारीख मुज कूँ अयाँ।
पछा नवा से तुहफा आशिकाँ॥

इस कथात्मक काव्य का प्रथम छन्द इस प्रकार है :—

करूँ पाक दिल होर ज़बाँ पाक सूँ।
सना पाक इस आशिक पाक कूँ॥

वजदी ने स्वयं लिखा है कि एक बार मुझे विचार आया कि मैं शेखफरीदुद्दीन अत्तार की प्रसिद्ध रचना 'गुल व हूरमज़' का दक्खिनी में अनुवाद करूँ :—

किस्सा दाद सबा मुज कूँ यक बार का।
गुल व हूरमज उस शेख अत्तार का॥
हुआ शौक़ पैदा मुझे बाद अजाँ।
कि दकनी जबान सूँ करूँ तरजुमा॥

यद्यपि वजदी ने इसे अनुवाद कहा है किन्तु इस काव्य का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि मूल कथा तो अवश्य शेख अत्तार की रचना से ली है किन्तु कवि ने इसमें अपनी कल्पना का इतने सुन्दर ढंग से समावेश किया है कि रचना में एक नूतनता आ गई है।

कथा-सार

रोम के शासक केसर के कोई सन्तान न थी और दुखी रहा करता था। ज्योतिषियों ने बताया कि उसके घर में पुत्र जन्म लेगा किन्तु उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। राजा की दृष्टि एक दिन शाही महल की एक सुन्दरी पर पड़ी और उसने उसे अपने हरम में दाखिल कर लिया। उससे उसकी आशा पूरी होने के लक्षण दिखायी देने लगे। केसर को एक सप्ताह बाद किसी लड़ाई पर जाना पड़ा। पीछे बड़ी रानी

सौत के इस गौरव को सहन न कर सकी और उसने दासी को बुलाकर कहा, इसे ऐसी वस्तु खिलाओ जिससे इसका गर्भपात हो जाये। दासी ने जाकर छोटी रानी से कहा, वह उसके घर पर चलकर रहे और प्रसूति के बाद वह बच्चे का पालन-पोषण किसी अन्य देश में जाकर करे और केसर के लौटने पर वह बच्चे को वापस लाये। छोटी रानी ने दासी की बात मान ली। दासी प्रसूति के बाद बच्चे को लेकर विपत्तियों का सामना करती एक राजा के महल में पहुँची। एक माली ने आश्रय दिया, किन्तु दासी की मृत्यु हो गयी और वह मरने से पहले माली को बच्चे को सौंपते हुए पहचान के लिए एक अँगूठी दी और कहा, बच्चे के बड़े होने पर माली उसे रोम के शासक केसर के पास पहुँचा दे वह उसे मालामाल कर देगा। बच्चा हुरमज पांच वर्ष का हुआ तो खोजान के शासक ने उसे अपने पुत्र बहराम के लिए मित्र बनाकर समान प्यार देना आरम्भ कर दिया और बहराम के साथ शिक्षा-दीक्षा पाकर हुरमज हर कला में निपुण हो गया।

शाह खोजान की पुत्री गुलरुख अत्यन्त सुन्दरी थी और उसके सौन्दर्य की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई थी। शाहे असफहान उस पर आसक्त है। सन्तोषजनक उत्तर न मिलने पर वह बहजाद के साथ सेना भेजता है कि खोजस्तान तंग आकर गुलरुख का विवाह कर दे।

उधर राजकुमारी गुलरुख और हुरमज़ का प्रेम हो गया है और दोनों एक दूसरे से बराबर रात में मिलते हैं।

बहजाद जब सेना लेकर पहुँचा तो खोजान के राजा ने विवाह की बात मान ली, किन्तु राजकुमारी गुलरुख के आग्रह से विवश होकर उसे युद्ध करना पड़ा। खोजान के राजा की पराजय के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे थे कि इतने में हुरमज ने आगे बढ़कर बहजाद का सिर काट लिया और युद्ध का रुख ही बदल गया। खोजान का राजा हुरमज की वीरता को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपने साथ रखने लगा।

इधर रोम का राजा केसर खोजान के शासक को कर के लिए धमकी देता है। इस पर खोजान के राजा ने हुरमज को रोम भेजा। जब हुरमज वहाँ पहुँचता है तो केसर उसकी भुजा पर अपने खानदान का चिह्न देखकर पहचान लेता है। उसे पूरी कहानी तो पहले ही मालूम हो गयी थी। राजा केसर ने माली को बुलवाया और माली ने अंगूठी देकर सारी बात बतायी। इसके बाद सारे शहर में आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा।

उधर हुरमज की अनुपस्थिति में शाहे असफहान खोजस्तान पर आक्रमण करके और सारे नगर को नष्ट करके गुलरुख को लेकर चला गया। जब हुरमज लौटा तो यह समाचार पाकर बहुत दुखी हुआ। वह असफहान पर आक्रमण करने के लिए सेना लेकर चल पड़ा किन्तु मार्ग में सेना तूफान के कारण बिखर गई।

इधर राजकुमारी गुलरुख असफहान में बीमार हो जाती है। वैद्य दवा करके हार जाते हैं। हुरमज हकीम (वैद्य) के वेश में गुलरुख की चिकित्सा के लिए पहुँचा। गुलरुख उसे पहचान जाती है और अब दोनों दासी के सहारे रात में मिलने लगते हैं।

हुरमज बड़ी चतुराई से विपत्तियों को सहता हुआ गुलरुख को लेकर रोम पहुँच गया। इसके आगमन पर पूरे नगर में प्रसन्नता मनायी गई।

हुस्ना जो हुरमज के प्रेम में बँधी थी साथ ही आयी। अपने प्रति हुरमज को उदासीन देखकर उसने दिल अफ्रोज को हुरमज के सारे वृत्तान्त बता दिये। हुस्ना की मन्त्रणा से शाहे असफहान ने दो बदमाशों को भेजा और हुस्ना की सहायता से गुलरुख को सन्दूक में भरकर असफहान की ओर प्रयाण किया। दुर्भाग्य से नौका मार्ग में ही टूट गई और सन्दूक चीन के बन्दरगाह पर जा पहुँची।

इधर गुलरुख के गुम होने का शोर मच गया। हुस्ना पर दबाव डाला गया और उसने विवश होकर सारा वृत्तान्त बता दिया। रोम के शासक ने असफहान के राजा के पास दूत भेजा, किन्तु असफहान के राजा ने दूत का अनादर करके वापस भेज दिया। इससे रोम का शासक क्रुद्ध हो गया और दोनों में युद्ध छिड़ गया। अन्त में असफहान के राजा की हार होती है। हुरमज दिल अफ्रोज से मिलती है और बताती है कि गुलरुख वहाँ नहीं है। हुरमज उसे खोजने के लिए पश्चिम की ओर निकलता है। बहुत कठिनाइयों को सहने के बाद वह एक दरवेश की सलाह पर रोम वापस आता है और उसी दरवेश की सलाह पर गुलरुख की प्रतीक्षा करता है।

उधर गुलरुख की सन्दूक माझी के हाथ लगती है और वह उसकी सेवा सुश्रुषा करके स्वस्थ करता है। माझी की बुरी दृष्टि देखकर गुलरुख उसका वध कर देती है और पुरुष भेष में वहाँ से निकल जाती है। वह फिर चीन के राजा के चंगुल में फँस जाती है। एक सिपाही की अनुकम्पा से वह हुरमज को सन्देश भेजने में सफल हो जाती है।

हुरमज कठिनाइयों के बाद गुलरुख को फिर प्राप्त कर लेता है। रोम लौटने पर विवाह सम्पन्न हुआ। कवि प्रार्थना के साथ रचना का अन्त करता है।

कथा संगठन की दृष्टि से कवि को पूर्ण सफलता मिलती है। कवि ने अपने पात्रों के चरित्र विकास में स्वाभाविकता का परिचय दिया है। भावात्मक वर्णन के स्थलों पर कवि ने अपनी मौलिक उद्भावना का परिचय दिया है। इसका आध्यात्मिक पक्ष सशक्त है तथा काव्य की भाषा शैली सुन्दर है।

पंछी बाछा

वजदी ने ईरान के प्रसिद्ध सूफी साधक कवि फरीदुद्दीन अत्तार की प्रसिद्ध रचना 'मंतिकुतैर' अथवा 'मुकामते तियूर' को हिजरी सन् 1146 (1732 ई०) में

दक्खिनी में अनूदित किया।[1] कवि ने रचना के अन्त में इस प्रकार लिखा है :—

असल में यो था कलाम फारसी।
अहले मानी को मिसाल आरसी॥
खुशतरीं तसनीफ शेख नामदार।
पेशवा-ए-आरिफां रोजगार॥
शेख साहब दिल फरीद नामूर।
खास जिनका है लक़ब अत्तार कर॥
था वले जूं फारसी में यों क़लाम।
कम समझ सकते थे इसको खास व आम॥
गरचे मैं भी कुछ नहीं मानी सनास।
कान मुझे उसके समझने का क़्यास॥
लेकिन इसके देखकर दिलचस्प बोल।
यकबैक यूं दिल मने आया कलूल॥
जो मवाफ़िक़ फहम अपने के ज़ईफ़।
इस किताब खास का नज़्म शरीफ॥
किस्सा कर दकनी ज़बान में लेके आऊँ।
तार है दुनिया मने मेरा भी नाव॥[2]

इससे स्पष्ट होता है कि कवि ने एक प्रसिद्ध फारसी काव्य का अनुवाद दक्खिनी में इसलिए किया कि जनसाधारण इस रचना का आनन्द ले सके और मेरी ख्याति भी विश्व में हो।

कथा-वस्तु

एक समय की बात है कि समस्त संसार के पक्षी एक स्थान पर एकत्र हुए और आपस में कहने लगे कि उनका कोई राजा नहीं हालांकि संसार की हर सृष्टि का कोई न कोई राजा होता है। हुदहुद नामक पक्षी ने इसे गलत बताया और कहा, हमारा शासक तो अनादि और अनन्त है। मैंने हज़रत सुलेमान के संदेश वाहक का काम किया था और उन्होंने तुष्ट होकर उसे सीमुर्ग का पता बताया था। हमारा राजा सीमुर्ग सात समुद्र पार कोह काफ में रहता है यदि तुम चाहो तो मेरे साथ आ

---

1. जब किया तारीख का दिल में हिसाब।
   तब हुआ मीज़ान किया खासा किताब॥
   (खासा शब्द के अक्षरों की गणना से हिजरी सन् 1146 होता है और यही पुस्तक का रचना-काल है।)
2. सैयद मुहम्मद (सम्पादक)—पंछी बाछा, पृ० 146

सकते हो। कुछ पक्षियों ने पूछा, जब वह सर्वत्र है तो उसका अपना स्थान कैसा ? मुर्ग जीरक ने उत्तर दिया, एक दिन सीमुर्ग उड़ा जा रहा था कि उसका एक पंख गिर गया और यह सृष्टि उसी पंख का विस्तार है।

हुदहुद पक्षियों के मन में प्रेम-भाव जगाने के लिए सीमुर्ग के रूप सौन्दर्य और वैभव तथा प्रभाव का वर्णन करता है। हुदहुद के कथन से वे सब बहुत प्रभावित हुए और सीमुर्ग देखने के लिए बेचैन होने लगे। हुदहुद मार्ग दर्शक के रूप में सभी पक्षियों को लेकर सीमुर्ग को देखने के लिए चल पड़ा। चलते-चलते मार्ग का अन्त ही नहीं होता तो कुछ पक्षियों ने आपत्ति की। बुलबुल ने कहा, मैं फूल के बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता। हुदहुद ने कहा, फूल सुन्दर है पर मुर्झा जाता है और फूल के प्रेम ही ने मुझे बरबाद कर दिया है।

हुदहुद ने एक कहानी सुनायी—एक राजकुमारी सैर कर रही थी कि किसी फकीर की नज़र उस पर पड़ी और वह उस पर मुग्ध हो गया। राजकुमारी हँसती हुई चली गई। अब फकीर वियोग में तड़पने लगा। एक दिन फकीर ने राजकुमारी से पूछा, तुम मुझको देखकर क्यों हँसी ? राजकुमारी ने उत्तर दिया, तुम्हारी मूर्खता पर, तुम कहाँ और मैं कहाँ ?

तोता बोला, मुझे अमृत पीना है। हुदहुद ने कहा, अरे अमर बनकर क्या करोगे ? अपने प्रिय के चरणों पर शरीर न्योछावर कर दो।

इसके बाद मोर ने कहा, स्वर्ग में मुझसे गलती हो गयी थी कि मैंने साँप से मित्रता कर ली थी। मुझे मेरे घर पहुँचा दो। हुदहुद ने उत्तर दिया, घर से पहले घर के मालिक को खोजो।

हुदहुद ने एक कहानी सुनायी—शिष्य ने गुरु से पूछा, ईश्वर ने आदम को स्वर्ग से क्यों निकाला ? गुरु ने उत्तर दिया, जो ईश्वर को छोड़कर अन्य को मानता है, ईश्वर उससे पद छीन लेता है।

बतख ने कहा, मैं सबसे स्वच्छ हूँ धरती पर पाँव कैसे रखूँ ? हुदहुद ने कहा, पानी में रहने से ही कोई स्वच्छ नहीं होता।

इसके बाद पक्षियों ने कहा, हम निर्बल हैं, हममें शक्ति कहाँ से आयेगी ? हुदहुद ने कहा, तुम लोग सृष्टि को चाहते हो स्रष्टा को नहीं।

एक कहानी सुनाई—एक अत्यन्त सुन्दर बादशाह था। उसे देखकर सभी लोग मुग्ध हो जाते थे। इसलिए वह पर्दे में निकलता था। उसने महल के आगे एक दर्पण लगाया और उसी में लोग बादशाह को देखते। वह दर्पण तुम लोगों का हृदय है उसे स्वच्छ बनाओ।

हुदहुद ने एक अन्य कहानी सुनायी—सुलतान महमूद अपने गुलाम अयाज़ को बहुत चाहता था। एक बार अयाज़ बीमार पड़ा। उसका समाचार लेने के लिए सुलतान ने आदमी को भेजा। जब आदमी अयाज़ के पास पहुँचा तो देखा कि वहाँ सुलतान

पहले से उपस्थित है। सुलतान ने समझाया कि मेरे महलों से अयाज़ के घर तक गुप्त मार्ग है, मैं उसी से आया जाया करता हूँ।

हुदहुद ने इस कहानी का तात्पर्य समझाते हुए कहा—परमात्मा के बहुत से मार्ग हैं और वह हृदय के निकट है।

इसी प्रकार हुदहुद ने कई कहानियाँ सुनाई।

हुदहुद उन्हें सात वादियों का परिचय देता है—(1) वादी तलब (खोज), (2) वादी इश्क (प्रेम), (3) वादी मारिफ़त (ज्ञान), (4) वादी इस्तग़ना (नि:संगता) (5) वादी तौहीद (एकत्व), (6) वादी हैरत (आश्चर्य) (7) वादी फ़िक्र व फना। अन्त में तीस पक्षी बड़ी कठिनाई से सीमुर्ग के दरबार में पहुँचते हैं।

प्रतीकात्मकता

सूफ़ी सिद्धान्तों पर सीधा प्रकाश डालने वाली यह प्रेम गाथा है जिसमें गुरु द्वारा शिष्यों में प्रेम भाव जाग गया है और उनका उचित मार्ग दर्शन बड़े ही सुन्दर एवं प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

हुदहुद इसमें गुरु का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त अन्य पक्षी—मोर, बगुला, बतख, उल्लू, हुमा और बाज आदि अनेक विचारों एवं आकांक्षाओं वाले साधकों अथवा शिष्यों के प्रतीक हैं। सीमुर्ग ईश्वर का प्रतीक है। इसमें बुलबुल एक प्रेमी का प्रतीक है जो नश्वर सौन्दर्य अथवा सांसारिकता में डूबा रहता है।

इसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि जब साधक यात्रा पर निकलता है तो गुरु उसे साहस दिलाता हुआ साधना के मार्ग पर उसे अग्रसर करता है और साधक अपने मन्तव्य पर पहुँच जाता है।

काव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इसमें उच्चकोटि के काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। भाषा की सहजता, सरलता तथा सरसता सर्वत्र दर्शनीय है। अलंकारों की विविधता से काव्य में निखार आया है। सम्पूर्ण काव्य प्रतीक पर ही आधारित है। इस काव्य में समसामयिक संस्कृति और सभ्यता का समावेश है।

हुनर

इनका मूल नाम सैयद अहमद था और हुनर काव्य नाम। ये अपने पिता सैयद मुहम्मद इशरती की भाँति सूफी विचारधारा के व्यक्ति थे। दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्री हाशमी का कथन है—"इन्होंने अपने यादगार में कई मसनवियाँ छोड़ी हैं।"[1] परन्तु लेखक को इनकी केवल एक रचना 'नेह दर्पण' प्राप्त हो सकी है।[2] 380 पृष्ठों के इस काव्य में लगभग 6460 शेर हैं। कवि ने अपने काव्य का

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 473
2. पांडुलिपि, क्रम संख्या 161, सालार जंग म्युज़ियम पुस्तकालय, हैदराबाद।

आधार एक फारसी गद्य रचना को माना है।[1] काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1144 (1731 ई०) लिखा है :—

सट्या मुज नेह् दर्पन ने यू झनकार।
इग्यारह् सौ पो थे चालीस पर चार॥

यद्यपि कवि ने अपनी रचना का आधार फारसी की एक गद्य रचना को माना है किन्तु इन्होंने यह भी लिखा है कि निशाती की प्रसिद्ध रचना 'फूलबन' ने मुझे बहुत प्रभावित किया और मैंने अपनी रचना का नाम 'नेह् दर्पण' रखा है :—

मुझे इब्न निशाती का सुखन खूब।
लाया दिल में बहुत महबूब व ममरूब॥
किताब उसकी जो है नाम उसका फूलबन।
नजाकत की है वह गुलबन का गुलशन॥
मुझे जो धानु उसका खूब आया।
कला कूं भी उसी गत पर नचाया॥
वह गुलशन का रच्या नाँव फूलबन।
रख्या मैं नाव इसका नेह् दर्पन॥

'नेह् दर्पण' नामक काव्य को कवि ने खंडों में विभाजित किया है और उनके शीर्षकों को छन्दों में लिखा है। इसकी मूल कथा के साथ अन्य प्रासंगिक कथायें भी हैं किन्तु कवि ने सफलतापूर्वक कथा का विस्तार किया है। कथा के प्रवाह में किसी प्रकार का दोष नहीं आने पाया है। भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से 'नेह् दर्पण' एक सुन्दर एवं सफल रूपात्मक प्रेम काव्य है। इस काव्य में कवि ने सूफी विचारधारा को व्यक्त किया है। सम्पूर्ण काव्य का आध्यात्मिक पक्ष स्पष्ट एवं प्रभावी है। काव्य की भाषा-शैली और भाव को स्पष्ट करने वाला एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

बिछाये चाँदनी का फर्स निर्मल।
कि जैसा चाँदनी में ते जफा जल॥
बिछाये सोज़-ए-निहा जरबाफगी साफ।
है इस गुल सूरज-ए-बुलबुल को इन्साफ॥

× × ×

तबक़ तूर की खुशबू सूं भर।
हजारों चाँद थे ज्यों उन्हीं के ऊपर॥

---

1. इबारत नसूर इसकी फारसी थी।
पिरत सुन्दर सपन की आरसी थी॥—'नेह् दर्पण'

कथा-सार

अवध का राजा राजपति नि:सन्तान होने के कारण दुखी रहा करता था किन्तु एक दिन एक योगी और उसके आशीर्वाद से उसे पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम राजकुँवर रखा गया। धीरे-धीरे राजकुँवर बड़ा हुआ। एक रात उसने स्वप्न देखा कि वह अपने मित्र मंत्री पुत्र चन्द सहित सिंहल द्वीप पहुँच गया है और वहाँ राजकुमारी तथा प्रधान की पुत्री कामकला राजोद्यान में थी। राजकुमारी को देखकर राजकुँवर मूर्छित हो गया। राजकुमारी उसे अपनी जंघाओं पर सुलाकर सचेत करने का उपचार करती है। राजकुँवर सजग हो गया, इस पर रानी राजकुँवर को दण्डित करने ही वाली थी कि कामकला ने उसे बचा लिया।

राजकुँवर अपने स्वप्न की बात को अपने मित्र चन्द से प्रकट करता है। सम्पत नामक ब्राह्मण, जो धर्म की साक्षात मूर्ति था, ने सिंहल द्वीप के परिचय सहित कामकला के सौन्दर्य का वर्णन किया और यह भी बताया कि कामकला स्वप्न देखकर आप पर मुग्ध है एवं हर वर्ष यात्रा के दिन देवल में जाता है।

राजकुँवर के विवश करने पर राजा ज्योतिषियों से परामर्श करके उसे यात्रा की अनुमति देता है और राजकुँवर कामलता को खोज में निकल पड़ता है। मार्ग में तूफान आता है और नौका टूट जाती है। सभी साथी बिछुड़ जाते हैं। राजकुँवर एक तख्ते के सहारे रानी इन्द्रावती के द्वीप में पहुँचता है जिसका नाम शहर मामूर है। रानी अपनी सखी पद्मावती के संरक्षण में राजकुँवर को रखती है। एक दिन राजकुँवर ने स्वप्न में देखा कि रानी कामलता उसे नये प्रेम सम्बन्ध जोड़ बैठने का उपालम्भ देती है। राजकुँवर विस्मय विभोर हो जग जाता है। पद्मावती के पूछने पर, दुस्वप्न देखने का बहाना बनाता है।

दूसरी रात, राजकुँवर का रानी के सहवास में मन नहीं लगता और बहाना बनाकर उद्यान में एक पेड़ के नीचे जाकर सो जाता है। कोहकाफ की परियों की शहजादी गुलदाम उसे उठा ले जाती है। राजकुँवर को जब चेतना आती है तो वह विह्वल हो जाता है। गुलदाम उससे कुछ समय अपनी इच्छा पूरी करने को कहती है और वह भी उसके बाद उसकी इच्छा पूरी करेगी। जब सुधर देव को यह मालूम होता है तो वह राजकुँवर को एक द्वीप में पहुँचा देता है।

राजकुँवर की भेंट एक वृद्ध से होती है। राजकुँवर उसके चंगुल में फँस जाता है किन्तु युक्ति पूर्वक वह उसका वध कर देता है और अनेक बंदियों को मुक्त कराता है। उन्हीं में उसका मित्र चन्द भी था। राजकुँवर चन्द को पाकर प्रसन्न होता है। दोनों विश्राम कर रहे थे कि एक मधुर भाषी तोता उधर आया। उसके पैर में एक धागा बाँधा था। राजकुँवर ने धागे को तोड़ दिया। वह मनुष्य बन गया। वह राजकुँवर का मित्र विद्याचन्द था। उसने अपनी कहानी सुनाई। चन्द ने देव के बाल और विद्याचन्द ने धागा राजकुँवर को दिया।

कवि ने राजकुँवर के साथी धन्नतरि वैद्य की कथा कही है। उधर राजकुँवर अपने साथी मानिक चन्द से मिलता है। राजा स्वयं राजकुँवर को राज महल में ले जाता है। रात्रि के समारोह में राजकुँवर गायक के स्वर को पहचान लेता है। भेंट होने पर विदित होता है कि राजकुँवर का गायक रसरंग है। कवि ने मानिक चन्द और रसरंग की कहानी कही है।

उधर ब्राह्मण सम्पत चीन पहुँचा। वहाँ व्यापारियों के साथ सिंहल गया और उत्सव के दिन मन्दिर में कामलता की प्रतीक्षा करता है। जब कामलता आती है तो वह उसकी प्रार्थना सुनता है और उसे राजकुँवर की कहानी सुनाता है। कामलता के आदेश पर वह राजकुँवर को खोजने निकलता है। राजकुँवर के सिंहल पहुँचने का समाचार कामलता को देता है और उसे मन्दिर में बुलाता है।

राजकुँवर सिंहलद्द्वीप पहुँचा। विद्याचन्द को धागे से तोता बनाया और कामलता के पास संदेश भेजा। विद्याचन्द संदेश देकर स्वयम्बर का समाचार लाता है। राजकुँवर ने विद्याचन्द को तुरन्त फिर भेजा ताकि वह उसे स्वयम्बर में पहचान सके और कहलवाया कि धन्नतरि और सम्पत उसके साथ रहेंगे तथा विद्याचन्द तोते के रूप में कंधे पर।

राजकुँवर स्वयम्बर में दरवेश के वेश में पहुँचा। कामलता को देखकर राजकुँवर सुध खो बैठा, किन्तु मित्र ने उसे संभाल लिया। कामलता उसे वर माला पहनाती है। शोर मच जाता है। तीन बार उसे वर माला पहनाने का आदेश मिलता है क्योंकि कहीं भूल से कामलता ने फकीर को वर माला पहना दिया हो। लेकिन कामलता ने तीनों बार वह वरमाला राजकुँवर को पहनाई।

लोगों ने राजकुँवर को जादूगर बताकर कोलाहल किया और राजा ने साथियों सहित उसे बन्दी बना लिया। देव के बाल के सहारे वे बन्दीगृह से बाहर निकल आते हैं और एक बड़ी सेना जुटाकर सिंहल की ओर बढ़ते हैं।

राजा, जयसिंह को युद्ध के लिए भेजता है और वह पराजित हो जाता है और बन्दी बना लिया जाता है। चन्द उससे रहस्य प्रकट कर मुक्त कर देता है। वह राजा से उस रहस्य को बताता है। इस पर राजा प्रसन्न होता है और राजकुँवर से कामलता का विवाह सम्पन्न होता है और चंद से कामलता का। दोनों दम्पति स्वदेश वापस आते हैं।

'नेह दर्पण' के पात्रों का चरित्र उच्चकोटि का नहीं बन सका है। कहानी का नायक राजकुँवर दो बार स्त्रियों के सम्पर्क में आकर अपनी सुरक्षा के लिए उनसे सम्भोग करता है। इस काव्य के नायक के चरित्र में वह विशेषता नहीं आ पायी है जो अन्य सूफ़ी काव्यों में पायी जाती है। नायक का चरित्र प्रभावशाली नहीं है। सदैव अन्य पात्र उसकी सहायता करते हैं और यत्र तत्र कथानक में अलौकिक प्रसंग भी मिलते हैं।

कथानक में अनेक अन्तर्कथाएँ हैं जो बड़ी कुशलता से परस्पर गुम्फित हैं। इस कथानक से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को पद्मावत का भी कथानक ज्ञात था। सिंहल द्वीप का वर्णन, राजकुमारी का प्रति वर्ष देवालय जाना और तोते का संदेशवाहक होना आदि बातें पद्मावत से मेल खाती हैं।

आरिफुद्दीन 'आज़िज़'

आरिफुद्दीन खाँ 'आज़िज़' दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि थे। इनके पिता आलमगीर औरंगजेब के शासन काल में बलख से भारत आये थे। आज़िज़ का जन्म औरंगाबाद (महाराष्ट्र) नामक शहर में हुआ था। युवावस्था में इन्हें आसफिया दरबार में आश्रय मिला तथा मनसबदारी के पद पर नियुक्ति मिली। फौज के बख्शी भी बनाये गये। कवि आज़िज का देहान्त हिजरी सन् 1178 में हुआ।[1] इन्हें फारसी और दक्खिनी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था और दोनों भाषाओं के उच्चकोटि के कवि भी थे। इनकी दक्खिनी भाषा में दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—(1) लाल व गोहर और (2) दीवान।

'लाल व गौहर' का रचना-काल संदिग्ध है। कवि ने रचना-काल नहीं दिया है और न ही तत्कालीन शासक की प्रशंसा की है। श्री हाशमी ने अनुमान लगाया है कि कवि ने मसनवी 'लाल व गोहर' की रचना हिजरी सन् 1150 के बाद की होगी।[2] डा० गोपीचन्द नारंग का अनुमान है कि इसका रचना-काल हिजरी सन् 1129 के आस-पास होगा।[3] श्री हाशमी ने पहले कहा है कि कवि आज़िज को आसफिया दरबार में आश्रय मिला था जहाँ इसका बहुत सम्मान था। परन्तु कवि ने किसी भी शासन की प्रशंसा नहीं की है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः कवि ने इसकी रचना आसफिया दरबार में प्रवेश पाने से पहले की होगी।

कवि आज़िज़ अपने काल का प्रसिद्ध साहित्यकार था और इनकी 'लाल व गोहर' नामक रचना उस समय बहुत प्रसिद्ध रही थी। प्रसिद्धि का स्पष्टीकरण इससे होता है कि इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ केवल भारत में ही नहीं विदेशों में भी मिलती हैं।

कवि ने स्वयं कथा का आधार नहीं बताया है केवल यह लिखा है कि एक मित्र से कथा सुनी थी किन्तु श्री हाशमी का कथन है कि कवि ने इसे फारसी काव्य से अनुवाद किया है।[4] यद्यपि 'लाल व गोहर' नामक काव्य छोटा है किन्तु अत्यन्त

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 420-21
2. नसीरुद्दीन हाशमी—यूरोप में दकनी मखतूतात, पृ० 526
3. डा० गोपीचन्द नारंग—उर्दू मसनवियाँ, पृ० 76
4. नसीरुद्दीन हाशमी—यूरोप में दकनी मखतूतात, पृ० 526

सुन्दर एवं प्रभावशाली है। इसमें कवि की निजानुभूति है। इन्होंने स्पष्ट किया है कि इश्क मजाज़ी, इश्क हक़ीक़ी तक पहुँचने में सहायक होता है :—

कलाम-ए-इश्क है पुर शोर सब में।
बयान-ए-इश्क है पुर सोज़ सब में।।
खुदाई इश्क से है इश्कारा।
दो आलम इश्क का है यक सारा।।
भली है सब तरह से इश्क बाजी।
हक़ीक़ी कर दिखाता है मजाज़ी।।

कथा-सार

बंगाल के राजा जमरद शाह का पुत्र लाल एक रात समारोह के पश्चात् मदिरा के नशे में चूर था। इस समय परियों का एक समूह उधर से गुज़र रहा था। परियाँ उसके सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गयीं और राजकुमार को पलंग सहित राजकुमारी की तुलना के लिए उठा ले आईं और दोनों को सचेत कर दिया। दोनों परस्पर परिचय देते हैं। किन्तु जब दोनों फिर सो गये तो परियों ने राजकुमार को उठाकर पुनः उसके स्थान पर पहुँचा दिया। जब राजकुमार और राजकुमारी अपने-अपने स्थान पर जगते हैं तो दोनों विरह विह्वल हो जाते हैं। राजकुमारी का पिता जवाहर शाह अपनी पुत्री गौहर को कारागार में डाल देता है।

उधर राजकुमार योगी वेश में गौहर की खोज में निकल पड़ा। राजकुमार भटकते-भटकते हीरा के महल के पास थक कर सो जाता है। जब हीरा उसे देखती है तो उस पर आशक्त हो जाती है और राजकुमार को जगाकर समाचार पूछती है। राजकुमार अपना समाचार बताने के बाद नगीना शहर का मार्ग पूछता है परन्तु हीरा उसे उसी शहर में रहने का आग्रह करती है तथा नगीना और गौहर को भूल जाने की बात कहती है। जब राजकुमार किसी प्रकार नहीं मानता है तो वह उसे काला हिरन बनाकर उसे तिलस्म में बन्द कर लेती है।

एक रात वहाँ पक्षियों का जोड़ा आया और अजीब पेड़ की विशेषता सुनाते हुए कहता है कि उसकी जड़ को सिर पर रगड़ने से तिलस्म से मुक्त हो जाता है और उसकी शाख को कमर में बाँधने से बाँधने वाला अदृश्य हो जाता है। फूल को सीने से लगाने वाला जहाँ चाहे पल में पहुँच सकता है एवं फूलों से अँजली भरने वालों की कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

राजकुमार लाल ने पक्षियों के जोड़े की बात सुनी और उसी प्रकार किया और मुक्त होकर अपनी प्रेमिका गौहर के पास पहुँचा तथा उसे मुक्त कराया। राजा ने समाचार पाते ही सैनिकों को आदेश दिया कि दोनों को मृत्यु के घाट उतार दिया जाये।

राजकुमार लाल ने अजीब पेड़ की टहनी से उसकी सम्पूर्ण सेना को जंजीरों में जकड़ दिया और आधा शरीर भूमि में गाड़ दिया। अन्त में राजा जवाहर विवश होकर विवाह करने का वचन देता है और राजकुमार लाल ने उसके सभी सैनिकों को मुक्त कर दिया। राजकुमार लाल और राजकुमारी गौहर का विवाह सम्पन्न हुआ और वह गौहर के साथ स्वदेश लौट आया।

प्रेमाख्यानक काव्य का अन्तिम भाग कवि ने दैवी शक्ति के बल पर इतनी त्वरा से पूरा किया है कि कथानक की स्वाभाविकता पर आघात पहुँचा है। परिणामत: पात्रों के चरित्रों का विकास नहीं हो पाया है।

कवि आज़िज़ की यह रचना रूपात्मक प्रेम-गाथा है जिसका रूपात्मक पक्ष खूब निखरा है। काव्य में चमत्कारों की बहुलता है किन्तु भाव, भाषा व शैली की दृष्टि से रचना उच्चकोटि की है।

शाह तुराब चिश्ती

शाह तुराब चिश्ती के मूल नाम को लेकर विद्वानों में गम्भीर मत वैभिन्नय है। किन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि इनका मूल नाम 'तुराब अली' था। सूफ़ी सन्त तुराब के सम्बन्ध में बाह्य साक्ष्य से कोई सामग्री प्राप्त नहीं है, केवल अन्तः साक्ष्य से जो सामग्री मिलती है उसी पर शोधार्थी को सन्तोष करना पड़ता है। इनके काव्य के अवलोकन से हमारे सामने कई नाम आते हैं—शाह तुराब[1], तुराब[2], तुराब अली शाह[3] और तुराब दखनी[4]। 'शाह' शब्द का प्रयोग सूफ़ी साधकों के नाम के साथ लगाने की प्राचीन प्रथा है। अतः तुराब के साथ भी लगाया गया होगा क्योंकि तुराब सूफ़ी साधक थे और जो दखनी शब्द आया है उसका कारण यह है कि वे दक्षिण भारत के निवासी थे। अत: यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि इनका मूल नाम 'तुराब अली' रहा होगा। इन्होंने कविता में कहीं 'तुराब' और कहीं 'तुराबी' का प्रयोग किया है।

शाह तुराब का जन्म कब और कहाँ हुआ, इसके सम्बन्ध में भी कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका जन्म हिजरी सन् ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में अथवा बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ होगा। इस अनुमान का एकमात्र आधार यह है कि इनकी रचना 'ग्यान सरूप' की हस्तलिखित प्रति में लिपिक ने लिपि-काल हिजरी सन् 1121 लिखा है किन्तु मूल प्रति इससे कुछ पहले लिखी गयी होगी। यदि हम इसे ही रचना तिथि

---

1. गंजुल असरार—स्टेट पुस्तकालय, हैदराबाद।
2. मनसमझावन—जुमा मस्जिद पुस्तकालय, बम्बई।
3. जहूर-ए-कुल्ली—सालार जंग म्युजियम, पुस्तकालय, हैदराबाद।
4. गुलजार-ए-वहदत—स्टेट पुस्तकालय, हैदराबाद।

स्वीकार कर लें तो शाह तुराब ने जिस समय इसकी रचना की, उस समय इन्होंने स्वयं को 'बालक' कहा है :—

ग्यान सरूप बोला हूँ,
सब मोती उसमें रोला हूँ।
ज्यूं कंकर चावल ढोला हूँ,
हौर भेद अभेद सब खोला हूँ।
फिर बालक बाला भोला हूँ,
गुन पुस्तक जिव के तोला हूँ।

किन्तु 'ग्यान सरूप' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ऐसी विद्वतापूर्ण पुस्तक एक बालक ने कैसे लिखी होगी ? ऐसे गम्भीर ग्रन्थ का बीस वर्ष की आयु से पूर्व लिखना कठिन है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शाह तुराब का जन्म ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ होगा।

कवि ने अपने वंश को तसव्वुफ का पालन करने वाला बताया है।[1] किन्तु कवि ने यह नहीं बताया कि किस स्थान पर उसका जन्म हुआ। केवल अपना निवास स्थान तिरनामल (मद्रास) को बताया है।[2] शाह तुराब ने वहाँ के प्रसिद्ध मन्दिर और प्रसिद्ध मूर्ति अरनाचल का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है।[3] इनकी गद्दी भी तिरनामल में ही थी।[4]

शाह तुराब ने अपने पिता का नाम अब्दुल लतीफ बताया है जो अपने समय के प्रसिद्ध दानी, भावुक और अध्यात्मवादी व्यक्ति थे। कवि ने अपने बच्चों को बाप दादा की महान परम्परा के पालन की प्रेरणा देते हुए कहा है :—

---

1. जद्दो आबा सूफिया मेरे हैं सब।
   थी मुहब्बत पाक ओ अज़ फज़ले रब॥
   (जहूर-ए-कुल्ली)
2. है तिरनामल में मेरा मुक़ाम।
   अरनाजल है कठिन अस्नान॥
   (ग्यान सरूप)
3. ये यारां तुरफा सुनो नक़ल।
   है अरकाट में तिरनामल॥
   पन मशहूर है जिसका देवल।
   हौर देवल का देव अरनाजल॥ (ग्यान सरूप)
4. है तकिया जो कि तिरनामल में मेरा।
   वहाँ माए किए अपना फेरा॥ (गंजुल असरार)

पिदर मेरा मशहूर ज्यूँ आफताब ।
ओ अब्दुल लतीफ खाने आली जनाब ।।
अमीर-ए-करम-बक्श इब्न-ए-करीब ।
सखी यो जवाँ मर्द रोशन ज़मीर ।।

शाह तुराब ने अपने ग्रन्थ 'आइन-ए-कसरत' में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि मेरे पिता सब्ज़वार के निवासी थे जो ईरान में हैं और धार्मिक विश्वास के आधार पर वे नुसैरी थे ।[1] सूफ़ी सन्त शाह तुराब ने अपने एक भाई का उल्लेख किया है जिसे इन्होंने अपने से छोटा बताया है और भाई का नाम मुहम्मद बताया है और उसके नाम ने पहले मिर्ज़ा शब्द का प्रयोग किया है ।[2] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ये लोग सम्भवत: मुग़ल थे । कवि ने अपनी सन्तानों में एक पुत्र एवं एक पुत्री का उल्लेख किया है । पुत्र का नाम मुर्तजा था किन्तु उसके अद्वितीय गुणों से प्रभावित होकर उसे फरीद के नाम से पुकारा करते थे ।[3] शाह तुराब ने पुत्री की चर्चा 'आइन-ए-कसरत' नामक ग्रन्थ में की है और उसका नाम फखरुन्निसाँ बताया है ।

शाह तुराब ने अपने आध्यात्मिक गुरु पीर बादशाह हुसेनी, जो चिश्ती परम्परा की कड़ी माने जाते थे, की चर्चा बड़ी श्रद्धा से की है :—

पीर बादशाह साहब-ए-बड़े वली ।
दादा जिनके अमी अली ।।
ज्यूँ खुशबू फूल की गली गली ।
यूँ मशहूर है वह गली गली ।।
सब तन की कीली वहाँ खुली ।
अब भी जिक्र है खफी जली ।।

---

1. नुसैरी देखो सब्जवारी थे ओ ।
   बदरदे हुसेन अश्ककारी थे ओ ।
   न मज़हब न मिल्लत सूँ रखता था काम ।
   था मशगुल दर-याद-ए-हक़ सुबह-शाम ।।
2. था बिरादर खुर्द मेरे प्यार का ।
   हो गया है वफात उस यार का ।।
   फाल का मिर्ज़ा मुहम्मद नाम अथा ।
   मिस्ले रुस्तम साहब-ए-समसाम था ।।
3. है गुलाम-ए-मुर्तज़ा मारुफ नाम ।
   मैं फरीद ही कहा हूँ दर कलाम ।।

जो पीर हुसेनी प्यारा है।
है तुराब उस बलहारा है॥

ये अरबी और फारसी भाषा के अच्छे विद्वान थे। इनकी गणना अच्छे कवियों और विद्वानों में की जाती थी। इनका दीवान (काव्य-संग्रह) 'दीवान-ए-हुसेनी' के नाम से प्रसिद्ध है। ये अपने समय के प्रसिद्ध ग़ज़ल रचयिता भी थे।

शाह तुराब के सम्बन्ध में हमने पहले ही कहा है कि इनका परिवार सूफी विचारधारा से प्रभावित था और उसी वातावरण में इनका पालन-पोषण हुआ था। ये इल्म-ए-रमल (ज्योतिष तसव्वुफ), (रहस्यवाद) हक़ीक़ी, खगोल, तर्कशास्त्र, दर्शन और नक्षत्र आदि विद्याओं के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसके अतिरिक्त शाह तुराब अदृष्ट-द्रष्टा भी थे। इस सम्बन्ध में 'गंजुल असरार' और 'जहुर-ए-कुल्ली' दृष्टव्य है। इन्हें फारसी और अरबी पर तो पूर्ण अधिकार था ही साथ ही साथ ये संस्कृत और मराठी के भी अच्छे ज्ञाता थे।

कहा जाता है कि इनके भविष्य-कथन से इनके गुरु पीर बादशाह हुसेनी इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने इन्हें 'गंजुल असरार' (रहस्य कोष) की उपाधि से विभूषित किया था :—

रोज़-ए-जुमा माहे रज्जब वक्त-ए-शाम।
दी खिलाफत 'गंजुल असरार' बख्शे नाम।
मी तखल्लुस होर मुलक्किब है तुराब।
गंजुल असरार शाह फरमाये खिताब॥

शाह तुराब की विद्वता एवं आध्यात्मिक विचारों से उनके पीर इतना प्रभावित थे कि उन्होंने इन्हें हिज़री सन् 1150 में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। शाह तुराब ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—

हज़रते पीर पाशा आलो जनाब।
एक दिन कलवत मने ओ आफताब॥
इस गुलामे कमतरी के तई बुलाये।
सर सूं ता पुश्त ओ पदे कुदरत फिराये॥
मो कहे तू सच मेरा फरज़न्द है।
आकिलो हुशियारी दानिशमन्द है॥
तुमको करता हूँ खलीफा अब मेरा।
मारिफत में कोई नई सानी तेरा॥
× × ×
ओ बुलाये अस्त्र मुर्शिद नामदार।
हर सने पंचदह व यकसद यक हज़ार॥
रोज़-ए-जुमा माहे रज्जब बख्त-ए-शाम।
दी खिलाफ़त गंजुल असरार बख्शे नाम॥

हिजरी सन् 1150 में पीर बादशाह हुसेनी ने इन्हें धर्म प्रचारार्थ कर्नाटक जाने का आदेश दिया। शाह तुराब तिरनामल से कर्नाटक के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए अन्त में तंजौर पहुँचे और वहाँ पर आध्यात्मिक शिक्षा का प्रचार किया। कहा जाता है कि यहाँ पर ही इन्होंने समर्थ गुरु रामदास से भेंट की तथा उनकी रचना 'मनाचे श्लोक' के आधार पर 'मन समझावन' नामक काव्य की रचना की। इस रचना में शाह तुराब ने अपने प्रवास का बार-बार उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने हिजरी सन् 1150 में यात्रा आरम्भ की थी और हिजरी सन् 1171 अर्थात् 31 वर्ष तक धर्म प्रचार किया। इसका वर्णन एक स्थल पर इस प्रकार हुआ है :—

जो बांदा लंगोट लगा खाक तन कूँ।
दिया छोड़ एक बार हुब्बुल वतन कूँ॥
जला इश्क की बाट में माल व धन कूँ।
रखे पास ना कास हरगिज कफन कूँ॥

शाह तुराब सूफ़ी साधक होने के साथ-साथ एक महान साहित्यकार भी थे। इन्होंने दक्खिनी साहित्य की महान सेवा की है। अभी तक की खोज के आधार पर इनकी सात पुस्तकें प्राप्त हो सकी हैं जो इस प्रकार हैं :—(1) ज़हूर-ए-कुल्ली, (2) गजुल असरार, (3) गुलज़ार-ए-वहदत, (4) ग्यान सरूप, (5) आउन-ए-कसरत, (6) मसनवी महज़बी व मुल्ला, (7) मन समझावन।

ज़हुर-ए-कुल्ली

इस पुस्तक की रचना कवि शाह तुराब ने अपने पुत्र के अनुरोध पर की थी।[1] इसमें कुल 32 अध्याय हैं। हर अध्याय में दार्शनिक और रहस्यवाद की व्याख्या की गयी है। इसके 16वें और 17वें अध्याय में दर्शन और रहस्यवाद के विभिन्न पारिभाषिक शब्दों की व्युत्पत्ति व व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका अरबी समानार्थी शब्द भी साथ-साथ प्रस्तुत किया है। 27वें अध्याय में पंचभूतों का वर्णन एक रूपक के आधार पर किया गया है। इस ग्रन्थ में नौ कथाएँ हैं :—

---

1. एक दिन जाकर पिसर नेको शार
मुज सूँ बोला क़िबला गाहे नामदार
अर्ज जो कुछ मैं करूँ सो कर क़बूल
मुर्शिदाँ होते मुरीदाँ में रसूल
एक रिसाला तुम कहो दकनी में साफ
ता अयां होवे जहाँ में रम्ज़े काफ़
इसकी खातिर दाश्त कूँ कहता हूँ अब
मरतबा हर एक अनासिर का तो सब।

1. हिक़ायत-ए-बादशाह व वज़ीर-ए-आक़िबत अन्द्रेज़ ।
2. हिक़ायत-ए-तिरनामल व खराबि-ए-फौज़दार-ए-आलम आज़ार ।
3. हिक़ायत-ए-आशिक शुदन कनीज़क-ए-बादशाह ।
4. हिक़ायत-ए-आजमाइश-ए-खल्फ-ए-मुहम्मदी व करम-ए-मुर्तज़ा अली ।
5. हिक़ायत-ए-निकाह्-करदन-ए-जाहेद ।
6. हिक़ायत-ए-ज़न-ए-हज्जाम ।
7. हिक़ायत-ए-दुनिया-ए-दूँ ।
8. हिक़ायत-ए--आगाज़ करदन व आज़ुर दह शुदन मजनू व कैफियत-ए-कनीज़ के लैला ।
9. हिक़ायत-ए-गौसदन ।

'ज़हूर-ए-कुल्ली' शीर्षक ऐतिहासिक नाम है अर्थात् अरबी अथवा फारसी अक्षरों के आधार पर गणना करने से ज़हूर-ए-कुल्ली का समय हिजरी सन् 1171 निश्चित होता है । शाह तुराब के शब्दों में :—

> साले तारीखे किताबे मुंज ली
> गुफत ज़हूरे कुल्ली मौलाना अली
> ओ मुकर्र फिर किया नामें किताब
> जब हुआ मेरे पो फ़ज़ले-बू-तुराब ।

कवि प्रस्तुत काव्य में चश्म (आँख), लब (ओष्ठ) और खत के रूपकों में हुस्न-ए-हक़ीक़ी और इश्क-ए-इलाही का स्पष्टीकरण किया है ।

गंजुल अस्रार

यह 'इल्म-ए-रमल' का एक वृहद् ग्रन्थ है । इस पुस्तक के आरम्भ में हम्द (ईश-स्तुति), उसके बाद नात (हज़रत मुहम्मद साहब के गुण कीर्तन) और फिर कवि एवं सूफी साधक अमीनुद्दीन अली की प्रशंसा की गयी है । इसके पश्चात् कवि ने अपने गुरु पीर बादशाह हुसेनी की स्तुति की है । फिर कवि ने ग्रन्थ रचना का कारण बताया है कि एक दिन पीर बादशाह हुसेनी ने उन्हें अपने पास बुलाकर आदेश दिया कि तुमने मुझसे जो 'इल्म-ए-रमल' सीखा है उसे एक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करो ताकि दूसरे इससे लाभ उठा सकें :—

> कहे सुन ऐ तुराबे गंजुल अस्रार,
> रमल जो कुछ कि सीख्या तूने एक बार ।
> रिसाला एक बना इस इल्म का तूं,
> कि तूं है मादने अस्रारे-ए-चूं ।

तदनन्तर इन्होंने 'इल्म-ए-रमल' का विस्तार से विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया है।

इस पुस्तक के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि शाह तुराब को प्रकृति से गहरा प्रेम था क्योंकि इन्होंने बीच-बीच में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन बड़ी सुन्दरता से उपस्थित किया है। कुछ कहानियों में 'नख-शिख' का वर्णन भी है। उदाहरणार्थ बारहवीं कहानी देखी जा सकती है।

गंजुल अस्रार का रचना-काल हिजरी सन् 1197 है जो कि पुस्तक के नाम के अक्षरों की संख्या की गणना से सिद्ध होता है। कवि ने लिखा है :—

खिरद तारीख-ए-नज़्म-ए-इन्तखाबी।
बेगुफ्ता गंजुल अस्रार-ए-तुराबी॥

गुलज़ार-ए-वहदत

इस ग्रन्थ में सूफ़ी साधक शाह तुराब ने 'हवास-ए-बातिनी' (आन्तरिक शक्तियाँ), पंचभूत, आध्यात्मिक शक्तियों के विविध स्तर (रूहे हैवानी, रुहे इन्सानी और रूहे मलकूती आदि), नज़रिये-हमाउस्त (अद्वैतवाद—एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति) का वर्णन किया है।

'गुलज़ार-ए-वहदत' में शाह तुराब ने इस विचार का समर्थन किया है कि अल्लाह एक है और उसका ज़हूर (तेज) हर वस्तु में दृश्यमान है, परन्तु अनेकता में एकता को हमें नहीं भूलना चाहिए।

द्वितीय अध्याय 'हर तमसील-ए-मोम व सिफ्त-ए-मोम' में कवि ने वहदत (एकता) के सिद्धान्त की व्याख्या की है। इन्होंने समझाया है कि जैसे मोम से अनेक रूपों की विभिन्न वस्तुओं का निर्माण हो सकता है, परन्तु मोम की अपनी वास्तविकता एवं गुण नहीं जाते। उसी प्रकार अल्लाह ने सृष्टि का निर्माण किया है, किन्तु उसका तत्व सब में विद्यमान है। इस प्रकार इन्होंने 'एको ब्रह्मब द्वितीयो नास्ति' की पुष्टि की है।

तृतीय और चतुर्थ अध्याय में 'वाद-ए-अस्लत' का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार इन्सान ने प्रभु की इस धरोहर को स्वीकार किया है।[1] अध्याय के अन्त में शाह तुराब ने इन्सान को उसके कर्तव्यों का स्मरण कराया है। इनका कथन है कि मनुष्य धरोहर का उत्तरदायित्व स्वीकार करके बेहोश

---

1. किया इन्साँ को हक़ ने अपनी सूरत
   उठाए लाके ओ बारे अमानत
   जो अर्श-व-फर्श में ना कोई कुबूला
   कुबूला व-ज़ुलुमान होर जहूला।

और मजहूल (निष्क्रिय) हो गया है और उसने मनुष्यता के सिद्धान्तों को भुला दिया है। मनुष्य को यह आलस्य और अज्ञानता शोभा नहीं देती क्योंकि यह परमात्मा का प्रतिनिधि है और उसे 'अशरफुल-मखलूकात' (मनुष्याणी चर: श्रेष्ठ) कहा गया है।[1]

कवि ने पुस्तक का नामकरण 'गुलज़ार-ए-वहदत' इसलिए रखा है क्योंकि इसमें वहदत (एकता) का वर्णन किया गया है। शाह तुराब ने 'गुलज़ार-ए-वहदत' का रचना-काल हिजरी सन् 1173 दिया है :—

हज़ारों यक सदो हफ्ताद-सेह सन।
मुरत्तिब जब हुआ गुलज़ार-ए-रोशन॥

'गुलज़ार-ए-वहदत' एक सुन्दर कृति है। इसकी शैली बहुत सरस व सरल है। इसमें विचारों का प्रवाह और आकर्षण विद्यमान है। उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग सुन्दर ढंग से किया गया है जिससे काव्य-कला में एक निखार आ गया है।

ग्यान सरूप

यह एक लघु पुस्तिका है। इसमें कुछ 58 छन्द हैं। इस काव्य के द्वारा कवि ने हिन्दू देवताओं एवं हिन्दू धर्म की मान्यताओं पर दृष्टपात किया है और साथ ही इस्लाम धर्म के विश्वासों को भी प्रस्तुत किया है।

ग्यान सरूप ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने इस प्रकार किया है :—

ये पंच भूत का विस्तारा है,
आब, आतिश, ख़ाक़ होर बारा है।
चित, मन, बुध अहंकारा है,
सब सरूप कूँ सिंगार है।
पिउ सब में सब सूँ न्यारा है,
ज्यूं रोशन जगमग तारा है।
जो पीर हुसेनी प्यारा है,
ऐ तुराब उस बलिहारा है।

अन्तिम छन्द इस प्रकार है :—

ये ग्यान सरूप सब हुआ तमाम,
बल ग्यान सरूप ऊस राखा नाम।

---

1. अपस सूँ ओ अपी हो सुस्त, काहिल
देखो होता है महजूरा में दाखिल
अरे ऐ बेखबर, बेहोश मजहूल
अमानत दारी क्यूं अपनी गया भूल।

सतगुरू सूँ देखो इसे मदाम,
तिरलोक का सारा कहा मुकाम।
मैं ऐन अली का सही गुलाम,
मुंज रात होर दिन सब ये ही काम।
जो पीर हुसेनी प्यारा है,
ऐ तुराब ऊस बलिहारा है।

'ग्यान सरूप' में हिन्दी शब्दों की बहुलता है। कवि ने स्वयं कहा है :—

गुन तन हौर मन का कह्या तुराब,
है हिन्दी भाका सही किताब।

'ग्यान सरूप' हृदय से निर्झरित विचारों से युक्त रचना है। छोटे-छोटे छन्दों में 'ग्यान सरूप' के शेर बहुत ही सरल एवं मधुर हैं। शैली की सरलता, गति एवं प्रवाह निम्नांकित पंक्तियों से दृष्टिगत हो सकते हैं :—

जो गफलत में दिन खोता जी,
फल हात बदी के बोता जी।
नइं माया सूँ चित धोता जी,
पड़ सुस्ती में क्यों खोता जी।
मैं जिसके कारन रोता जी,
ओ अमीन अली का पोत जी।
जो पीर हुसेनी प्यारा है,
ऐ तुराब उसी बलिहारा है॥

आइन-ए-कसरत

यह एक विस्तृत ग्रन्थ है। इसमें 1960 शेर हैं। इसकी रचना हिजरी सन् 1187 में हुई। इसमें कवि ने सर्वप्रथम ईश-वन्दना और हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा की है। इसके बाद कवि ने तसव्वुफ की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इस पुस्तक के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सूफी साधक शाह तुराब वहदतुल वजूद (ईश्वरवास्यवृत्ति) और हमऊस्त (एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति) दृष्टिकोण के समर्थक थे। तसव्वुफ के उन सिद्धान्तों को जिनका उल्लेख शाह तुराब ने जहूर-ए-कुल्ली, गुलज़ार-ए-वहदत एवं मन समझावन में किया है, उन सबका सार इस ग्रन्थ में एकत्रित किया गया है। इस पुस्तक में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें शाह तुराब ने अपने पिता, सन्तान एवं परिवार का उल्लेख किया है।

मसनवी महज़बी व मुल्ला

शाह तुराब ने मसनवी महजबी व मुल्ला की रचना हिजरी सन् 1182 के लगभग की। इस मसनवी में 15 विभाग हैं जिनके विभिन्न शीर्षक दिए हुए हैं।

इसमें सबसे पहले ईश्वर वन्दना हज़रत मुहम्मद साहब की विरुदावली और चारों खलीफाओं की प्रशंसा की है। इसके बाद अपने आध्यात्मिक गुरु पीर बादशाह हुसेनी की प्रशंसा की है। इसमें कुछ छोटी-छोटी कहानियाँ भी हैं जो उपदेश के लिए लिखी गयी हैं। इसमें मानसिक द्वन्द्व का चित्रण है। कवि ने कहानी के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि पाण्डित्य और चिन्तन सदैव सौन्दर्य से अभिभूत हो जाते हैं।

कथा-सार

गुलशनाबाद नामक नगर में एक पतिव्रता धार्मिक सुन्दरी रहती थी। उसका पति परदेश गया हुआ था। बहुत दिनों तक पत्र नहीं आया तो युवती ने पत्र लिखने के लिए एक मुल्ला को बुलवाया। मुल्ला बहुत बड़ा भक्त था तथा विद्यार्थियों को पढ़ाया करता था। युवती पर्दे की आड़ से पत्र लिखाने लगी। मुल्ला की दृष्टि युवती पर पड़ी कि वह मुग्ध होकर अचेत हो गया।

यकायक देख दिवाना हुआ तब।
लगा कहने कि बोलो क्या लिखूँ अब ?
कहीं वो नाज़नी सब अपना अहवाल।
ना समजी ओ हुआ सो देक बेहाल।

युवती अपनी बात कहती गयी कि क्या लिखना है और मुल्ला केवल प्रश्न करता, अब क्या लिखूँ ? युवती को कुछ आभास हुआ और युवती ने देखा :—

देखी तो कुछ भी पढ़ता न लिखता
चुपी चुप क्या लिखूँ कहकर बिलखता
कही तब दाई कूँ गुस्से में आकर
तू दीवाने कूँ लाई बुलाकर।

सुन्दर युवती ने अपनी दासी पर क्रोध प्रकट किया और मुल्ला को घर से बाहर निकाल दिया। मुल्ला गलियों में दीवाने की भाँति घूमता और हर यात्री से पूछता था 'क्या लिखूँ' ?

उधर कुछ समय पश्चात् युवती का पति आया और दोनों सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन युवती और उसका पति दरिया की सैर के लिए निकले। यकायक वह दीवाना मुल्ला भी उसी ओर आ निकला। जब मुल्ला ने सुन्दरी को दुबारा देखा तो उसकी प्रेमाग्नि और भी अधिक उद्दीप्त हो गयी। यह देखकर सुन्दरी के पति को बुरा लगा। उसने एक चाल चली। पति ने सुन्दरी के पैर की जूती नदी में फेंक दी और मुल्ला से कहा, यदि तुम महज़बीन के पावों को काँटों से बचाना चाहते हो तो उसकी जूती नदी से निकाल कर लाओ। मुल्ला नदी में कूद पड़ा और वह लहरों में समा गया। इस घटना से महज़बीन इतनी अधिक प्रभावित हुई कि स्वयं नदी में कूद पड़ी और डूब गयी। सुन्दरी का पति अपनी पत्नी के वियोग में बहुत दुखी व विह्वल हुआ और अन्यत्र चला गया।

पुस्तक पूर्ण रूप से तसव्वुफ पर आधारित है। इसमें जितने पात्र आये हैं सभी प्रतीक मात्र हैं।

मन समझावन

इस काव्य में कुल 119 छन्द हैं और इसका रचना-काल हिजरी सन् 1171 है। इस ग्रन्थ का आरम्भ लेखक ने गद्य से किया है :—

"ए उसकी मन की पोती का जवाब है कि जिसका रामदास खिताब है मरहठी बात में पोती बोल्या, मैं इसका रम्ज़ सब दखनी में खोल्या, भी 'मन समझावन' उसका नाम राखा व लेकिन सरबसर हिन्दी है भाका।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि कवि की इस रचना का मूल स्रोत संत रामदास कृत 'मनाचे श्लोक' है।

काव्य का आरम्भ इस प्रकार किया गया है :—

सिफत कर अव्वल उसकी जो राम हैगा।
उसी राम सूँ हमको आराम हैगा॥
सदा राम के नाम सूँ काम हैगा।
हमन ध्यान उसका सुबह शाम हैगा॥
वही गुल वही जाम हैगा।
वही साकिए बज्म-ए-गुलफाम हैगा॥

इस पुस्तक में केवल तसव्वुफ और धार्मिक बातों का ही उल्लेख नहीं है प्रत्युत सामाजिक बातें भी हैं। यह वर्णनात्मक ढंग से लिखा गया एक ग्रन्थ है। रामदास ने 'श्री मनाचे श्लोक' में भुजंग प्रयात छन्द का प्रयोग किया है और शाह तुराब ने अपनी रचना 'मन समझावन' में भुजंग प्रयात से मिलते-जुलते और ध्वन्यात्मक समानता रखने वाले छन्द का प्रयोग किया है जिसे उर्दू में 'बहरे मुतकारिव' कहते हैं।

शाह तुराब ने 'मन समझावन' को बारह भागों में विभक्त किया है जो एक ही प्रकार के छन्दों में हैं। इसमें कवि ने हिन्दू दर्शन के पारिभाषिक शब्दों एवं धार्मिक कहानियों के आधार पर इस्लाम के धार्मिक विश्वासों को प्रतिपादित किया है :—

शशी हौर दिवाकर महाबल बनाया।
अपी सब सूँ नियारा सब में समाया॥
न किया सूँ जना ओ ना किसका है जाया।
ओ ही समयलद वलम युलद कह सुनाया॥

काम, क्रोध, लोभ और अहंकार को इन्होंने मनुष्य का शत्रु घोषित किया है तथा इनका वर्णन ठेठ भारतीय पृष्ठभूमि पर किया है।

---

1. डा० अब्दुस्सत्तार दलवी (सं०)—मनसमझावन, पृष्ठ 3

'मन समझावन' में कवि ने परमात्मा के गुणों का उल्लेख करते हुए हिन्दू और मुसलमानों के विश्वासों की गंगा जमुनी छटा प्रस्तुत की है :—

अहे सब में ओ सब सूँ दिसता निराला।
अंधारे में करता हमेशा उजाला॥
हरी नाम साहब जमाला जलाला।
न ओ सब्ज़ ना ज़र्द ना सुर्ख काला॥

शाह तुराब इतने सहिष्णु, उदारचेता और शान्ति प्रिय व्यक्ति थे कि अपनी पुस्तक 'मन समझावन' में इन्होंने इच्छा प्रकट की है कि लोग इन्हें 'हुसेनी विरहमन' कहें और वे इसी नाम से पुकारे जायें।

हुसेनी विरहमन अहे नामदारी।
कहा है ये रंगी सुखन यादगारी॥

'मन समझावन' ग्रन्थ शैली की दृष्टि से भी एक रुचिकर काव्य है। इसकी शैली में ताजगी, मिठास, आकर्षण एवं रोचकता है। इसके छन्दों में गीत है, इसमें आन्तरिक भावना का स्पष्टीकरण हुआ है। अपने विचारों को सादगी और सरलता के साथ बिना किसी आडम्बर के प्रकट किया है। इसकी भाषा सरल एवं सुबोध है। इसमें तत्कालीन प्रचलित कहावतों और मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है।

तमन्ना

'तमन्ना' का मूल नाम मीर असद अली खाँ था और औरंगाबाद में इनका जन्म हुआ था।[1] ये समसामुल मुल्क और अरस्तू जाह के राजकवि थे। इनका जन्म यद्यपि ऐसे परिवार में हुआ था जिनका पेशा सेना में काम करना था तथापि ये लोग विद्या और कविता का रसास्वादन करने वाले थे। तमन्ना आला हज़रत आसफ जाह (द्वितीय) की प्रशंसा में कसीदे लिखा करते थे। इनकी पत्नी बेगम इम्तयाज़ थी।[2] कहा जाता है कि तमन्ना बहुत ही सुन्दर युवक था और इनका देहान्त युवा अवस्था में ही हिजरी सन् 1204 में हो गया था।[3] इनके आध्यात्मिक गुरु शाह मुइनुद्दीन अली तजल्ली थे।

'तमन्ना' के काव्य गुरु का तो पता नहीं चल सका किन्तु हैदराबादी नवाबों के सभी पुत्र इनके शिष्य थे। 'तमन्ना' को अरबी, फारसी और दक्खिनी भाषा पर पूरा अधिकार था। इन्होंने दक्खिनी के अतिरिक्त फारसी में भी कविता की थी। 'तमन्ना' ने यों तो अल्प आयु में ही कविता करना प्रारम्भ कर दिया था तथापि

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—मुरक्क़-ए-सुखन, भाग 2, पृ० 62
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 452
3. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—मुरक़्क़-ए-सुखन, भाग 2, पृ० 64

काव्य-क्षेत्र में उच्च स्थान के अधिकारी हो गये थे। तमन्ना ने आसफ जाह (द्वितीय) की प्रशंसा में कई कसीदे लिखे और दरबार से जागीर प्राप्त की। एक स्थल पर वह कहते हैं :—

है तमन्ना मुजको खिदमत में तेरी इतनी शहा,
हुक्म हो जागीर का तैयारी, असनाद हो।
जिस घड़ी जागीर की मुजको मिली परवानगी,
शमा एहसाँ पर मेरे दिल को हुई परवानगी।

'तमन्ना' को हैदराबाद का जीवन आनन्दप्रद नहीं लगा। वे सदैव औरंगाबाद की प्रशंसा करते रहे। एक स्थल पर इन्होंने अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

जिस शहर में मैं रहूँ तू आता है याद,
करता हूँ जनाब एज़ दीं मैं फरियाद।
माशूक का वस्ल हो जो पहुँचे कब तक,
औरंगाबाद हाय औरंगाबाद।
\+ × ×
याद वतन ख्याल तबाँ में घिरा है दिल,
फ़ुरसत के अन्दूनूँ में तू अवक़ात ही नहीं।

कवि तमन्ना प्रकृति से गम्भीर और सहिष्णु आदमी थे। ये स्वभाव से आत्मश्लाघा, असन्तुलित कथन और परिहास पसन्द नहीं करते थे। तमन्ना सदैव दूसरों की सहायता के लिए तत्पर रहते थे और सभी से मैत्री भाव रखते थे। ये दिल के बहुत धनी थे।

इन्होंने एक कविता हज़रत ईमाम पर लिखी है जिससे कवि के चरित्र और रुझान का पता चलता है। कविता के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

कुर्बान हूँ तुम्हारा मुझे सदक़े से तुम्हारे,
अफ़जाइश ईमाँ हूँ इरफान का मज़ा हूँ।
इल्म व अमल व सेहत व हशरत ज़र्द मुकद्दर,
लुत्फे सुखन व फहम व मदारात व सखा हो।
सदक़े से तुम्हारे मुझे ऐ मजहर एहसान,
आदा से तेरा हो अहबा से विला हो।

अभी तक की खोज के आधार पर यही कहा जा सकता है कि तमन्ना की दो पुस्तकें हैं—(1) गुल अजायब और (2) कुल्लियात (काव्य संग्रह), किन्तु इनके ग्रन्थ गुल अजायब के पृष्ठ दो के ऊपर लिखा है—"रंग दोम गुल अजायब मिन मक़ालातुल

ग़राइब' इससे प्रतीत होता है कि तमन्ना की एक तीसरी पुस्तक 'मक़ातुल ग़राइब' भी है।

कवि ने 'गुल अजायब' की रचना हिजरी सन् 1192 में आरम्भ की और उसे हिजरी सन् 1194 में पूरा किया।[1] यह ग्रन्थ कवि ने काज़ी मुहम्मद करम बख़्श 'सालम' की इच्छा पूर्ति के लिए लिखा था। इसकी भाषा फारसी है।

तमन्ना का काव्य-संग्रह इनके शिष्य ने तैयार किया था जिसका नाम मुजाहिद जंग अरमान था। यह काव्य संग्रह हिजरी 1209 में तैयार किया गया था।[2] इसकी हस्तलिखित प्रति सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय में सुरक्षित है।

साहित्य की कई विधाओं में कवि तमन्ना ने कौशल प्राप्त किया था। तमन्ना ने क़सीदा, ग़ज़ल, रुबाई और मर्सिया के अतिरिक्त दोहे भी लिखे हैं :—

ऐ तमन्ना हर ज़बान में शाह है मेरा क़लाम।
क्या कतब, क्या दोहा, क्या है रेखता, क्या फारसी।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तमन्ना अपने समय का प्रसिद्ध कवि था और इसने अनेक ऐसे कवियों को जन्म दिया है जो अपने क्षेत्र विशेष में प्रसिद्ध हुए हैं। कवि को भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इन्होंने बहु प्रचलित मुहावरों का यथा स्थान प्रयोग किया है।

बाकर आगाह

मुहम्मद बाकर आगाह के पिता मुहम्मद मुर्तज़ा थे। इनके पूर्वज अरबी व्यापारी थे जो व्यापार के संबंध में कारोमन्डल के समुद्र तट पर बस गये। इस्लाम के आरम्भ से ही जहाँ एक ओर शासक वर्ग राज्य और धर्म का प्रचार कर रहा था वहाँ दूसरी ओर मुस्लिम संतों का एक वर्ग अपने ज्ञान, भक्ति और संयम द्वारा इस्लाम का प्रचार कर लोगों को इस्लाम की ओर आकृष्ट कर रहा था। इसी प्रकार मुस्लिम व्यापारी वर्ग भी व्यापार के साथ-साथ इस्लाम का प्रचार कर रहा था। वास्तव में मलाया, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों में इस्लाम का प्रचार मुस्लिम व्यापारियों ने ही किया था। इसी प्रकार 'बाकर आगाह' के पूर्वजों ने भी इस्लाम का प्रचार विशेष रूप से कारोमण्डल तट पर किया। कुछ समय पश्चात् इनके पूर्वज बीजापुर में आकर बस गये। 1682 ई० में जब बीजापुर का पतन हुआ तो इनके पिता मुहम्मद मुर्तज़ा ने वेल्लूर की राह ली और यहीं पर बाकर आगाह का जन्म हिजरी सन् 1158 (1745 ई०) में हुआ। बाकर आगाह ने आरम्भिक शिक्षा घर पर ही पायी और तत्पश्चात् वेल्लूर में ही हज़रत सैयद अबुल हसन कुरबी से अरबी और फारसी की शिक्षा प्राप्त की। उन्हीं का मुर्शिद (शिष्य) बनकर इन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में भी अपनी

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—मुरक़्क़-ए-सुखन, भाग 2, पृ० 65
2. वही, पृ० 67

रुचि का परिचय दिया। इसके पश्चात् इन्होंने अपने आध्यात्मिक ज्ञान की पूर्णता के लिए त्रिचनापल्ली के एक महापुरुष शाह वली उल्लाह से सम्पर्क स्थापित किया था। इनका देहान्त हिजरी सन् 1220 (1805 ई०) में मद्रास में हुआ जहाँ उनकी समाधि बनी है।

अर्काट के नवाब मुहम्मद अली बाला जाह इनकी विद्वता और बुजुर्गी का बहुत आदर करते थे और अपने दोनों पुत्रों अमीरुल अमरा और उमादुल अमरा को विद्या तथा सदाचार सीखने के लिए इन्हीं के पास भेजा था।[1] ये नवाब मुहम्मद अली बाला जाह के राजकवि थे और इन्हें अलपुर गाँव जागीर में मिला था। यद्यपि ये राज्याश्रित कवि थे किन्तु इन्होंने राजा अथवा राजवंश के किसी भी सदस्य की प्रशंसा में एक भी छन्द नहीं लिखा। राज्याश्रय और जागीर से इनकी साहित्य सेवा में तनिक भी बाधा नहीं आयी अपितु और अधिक मनोयोग से साहित्य सृजन करते रहे। कहा जाता है कि इन्होंने 62 वर्ष की आयु में अरबी, फारसी और दक्खिनी में कुल मिलाकर 303 ग्रन्थ रचे, जिनमें से 22 पुस्तकें दक्खिनी में हैं जो इस प्रकार हैं :—

(1) अक़ायद नामा, (2) तोहफ़तुन्निसाँ, (3) हश्त-बहिश्त (आठ भाग) (4) मेराज नामा, (5) रियाज़ुलनाँ (हज़रत मुहम्मद-परिवार), (6) महबूबुल कुतुब (गौस पीर की जीवनी), (7) हाशिया मन दर्पन (मन दर्पण सार), (8) तोहफ़-ए-अहबाब, (9) हिदायतनामा, (10) गुलज़ार-ए-इश्क, (11) रूप सिंगार, (12) दीवान आगाह, (12) रोज़तुल-इस्लाम, (14) फरायद-दर-अक़ायद, (15) रियाज़ुस्सैर, (16) खम्सा मुतबहरा, (17) फिर्क हाय इस्लाम, (18) मसनवी नुदरत-ए-इश्क, (19) मसनवी सुबह बहार-ए-इश्क, (20) ग़रकाब-ए-इश्क, (21) हैरत-ए-इश्क और (22) हसरत-ए-इश्क।

ये सभी रचनाएँ पद्य में हैं किन्तु प्रत्येक पुस्तक के आरम्भ में जो विस्तृत भूमिका लिखी गयी है, वे सब गद्य में हैं। इनका पद्य भाग जहाँ दक्खिनी में है वहाँ गद्य भाग खड़ी बोली के बहुत निकट है।

अक़ायद नामा (सिद्धान्तिका)

कवि ने लिखा है कि मैंने इसकी रचना इसलिए की है कि जिससे अनपढ़ एवं स्त्रियाँ भी सरलतापूर्वक सिद्धान्तों को समझ सकें :—

कहा मै मैं दखनी में अशआर।
मुंजे है शेर कहने से बहुत आर॥
वले यह नज़्म बोल्या बिज़्ज़रूरत।
पड़े ता उसको हर उम्मी व औरत॥

---

1. सैयद मुहम्मद (सम्पादक)—रिज़वान शाह व रूह अफ़ज़ा, पृ० 9

इसमें कवि ने अपना काव्य नाम केवल बाकर रखा है :—

तू रख बाकर उपर नित प्यार अपना।
इनायत कर उसे दीदार ॥

'अक़ायद नामा' नामक काव्य में कुल 1500 अर्द्धालियाँ हैं।

नुदरत-ए-इश्क

यह एक प्रेमाख्यानक काव्य है। इसका कथानक 'चन्दर बदन व महियार' नामक प्रेमाख्यानक काव्य के कथानक पर आधारित है। 'चन्दर बदन व महियार' नामक प्रसिद्ध काव्य की रचना बीजापुर के प्रसिद्ध कवि मुक़ीमी ने की थी जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।

हश्त-बहिशत

यह बाकर आगाह की सबसे प्रसिद्ध रचना है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1206 है : —

थे बारा सो के उपर छ बरस जब।
हुआ यह नुस्खा-दिलकश मुस्तब ॥

इस काव्य का मूल विषय हज़रत मुहम्मद साहब से सम्बन्धित है। इसमें कुल 8650 अर्द्धालियाँ हैं। इस काव्य की रचना के लिए कवि ने अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों को आधार बनाया है। समस्त काव्य को आठ भागों में विभाजित किया है जो इस प्रकार है :—

1. मन दीपक—नूर-ए-मुहम्मदी का उल्लेख किया गया है।
2. मन हरन—हज़रत मुहम्मद साहब के लिए भविष्य वाणियाँ।
3. मन मोहन—हज़रत मुहम्मद साहब के जन्म से लेकर आठ वर्ष की आयु तक का वर्णन है।
4. जग मोहन—आठ वर्ष की आयु से देहान्त तक की घटनाएँ लिपिबद्ध की गयी हैं।
5. आराम दिल—चरित्र बल का वर्णन है।
6. राहत जान—हज़रत मुहम्मद साहब के गुणों की प्रशंसा की गयी है।
7. मन दर्पन—हज़रत मुहम्मद साहब के चमत्कारों का वर्णन है।
8. मन जीवन—हज़रत मुहम्मद साहब के प्रेम का महत्व वर्णित है।

कविवर बाकर आगाह ने 'हश्त-बहिश्त' ग्रन्थ के प्रत्येक भाग में बड़ी-बड़ी भूमिकाएँ लिखी हैं जो गद्य में हैं। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

'छ: रिसाले···1185 और 1183 में बने हैं। पीछे उसके बहुत ढील हुई क्या वास्ते कि यक रफ़ीक़···कि इन रिसालों का तालिब···था, सो रहलत किया।··· आख़िर इब्तदा सन् एक हज़ार और दो सौ और छै में रिसाला मनदर्पन और रिसाला

मन जीवन बताने का इत्तफाक हुआ।" इन आठ रसायल में तखमीनन आठ हज़ार और छै सौ और पचास बैत हैं। सुर्खियों के साथ नौ हज़ार बैत होंगे।" इन सबका रिसालों में शायरी नै किया हूँ, बल्कि साफ़ व सादा कहा हूँ और उर्दू की भाका में नहीं कहा, किस वास्ते कि रहने वाले यहाँ के उस भाका से वाक़िफ नहीं हैं। ऐ भाई यह रिसाले दखनी ज़बान में हैं करकर सहल और सरसरी न जाने क्या वास्ते कि बड़े मातबर कुतुब से तहक़ीक़ करके लिखा है।"

अन्त में लिखा है :—

"तमत बिलखेर रसायल हश्त बहिश्त...मिन तस्नीफ़ मौलवी मुहम्मद बाकर आगाह शाकई बीजापुरी वल्लूरी...बतारीख दोयम शहर रबीउस्सानी रोज़ दोशम्बा सन् 1209 हिजरी।"

यद्यपि कवि ने बहुत से ग्रन्थों की रचना की है किन्तु उनके काव्यों में कवित्व तत्व का अभाव खटकता है। ये दखनी के अन्तिम महाकवि माने जाते हैं। इनकी लगभग सभी पुस्तकें धार्मिक हैं।

शैदा

शैदा इनका काव्य का नाम है। मूल नाम नवाजिश अली और उपाधि बहादुर है। ये आशु कवि थे। ये नवाब निज़ाम अली खाँ के मीर सामान थे। इनकी तीन रचनाओं की जानकारी श्री हाशमी ने दी है जो इस प्रकार है—(1) एजाज अहमद, (2) रौज़तुल इज़हार और (3) गुलशन-ए-ईमान।[1]

एजाज़ अहमद

यह मसनवी तत्कालीन समाज में बहुत प्रसिद्ध हुई। इसमें कवि ने हज़रत मुहम्मद साहब के चारित्रिक गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस मसनवी को कवि ने चार अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय में हज़रत मुहम्मद साहब के आरम्भिक चालीस वर्षों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में नबूअत पाने से हिज़रत तक का उल्लेख है। तृतीय अध्याय में हिजरत से देहान्त तक का वर्णन है और चतुर्थ अध्याय में देहान्त के पश्चात् की स्थिति और चमत्कारों का वर्णन है।

यह कवि की मौलिक रचना है। इसकी विशेषता यह है कि कवि ने केवल ऐतिहासिक तथ्यों को न अपनाकर प्रत्युत हज़रत मुहम्मद साहब के चमत्कारों और रियायतों (इस्लामी परिभाषा में हज़रत मुहम्मद साहब के मुख से सुनी हुई बात दूसरे को उन्हीं के शब्दों में सुनाना अथवा हदीस) को भी स्थान दिया गया है। इस मसनवी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह मसनवी शैदा की प्रथम रचना है।

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी— दकन में उर्दू, पृ० 430

'एजाज़ अहमद' नामक काव्य की भाषा-शैली सरस एवं सुन्दर है। इसमें कवि ने शब्दों का चयन बड़ी कुशलता से किया है। ग्रन्थ की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

ऐ साक़ी मुझे दे तूं जाम हलाल,
कि है बदर की जंग का अब ख्याल।
न वह जाम जिस सेती होवे खुमार,
करे बल्कि अस्रार का राज़दार।
क़लम का यह मेरी हलाली तराश,
इसे बदर की फ़तह का है तलाश।
सुनावे महबान-ए-नुसरत शआर,
हुआ बदर का किस तरह का रराज।
कि पहुँची नबी कूँ खबर नागहाँ,
कि नक़त है काबा में कब का खाँ।

× × ×

लिखे रादियाँ है रवायत मेरह,
मैं करता बयान हूँ सुनो तुम सरीह।
कि बैठे थे इक दिन इमामुल रसूल,
महाजरों अन्सार हाज़िर थे कल।
यहूदी इक आता है इहतशाम,
था नाम उसका अब्दुल्ला इब्नसलाम।
शराफ़त में उस साना था दूसरा,
अथा अक़्लमें, इल्म में वह रसा।

रौज़तुल इज़हार

यह मसनवी बारह मजलिशों में है। इसमें हज़रत मुहम्मद साहब, हज़रत अली, हज़रत फातिमा और उनके दोनों पुत्र—इमाम हसन और इमाम हुसेन के जीवन को ऐतिहासिक ढंग से लिखा गया है। इसमें कर्बला की घटना का मार्मिक चित्रण हुआ है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1173 है।[1] यह मसनवी बहुत

---

1. हुआ जब खत्म यह मज़मून मातम।
   कहा तारीख हातिफ़ मजलिस ग़म॥
   किया चाहो तुम आसानी से अज़बर।
   अग्यारा सो बरस थे जब तिहत्तर॥

विस्तृत है। 'एजाज़ अहमद' नामक काव्य की अपेक्षा इस काव्य की भाषा-शैली सुन्दर एवं पुष्ट है। उदाहरणार्थ काव्य की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

देखे अब्बास सरूर के अलमदार
मूये भाई पर ले सारे हैं यकबार
किसी का सर नहीं है तन के ऊपर
किसी के हाथ कट गये हैं सरासर
किसी का तन है सब जखमों से चूर
पड़ा नज़दीक कोई है कोई दौर
× × ×
उमर देखा कि पानी से चले हैं
बहादुर इनके आगे से ढले हैं
अगर पीवेंगे यह पानी वह पियासे
करेंगे जान से हमको निरासे
सो मरवाने को एक सरूर के तईं
वह भेजा चार हजार सवार दे देखीं
गिरे अब्बास पर एक बारी
लड़ाई आ पड़ी उस वक़्त भारी

गुलशन-ए-ईमान

इस रचना में 'फतया कसीदे' (विजय की प्रशंसा) है। प्रो० सिद्दीकी ने लिखा है कि इसमें हज़रत मुहम्मद साहब के चमत्कारों का उल्लेख है।[1] प्रस्तुत लेखक को यह ग्रन्थ देखने को नहीं मिला। श्री हाशमी ने इसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं जो इस प्रकार हैं :—

चमन के गुल गश्त को लुटता यूँ घर से जब खुश खराम निकला।
तेरे भवाँ के अदा दीखने को हलाल करता सलाम निकला॥
अगर चे कहते थे क़मरयाँ सब चमन में आज़ाद सरोसा नहीं।
जब हमने तहक़ीक़ करके देखे तुम्हारे क़द का गुलाम निकला॥[2]

इन काव्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शैदा उच्चकोटि का साहित्य-कार था। कवि ने मर्सिया काव्य शैली को भी बहुत उन्नत किया एवं अनेक धार्मिक ग्रंथों की रचनाएँ कीं।

---

1. प्रो० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीक़ी—बुझते चिराग़, पृ० 265
2. नसीरुद्दीन हाशमी—यूरोप में दखनी मखतूतात, पृ० 507

मुंशी लक्ष्मीनारायण 'शफ़ीक़'

'शफ़ीक़' का जन्म हिजरी सन् 1157 में औरंगाबाद में हुआ।[1] किन्तु सैयद मुहम्मद ने अपने लेख में शफ़ीक़ का जन्म हिजरी सन् 1158 में माना है।[2] ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके पूर्वजों का मूल निवास लाहौर था। सम्राट औरंगज़ेब के दक्षिण विजय के समय इनके दादा भवानी दास मुगल सेना के साथ दक्षिण भारत आये और यहीं पर बसे गये। शफ़ीक़ के पिता मंसाराम आसफ जाह (प्रथम) के शासन-काल में एक ऊँचे पद पर कार्यरत थे और इन्हें पूरा सम्मान मिला था। तत्कालीन प्रथा के अनुसार मंसाराम ने अपने पुत्र शफीक को अरबी और फारसी की शिक्षा दिलायी। लक्ष्मी नारायण शफ़ीक़ ने अल्प आयु में ही अपनी योग्यता का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। इनको शायरी में बहुत रुचि थी और मौलाना गुलाम अली आजआर बिलग्रामी के शिष्यत्व में बहुत कुछ सीखा। इन्होंने पहले अपना काव्य नाम 'साहब' चुना था किन्तु कुछ समय पश्चात् 'शफ़ीक़' अपनाया। उस समय इनके पास एक दो हज़ार शेरों का दीवान था।

कविवर शफीक़ ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शुअरा-ए चमनिस्तान' की रचना हिजरी सन् 1175 में की, जबकि इनकी आयु केवल 18 वर्ष थी। इस रचना (चमनिस्तान) में उर्दू के अनेक कवियों का उल्लेख किया है। कवि की द्वितीय रचना 'शाम-ए-गरीबाँ' है। इसमें ईरानी कवियों का जिक्र है जो भारत में आकर प्रसिद्ध हुए। तृतीय रचना 'गुलेरअना' है। इसकी रचना हिजरी सन् 1181 में हुई थी। इसमें भारतीय फारसी कवियों का उल्लेख है। यह ग्रंथ शाम-ए-गरीबाँ से कहीं अधिक बड़ा है। चतुर्थ रचना हिजरी सन् 1200 में 'तनमेक़ शुगरफ़' नाम से की। इसमें दक्षिण के विभिन्न प्रान्तों के भूगोल तथा कुछ परिवारों का उल्लेख हुआ है। इनकी पंचम रचना 'मासिर आसफी' है जिसकी रचना हिजरी सन् 1208 में हुई। इसमें आसफ जाह (प्रथम) से आसफ जाह (द्वितीय) तक का इतिहास है। षष्ठ रचना 'हालात-ए-हैदराबाद' है। इसका रचनाकाल हिजरी सन् 1214 है। इसमें हैदराबाद की मस्जिदों, महलों, बागों और प्रान्त की चर्चा है। इनकी एक रचना 'तस्वीर-ए-जाना' है। इसमें नख-शिख वर्णन है। इसे कवि ने 169 शीर्षकों में लिखा है।[3] इनकी मसनवी 'मेराज नामा' है। एक अन्य मसनवी 'साक़ी नामा' है। शफीक़ का देहान्त हिजरी सन् 1222 (1880 ई०) में हुआ।

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 442
2. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी जोर (सम्पादक)—मुरक़्क़-ए-सुखन, पृ० 76
3. डा० इक़बाल अहमद—मिर्जा अब्दुर्रहमान प्रेमी कृत् नख शिख, पृ० 6

कविवर शफीक़ की प्रसिद्ध मसनवी 'साक़ी नामा' के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

अरे साक़ी ए रूह बख्श जहाँ।
अरे साक़ी ए जान के तन के जाँ ।।
तेरे देख कर यह तगाफिल के ढंग।
भर आयी है छाती मेरी बे व रंग ।।
तेरी गर्दिश चश्म बस है मुझे।
यही दौर की अब होस है मुझे ।।

क़सीदा लिखने में शफ़ीक़ ने नैपुण्य प्राप्त किया है। इनके एक क़सीदा के कुछ शेर इस प्रकार हैं :—

यक जबरदस्त है मेरा बाली,
यक क़ौमी दिल है मेरा पुश्त व पनाह।
हक़ दबातिल है सामने जिसके,
यों अयाँ जिस तरह सफेद व सयाद।
यानी नवाब मीर अहमद खाँ,
असदुल मुल्क हज़रत आली जाद।
बाद जिसका निज़ाम दौलत व दीन,
जद जिस का जनाब आसफ जाह।

शफ़ीक को ग़ज़ल के क्षेत्र में स्थान प्राप्त था। इनकी ग़ज़लों में ग़ज़ल काव्य विधा की प्रायः सभी विशेषताएँ मिलती हैं :—

बहार आयी जिनो ने सर उठाया खुदा हाफ़िज़।
नसीम सुबह ने दिल को सताया है खुदा हाफ़िज़ ।।
× × ×
हमें कुंज चमन में छोड़ कर सैय्याद जाता है।
खुदा जाने वह हम से खुश है या नाशाद जाता है ।।

कविवर शफ़ीक की प्रसिद्ध रचना 'तस्वीर-ए-जाना' है। इसमें कवि ने स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि कल्पना की उड़ान दर्शनीय है। कवि ने नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है :—

सरासर रम्ज़ और ईमा है आँखें, इशारों में बहुत गोया है आँखें।
नहीं यह नश्म व अबरू में गया भूल, धरे हैं ताक में हो नर्गिसी फूल ।।
× × ×
नज़र कर ऐसी अचपतियाँ बैन में, हिरन ने चौकड़ी भूला है बन में।
चुहल आँखों को इसकी देख अछी, खजालत से रहे पानी में मछी में ।।

इससे स्पष्ट है कि कवि काव्य-कौशल में निपुण था और इसने अपने काव्य में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। शब्दों का चयन भी अनूठा है।

सिराज औरंगाबादी

सैयद सिराजुद्दीन 'सिराज', वली औरंगाबादी के समकालीन सूफी संत और कवि थे। इनका जन्म हिजरी सन् 1127 में औरंगाबाद में हुआ।[1] किन्तु दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्री हाशमी का मत है कि इनका जन्म हिजरी सन् 1177 में हुआ।[2] मीर तकी और मीर हसन ने अपने तजकरों में लिखा है कि सिराज सैयद हमज़ा दकनी के शिष्य थे किन्तु जो तजकरे अहले औरंगाबाद ने लिखे हैं उनमें इनका उल्लेख नहीं है और न खुद आज़ाद ने इसका कहीं जिक्र किया है।[3] श्री हाशमी ने भी लिखा है—"शुमाली हिन्द के तजकिरा नवीस मीर हसन और मीर किसी शायर हमज़ा को इनका उस्ताद करार देते हैं। मगर सही नहीं है। दकन में कोई शायर इस तखल्लुस का नहीं गुज़रा।"[4]

सिराज औरंगाबादी ने दक्खिनी और फारसी में कई ग्रन्थ रचे थे। ये दक्खिनी के सिद्धहस्त कवि थे। इनका दक्खिनी काव्य संग्रह प्रो० अब्दुल कादर सरवरी ने सम्पादित करके प्रकाशित करवाया है। यह एक वृहत् काव्य ग्रंथ है। इस काव्य संग्रह में कवि की 12 मसनवियाँ भी संकलित हैं। सिराज के इस काव्य संग्रह का ऐतिहासिक नाम 'मुन्तखिब दीवान हां' है, जिसमें पाँच हज़ार शेर संकलित हैं। इस काव्य में ग़ज़ल, मुखम्मल, छोटी-छोटी मसनवियाँ, तरजीअबन्द और रुबाइयाँ आदि भी सम्मिलित हैं।

कवि सिराज की प्रसिद्ध रचना 'बूस्तान-ए-ख्याल' है। यह एक उच्चकोटि की रचना है। इस प्रेमाख्यानक काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1170 है :—

जिबस्त इसमें है सैर-ए-गुलशन मदाम।
रखा बूस्तान-ए-ख्याल इसका नाम॥
अदद जब कि इस नाम के आये हाथ।
मुतबिक हुए साल व अबयात साथ॥
ये दो दिन की तसनीफ़ है हस्ब-ए-हाल।
जबाँ पर निकल आया दिल का उबाल॥

सिराज वास्तव में महापुरुष होने के साथ-साथ एक महान कवि भी थे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जब इन्होंने अपने वृहत् दीवान (काव्य संग्रह)

---

1. साल हिजरी थे यक हज़ार सद व पंजाह दो।
   वाक़िफ़ इल्म लदनी साहब इसरार के॥
   प्रो० अब्दुल कादर सरवरी—कुलियात सिराज़, पृ० 25
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 405
3. हकीम सैयद शम्सुल्लाह कादरी – उर्दू-ए-क़दीम, पृ० 110
4. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 406

को पूर्ण किया, उस समय इनकी आयु केवल 24 वर्ष थी। कवि के शब्द द्रष्टव्य हैं :—

जब किया जज़ो परेशान सुखन शीराज़ा बन्द।
थे बरस चौबीस मेरी उम्र बेबुनियाद के।।

बूस्तान-ए-ख्याल

यद्यपि कवि धार्मिक मनोवृत्ति का था तथापि कुछ इतिहासकारों ने कवि के जीवन में 'लौकिक प्रेम' को जोड़ दिया है। कदाचित् 'बुस्तान-ए-ख्याल' में जो प्रेम की चर्चा है उससे यह अनुमान किया हो। किन्तु काव्य के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि काव्य में जो प्रेम आया है वह अलौकिक है और सम्पूर्ण काव्य में सूफ़ी विचारधारा प्रवाहित होती है। केवल इतना कहा जा सकता है कि कवि ने 'इश्क मज़ाज़ी' को 'इश्क-हकीक़ी' के समान ही महत्व प्रदान किया है। अन्य सूफी साधकों की भाँति कवि सिराज ने भी 'इश्क-मज़ाज़ी' को 'इश्क-हकीक़ी' के लिए अनिवार्य स्वीकारा है :—

पर हक़ीकत की सेर है ख्वाहिश।
राहे इश्क-मज़ाज लाजिम है।।
और आशिकों मिसाल तुझे तुम न बूझ्यो।
अब मुबतला आम है मुबतला-ए खास।।

'बूस्तान-ए-ख्याल' नामक प्रेमाख्यानक काव्य का कथानक अन्य प्रेम गाथाओं से भिन्न है। इसमें कवि ने पुरानी परिपाटी अर्थात् मसनवी परम्परा का पालन नहीं किया है। कथानक का आरम्भ करुण क्रन्दन से हुआ है :—

अरे हम नशीनों ! मेरा दुख सुनो।
मेरे दिल के गुलशन की कलियाँ चुनो।।
मेरे पर अजब तरह के दर्द हैं।
कि सब दर्द इस दर्द के गर्द हैं।।
फलक होये तो इस चोट के जाय लोट।
जिगर के जिगर के जिगर में है चोट।।

यह प्रेम काव्य की मौलिक कला कृति है।

कथा-सार

कवि और एक हिन्दू लड़के में सात वर्ष की आयु से मित्रता है। दोनों जवान होते हैं। हिन्दू लोग लड़के का एक मुसलमान से प्रेम करना पसन्द नहीं करते और हिन्दू लड़के का मन फेरते हैं। जब लड़का कवि से दूर रहने लगता है तब कवि पर पहाड़ सा गिर पड़ता है। वह उस लड़के के वियोग में दीवाना हो जाता है। उसे

जंजीर में बाँध दिया जाता है। वहाँ से एक सरदार मुक्त करा कर साथ ले जाता है और उसे हर समय आश्वासन देता रहता है। उसकी इच्छा पूरी करने का प्रयास भी करता है। किन्तु वह उसे अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाता है और न ही उसका दुख दूर करने में सफल होता है। वह एक दिन अपने हरम में ले जाकर सभी स्त्रियों के हाथ दिखाता है कि यदि वह किसी पर मुग्ध हो तो वह उसके सुखी जीवन के लिए उसे सौंप दे, लेकिन उसका कवि पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता है। अब वह स्वयं उसकी सेवा में प्रस्तुत रहने लगता है किन्तु कवि भाग खड़ा होता है और भीषण रात में हैदराबाद पहुँचता है। तुरन्त उस हिन्दू लड़के से मिलता है। रात के समय वह लड़का उससे बड़ी अच्छी तरह मिलता है पर दूसरे दिन से फिर वही बेरुखी अपना लेता है। अब कवि के पास केवल आहें और आँसू शेष रह जाते हैं।

इस प्रेम गाथा के कथानक से दो तात्पर्य निकलते हैं—एक, मित्रता की महानता और दो, आध्यात्मिक प्रेम की प्रधानता।

कवि ने अपने भावात्मक हृदय का परिचय बड़ी सुन्दरता एवं प्रभावशाली ढङ्ग से दिया है। शेख सादी की परम्परा को लेकर लिखी गयी दक्खिनी काव्य की यह एक मात्र प्रेम गाथा है जिसमें कवि ने प्रेम भाव का सुन्दर चित्र अंकित किया है। विरह वेदना सजीव व स्वानुभूत की पुकार सुनाई देती है। भाव एवं भाषा-शैली की दृष्टि से रचना उच्चकोटि की है।

गौण कवि और काव्य

अब्दुल मुहम्मद तरीं

अब्दुल मुहम्मद तरीं द्वारा रचित एक पुस्तक 'शुमायल अल नबी' ज्ञात है किन्तु पुस्तक का रचना काल नहीं मालूम हो सका और न ही कवि का जीवन-वृत्त प्राप्त हो सका है। इस पुस्तक से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि कवि ने इसको पश्तो भाषा के ग्रंथ से दक्खिनी में अनुवाद किया है।[1] इस कथा-काव्य का मूल विषय हज़रत मुहम्मद साहब के सद्व्यवहार और नख शिख है। इस काव्य की जो थोड़ी बहुत पंक्तियाँ मुझे देखने को मिली हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि काव्य-कला में निपुण था। इसने शब्दों का चयन सुन्दर ढङ्ग से किया है। इसकी शैली में प्रवाह

---

1. अरवून्दर व यज़ानी जो पश्तो मने।
किया है सो मनक़िता हूँ मैं बोलने॥
× × ×
करीब अल फहम नज़्म दखनी अछे।
हर एक किस का दिल उसको सिखने अछे॥

है। इसमें सहायता और सरल गुण पाये जाते हैं। ईश-वन्दना कवि ने इन शब्दों में की है :—

इलाही सच्चा तूं है परवरदिगार
दोनों जग में कुदरत तेरा आश्कार
सच्चा तूं है क़ादिर सच्चा तू हक़ीम
सच्चा तूं है सानअ सच्चा तू रहीम ।

हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा कवि ने इस प्रकार की है :—

मुहम्मद के उस सर मुबारक ऊपर
अथे बाल कीते रखो याद कर
अथे लाक बारा व तेरा हज़ार
देकर तीन सोतें अन्दर शुमार
व खुश शक्ल मरगूब होर नहरज़
रखी थे लबी के सो सर ऊपर ।

दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री हाशमी ने अनुमान लगाया है कि इस कथा-काव्य की रचना कवि ने ग्यारहवीं शताब्दी में किया है।[1]

नूरे दरिया कादरी

मूल नाम सैयद शाह मुहम्मद है और काव्य नाम 'नूरे दरिया' है। ये शाह अमीनुद्दीन बीजापुर के शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे। इनका जन्म और मरण अज्ञात है। केवल इतनी सूचना है कि ये बीजापुर से रामचूर चले गये थे और वहीं पर देहान्त हुआ। इनकी समाधि रामचूर में विद्यमान है। सूफी साधक नूरे दरिया अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान, उपदेशक और शिक्षक थे।

नूरे दरिया ने अपनी रचना 'रिसाला-ए-तसव्वुफ'[2] में तसव्वुफ के कठिन से कठिन सिद्धान्त को बड़े ही सुन्दर एवं सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। इसके अध्ययन से एक साधारण व्यक्ति भी तसव्वुफ की विशेषताओं को भली प्रकार समझ सकता है। सिद्धान्तों को इन्होंने संक्षेप में प्रस्तुत किया है जिससे पाठक ऊबता नहीं।

सूफी साधक नूरे दरिया ने अपने काव्य 'रिसाला-ए-तसव्वुफ' में यह स्पष्ट किया है कि गुरू, हज़रत मुहम्मद साहब और परमात्मा में भेद नहीं है :—

तू जा पीर कूं पूछ लेता है।
खुदा होर रसूल-पीर मिल एक है ॥

भारतीय दर्शन के अनुसार सूफ़ी सन्त कवि नूरे दरिया ने भी स्थूल शरीर का वर्णन करते हुए, उसके पाँच तत्वों का उल्लेख किया है। कवि ने स्थूल शरीर में चार

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 350
2. हस्तलिखित प्रति, क्रम संख्या 38, स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद।

तत्व अत्यन्त आवश्यक बताये हैं—आचरण, ईमान, बुद्धि और लज्जा। कवि का यह भी कथन है कि यदि ये चारों तत्व मनुष्य में न हों तो मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। इन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि इन चारों चीजों को चुराने के लिए चोर हर समय लगे रहते हैं जो इस प्रकार हैं :—

1. आचरण की चोरी असावधानता करती है।
2. ईर्ष्या ईमान की चोरी करती है।
3. क्रोध बुद्धि की चोरी करता है।
4. लालसा लज्जा को चुरा लेती है।

'रिसाला-ए-तसव्वुफ' के अध्ययन से ऐसा लगता है कि नूरे दरिया पर भारतीय तन्त्र शास्त्र का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। तांत्रिक लोग मन्त्र-जाप के लिए पाँच बातों को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं—(1) संकल्प, (2) अंगन्यास, (3) करन्यास, (4) विनियोग और (5) ध्यान। जिस मन्त्र का जाप किया जाता है उसके अक्षरों का न्यास शरीर के विभिन्न अंगों में किया जाता है। नूरे दरिया ने सात अक्षरों को न्यास के लिए चुना है :—

कि सो आज़ा के हुर्फ सात सुन।
कि 'ये' शेर है 'वाव' है देख तूं॥
सही 'मीम' होर 'लाम' होर 'काफ़' है।
ज़िक्र सात हुरफाँ का यों कहे॥

कहने का तात्पर्य यह है कि 'ये', 'हे', 'व', 'मीम', 'लाम' और 'काफ़' अक्षरों का अंगन्यास करना चाहिए। इन्होंने एक-एक अक्षर को शरीर के विशेष स्थान के लिए निर्धारित किया है। उदाहरणार्थ 'ये' अक्षर का न्यास इन्होंने चरण के लिए चुना है :—

तू हर वक़्त यूं ज़िक्र करके रहता।
कि या रब क़दम राख साबित यहाँ॥

कवि नूरे दरिया का कथन है कि यदि मनुष्य अंगन्यास करता है तो वह नफ्स-ए-अम्मारा अर्थात् वासना से बच जाता है। सूफी सन्त नूरे दरिया का विचार है कि 'नफ्स अम्मारा' में ही शैतान निवास करता है उस पर नियन्त्रण अंगन्यास के द्वारा ही किया जा सकता है।

शाह ताहिर

मूल नाम सैयद ताहिर था और काव्य नाम ताहिर था। इनके पिता सैयद अब्दुल लतीफ थे। इन्होंने अपने पिता से ही आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। शाह ताहिर सदैव ही जनसाधारण की सेवा में लगे रहते थे। धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति होने के कारण इनकी रचनाएँ भी धार्मिक ही हैं। इनकी दो पुस्तकें विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं—(1) 'कुन्जुल नफायस' और (2) 'ख्वान यगमान'। प्रथम पुस्तक कुन्जुल

नफायस फ़िका (धार्मिक नियम) से सम्बन्धित है और द्वितीय पुस्तक ख्वान यगमान में हज़रत मुहम्मद साहब की विशेषताओं और गुणों की चर्चा है। इनका देहान्त हिजरी सन् 1115 में हुआ। इसके अतिरिक्त कवि शाह ताहिर की कई अन्य कविताएँ भी मिलती हैं। यद्यपि शाह ताहिर सदैव आध्यात्मिकता का ध्यान रखते थे फिर भी सामाजिक जिम्मेदारियों से इन्होंने अपना मुख नहीं मोड़ा और न ही उसे पूरा करने में कभी असमर्थ रहे। इन्होंने धर्म के साथ-साथ सामाजिक कर्त्तव्यों का भी पालन किया।

सूफी साधक शाह ताहिर के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

सते का दाव ज़र कमर व बाज़ व बन्दरा
दान दरी व मलोच कि जैबदा व वाजवां
यक दाना गुलसरी व गुलो बन्द पलकरी
वाँ जो शवारा कहू नई कि शद ज़ोनत ज़नाँ
\+ + +
कह वह अक़ार ताज़ी व तबनोल बरग़ पान
पस रंग कात नो फल व पोपल सुपारियाँ
चुना सफेद आजक बसा जोर फारसी
जल इश्क पछि बदरी बो दिसयाँ।

सैयद मुहम्मद आज़िज़

आज़िज़ अपने समय के प्रसिद्ध सूफी और कवि थे। इनका जीवन वृत्त अज्ञात है। सैयद शमसुल्लाह कादरी का कथन है कि "ये दकन के रहने वाले थे। दकनी सलतनतो (राज्यों) की तबाही और आलमगीर की फतूहात (विजयों) का ज़माना उन्होंने देखा था। इनकी तसनीफात (रचनाओं) से एक छोटी सी मसनवी दकन में निहायत मक़बूल (प्रसिद्ध) और किस्सा मलिका मिस्र के नाम से मशहूर है।"[1] उनकी रचना के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कवि दृढ़ धार्मिक विचारों वाला व्यक्ति था। उसका कुरआन और शरीअत पर विश्वास ही नहीं था बल्कि उनके नियमों का पूर्ण रूप से पालन भी करता था।

सैयद मुहम्मद आज़िज़ का काव्य किस्सा-ए-मलिका-ए-मिस्र अथवा किस्सा-फीरोज़ शाह है। इसका रचना काल कवि ने स्वयं लिखा है :—

है तारीख ग्यारह अजमाहे सफर।
कि पंचशम्बः का रोज़ था सरबसर॥
नबी के सो हिज़रत बरस यक हज़ार।
होर एक सो पौ बोल्या रहे यादगार॥

---

1. सैयद शमसुल्लाह कादरी—उर्दू-ए-करीम, पृ० 95

अर्थात् काव्य का रचना-काल अरबी मास सफर की 11 तारीख थी और वृहस्पतिवार और हिजरी सन् 1100। कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल स्मरण रहने के लिए मैंने काव्य की रचना की है।

कवि की यह मौलिक रचना नहीं है। कवि ने स्वयं लिखा है कि मैंने इसकी कथावस्तु फारसी ग्रन्थ से ली है :—

अथा यूँ किस्सा फारसी नज़्म सब।
कहना तरजुमा कर धर्‌या दिल में तब॥
पीछे मांगा तौफीक अपन पीर पास।
किया फारसी कूँ दक्खिन साल रास॥

इस काव्य का आरम्भ भी अन्य दक्खिनी काव्यों की भाँति ईश स्तुति से ही होता है जो इस प्रकार है :—

कहूँ मैं सनह सिफ़त हक़ अव्वल।
बनाया है यो सब जगत बेबदल॥
रख्या जन मलक पे हफ्त आसमाँ।
चलाता है यो नित ज़मीं होर जमाँ॥
दबाता है ओ देस सब नूर सों।
करे दीन जो रोशन चन्दर सूर सों॥

कथा-सार

मिस्र देश की राजकुमारी मलिका पिता फिरोज़ शाह की मृत्यु के बाद सिंहासन पर बैठी। कुछ समय शासन करने के पश्चात् एक दिन उसने अपने मन्त्री को आदेश दिया कि वह राज्य में विज्ञापन दे दे कि जो कोई राजकुमारी के प्रश्नों का उत्तर दे देगा, वह उससे विवाह करके उसे राज्य सौंप देगी। मन्त्री ने समस्त राज्य में विज्ञापन दे दिया। अब सैकड़ों व्यक्ति अपने भाग्य को अजमाने के लिए आते हैं किन्तु कोई भी व्यक्ति राजकुमारी मलिका के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता। अन्त में एक भारतीय विद्वान् अब्दुल्ला अलीम राजकुमारी के दरबार में जाता है और वह राजकुमारी मलिका के सभी प्रश्नों का उत्तर देता है और राजकुमारी मलिका उससे विवाह कर लेती है।

इस कथात्मक काव्य का मुख्य लक्ष्य है इस्लाम धर्म की मान्यताओं का प्रतिपादन करना। मलिका जितने प्रश्न करती है सभी धार्मिक हैं और उनका समाधान भी धार्मिक उत्तरों से होता है। काव्य में कहीं-कहीं तसव्वुफ की भी झलक मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि की धार्मिक भावना इतनी पुष्ट है कि वह प्रेम भाव का अंकन करने में अधिक सफल नहीं हुआ है और यही कारण है कि कथानक भी शिथिल हो गया है।

पुस्तक का कला पक्ष और भाव पक्ष उच्चकोटि का नहीं है अतः ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से साधारण कोटि का है।

शाह् अब्दुर्रह्मान क़ादरी

शाह् अब्दुर्रह्मान क़ादरी मुगल शासन के प्रसिद्ध कवि थे। बीजापुर के पतन के बाद बिहार चले गये थे। ये कुछ समय तक औरंगजेब के पुत्र शाह् आलम के सभासद जन में रहे और उसके बाद दिल्ली गये। दिल्ली में जब तक रहे प्रति दिन यमुना के किनारे टहलने के लिए जाया करते थे। वहाँ पर इमाम हुसेन के सम्बन्ध में मर्सिया सुनते-सुनते स्वयं अत्यधिक प्रभावित हुए और स्वयं एक वृहद मसनवो की रचना की, जिसमें लगभग सोलह हजार शेर हैं। इसका नाम लेखक ने 'बाग़-ए-हुसेनी' रखा है। इस काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1121 है।

शाह् अब्दुर्रह्मान क़ादरी के काव्य की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

जो इस वक़्त में था बीजापुर शहर
सो इस शहर की थी यहाँ में खबर
अथे बादशाह वाँ के साहबे अदल
न था यक रती काम का कीं नकल
जती खलक़ वाँ की बज़ीअ व शरीफ़
सखी मेहरबाँ होर भोती तकलीफ़
मेरा थे सब छन्द कुर्बां सते
अथे मुअतक़द वह फकीराँ सते
जो आवे बुजुर्गां मेरे शहर में
रखी कर वतन अपना आरा सीं
अथा नाम उस शहर का हर दयार
तो आवें खबर सुन के आलम अपार
खुदा के फ़ज़ल सूं वह मामूर था
इसी करम सूं वह मंसूर था
हुए बादशाह जब सूं औरंगजेब
किए उसके लेने के तईं कई करीब
दे भेज फौजां को अव्वल अताब
जो जाकर करीं मुल्क सारा खराब
पछीं आप आ एक हीले सते
लिए शहर होर मुल्क सब ग़सब थे।

इस कविता से स्पष्ट होता है कि कवि निडर और स्पष्टोक्ति वाला था। वह बीजापुर के पतन पर शोकाकुल है और उसे अपनी मातृभूमि अत्यधिक प्रिय है।

मीर जाफर जटली

मीर जाफर जटली का जन्म उत्तर भारत में हुआ और इनके पूर्वज भी उत्तर भारत के ही थे। इनका निवास स्थान नारनोल था। ये शाहज़ादा कामबख्श की सेना के साथ दक्षिण भारत आये और हैदराबाद तथा औरंगाबाद में बहुत समय तक रहे। दक्खिन के साहित्यिक वातावरण से अत्यधिक प्रभावित होकर स्वयं दक्खिनी भाषा में कविता करने लगे। मीर जाफर की कविता को वह महत्व नहीं मिला जो कि वह समझता था। जब ये अपने को प्रसिद्ध करने में असफल रहे तो इन्होंने हुजू (निन्दा कविता) लिखना आरम्भ कर दिया। इनके इस पहलू ने इन्हें अत्यधिक प्रसिद्धि प्रदान की, यद्यपि ये तंग आकर ही हुजू लिखने लगे थे। अब लोग इनसे डरते थे कि कहीं उन्हीं की कहीं हुजू न लिख दे। अब इसके डर से बड़े से बड़े कवि और रईस तथा सामन्त इसका आदर करते थे। इसने अवसर से लाभ उठाकर हुजू को अपनी आय का साधन बनाया। इसकी इस आदत को देखकर मुग़ल शासक फर्रुखसियर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसकी हत्या हिजरी सन् 1125 अर्थात् 1713 ई० में करवा दी।

मीर जाफर ने केवल सम्राट औरंगजेब की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मीर जाफर ने विविध विषयों पर कविताएँ लिखी हैं। इसने हुजू कविता को एक नयी दिशा प्रदान की। इसका यह पक्ष बिलकुल नया था। इसे अपनी हुजू कविता पर गर्व भी था। इसका कथन था कि इसकी हुजू कविता से किसी का बचना बहुत सरल नहीं है। मैं जो कविता करता हूँ वह व्यर्थ नहीं है। जब लोग मुझे मजबूर कर देते हैं तभी मैं अपने दिल की जलन को निकाल कर शांति देता हूँ।

मीर जाफर जटली ने बहुत सी कविताएँ लिखी हैं। इनके काव्य संग्रह के अध्ययन से प्रतीत होता है कि काव्य की प्रतिभा इसमें थी। मीर जाफर की सुलूक जीवन नामा, इख्तलाफ़-ए-जमाँ और मर्सिया आलमगीर बहुत ही सुन्दर रचनाएँ हैं। इनको लोगों ने खूब पसन्द किया।

कवि मीर जाफर जटली कंजूस लोगों को पसन्द नहीं करता था। उससे सम्बन्धित इनकी एक कविता के कुछ शेर इस प्रकार हैं :—

नईं हुजू अज़ राहे हरस व हवा अस्त।
दिलाज़ार रा हुजू करदन खा अस्त ॥
दिया जाफ़रा कनूं शिकायत मकुन।
जा मूजीं व माजी हिकायत मकुन ॥

इससे मीर जाफर की भाषा का भी परिचय मिलता है कि किस तरह इसने उर्दू अथवा हिन्दी में फारसी को मिलाकर गंगा-यमुनी भाषा का निर्माण कर दिया।

अलाबल

अलाबल का मूल नाम अलीउद्दीन है। इनका जीवन-वृत्त अंधकार में पड़ा हुआ है। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इन्होंने अपने जीवन में कोई प्रसिद्धि नहीं

पायी। इनके समकालीन कवि वली औरंगाबादी, बहरी, वजदी, इशरती, कादर और सनअली आदि हैं। इनके काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि ये सुन्नी सम्प्रदाय के थे।

कवि अलाबल का काव्य 'इबलीस नामा' मिलता है। इसमें कवि ने एक स्थल पर कहा है कि इस काव्य में 575 अर्द्धालियाँ हैं :—

सकल बैत इबलीस नामाच कियाँ।
पाँच सो पचास होर पचीस हो कियाँ ॥[1]

किन्तु अभी तक कोई प्रति ऐसी नहीं मिल पाई है जिसमें कि 575 अर्द्धालियाँ हों अर्थात् सभी प्रतियाँ अधूरी हैं। हस्तलिपिक ने कवि का नाम अलाउद्दीन फ़क़ीर लिखा है—

'किया यो अलाउद्दीन फ़क़ीर दास्तान'।[2]

कवि अलाबल के काव्य का रचना काल हिजरी सन् 1113 (1792 ई०) लिखा है :—

अग्यारवीं सदी पर बरस तेरवाँ।
चल्या था हिज़रत हुवा बाद अजाँ ॥
माहे जिलहज थी वस्त व एक।
हुआ है किस्सा यों अजब नेक देक ॥[3]

अर्थात् कवि ने जिलहज मास, हिजरी सन् 1113 में काव्य की रचना की है। कथानक का मूल स्रोत अरबी है किन्तु कवि अलाबल ने फारसी से दक्खिनी में लिखा है। कवि के शब्दों में :—

अरबी अथा थे हुआ फारसी।
नज़र तल पर या मुंज कूँ ज्यूँ आरसी ॥
होस मुझ कूँ यो पैदा हुआ।
बतौफ़ीक़ हक़ ते हवैदा हुआ ॥
हुआ तब नज़्म यों दखनी साल में।
ज्यूँ उंदिया मोती किएँ थाल में ॥

काव्य का श्रीगणेश कवि ने ईश-स्तुति से किया है जो इस प्रकार है :—

सना नित खुदा को सजावार है।
निराधार्यां का ऊ आधार है ॥

---

1. डा० मसऊद हुसेन खाँ—क़दीम उर्दू— इबलीस नामा-सम्पादक—सैयद मुबारिजुद्दीन रफत और मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी, पृ० 311
2. वही, पृ० 311
3. वही, पृ० 314

मुहम्मद कूँ सरवर किया फाम सूँ ।
है पुश्तो पनाह खास होर आम कूँ ।।

इस काव्य का कथानक शैतान की उत्पत्ति एवं मनुष्य के जन्म से है । इबलीस नामक एक देवता था उसका पद देवताओं में श्रेष्ठ था । वह देवताओं का शिक्षक था । एक बार ईश्वर ने देवताओं को आदेश दिया कि सभी लोग आदम (मानव) को सिजदा (सिर झुकाना) करो, सभी देवताओं ने परमात्मा के आदेश का पालन करते हुये आदम का सिजदा किया, किन्तु देवताओं के सरदार इबलीस ने सिजदा नहीं किया अर्थात् उसने परमात्मा के आदेश का उल्लंघन किया और उसने अपना महत्व खो दिया ।

यह एक धार्मिक कथा है । इसे कवि ने जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए लिखा । इसके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कवि धार्मिक मनोवृत्ति का है । कवि सांसारिक आकर्षणों को तुच्छ समझकर उनसे दूर रहता है । अलावल कोई पेशावर कवि नहीं था । इसका केवल 'इबलीस नामा' काव्य मिलता है । किन्तु इसमें साहित्यिक गुण मौजूद हैं । इसमें सरलता, सहजता, सरलता और प्रांजलता भी है ।

अशरफ़

सैयद अशरफ़ अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे । इनका उल्लेख मुख्यतया पुराने तज़किरों में मिलता है । इनका जीवन निर्धनता में बीता । इन्होंने उत्तर भारत की भी यात्रा की थी ।

कविवर अशरफ़ ने हिजरी सन् 1125 अर्थात् 1713 ई० में 'जंगनामा हैदर' की रचना की । इसका मूल विषय हज़रत अली के युद्धों का वर्णन है । किन्तु इसमें वर्णित युद्ध इतिहास सम्मत न होकर काल्पनिक हैं । इस रचना के नायक हज़रत अली हैं । इसका कथानक यद्यपि ऐतिहासिक नहीं है किन्तु कवि ने प्राचीन कथानकों के अनुरूप ही अपने नायक को महत्व प्रतिपादित करने के लिये तिलिस्म और युद्धों में नायक को विजय के मध्य से इस्लाम के महत्व को भी प्रतिपादित किया है। कवि ने कालकी भूमिका में लिखा है कि उसने फारसी ग्रन्थ से कथानक को लिया है । रचना उच्चकोटि की है । इसमें किसी प्रकार की शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होती है । 'ज़ंगनामा हैदर' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

खुदावन्द अकबर है साहबे करीम
कि जिसका मुहम्मद है नायब मुक़ीम
न मादर पिदर उस कूँ नाता रहे
दो जग ऊ पैदा कर निहारे
मदीने ने मग़रिब तरफ यक शहर
किते दूबर है बहूत उसका सफ़र

बरस यक पर छः महीने की राह
अथा, रोम के मुल्क बादशाह
+ + +
सुन्या मैं है तू ख्वाजा मीर अली
वह शेरे खुदा पहलवान-ए-नबी
न छोड़े तुजे कई ज़माने में चार
अगर बाद हो तूं जो शहसबार
न छोड़े तुजे सात दरिया के पार
न छोड़े तुजे कई ज़मी के तलार

कविवर सैयद अशरफ़ ने मर्सियों की भी रचना की है। एक मर्सिया के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

बानों कई असग़र नहीं अब मैं झलाऊँ किसके तईं।
सोना हुआ है पालना अब मैं सुलाऊँ किसके तईं ।।
नहला के मैं कपड़े पना उस कूं बनाती गुल नमन।
वह फूल सूखा तेरे बिन अब मैं बताऊँ किसके तईं ।।
सोता था वह जब नीद भर पीते उठाती दूर कूँ।
वेदम है देखो आज वह अब मैं जगाऊँ किसके तईं ।।

इससे विदित होता है कि कवि अशरफ चरित्र निर्माण में निपुण था और उसे काव्य कला अच्छी तरह मालूम थी। भाषा-शैली सुन्दर है।

ग़ज़नफर हुसेन

गज़नफर हुसेन औरंगाबाद के निवासी थे।[1] इनका जीवन-वृत्त अंधकार में है। इनका उल्लेख न तो किसी तज़किरा में मिलता है और न ही इतिहास की पुस्तकों में। सम्भवतः एक साधारण व्यक्ति होने के कारण किसी इतिहासकार अथवा तज़किरा निगार में इन्हें महत्व नहीं दिया।

गज़नफर हुसेन की एक 'जंगनामा आलिम अली खाँ' उपलब्ध है। इसको श्री देवीसिंग चौहान ने सम्पादित करके प्रकाशित कराया है। इस काव्य का रचना-काल हिजरी सन् 1132 (1720 ई०) है :—

हज़ार होर सौ तीस थे दो ऊपर।
मुहम्मद की हिज़रत कूं सुन कान धर ।।[2]

इस काव्य में आलिम अली खाँ और निज़ामुल मुल्क के बीच एदलाबाद, जल-

---

1. देवीसिंग चौहान — ग़ज़नफर हुसेन कृत जंगनामा आलिम अली खाँ, पृ० 1
2. वही, पृ० 50

गाँव (महाराष्ट्र) में हुए युद्ध का वर्णन है। कवि ने युद्ध की तिथि इस प्रकार अंकित की है :—

थी तारीख माह शव्वाल की।
बड़ी सख्ततर नहस जंजार की।।
अथा रोज़ इतवार का ना-ब-कार।
घड़ी थी वो मिर्रीरन की आशकार।।[1]

इस काव्य के द्वारा कवि ने आलिम अली खाँ का चरित्र चित्रण किया है। इसमें उसकी वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। वह अपने सैनिकों को संबोधित करके कहा—मेरी जवानी है, मुझे जीने की भी बड़ी आकांक्षा है लेकिन मैं चाहता हूँ कि जीवन प्रतिष्ठापूर्ण हो :—

मेरे दिल को रहमत सूं शाबाश है।
जवानी में जिवना बड़ी आस है।।
जिऊँ वो भला जो अंगे लाज है।
वगर नै तो क्या तख्त और ताज है।।[2]

कविवर ग़ज़नफर की भाषा दक्खिनी की पुरानी परम्परा में रंगी हुई है। इसमें अरबी, फारसी और संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ-साथ मराठी के शब्द भी हैं। इसमें देशज शब्द पर्याप्त मात्रा में हैं। शैली में चुलबुलाहट है। रचना में अलंकारों का अभाव है। युद्ध का वर्णन होने के कारण वीर रस को विशेष स्थान मिला है। रचना साहित्यिक दृष्टि से निम्न कोटि की है।

आशिक़

मूल नाम सैयद अब्दुल्लाह है और काव्य नाम आशिक़। आशिक़ औरंगाबाद के निवासी थे। ये प्रसिद्ध सूफी साधक निज़ामुद्दीन (द्वितीय) के शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे। शाह निज़ामुद्दीन (द्वितीय) का देहान्त हिजरी सन् 1143 अर्थात् 1729 ई० में हुआ। सैयद अब्दुल्लाह 'आशिक़' का जीवन वृत्त अज्ञात है।

शाह आशिक़ की रचना 'इशारातनामा अल ग़ाफ़लीन' उपलब्ध है। कवि ने इस काव्य के द्वारा उन लोगों को उपदेश दिया है जो परमात्मा को भूले हुए हैं। वास्तव में कवि ने इस काव्य में सद्व्यवहार और तसव्वुफ से सम्बन्धित विषयों को स्थान प्रदान किया है। इस ग्रन्थ के कुछ प्रमुख शीर्षक इस प्रकार हैं—वज़ू का महत्व, आचार विचार नमाज़, पवित्रता, बदचलनी, उदारता, हराम, स्त्री, नरक, स्वर्ग, शिक्षा-दीक्षा, कल्पना, अक़्ल, इश्क़ और क़यामत आदि। इस काव्य से स्पष्ट होता है कि कवि सन्त मनोवृत्ति का था।

---

1. देवीसिंग चौहान—ग़ज़नफर हुसेन कृत जंगनामा आलिम अली खां, पृ० 23
2. वही, पृ० 17

कविवर आशिक ने अपने आध्यात्मिक गुरु की प्रशंसा इन शब्दों में की है :—

किया पीर पर मैं अपस कूँ फ़िदा,
ऊ है बादशाह मैं हूँ उसका गदा।
मगर पीर मेरा सो ईमान है,
कि ईमान क्या बल्कि रहमान है।
निज़ामुद्दीन सानी है सानी आली,
बताया मुझे उन खुफ़ी होर जिली।
वली चिश्त के घर का है जिस पोवार,
कि आलम है इस फैज़ का इन्तज़ार।
× × ×
तसद्दिक़ हूँ बलिहार उस पीर के,
निज़ामुद्दीन सानी से अक़्सीर के।

इससे स्पष्ट होता है कि कवि आशिक़ भी सूफियों के चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बन्धित था।

कवि ने ईश वन्दना करते हुए कहा है :—

वले देख क्या है अजायब निकात,
ताजुब्ब न कर यो है वबोचा बात।
जो तूं देखता सो है इसरार रब,
यों सुनना सूं है उसके भेद सब।
कई कुछ दुआ हो कई कुछ है जो,
अभी देख तू है एक का एक ओ।

कवि ने काव्य रचना का उद्देश्य व्यक्त करते हुए लिखा है :—

सफो नाम इसका सो ऐ मुसलमीन,
किते इसको इशारत अलग़ाफ़लीन।
यों दखनी में बोल्या हूँ इस वास्ते,
हर एक शख्स की यो समझ वास्ते।
मुसलमाँ के इस्ते होये फायदा,
अगर बख्शूर है याद होवे गदा।

इस काव्य में कवि उन लोगों को उपदेश देता है जो भौतिकता के प्रति ध्यान देते हैं। कवि कहता है मनुष्य का जीवन क्षणिक है। मनुष्य को अपने व्यवहार और विचार में पवित्र होना चाहिए। मैंने इसको दक्खिनी में इसलिए लिखा है कि जिससे आम व खास सभी लोग इससे लाभ उठा सकें। पूरे काव्य में कवि ने अपनी साधु मनोवृत्ति को प्रदर्शित किया है। काव्य की भाषा शैली सरल है।

क़ादिर

मूल नाम मीर अब्दुल है और काव्य नाम क़ादिर' है। कयामुद्दीन 'काइम' ने अपने तज़किरे 'मख्ज़न-ए-निक़ात' में क़ादिर को हैदराबाद का निवासी बताया है।[1] क़ादिर बचपन से ही संसार से विरक्त थे और पचास वर्ष की आयु में ही उन्होंने एकान्तवास ले लिया। इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं प्राप्त हो सका है किन्तु इनके मर्सिये अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। इनकी मर्सियों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि बहुत बड़े विद्वान् और योग्य व्यक्ति थे। कहा जाता है कि कादिर ज्योतिष विद्या और गणित में निपुण थे।

कवि कादिर के जन्म और मृत्यु का ज्ञान नहीं है। उनकी मर्सियों से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि कादिर हिजरी सन् 1149 (1735 ई०) तक जीवित थे। कवि ने अपनी एक मर्सिया में इस प्रकार मृत्यु की आशा-व्यक्त की है :—

सन् इग्यारह सो ऊपर उन्चास साल।
सब्ज बाना कादिर का लहू से लाल ॥[2]

प्रसिद्ध मर्सिया रचयिता कविवर हाशिम अली ने रूही, मिर्जा और कादिर के अभाव का उल्लेख इन शब्दों में किया है :—

हज़ार हैफ़ नै शायरां दखन।
सो रूही व मिर्ज़ा व क़ादिर नहीं ॥

एक अन्य स्थल पर हाशिम अली ने कहा है :—

हाशिम अली अजब नई इस मर्सिया कूँ सुनकर।
तुझ पर खलीफा कादर तहसीं करे दखन में ॥

हाशिम अली के हिजरी सन् 1169 (1755 ई०) तक जीवित रहने का प्रमाण है। अत: क़ादिर इससे पहले ही मर चुका था। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क़ादिर का देहान्त हिजरी सन् 1149 (1735 ई०) के बाद और हिजरी सन् 1169 (1755 ई०) के पहले हुआ होगा।

कवि क़ादिर की मर्सियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उन्हें भाषा का अच्छा प्रयोग आता था। उनकी भाषा में सहजता, सरलता और सरसता है। इनको मर्सियों में मनुष्यों की भावनाओं का सुन्दर अंकन हुआ है। मर्सिया के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

हुआ शुहरत मुहर्रम में यो ग़म है शाह आली का
कि है फरज़न्द प्यारा वह दोनों आलम के वाली का
छुपा है दीन का चन्दन कि जिसके सोग सूँ जग

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 95
2. नसीरुद्दीन हाशमी—यूरोप में दखनी मखतूतात, पृ० 246

फलक हर मुल्क में ताने शामियाना रात काली का
सितारे सब यह क़दस्यां ने मिलाकर सब गगन ऊपर
हुसेन के अर्श को भांड है मन्डफ मोत्यां की जाली का
+ + +
क़यामत कांपता कादिर तज़लजल जब करे ज़ाहिर
मुझे तक़वा तब आखिर है हुसेन सरवरे आली का।

पीरज़ादा रूही

रूही हैदराबाद के पीरज़ादों में से था। हैदराबाद के पतन के समय हिजरी सन् 1098 (1686 ई०) रूही एक महाकवि माना जाता था। कवि का जीवनवृत्त अंधकार में पड़ा हुआ है किन्तु डा० ज़ोर के मतानुसार रूही का देहान्त लगभग 1150 हिजरी (1736 ई०) में हुआ।[1] इनकी कविताओं का उल्लेख तज़किरों में मिलता है। इनकी रचनाओं में हृदय की व्यथा और पुकार है। इनमें अच्छी काव्य प्रतिभा थी। रूही ने काव्य की विविध विधाओं को अपनाया जिसमें प्रमुख रूप से ग़ज़ल, मर्सिया और मुखम्मस हैं।

मुखम्मस के कुछ छन्द प्रस्तुत हैं :—

निस दिन सजन तुझ दरस का आधार होता काश के
पल पल मनें है यह मरन यक बार होता काश के
जाना हमन यह रुख कने बस्यार होना काश के
वाकिफ़ हमारे हाल पर दिलदार होता काश के
यों दरद दिल का तुझ अंगीं इज़ार होता काश के
गुल वस्ल तेरा ए सुखन अ छता सदा संसार में
दिल शाद फिरते आशिकां तुझ हुस्न के बाज़ार में
जलता न परवाना कहीं इस सोज़ के आज़ार में
ज़ारी न करते बुलबुलां इस दर्द के गुलज़ार में

कवि रूही मर्सिया लिखने में निपुण था। इसकी यह मर्सिया प्रसिद्ध रही है :—

आज ग़म नाक हैं चमन के गुल,
बल्कि दिल चाक हैं सुमन के गुल।
ग़म जदा सीना दाग़ हैरां हैं,
नर्गिस दिलाला या सुमन के गुल।
यूं न लाने शफ़क़ के दस्ते हैं,
लहू में डूबे हैं सब गगन के गुल।

---

1. सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—दकनी अदब की तारीख, पृ० 94

जब सुने शह की बात मजलिस में,
जल पूछे शमअ अन्जुमन के गुल।
नफ़्स पा देख दिल होस रखता,
सर पे रखने कूँ तुझ चरन के गुल।
खुश लगे तुझ तबअ सुन ऐ रुही,
दिल के बागाँ मने सुखन के गुल।

बुरहानपुर के प्रसिद्ध मर्सिया लेखक हाशिम अली ने रुही के निधन पर शोक इस प्रकार व्यक्त किया है :—

हज़ार हैफ़ा नहीं शायराँ दखन।
सो रुही वह मिर्ज़ा व कादिर नहीं॥

आशिक़

मीर यहिया मूल नाम था किन्तु इन्हें लोग आशिक़ अली खाँ के नाम से पुकारते थे और बुरहानपुर के रहने वाले थे। ये एक सैनिक के रूप में काम करते थे। सर्वप्रथम ये आसफ़ जाह (प्रथम) के साथ औरंगाबाद आये और फिर हैदराबाद तथा यहीं पर अपना अन्तिम जीवन व्यतीत किया। लगभग 1750 ई० को इनका देहान्त हुआ। इन्होंने अपनी विद्वता और सद्व्यवहार के कारण अपने जीवन काल ही में बड़ी प्रसिद्धि पा ली थी। इन्हें लोग कविता-पिता कहा करते थे। इनके सम्बन्ध में किसी कवि ने इस प्रकार कहा है :—

वली सुन यह ग़ज़ल आशिक़ के तईं कहता अगर होता।
रिहा कर सग हो तो दायम बनी के आस्ताने का॥

कवि आशिक़ का एक छोटा सा दीवान (काव्य संग्रह) इदार-ए-अदबियात, हैदराबाद में मौजूद है। इसके अध्ययन से प्रतीत होता है कि किसी महान कवि की रचना है। काव्य के दोनों पक्ष—कला पक्ष और भाव पक्ष उच्चकोटि के हैं। इनकी कविता इस प्रकार है :—

यारो शफ़क़ में डूब गया आफ़ताब सब।
देख अपस सनम के तर्रह ज़रतार की टक॥
आशिक़ जो गुल खूं में नहीं होश क्या अजब।
सुन यार की ज़बाँ में मुझ अशआर की टक॥

अन्य स्थल पर कहते हैं :—

हात पुरहात मेरे घर के चले आना सात।
देख तालअ के मदर आज पूरी बरसा हात॥

जिस वक़्त जान निकली मुझ पास कोई न आया ।
शमशीर तेरी एक दम बैठी थी मेरे सर पर ।।

\+ \+ \+

है शहीद कर्बला सब सुर्खपोश ।
मुस्तफा की आल का क्या रंग है ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि काव्य कौशल में निपुण था किन्तु इसके काव्य में अरबी और फारसी के शब्दों की अधिकता है ।

मिर्ज़ा दाऊद

मिर्ज़ा दाऊद औरंगाबाद के निवासी थे लेकिन इनके बाप दादा बलख से भारत आये थे । ये लोग औरंगजेब के शासन-काल में औरंगाबाद आये । औरंगजेब ने इन्हें मनसब बनाया था । कहा जाता है कि मिर्ज़ा दाऊद का जन्म औरंगाबाद ही में हुआ था । ये प्रसिद्ध कवि वली औरंगाबादी के समकालीन थे, किन्तु वली के देहान्त के बाद भी जीवित थे । मिर्ज़ा दाऊद ने वली की उस काव्य पुष्टता और भाषा की सरसता, सुगमता, सहजता को और आगे बढ़ाया । दाऊद को ईश्वर की ओर से मधुर कण्ठ मिला था और जब ये कवि सम्मेलनों में कविता पाठ करते थे तो उनकी मधुर ध्वनि को सुनकर श्रोता झूम उठते थे । उर्दू विद्वान तो इन्हें वली का उत्तराधिकारी कवि स्वीकार करते हैं । वास्तव में एक दृष्टि से यह सत्य भी है क्योंकि इन्होंने उसी काव्य विधा को आगे बढ़ाया जिसे वली ने आरम्भ किया था । किसी ने दाऊद के सम्बन्ध में ठीक कहा है :—

बाद अज़ वली हुए हैं, कई शायरां व लेकिन ।
दाऊद शेर तेरा मशहूर है दकन में ।।
हक़ ने बाद अज़ वली तुझे दाऊद ।
सूबा शायरी बहाल किया ।।

अब हम देख सकते हैं क्या उपर्युक्त कथन उचित है ;या नहीं ? कवि की कविता के कुछ छन्द प्रस्तुत हैं :—

खोल ऐ शोख ज़ुल्फ परचीं कूं ।
रिश्ता-ए-कुफ्र व सुबहा दीं कूं ।।
क्यों न देखूं सजन तेरे रुखसार ।
शौक गुल है मदाम गुल चैन कूं ।।
नूर खुरशीद का हुआ है ज़र्द ।
देख तेरे लिबास ज़र्री कूं ।।
कोहकन सर ये मार कर तैसा ।
जाने शीरों दिया है शीरीं कूं ।।

जो रङ्गीन ख्याल हुए दाऊद।
वह पढ़े तेरे शेर रङ्गीन कूँ ॥

इससे स्पष्ट होता है कि कवि काव्य-कला में निपुण था। कवि ने उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा अलंकारों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है। कवि ने शब्दों का चयन बड़ी चतुरता से किया है। एक अन्य कविता के कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

मेरा अहवाल चश्म-ए-यार से पूछ,
हक़ीक़त दर्द की बीर से पूछ।
मेरे हाल-ए-परीशाँ की हक़ीक़त,
सनम जुल्फ के हर तार से पूछ।
मेरी हर एक सदाए राह का पेच,
सजन के चेहरे बलदार से पूछ।

डा० खालिदा ने दाऊद का काव्य संग्रह सम्पादित करके प्रकाशित कराया है। मिर्जा दाऊद के पुत्र जमाल उल्लाह 'इश्क' भी एक सफल कवि थे। मिर्जा दाऊद की मृत्यु हिजरी सन् 1168 (1754 ई०) में हुई।

शाह मीर

शाह मीर का मूल नाम सैयद मुहम्मद था और इनके पिता हज़रत मखदूम जहानियाँ जहाँ गश्त बुखारी थे। इनका जन्म हिजरी सन् 1081 अर्थात् 1669 ई० में हुआ। इनका बचपन आदिल शाही शासन काल के अन्तिम चरण में बीजापुर में गुजरा। अपने पिता से आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की और उन्हीं के उत्तराधिकारी हुए। इनके शिष्यों की संख्या बड़ी थी। इनका देहान्त हिजरी सन् 1186 अर्थात् 1774 ई० में हुआ। इनकी समाधि अनन्तपुर (आंध्र प्रदेश) में है जहाँ पर अरबी मास जमादिस्सानी की पाँच तारीख को हर वर्ष उर्स होता है।

सूफी कवि शाह मीर की कई रचनाएँ गद्य और पद्य में मिलती हैं। जिनमें से प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—(1) असरार तौहीद, (2) रिसाला खलीवत, (3) रिसाला क़ादरिया, (4) अक़ायद सूफिया और (5) दीवान (काव्य संग्रह)।

इन्होंने अपने काव्य में अरबी और फारसी के शब्दों को विशेष स्थान दिया है। इनकी कविता के कुछ छन्द प्रस्तुत हैं :—

ज़ात को हर शे के तई है इन्क़लाब
और सिफ़त को इत्फाक़ाक़ व इन्सलाब
जूँ कि आब आतिश लहू दे अक़्स नेज़
सलब ना होये खूनी आतिश ग़र्क आब।

एक अन्य स्थल पर कवि ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं :—

तेरा खुदा है जो कि तेरे से जुदा नहीं
जो कोई जुदा है तुझ से ओ तेरा खुदा नहीं
है आफताब रोज़ से यक दम नहीं जुदा
गर हुआ तो जान वह शमसुस्जुहा नहीं
तेरा नबी नहीं है तेरे से अलाहदा
जो है अलाहदा वह पैगम्बर तेरा नहीं
जैसा कि अस्ल छाँव से थकदम नहीं जुदा
गर हो जुदा तो अस्ल ऊस छाँव का नहीं
जो रहनुमा तेरा है तेरे साथ है मदाम
गर हो न तेरे साथ तेरा रहनुमा नहीं
बेदिल के साथ जो कि रहे दिलरुबा मदाम
ता हो अगर वह साथ तेरा दिलरुबा नहीं
कहते हैं जिस को खल्क़ मुहम्मद वह है खुदा
पानी खुदा जुदा, वह मुहम्मद जुदा नहीं।

इससे स्पष्ट होता है कि कवि की कविताएँ धर्म से सम्बन्धित हैं और कवि साधु मनोवृत्ति का है। कवि में सरल से सरल भाषा और कठिन से कठिन भाषा प्रयोग करने की क्षमता थी। इन्होंने तत्कालीन प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जिससे भाषा-शैली सुन्दर बन पड़ी है।

ईजाद

मूल नाम मिर्ज़ा अली नक़ी है, नक़द अली उपाधि और काव्य नाम ईजाद है। इनका सम्बन्ध काचार परिवार से था। इनके पिता आसफ जाह (प्रथम) के शासन-काल में दक्षिण भारत में आये। सुलतान ने उनकी विद्वता के आधार पर उन्हें दीवानी के पद पर नियुक्त किया। इन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन बड़ी कुशलता और ईमानदारी से किया। ये बड़े धार्मिक मनोवृत्ति के थे। किसी भी मुकदमे का फैसला करने से पहले अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करते थे और कहा करते थे कि कहीं ऐसा न हो कि मेरे हाथों से अन्याय हो जाय और मैं कयामत के दिन पकड़ा जाऊँ।[1] कहा जाता है कि पहले ये बुरहानपुर में रहते थे और वहीं पर मिर्ज़ा नक़ी अली 'ईजाद' का जन्म हुआ था। आसफ जाह (प्रथम) ने कुछ समय तक ईजाद को अपने पास रखा और उसके बाद अपनी सेना में कोतवाल के पद पर नियुक्त किया और कुछ समय पश्चात् हैदराबाद की कडोडगिरी की जिम्मेदारी भी इन्हें सौंपी गयी। जब ईजाद के पिता का देहान्त (1164) हो गया तो ईजाद को नवाब नासिर जंग 'शहीद' ने हैदराबाद की दीवानी के पद पर नियुक्त किया और ईजाद को मौरूसी

1. मुहम्मद अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी—शुअरा-ए-दकन, पृ० 181

नक़द अली खाँ की उपाधि प्रदान की गयी। इसी पद पर ईजाद की मृत्यु हिजरी सन् 1185 में हो गयी।[1] किन्तु श्री हाशमी का कथन है कि ईजाद का देहान्त हिजरी सन् 1194 में हुआ।[2] ईजाद ने भी अपने पिता की भाँति आजीवन ईमानदारी और न्याय संगत ढंग से देश की सेवा की। इनके तीन पुत्र—अली नक़ी खाँ 'इनसाफ', महदी अली खाँ 'नैयर' और बाकर अली खाँ 'अफसर' थे। ये तीनों कवि थे और सरकारी उच्च पदों पर आसीन थे।

ईजाद के काव्य गुरु इनके पिता ही थे। ये स्वभाव से भी कवि थे अतः काव्य कला में शीघ्र ही कुशलतापूर्वक अधिकार कर लिया और अच्छे कवियों में इनकी गणना होने लगी। इन्हें मीर गुलाम अली, आज़ाद, वाक़िफ, लक्ष्मीनारायन, 'शफीक' और मेहरबान आदि कवि एक उच्चकोटि का कवि मानते हैं। इन्होंने कविता के साथ-साथ गद्य की भी रचना की है। यद्यपि मातृ भाषा फारसी थी एवं फारसी के उच्चकोटि के साहित्यकार थे। इसका अर्थ यह नहीं कि ये दक्खिनी के उच्चकोटि के साहित्यकार नहीं थे। इन्होंने दक्खिनी साहित्य की भी सेवा की है। इन्होंने काव्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में काव्य रचना की है। विशेष रूप से ग़ज़ल, क़सीदा, मनक़बत और मुनाजात लिखे हैं। इनका जो काव्य संग्रह प्राप्य है उसमें फारसी और दक्खिनी दोनों का मिश्रण है।

ईजाद ग़ज़ल लिखने में पटु थे। इनकी ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं:—

मैं गुले बूस्ताने मानी हूँ, बुलबुल गुलिस्ताने मानी हूँ।
यह क़लमरु मुझी से है आबाद, पादशाहे जहाने मानी हूँ।
हर सुखन पर क़लम मेरा जारी, नाज़िमे हुक्मराने मानी हूँ।
\+ \+ \+
सूरत ईजाद हूँ मज़ामीन का, जिस्म अलफ़ाज़ व जान मानी हूँ।

'कसीदा' नामक काव्य विधा में भी ईजाद ने लेखनी चलाई और सफलता इनके हाथ लगी:—

फिर मैं न जानूँ किया है ज़माना का अक़तज़ा।
दिल जिसका देखिए तू है उस असर में खफ़ा।।
फ़िक्रो मं चोर मनअम व दरवेश हैं सभी।
अन्द वह मैं तमाम हैं क्या शाह किया जुदा।।
मिलती नहीं है शरबते दीनार एक दाम।
बीमार अहतियाज की मफ़कूद है दवा।

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—मुरक्क-ए-सुखन, पृ० 39
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 445

कविवर ईजाद ने काव्य विधा 'मनक़बत' को भी अपनाया था जिसके कुछ शेर प्रस्तुत हैं :—

हक़ किया मुज कूँ अताये मनक़बत,
जान व दिल मेरा फ़िदाये मनक़बत।
दामने आल अबा है मेरे हाथ,
जब से पहुना हूँ क़बाये मनक़बत।
मैं किसी की मदह मुमकिन नै करूँ,
मुज कूँ वाजिब है सनायें मनक़बत।

इनकी कविता का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि इनकी भाषा साहित्यिक है। इसमें सहजता, सरसता और प्रांजलता है। इन्होंने तत्कालीन प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। भाषा में जो चुस्ती है उसका कारण है कि शब्दों का चयन करने में ईजाद निपुण थे। इनकी कविता को पढ़ते ही पाठक उसमें रम जाता है। कवि को भाषा पर इतना अधिकार है कि जिस बात को जिस रूप में कहना चाहता है, सरलतापूर्वक कह देता है। अपने विचारों को कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।

हुसेन

मुग़ल शासन-काल में हुसेन विद्यमान था। इसका जीवनवृत्त अज्ञात है। इसकी एकमात्र रचना 'किस्सा-ए-शमऊन' प्राप्य है। इसमें एक हज़ार पाँच सौ अर्द्धालियाँ हैं। इसका रचना काल हिजरी सन् 1135 (1723 ई०) है :—

सवाब व अजर का यह किस्सा है गंज।
हज़ार एक सो बैत पर सी व गंज ॥
अथा इस अरद पर नबी का बिसाल।
हुआ यह मुरत्तब उसी सन: व साल ॥

कवि ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यह अरबी कहानी थी उसको मैं दक्खिनी में इसलिए लिख रहा हूँ जिससे खास व आम सभी लोग समझ सकें :—

यो किस्सा अथा अव्वल अरबी ज़बान।
कहे थे मुहम्मद हदीस व बयान ॥
किया नज़्म दखनी ज़बान सूँ असे।
होये किस्सा मालूम कर सब कसे ॥

कवि ने, खालिद बिन वलीद रज़ीउल्लाह के पुत्र का नाम शमऊल था, उसी को काव्य का मुख्य विषय बनाकर काव्य रचना की है। कथा का आरम्भ इस प्रकार है :—

कुरेशी था यक मर्द मका के ठाँव
जो खालिद अथा बिन वलीद उसका नाँव

अथे सात बेटियाँ न था ऊसको पूत
ऊ मुहताज था होये फरजन्द सबूत
थे तीन सौ साठ तिस घर में देव
ऊ करता था पूजा सकल मकर देव
हज़ूरी में देवाँ की हर रात दिन
करे सात बकरे तस्दुक व तन
उनन सो करे तलब फरज़न्दाद
अक़ीदा सूँ देव इतने दिल बन्दाद
हुआ मेहरबान ऊस पो जब कर दिगार
हुई अमल खास खालिद की नार
देखत सब फरिश्ते फलक के पुकार
कहे तूँ हमारा है परवरदिगार
+ + +
अहले बैत को ओ नफ़अ देने हार
मददगार अछे ओ मुहम्मद का यार।

इससे स्पष्ट होता है कि कवि धार्मिक मनोवृत्ति का था और इसने अपने काव्य कौशल के द्वारा अपने विचारों को व्यक्त किया है। लोक प्रचलित भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में सरलता एवं सहजता है।

मुज़फ्फर

कवि मुज़फ्फर का जीवनवृत्त अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है किन्तु डा० ज़ोर ने अनुमान लगाया है कि मुज़फ्फर सुलतान अबुल हसन ताना शाह का मन्त्री रहा होगा।[1] मुज़फ्फर ने अपने एक मर्सिया में अपने पीर (आध्यात्मिक गुरु) का नाम सैयद शाह अय्यूब लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि कविवर मुज़फ्फर सूफी मनोवृत्ति के व्यक्ति थे।

मुज़फ्फर की एक मात्र रचना का पता चलता है जो मसनवी 'महर व माह' अथवा 'जफर नामा इश्क' के नाम से जानी जाती है। इसमें कवि ने समसामयिक शासक के रूप में सम्राट आलमगीर औरंगजेब की प्रशंसा की है:—

खुदा के जो खासाँ है खासा है ओ
रसूल-ए-खुदा का खुलासा है ओ
सवा दकन जो शाह औरंगजेब
किया फ़िक्र कूँ दौर इसका नसीहत
धरीं लुत्फ सूँ इस पो आल रसूल
अछे शाख पर सामियाँ ज्यूँ कि फूल

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर—तज़किरा उर्दू मखतूतात, भाग 5, पृ० 49

रहे इसके साया में खलक खुदा
दिल व जाल सो करते व आद सनअ
मुआलिम हो इक इल्म काबा अमल
किया है सभी इल्म मुश्किल कूँ हल
है मालूम इल्म हक़ायक़ ऊसे
है मकशूफ़ रम्ज़ व हक़ायक़ ऊसे।

'महर व माह' नामक प्रेमाख्यानक काव्य का कथानक भी अन्य सूफी सन्तों के प्रेमाख्यानक काव्यों के समान ही है। इसमें भी राजा निःसन्तान होता है और दरवेश की दुआ से उसे पुत्र की प्राप्ति होती है।[1] कुछ समय पश्चात् पुत्र जल यात्रा के लिए जाता है और प्रेम पाश में फँस जाता है। वह अनेक विपत्तियों को झेलकर अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने में सफल होता है।

कवि मुज़फ्फर ने अपने काव्य को खण्डों में विभाजित किया है और इसके शीर्षक पद्य में हैं। इन्होंने ग़ज़लों की भी रचना की है। इस कला में भी कवि निपुण था। इसकी एक गज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं:—

ऐ बेवफ़ा खींचा सदा आज़ार तूं दसरियाँ बदल।
रोता फिरया सारा जहाँ हो ज़ारी तू दसरियाँ बदल।।
सनक रबा तन किया तुझ बदल मुझ कहर मने।
बाज़ार में ज़ाहिर हुआ सनक रतों दसरियाँ बदल।।
सर फोड़ लेते तो मेरे कलेजा में सटे हूट लोक यों।
फतिया कलेजा में तूफ़ान का ज्यूं हार तूं दसरियाँ बदल।।

इससे स्पष्ट होता है कि मुज़फ्फर अपने समय के अच्छे कवियों में से था। काव्य कला की दृष्टि से कवि का काव्य उच्चकोटि का है। इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कवि ने अपने प्रेमाख्यानक काव्य में तत्कालीन समाज की मान्यताओं को भी स्थान दिया है। कवि ने राजकुमार के सौन्दर्य की चर्चा करते हुए एक स्थान पर इस प्रकार कहा है:—

अयाँ हुस्न उसका जो है बेनज़ीर।
मेरे मन मार्‍या है गम्ज़े के तीर।।
\+ \+ \+
देखा नेक अख्तर ऊसे वक़्त नवाब।
अँधियारे में संपरिया, दिगर आफताब।।

मुजरमी

मूल नाम बबरुल्लाह है। ये मुगल सम्राट आलमगीर औरंगजेब के शासन

1. न था पूत उस कू सो दिल गीर था। कलेजा गुल इस ग़म सूं जो तीर था।।

काल में विद्यमान थे ।[1] इनका निवास स्थान बीजापुर में था एवं बीजापुर के पतन के बाद भी ये बीजापुर में ही रहे । इन्होंने हिजरी सन् 1114 अर्थात् 1702 ई० में मुल्ला वजही की प्रसिद्ध गद्य रचना सबरस को 'गुलशन-ए-इश्क व दिल' के नाम से पद्यबद्ध किया :—

यो बारहवी सदी में यो किस्सा तमाम ।
जो चौदह बरस में हुए थे तमाम ।।

'गुलशन-ए-इश्क व दिल' नामक प्रेमाख्यानक काव्य का आरम्भ कवि ने ईश-स्तुति से किया है जो इस प्रकार है :—

जिता हम्द है सो खुदा कूंच है ।
सना होर सिफ़त भी उसी को कूंच है ।।
जो दरशाह उसकी अहे बेनियाज़ ।
अपस सूं अपै है वह बेनियाज़ ।।

'गुलशन-ए-इश्क व दिल' में कवि मुजरमी ने वर्णन शैली को अपनाया है । सम्भवतः कवि ने जनसाधारण को दृष्टि में रखकर इसकी भाषा और शैली का चयन किया है । इसमें कवि ने अपनी काव्य कला का कौशल भी प्रस्तुत किया है । उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं : —

ज़बाँ होर नजर दोनों मिल यार हों ।
चले हैं तमाशे को इक ठार हो ।।
चले जब तमाशे को मिलकर मलूक ।
तो देखे तमीज़ को करते सलूक ।।
सलूक सूं हर एक मुल्क का ले खबर ।
तो वाकिफ़ हो फिरते थे करते नज़र ।

इसके अतिरिक्त कवि की किसी अन्य रचना की सूचना नहीं है । कवि मुजरमी का जीवनवृत्त अज्ञात है ।

फ़तह्

मूल नाम फतह् शरीफ था और काव्य में केवल 'फतह्' का प्रयोग करते थे । अन्तःसाक्ष्य से इस बात की ओर संकेत मिलता है कि कवि गोधरा (गुजरात) का निवासी था ।[2] इसका जीवनवृत्त अज्ञात है ।

फतह् शरीफ की दो रचनाओं की सूचना है—(1) किस्सा-ए-ज़ुलेखा सानी और (2) पदनाम-ए-लुकमान ।

---

1. हकीम सैयद शमसुल्लाह् कादरी—उर्दू-ए-कदीम, पृ० 99
2. अथा गोदरा यक शहर का जो नाम
   हमेशा फ़तह् का अथा वहाँ मुकाम ।

'किस्सा-ए-जुलेखा सानी' नामक प्रेमाख्यानक काव्य का रचना काल अज्ञात है। कवि ने कहा है कि अपने मित्र मुहम्मद अमीन के आग्रह पर युसुफ और जुलेखा के कथानक को अपनाया जिससे कि उसका नाम एवं उसके शहर का नाम अमर रहे। कवि ने यह भी कहा है कि अपने मित्र के आग्रह पर ही इस्लामी साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया और तथ्यों को एकत्रित करके काव्य का निर्माण किया। इस प्रेम गाथा के अध्ययन से प्रतीत होता है कि काव्य का कथानक शामी परम्परा की धार्मिक कथा युसुफ-जुलेखा से सम्बन्धित नहीं है। वास्तव में कवि ने इसकी रचना किस्स-ए मलिका-ए-मिस्र' के अनुरूप की है। इस काव्य में मात्र नायक को य़ुसुफ सानी (युसुफ द्वितीय) और नायिका जुलेखा सानी (जुलेखा द्वितीय) कहकर नायक और नायिका के रूप प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य में इस्लाम के आधार पर शरीअत और नीति सम्बन्धी पूछे गये प्रश्नों के उत्तर दिए गये हैं।

कवि फतह ने घोषित किया है कि उसने किस्स-ए-जुलेखा सानी को फारसी गद्य रचना के आधार पर दक्खिनी में लिखा है :—

अज़ीजाँ खायत सुनो कान धर।
अव्वल फारसी था यो दखनी दिगर॥

फतह शरीफ़ की दूसरी रचना 'यदनाम-ए-लुकमान' है जिसका रचना-काल हिजरी सन् 1130 अर्थात् 1716 ई० है।[1] यह रचना भी फारसी ग्रन्थ के आधार पर लिखी गयी है। कवि ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है :—

वले नस्र में फारसी था अव्वल
किया नज़्म दखनी सूँ यूँ बेबदल
रहे जिस मने फायदा तुझ अज़ीम
करे पंदा दोल सीने मुस्तक़ीम
सो बोले हैं लुक़मान उस व हात सात
जो फरज़न्द अपने सो खोले निकात।

क़यासी

कवि का मूल नाम सैयद अब्दुल्ला है। कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है। क़यासी ने मुल्ला गवासी की प्रसिद्ध रचना 'तूतीनामा' के आधार पर एक प्रेमाख्यानक काव्य 'सौदागर की बीबी' की रचना 11 शव्वाल हिजरी सन् 1164 में की। इसका रचना काल कवि के शब्दों में :—

हुए सात सौ बैत चौदा ये सात।
मुरत्तब हुआ है यो नकल बात॥

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर– तज़किरा उर्दू मखतूतात, क्रम सं० 12

अथा सन् इग्यारह सौ चौसठ साल ।
जे तारीख इग्यारा ओ माहे शव्वाल ।।
सैयद अब्दुल्ला करके मेरा है नाव ।
तखल्लुस क़यासी फिकर डाल नाव ।।

कथा का आरम्भ करते हुए कवि कहता है :—

किस्सा कहता हूँ मैं अजब गोहर सार का ।
कैसे करे हैं छन्द ऊ देखो तमाशा जार का ।।
कता हूँ सुनो छन्द यक नार का ।
छबीली सुन्दर चतुर चौसार का ।।
केते हैं जो यक शहर में बख्तबार ।
अथा एक सौदागरी नामदार ।।
उसे एक औरत थी साहब जमाल ।
परियाँ में नहीं कोई उसकी मिसाल ।।
भी न वैसी होगी खलक में कहीं ।
जो कहने में सिफ़त आते नहीं ।।
जबीं थाक खुरशीद सारा दिसे ।
करे इश्क नित देख खुरशीद उसे ।।

कथा-सार

एक सौदागर था उसकी पत्नी बहुत सुन्दर थी । एक बार सौदागर परदेश गया और बहुत समय तक घर नहीं लौटा । पत्नी घर पर विरहाग्नि में जल रही थी एवं उसे अब अपनी जीवन यात्रा चलाना कठिन प्रतीत होता जा रहा था । एक दिन उसने एक मोम का पुतला बनाया और उसके द्वारा जौहरियों को ठग कर अपने प्राण एवं सतीत्व की रक्षा की ।

कवि ने उस सुन्दरी के चातुर्य की चर्चा इस प्रकार है :—

पूछी लाल हीरे हैं तेरे कने
कह्या नै हीरे लाल मेरे कने
है बाज़ू के दूकानदारां कतई
बला करे आया बज़ां इन कूँ दीं
कितक हात के वो जवाहर ले आये
बहुत वे बहा पेश नादिर ले आये
\+ \+ \+
कितक वक़्त लग शहर सारा फिराई
भोत करके मांदे सो यक ठार लाई

हज़ार एक कूंचे में भडकल अथा
दो तीनो को उस जाये ऊपर बठा
कही यां अछ्छ घर में जाती हूँ मैं
तुमारे लिए पैसे ले आती हूँ मैं।

कवि ने अपने काव्य में तत्कालीन समाज का अच्छा चित्रण किया है तथा उसे स्त्रियों के मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान था। भाषा-शैली सहज, सरल एवं सरस है।

महबूब आलम

कविवर महबूब आलम, शेख जीवन के नाम से भी प्रसिद्ध थे। धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। हाफ़िज महमूद खाँ शिरानी का कथन है कि 'महबूब आलम के गुरु शाह मीराँ बेग चिश्ती (मृत्यु 1718 ई०) थे एवं इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

(1) फिक्रे-हिन्दी, (2) मुहशर नामा, (3) दर्दनामा, (4) ख्वाब नामा और (5) दबीर नामा बीबी फातिमा खातून।[1]

श्री हाशमी के मतानुसार 'दर्दनामा' में लगभग साढ़े पाँच हजार शेर हैं एवं इन्होंने इमाम हुसेन के देहान्त से सम्बन्धित एक मर्सिया लिखा था।[2] प्रस्तुत लेखक को महबूब आलम की कोई भी पुस्तक देखने को नहीं मिली है।

श्री हाफिज़ महमूद खाँ शिरानी ने कवि के काव्य की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं जो इस प्रकार हैं :—

ज्यूं मैं पहले नाम रहमान का।
त्यूं ग्यान मैं ध्यान सुबहान का॥
सही एक करतार वह पाक है।
खड़ा जिसकी क़ुदरत सूं अफलाक़ है॥
वहीं है जो करतार आलिम खुद।
निरंजन निराकार सब से जुदा॥
जिने एक पलक मैं किया यह जहाँ।
वही तोड़ दे फिर खुदी और गमाँ॥
किया जिन तकब्बुर नबी पाक से।
पड़ा अक़ादत खाक पर ताक से॥

---

1. महमूद खाँ शिरानी—पंजाब में उर्दू, पृ० 217
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 557

तकब्बुर से शैतान राना गया।
फरिश्ते से वह देवदाना गया॥
तकब्बुर खुदी की थी नमरुद में।
बहराम नबी से जो मरदूद में॥[1]

इससे स्पष्ट होता है कि कवि सांसारिक मायाजाल से दूर रहना चाहता है और अहम् की भर्त्सना की है। इसने पौराणिक अन्तर्कथाओं को भी उसके प्रमाण के लिए प्रस्तुत किया है।

रहमत

रहमत का पूरा नाम ख्वाजा रहमतुल्ला है किन्तु काव्य का नाम रहमत है। ये एक सूफी साधक थे। इनके पिता आसफ जाह (प्रथम) के साथ दक्षिण भारत में आये थे। इसके पश्चात् बीजापुर के एक गाँव 'बगाँव' को अपना निवास स्थान बना लिया और कवि ख्वाजा रहमतुल्ला का जन्म यहीं पर हुआ। जब आप जवान हुए तो हाकिम कर्नूल के यहाँ नौकरी कर ली। किन्तु जब आपका सम्बन्ध सैयद अली बीजापुरी से हुआ और उनकी शिष्यता स्वीकार की तो सांसारिकता से स्वयं को अलग कर लिया। इसके बाद हज के लिए मक्का गये, वहाँ पर सैयद अशरफ से भी आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण की। हज से वापस आते समय विभिन्न स्थलों का भ्रमण करते हुए कड्प्पा आये। वहाँ के किलेदार अब्दुल क़ादर खाँ ने आपके नाम पर रहमताबाद शहर बसाया और दीगर में ही आपका देहान्त भी हुआ। ये विशेष रूप से 'नायाब-ए-रसूलुल्लाह' के नाम से जाने जाते हैं।[2]

ख्वाजा रहमतुल्लाह कवि थे और इन्होंने कुछ मसनवियों की रचना की है जो सदैव ही इन्हें स्मरण दिलाती रहेंगी। इनकी एक प्रसिद्ध मसनवी 'तबतिया उल निसाँ' है, जिसमें स्त्रियों को कुछ बातें समझायी गयी हैं।

इसमें सर्वप्रथम कवि ने ईश स्तुति की है जो इस प्रकार है :—

हम्द बेहद है ऊसी सुबहान को,
जो किया पैदा जिस्म और जान को।
वह जहाँ का खालिक़ दोआयम है ओ,
सब फ़ना आखिर केतीं कायम है ओ।

कवि ने, स्त्रियों में जो अन्ध विश्वास होता है और वे उसे धर्म मानती हैं उसकी ओर संकेत किया है :—

---

1. महमूद खाँ शिरानी—पंजाब में उर्दू, पृ० 219
2. मुहम्मद अब्दुल जब्बर खाँ मलकापुरी—औलिया-ए-दकन, भाग 1, पृ० 263

बद रस्म ऊन के चढ़ाने के बदल,
मैं क्या शिर्क रस्म सारे नक़ल ।
कुफ़ के चुन चुन रस्म बोल्या हूँ मैं,
शक सुबह के सब गिरह खोल्या हूँ मैं ।
जो सुखन साँचा अथा बरहक तमाम,
बेमुलाखता हो गया मुतलक़ तमाम ।
फ़ाज़लाँ को बात, यह नाबात है,
जाहलाँ के तीं जिगर में लात है ।

इन्होंने आर्थिक, धार्मिक बुराइयों का बहुत ही कठोर शब्दों में निन्दा की है। सामाजिक बुराइयों की आलोचना की है। इन्होंने सामाजिक दुराचारों पर प्रहार करते हुए कहा है :—

सुन सुहागन बात मेरी रख फाम, देखो तो फिक़ा अक़ायद में तमाम ।
सब किताबाँ में निकाह् मज़कूर है, रस्म तेरा किस में नहीं मंजूर है ।
बद के आरुस नौशा को जवाज़, दोज़खी मत है छोड़ा रोज़ा नमाज़ ।
कैसे रस्माँ ढूंढ़ कर काडी री तू, कान की नरसो की पुजारी बना रही तू ।
रक्स शादी में कराना है गुनाह, बी मरासिन को बुलाना है गुनाह ।

महमूद

महमूद काव्य नाम है। मूल नाम सैयद महमूद है। सैयद अखूंद मीर शाह से दीक्षा ली थी और उन्हीं के उत्तराधिकारी भी हुए। ये अपने समय के प्रसिद्ध सन्त थे। इन्होंने स्वयं लिखा है कि जब मैंने एक फारसी कहानी पढ़ी तो अपने गुरु से आज्ञा माँगी कि मैं इसका अनुवाद दक्खिनी में करना चाहता हूँ क्योंकि इनका विश्वास था कि बिना गुरु की दुआ के यह काम सम्भव नहीं है। इनकी दो प्रेम गाथाओं का पता चलता है—(1) जफ़र नामा और (2) 'मल्क-ए-मिस्र' हैं। 'ज़फर नामा' का रचना काल हिजरी सन् 1204 है।[1] 'मल्क-ए-मिस्र' का रचना काल हिजरी सन् 1206 है।[2]

'जफ़र नामा' नामक काव्य में कवि ने 'मुहम्मद बिन हनीफा' की कथा को अपना विषय चुना है इससे पहले कुतुब शाही शासन काल में लतीफ और सेवक ने

---

1. खुदा मक़सूद हासिल करके मेरा,
   ज़फर नामा किया अंजाम सारा ।
   किया अतमाम जब शह् का अन्जुम,
   तो बारा सो पे था साल चहारुम ।—(जफर नामा)
2. सना बारा सो छः ऊपर तमाम,
   कहा हूँ जो उस वक़्त पाया अन्जाम ।—(मल्क-ए-मिस्र)

इसी कथा को लेकर काव्य रचनाएँ की थीं। लेकिन महमूद ने इसे किसी फारसी ग्रन्थ से अनुवाद किया है ।

काव्य के आरम्भ में ईश-स्तुति की गयी है जो इस प्रकार है :—

करूँ नामे को हम्द रब सूँ आग़ाज़,
फसाहत में रहूँ दायम सराफराज़।
खुदा के नाम सूँ नामे कूँ अतमाम,
करूँ मैं ताकि हो जल्दी सूँ अतमाम।

इसके बाद कवि महमूद ने अपनी कथा आरम्भ की है।

'मल्क-ए-मिस्र' में कवि ईश्वर वन्दना इस प्रकार व्यक्त की है :—

कहूँ मैं सना सिफत उसका अव्वल,
बनाया है जूँ यो जगत बे बदल।

इसके पश्चात् कवि अपनी मूल कहानी का आरम्भ करता है और कहता है :—

सुनो ऐ अज़ीज़ाँ किता हूँ सो बात
न समझोगे बाज़ी हिकायत की धात
कहूँ अब किस्सा सब कूँ इज़हार कर
किते हैं कि था शाह यक बखत दर
धरे नाम सुलतान फीरोज़ शाह
अथा मिस्र का शहर सो तखत गाह
थी बेटी न था उस कूँ फरज़न्द सो
अछे शाह ऐसे सात दिल बन्द हो
मिलेगा अछे नाव उस तार का
अथा जग में शोहरत उस अवतार का

शौक़

मूल नाम मुहम्मद अली खाँ था और काव्य नाम शौक़ था। इनका जन्म हिजरी सन् 1181 अर्थात् 1769 ई० में औरंगाबाद में हुआ। कविवर शौक़ के पूर्वज शहद के रहने वाले थे और हिजरी सन् 1185 में शोक के पिता अब्दुस्सलाम खाँ हैदराबाद में आकर बस गये। शौक की शिक्षा दीक्षा हैदराबाद में हुई। सात वर्ष की आयु में ही शोक को आसफ जाह (द्वितीय) ने मनसबदारी और जागीर प्रदान की। कविवर शोक के गुरु प्रसिद्ध सूफी शाह मुहम्मद वज़ीर थे। शौक को काव्य से बहुत रुचि थी और इन्होंने चौदह वर्ष की आयु में कविता करना आरम्भ कर दिया था। काव्य गुरु तमन्ना थे।

शोक़ का एक वृहद कथा काव्य 'चहार दरवेश' है। इसमें कई हज़ार शेर

हैं। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1225 (1813 ई०) है। 'चहार दरवेश' नामक काव्य की कथा इस प्रकार आरम्भ होती है :—

था सहरा-ए-महशर सादा होलनाक
थी सो ज़िन्दा जूं आग अपस जाकी खाक
वहाँ की तोलवा तेग़ से तेज़ है
वहाँ की हवा तो शरर बीज है
अरे साक़ी करम खुश रु दिल
है तखमीरे से मेरा आब व गुल
न मौक़ूफ़ रख बात तो काम से
न महरुम कर शीशा व जाम से।

कविवर शौक़ ने अपने काव्य गुरु तमन्ना की खूब प्रशंसा की है :—

कहूँ क्या बयाँ ऊस का मशहूर था
कि वह शेर का मूसा तूर था
मज़ाज-ए-रस और फहम बुलन्द
मज़ामीन का था वह तो तरजीअ बन्द
दुरुस्त इससे थी रेखता की बना
वही चार अन्सर रुबाई का था
हर एक उसके दोवान की बैतुल ग़ज़ल
कसीदे से रेखती थी मानी क़ाबिल
था उसका हर एक मिस्रा इन्तखाब
जलाल की है मुन्तखब जो पुर आब।

इससे स्पष्ट होता है कि इसके काल तक दक्खिनी का पुराना रूप बदल चुका था और अब दक्खिनी खड़ी बोली के उस रूप को अपना रही थी जिसमें अरबी फारसी के शब्दों की अधिकता थी तथा जिसे उर्दू के नाम से जाना जाता है। कवि शौक़ के देहान्त की तिथि ज्ञात नहीं है।

सामान्य प्रवृत्तियाँ

उत्तर मध्यकाल के कवियों में जो विशेष प्रवृत्तियाँ रही हैं। वे इस प्रकार हैं :—

(1) मसनवी शैली का प्रयोग, (2) आध्यात्मिक मनोवृत्ति (3) प्रतीकात्मकता, (4) गुरु का महत्व, (5) भारतीय धर्म एवं दर्शन का इस्लामी दर्शन से समन्वय, (6) मुक्तक शैली और (7) भाषा शैली आदि।

1 मसनवी शैली का प्रयोग

इस काल के दक्खिनी कवियों ने अपने पूर्वजों की शैली को अपनाया है, परन्तु उसमें नवीनता का समावेश बराबर किया है। अब दक्खिनी का कवि मसनवी शैली

के साथ-साथ भारतीय काव्य पद्धति को भी अपनाने लगा था। उसके काव्य में कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों यह भारतीय आख्यानक काव्य ही हो। इतना होते हुए भी फारसी काव्य की मसनवी शैली में परिवर्तन नहीं किया। इस काल की प्रमुख मसनवियाँ इस प्रकार हैं—मसनवी रतन व पदम, युसुफ-जुलेखा, तोहफा-ए-आशिकाँ, नेह-दर्पण और लाल गौहर आदि। इन मसनवियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन पर भारतीयता का प्रभाव है और यहीं की अधिकांश कथायें अपनायी गयी हैं। प्रायः सभी दृश्य एवं वातावरण भारतीय हैं।

2. आध्यात्मिक मनोवृत्ति

लगभग सभी कवि धार्मिक मनोवृत्ति के थे। इन्होंने लौकिक प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक अथवा अलौकिक प्रेम को प्रकट किया है। इन काव्यों में भी उत्तरी भारत के सूफी कवियों की भाँति ही आत्मा को प्रेमी और परमात्मा को प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दक्खिनी के कवि कहानी की योजना में अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दैवी शक्तियों का आश्रय भी ग्रहण करते हैं। 'रतन व पदम' हिन्दी के प्रसिद्ध प्रेमाख्यानक काव्य जायसी कृत पद्मावत का दक्खिनी रूपान्तर है। नेह दर्पण और मख्जन-ए-इश्क आदि काव्यों में आध्यात्मिकता स्पष्ट रूप से झलकती है।

3. प्रतीकात्मकता

उत्तर मध्य काल के कवियों ने प्रतीकों द्वारा अपने गूढ़ धार्मिक विचार एवं दर्शन को व्यक्त किया है। इन्होंने पात्रों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। काज़ी महमूद बहरी ने अपनी रचना में भंग को प्रतीक बनाया है। हातिम दकनी की रचना 'मसनवी हुस्न व दिल' में अक़्ल, दिल, नज़र, हिम्मत, ग़मजा, इश्क, नफ्स और हुस्न आदि पात्र के रूप में आये हैं। इसमें नायिका हुस्न ईश्वर की प्रतीक है और नायक दिल साधक का प्रतीक है। 'दीपक पतंग' और 'पद्मावत' में भी विशेष अन्तर नहीं है। 'पंछी बाछां' जैसी बहुत सी रचनाएँ हैं जिनमें प्रतीकात्मकता पायी जाती है।

4. गुरु का महत्व

इस काल के सभी कवियों ने गुरु को एक विशेष स्थान प्रदान किया है। इनका विश्वास है कि बिना गुरु के लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन ही नहीं, असम्भव है। 'मसनवी रतन व पदम' तथा 'पंछी बाछां' में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि गुरु ही साधक को लक्ष्य तक पहुँचाने में मार्ग दर्शक का काम करता है

5. भारतीय धर्म एवं दर्शन का इस्लामी दर्शन से समन्वय

दक्खिनी के कवियों पर भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उपनिषद के प्रतिबिम्बवाद के अनुसार यह नाना रूपात्मक जगत ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है। दक्खिनी के प्रमुख सूफी साधकों ने इस्लामी मान्यताओं का कई स्थान पर प्रतिबिम्बवाद से साम्य दिखाया है। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भारतीय पंच भूतों में से आकाश को न मानकर इन्होंने केवल चार तत्वों (भूतों) को ही स्वीकारा है। पतंजलि द्वारा निरूपित योग की क्रियाओं को हठयोगियों ने जिस रूप में ग्रहण किया था उसी रूप में दक्खिनी के कवियों ने भी उसे ग्रहण किया। सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और उसकी शक्ति, पंच तत्व और उसकी मान्यताएँ, ईश्वर और जीव, स्थूल और सूक्ष्म, प्रकृति और ईश्वर ज्ञान और बुद्धि, चिन्तन, जप और प्रेम आदि की मान्यताओं पर विशेष रूप से विचार किया गया है।

6. मुक्तक शैली

दक्खिनी के कवियों ने प्रेमाख्यानक काव्यों को प्रबन्ध शैली में लिखा है किन्तु वे सर्वत्र इस सीमा में बँधे नहीं रहे प्रत्युत स्वतंत्ररूप से मुक्तक शैली का भी यथेष्ठ प्रयोग किया है। इन्होंने मुक्तक शैली को आचार विचार परक सूक्तियों एवं उपदेशों के लिए चुना है। मुक्तक शैली के लिए विशेष रूप से पद, दोहे, चौपाई, रुबाई और ग़ज़ल आदि काव्य विधाओं को अपनाया है। इनमें सजीवता एवं सरलता का गुण भरा है जिसका पाठक पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वैसे ग़ज़ल, रुबाई आदि का प्रचलन अधिक हो गया है।

7. भाषा-शैली

उत्तर मध्यकाल के कवियों की भाषा और शैली में धीरे-धीरे परिवर्तन आता गया है। इस काल के कवि अपने काव्य में अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग अधिक करने लगे थे, फलतः क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों का अभाव सा आ गया था। इन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की शैली को अपनाया। उससे जनसाधारण की भाषा और साहित्य की भाषा में अन्तर आ गया यद्यपि शैली में प्रवाह और सरसता आ गयी थी।

□ □

षष्ठ अध्याय

दक्खिनी का गद्य साहित्य

दक्खिनी के प्रथम गद्य लेखक को निश्चित करना सरल कार्य नहीं है क्योंकि दक्खिनी साहित्य के शोधार्थी एवं आलोचक इस ओर एकमत नहीं हैं। हकीम सैयद शमसुल्लाह कादरी का कथन है—"दक्खिनी में गद्य लिखने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति शेख ऐनुद्दीन (जन्म हिजरी सन् 706 और मृत्यु हिजरी सन् 795) है। इनके रिसाले धार्मिक हैं और इनका एक संग्रह सेन्ट जार्ज कालेज के पुस्तकालय में विद्यमान था।"[1] शेख ऐनुद्दीन ने काज़ी मिन्हाजुद्दीन जोज जानी की पुस्तक 'तबकात-ए-नासिरी' का अन्तिम भाग पूरा किया और अपने समय तक की समस्त घटनाओं को उसमें दिया है। इतिहासकार मुहम्मद कासिम फरिश्ता ने उन्हें अपनी आँखों से देखा था[2] किन्तु प्रस्तुत लेखक को शेख ऐनुद्दीन की कोई पुस्तक देखने को नहीं मिली। श्री हाशमी के मतानुसार हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज प्रथम व्यक्ति है जिन्होंने दक्खिनी भाषा का गद्य लिखना आरम्भ किया।[3] एक वर्ग के विद्वानों का मत है कि दक्खिनी के प्रथम गद्य लेखक ख्वाजा बन्दा नवाज स्वयं न होकर उनके पिता सैयद युसुफ़ थे कुछ भी हो यह निश्चित रूप से बता पाना बड़ा कठिन है कि दक्खिनी भाषा में गद्य की नीव किसने डाली ?

इतिहास साक्षी है कि सुलतान मुहम्मद तुग़लक ने जब अपनी राजधानी दौलताबाद को बनाया तो दक्खिनी भाषा की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हुई। शिक्षित-अशिक्षित, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सभी लोग दक्खिनी भाषा में बातचीत करने में गौरव अनुभव करते थे। सूफी साधकों का सम्बन्ध साधारण जनता से था। उन्होंने अपने शिष्यों को कड़ा आदेश दिया कि वे स्वयं दक्खिनी भाषा सीखें और दक्खिनी में जनसाधारण तक अपने धार्मिक विचार पहुँचायें।

सैयद युसुफ (मृत्यु हिजरी सन् 731 ने अपना उपनाम 'राजा' रखा था जो आज तक शाह राजू अथवा सैयद राजा के नाम से प्रसिद्ध है। हज़रत शाह ज़ैनुद्दीन खुल्दाबादी (मृत्यु हिजरी सन् 771) के अन्तिम शब्द 'मुझ मत बुलावा' प्रसिद्ध है। इससे स्पष्ट होता है कि सूफी सन्त परस्पर अथवा जनसाधारण से दक्खिनी में ही

---

1. हकीम सैयद शमसुल्लाह कादरी—उर्दू-ए-क़दीम, पृ० 114
2. मुहम्मद फिदा अली (अनुवादक)—तारीख-ए-फरिश्ता, पृ० 12
3. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 17

विचार विनिमय करते थे। अतः यह कहना असंगत न होगा कि दक्खिन गद्य का मौखिक भाषा के रूप में प्रचलन 13वीं शताब्दी के प्रथम चरण में आरम्भ हो गया था।

प्रमुख गद्यकार

ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज

हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज के व्यक्तित्व व काव्य साहित्य का उल्लेख अध्याय चार में हो चुका है। अतः यहाँ पर केवल इनकी गद्य रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है :—

मेराजुल आशकीन

सूफी साधक बन्दा नवाज़ की रचनाओं में 'मेराजुल आशकीन' का अपना विशेष स्थान है और यह इनकी प्रसिद्ध गद्य रचना है। यही कारण है कि इसके तीन प्रकाशन उर्दू में विद्यमान हैं। सर्वप्रथम इसका सम्पादन प्रसिद्ध विद्वान् डा० अब्दुल हक़ ने किया था। बाद में श्री खलीक़ अन्जुम और गोपीचन्द नारंग ने किया, किन्तु दोनों ने डा० अब्दुल हक़ के द्वारा निर्धारित पाठ को ही अपनाया है।

आलोचकों में इस बात पर मतैक्य नहीं है कि 'मेराजुल आशकीन' ख्वाजा बन्दा नवाज़ की रचना है। इसीलिए डा० अब्दुल हक़ को पुष्ट प्रमाणों के साथ समर्थन करना पड़ा है कि यह रचना ख्वाजा बन्दा नवाज़ की है और अपने तर्क के लिए हस्तलिखित प्रति के एक वाक्य को प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है—"इ नुस्खा-ए-शरीफ रा-सैयद मुहम्मद नसीर दर किले मुर्शिदाबाद सागर मुज़ाफ्ता दारुल बीजापुर बतारीख हफ्ता माह रमज़ातुल मुबारक यक हज़ार व यक सद व हफ्त व शश (हिजरी सन् 1176) हिजरी अज़ नुस्ख-ए-तबके क़दीम मक़तूबा नो सद शश हिजरी (हिजरी सन् 906) बूंद नकल नमूद।"[1] इसके अतिरिक्त इश्कनामे से भी इसकी पुष्टि होती है (इश्क नामा रचयिता मुहम्मद अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद अब्दुर्रहमान चिश्ती) इसमें हज़रत बन्दा नवाज़ की रचना 'मेराजुल आशकीन' और 'हिदयत नामा' का उल्लेख कई स्थलों पर आया है।"[2]

श्री युसुफ हुसेन ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है कि ख्वाजा सैयद गेसूदराज़ ने 'मेराजुल आशकीन' नामक पुस्तक लिखी जो हिन्दवी भाषा की प्रथम गद्य पुस्तक मानी जाती है।[3]

श्री रघुपति सहाय 'गोरखपुरी' का कथन है कि उर्दू गद्य की प्राचीनतम

---

1. सम्पादक डा० अब्दुल हक़—मेराजुल आशकीन, पृ० 50
2. वही, पृ० 50
3. युसुफ हुसेन—ग्लिम्पसेस आफ इन्डियन कल्चर, पृ० 103

पुस्तक प्रख्यात सूफी साधक हज़रत ख्वाज़ा सैयद मुहम्मद गेसूदराज की 'मेराजुल आशकीन' है ।[1]

परन्तु डा० हफीज़ कतील ने कई प्रतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया है और अन्त में उन्होंने यह निर्णय दिया कि 'मेराजुल आशकीन' ख्वाजा बन्दा नवाज़ की रचना नहीं है । उनका विश्वास है कि यह रचना मखदूम शाह हुसेनी की है ।[2] इसी प्रकार के विचार श्री ख्वाजा अहमद फारुकी ने भी व्यक्त किए हैं ।[3]

डा० श्रीराम शर्मा का कथन है—"मेराजुल आशकीन पढ़ते समय अनुभव होता है कि इसमें विचारों का निर्धारित क्रम नहीं है । कई स्थलों पर एक वाक्य दूसरे वाक्य से सम्बन्ध नहीं रखता । अनुच्छेदों का क्रम नहीं है । इन त्रुटियों पर विचार करते समय हमारे सामने अनेक विकल्प आते हैं । बन्दे नवाज़ ने स्वयं 'मेराजुल आशकीन' नहीं लिखी । वे जब कभी उपदेश देते थे अथवा किसी से चर्चा करते थे, शिष्य लोग उसे सार रूप में लिख लेते थे । इसीलिए उसमें क्रमबद्धता नहीं है । प्रसंग के अनुसार विषयों का बँटवारा नहीं है । कई स्थलों पर बात अधूरी रह गई है । इन त्रुटियों के आधार पर इस पुस्तक का सम्बन्ध बन्दे नवाज से न जोड़ना अनुचित होगा ।"[4]

अत: सहज ही यह धारणा होती है कि 'मेराजुल आशकीन' 'ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ की रचना है । इस रचना में जो कुछ त्रुटियाँ आ गई हैं वह केवल शिष्यों और उनके पुत्र के द्वारा लिखे जाने के कारण अथवा समय-समय पर उपदेश देने के कारण । इस प्रकार उसमें जो तारतम्यता का अभाव है । वह स्वाभाविक ही कहा जायेगा ।

'मेराजुल आशकीन' नामक गद्य रचना के कुछ वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं:—

"लबी कहे तहक़ीक खुदा के दरमियान ते सत्तर हज़ार उजियाले के होर अँधियार के अगर उसमें ते यक पर्दा उठ जावे तो उसको आँच ते मैं जलू । होर एक वक्त ऐसा होता है समझो और देखो बेपर्दा अँधियारे के उजाले के आरफाँ पर हैं वासलाँ पर्दे नूरानी दे वासलाँ का सफा पर्दा होता है । मुहम्मद का नूर ए अजीजाँ अव्वल अबूवेत का पर्दा सवाये तन जमालो जिस्म के पर्दे को 'आँपडे बाज उस जमाल अलूहत के पर्दे मुमकिन अलवजूद कूँ अनपड सके ।"

इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—"काल नबी अलहेस्सलाम कहे इन्सान के बूजन कूँ पाँचा तन, हर एक तन कूँ पाँच दरवाजे हैं और पाँच दरवान ।" और अन्तिम अंश इस प्रकार है—पंजुम नादानी की बात न करे मुरीदाँ में, शशुम अक़्ल

1. रघुपति सहाय 'फिराक' गोरखपुरी—उर्दू भाषा और साहित्य, पृ० 83
2. सम्पादक डा० हफीज़ क़तील—मेराजुल आशकीन, पृ० 86
3. डा० नगेन्द्र—भारतीय वाङ्मय, पृ० 499
4. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 101-102

अछै, हफ्तुम शुजाअत अछै, हश्तुम याद में रहना, नहुम हाल पर हाल होये, दहुम सो बूजा का मालिक होवे।"

'मेराजुल आशक़ीन' नामक पुस्तक में लेखक ने ईश्वर, जीव, प्रकृति, पंचतत्व शरीर आदि का उल्लेख करते हुए यथा स्थान उपमा, रूपक का भी प्रयोग किया है—इल्म पढ़कर नई बूज्या तो गडरे पर अबीर लादे या संदल किया लकड़्याँ लादे तो उसे क्या फायद।"

दुर्रुल अस्‌रार

अद्यावधि यह रचना भी संदिग्ध बनी हुई है। इसके सम्बन्ध में कुछ विद्वान् तो बन्दा नवाज़ की रचना स्वीकार करते हैं, तो कुछ स्वीकार नहीं करते। यह भी सूफी साधक बन्दा नवाज़ के शिष्यों अथवा पुत्र के द्वारा समय-समय पर लिपिबद्ध की गई है और इसमें भी बन्दा नवाज़ के उपदेश संग्रहीत हैं। पुस्तक का दुर्रुल अस्‌रार (भेद के मोती) बड़ा सटीक है। पाठक केवल शीर्षक देखते ही सोचने लगता है कि भेद के मोती क्या है? उसके हृदय में औत्सुक्य होता है और बिना पढ़े नहीं रह पाता। इसकी शैली भी सुन्दर है। लेखक ने प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है जिससे रचना में विशेष आकर्षण आ गया है और लेखक के विचार भी गूढ़ बन पड़े हैं। लेखक ने स्वयं कहा है कि मैंने इन मोतियों को तागे में पिरोकर इस पुस्तिका का नाम 'दुर्रुल अस्‌रार' रखा है।[1] प्रतीकात्मक शैली में लेखक कह उठा है—"याने सुलतान अपने जात के दरिया में छिपा राज का गंज रख्या था। बक़ा के मोतियों सूं भरकर, उस हाल में यकायक उस गंज तरफ नज़र गया और उस मोतियों का उजाला देखकर आशिक़ हुआ और मस्लह तजबीज में आया, जो ऐसे राज के मोती छिपाकर रखना खूब नहीं, बल्कि इश्क के बाजार में ज़ाहिर करना भला है, वले बगैर जौहरी आये मोतियों का होसी और जौहरी को जाहिर करने मंग्या तब उस ज़ात के दरिया के नूर लोच।"[2]

उपर्युक्त गद्यांश के प्रतीकों को इस प्रकार देखा जा सकता है—

सुलतान का तात्पर्य ईश्वर से है, मोती का अर्थ है क़ुरआन के अक्षर अथवा आयत, जौहरी शब्द हज़रत मुहम्मद साहब का प्रतीक है। इस रचना के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इसमें केवल नौ आयतों की व्याख्या की गई है। इस व्याख्या द्वारा लेखक ने अपने विचारों को क़ुरआन के अनुकूल प्रमाणित करने का सफल प्रयास किया है।

सूफी साधकों की मान्यता रही है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' साधक पराशक्ति में विलीन हो जाता है— "याने खुदा कहा, मैं भी नहीं और बन्दा भी नहीं और ऐ

---

1. ख्वाजा बन्दा नवाज़—दुर्रुल अस्‌रार, पृ० 44, पाण्डुलिपि क्र० सं० 1056, स्टेट सेण्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद।
2. वही, पृ० 44

मुहम्मद तुमे भी नहीं और मैं भी नहीं, हैफ़। ऐ सालिक अजब राज है। बन्दा हो तो बक़ा होकर अश्ना और खुदा भी फ़ना हो तो बाक़ी बक़ा क्या है सो बोल।"[1]

ख्वाज़ा बन्दा नवाज़ ने कुरआन के 'क़ब्ल अन्तु' (मृत्यु से पहले मरना) के तथ्य को समझाया है। मनुष्य किस प्रकार मरता है अथवा मरना चाहिये—"जो औरतां की तमा और माल की तमा कुछ न रखे भी मँगने सूं और हिसूं सूं बुग्ज़ सूं कष्ट सूं और शोहरत सूं—जो कोई गुजर्‌या सो वो मरने के अंगे मरा कर वाज़े मुह-क़्क़िकां बोलते हैं।"[2]

शिकार नामा

हज़रत ख्वाजा बन्दा नवाज़ की यह तृतीय गद्य रचना मानी जाती है। यह अन्य दो पुस्तकों की अपेक्षा छोटी रचना है। इस पुस्तक में गूढ़ दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये गये हैं। यही कारण है कि इसका आरम्भिक अंश बहुत कठिन हो गया है जो साधारण व्यक्ति की समझ में सरलता से नहीं आता। किन्तु लेखक ने पुस्तक के उत्तरार्द्ध में स्वयं उन्हें समझाया है। इसमें कवि ने अपने विचारों को रूपक के द्वारा व्यक्त किया है। इसके प्रमुख विषय हैं—ईश्वर, जीव, शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, पंचतत्व, वासना, साधना, ध्यान, धारणा और समाधि आदि। वास्तव में रूपक के अपनाने से दुरूह बातें भी सरल हो गयी हैं।

'मेराजुल आशकीन' और 'दुर्रुल असरार' में क्रमबद्धता का अभाव है किन्तु 'शिकार नामा' में क्रमबद्धता है। इसमें सीधे सादे ढंग से सूफ़ी विचारधारा को प्रति-पादित किया गया है। यथा —

नो बाप के और सात भावां के हैं चार फरज़न्द। तीन नगे, यक कूं कपड़े च नहीं। जिसे कपड़े नहीं उसके आस्तीन में पैके थे और चारों मिलकर बाज़ार को गये और ओ बाज़ार ज्यूं पाँच जिन्स था। उस बाज़ार के चार कमान थे तूटियां, यक कूं चिल्ला और गोशा न था। जिसके आस्तीन में पैके थे, सो ओ चला, होर गोशा न था सो कमाल लिए, वहां चार थे—तीन तूटे होर एक को सफ़िला और पैकाम न था।"[3] और भी लीजिए—"वहां चार घर थे। तीन तूटे, एक न था, याने ओ है अव्वल घर शरीअत का, दूसरा घर तरीक़त का, तीसरा घर हक़ीक़त का, यू तीन घर तूटे। चौथा घर मारिफ़त याने बसता था। लेकिन ये घर हक़ ताला का है। उस मारिफ़त के घर में जाकर वहां देखे तो महराब था। उसे कुबूलियत का महराब बोलते हैं। उस हडी के वास्ते हाथ अंपडाये तो नहीं अंपड्या सो उसे अनानीयत का हाथ

1. ख्वाजा बन्दा नवाज़- दुर्रुल असरार, पृष्ठ 51, पाण्डुलिपि क्र० सं० 1056, स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद।
2. ख्वाजा बन्दा नवाज़—दुर्रुल असरार, पृ० 57
3. ख्वाजा बन्दा नवाज़—शिकार नामा, पृ० 13, पांडुलिपि क्र० सं० 790, स्टेट सेण्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद।

बोलते हैं। ओ इस वास्ते, उस वक़्त पर एक फतर लाकर रखे उसे मैपन का फतर बोलते। उस फतर के ऊपर सवार हुए तो भी हाथ नहीं आंपड्या। बाद अज़ाँ पाँच गज़ खोदे। याने पाँच ज़िक्राँ, अव्वल ज़िक्र जली, दूसरी ज़िक्र क़िल्ली, तीसरी ज़िक्र रूही, चौथी ज़िक्र सिर्री, पाँचवीं ज़िक्र खफ़ी, ये पाँच ग़ज़ उत्तर कर अबदियात की हंडी काडे। इसमें इश्क की आग थी। उस आग सूँ पका कर खाये सो हिरन मिले। याते जाते हक़ कूँ अपड़े यह शख्स मेरा हिस्सा लाओ कहा था। इसे नफ्स शैतानी बोलते हैं। उने एक हड्डी दी। ओ झोझडने लगा। उसके हाथ सो छूट पड़ी सो उसे तमा बोलते हैं। ओ खरबूजे की बीज हुआ। उस बीज को ज़र्दालू की बेल लगी। उसे सुना और रूपा बोलते हैं। उस बेल के बिजाले बार आये सो उसे औरत फिगडी बोलते हैं। औरत के फाँदे में पड़कर दुनिया की गिरफ्तारी में पड़्या सो उसका पेट फूल्या, वो कोई इनमें से खारिज़ रहा।"[1]

इससे स्पष्ट है कि लेखक ने शरीअत, तरीक़त, मारिफ़त और हक़ीकत को स्पष्ट किया है फिर पाँच ज़िक्रों—जली, क़िल्ली, रूही, सिर्री और खफी के महत्व को बताया है। रूपक के द्वारा इस दार्शनिक स्थिति को बड़ी सरलता से व्यक्त किया है।

शह बारा

दक्खिनी साहित्य के अधिकारी विद्वान् नसीरुद्दीन हाशमी ने ख्वाजा बन्दा नवाज़ के 'रिसाला श बारा' का भी उल्लेख किया है।[2] प्रस्तुत रिसाले में प्रश्नोत्तर शैली में विचार व्यक्त किये गये हैं :—

सवाल—ज़ाती ईमान कौन सा और सिफाती ईमान कौन?

जनाब—अखण्ड हाल साबिती है, सो ज़ाती ईमान वह है। साबिती आती और जाती है, सो सिफाती ईमान।

सवाल—ईमान के झाडाँ क्या? और ईमान के डाल्याँ क्या? और ईमान के बात और ईमान का वतन क्या? और ईमान का बीज क्या? और ईमान का पोस्त क्या? और ईमान का सिर क्या? और ईमान का जीव क्या?

जवाब—ईमान की जीव कुरआन। ईमान की जड तोबा। ईमान की डाल्या सो बन्दगी। ईमान की बात परहेजगारी। ईमान का तुख्म सो इल्म। ईमान का पोस्त सो शर्म। ईमान का वतन सो मोमिन का दिल है।

इन स्थलों पर भाषा का प्रवाह शैली का लालित्य और अभिव्यक्ति का सामर्थ्य दर्शनीय है।

---

1. ख्वाजा बन्दा नवाज—शिकार नामा, पृ० 14, पाण्डुलिपि क्र० सं० 790, स्टेट सेण्ट्रल लाइब्रेरी, हैदराबाद।
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 29

इससे स्पष्ट है कि लेखक ने उपदेश दिया है कि मनुष्य को सद्व्यवहार, सद्चरित्र और ईमानदार होना चाहिए और ये गुण मनुष्य में केवल सर्वशक्तिमान या परमात्मा के ध्यान, पूजा और तपस्या से आ सकते हैं।

मीराँ जी शम्सुल उश्शाक़

मीराँ जी के सम्बन्ध में हम चतुर्थ अध्याय में उल्लेख कर चुके हैं। यहाँ पर हम इनकी गद्य रचनाओं का परिचय प्रस्तुत करेंगे। मीराँ जी शम्सुल उश्शाक के नाम के साथ पाँच गद्य पुस्तकों का उल्लेख मिलता है :—

(1) गुलबास, (2) जलतरंग, (3) सबरस, (4) शहर मरग़ूबुल क़ुलूब और (5) रिसाला तसव्वुफ।

इनमें से तीसरी और चौथी पुस्तकें ही प्रामाणिक हैं शेष संदिग्ध हैं। संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

सबरस

पुस्तक के मुखपृष्ठ पर लिखा है—"क़लाम मीरां जी शम्सुल उश्शाक के क़लाम शाह वजीहुद्दीन तर्जुमा नमूदह अन्द व सबरस नाम कर्द अन्द।" इससे स्पष्ट होता है कि शम्सुल उश्शाक की 'सबरस' वजही की 'सबरस' से भिन्न है और यह मौलिक कृति नहीं है प्रत्युत अनुवाद है। मूल पुस्तक के लेखक वजीहुद्दीन हैं। सालार जंग म्युज़ियम पुस्तकालय में जो प्रति है उसे रियाजुल्लाह हुसेनी ने खदीजा बेग़म के अनुरोध पर 1706 ई० में तैयार किया था। डा० नज़ीर अहमद और श्रीराम शर्मा के मतानुसार 'सबरस' मीराँ जी शम्सुल उश्शाक की रचना नहीं है, किन्तु दक्खिनी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान श्री हाशमी का मत है कि यह रचना (सबरस) मीरां जी शम्सुल उश्शाक की ही है जो वजही की 'सबरस' से भिन्न है।

मीरां जी शम्सुल उश्शाक द्वारा रचित सबरस के कुछ अंश प्रस्तुत हैं जिससे हम उनकी गद्य भाषा को पहचान सकें और तत्कालीन शैली का भी अन्दाज़ा लगा सकें :—

"अरे तालिब खुदाए ताला एक महबूब है और फ़कीर लोग उसके आशिक़ है, हर एक आशिक़ आप कूँ यॉं हैरान किया है। अगर चे व हिचा मूँ है व हिचा ज़ुल्फ व हिचा लब है। हिचा अँखियाँ में, जिसने ज्यूं रीछा है त्यूँ यहां क्या है। हर एक के कहने में यक लताफत है। हर यक के कहने में राहत है। हर यक कूँ यक जिन्स सूं विसाल हुआ है। उसका हुस्न बेनिहायत है। हर यक पर यक करम यक

---

1. मीरां जी शम्मुल उश्शाक़—सबरस पांडुलिपि, सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद
2. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 111
3. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 56

इनायत है। हर एक सूं यगानगी और रिआयत है। हर एक कूं यक सूं मरातिब हासिल हुआ है।

अरे तालिब अव्वल बाब के सलब में तो जमी उल्लास के पाक था। नूर था, जो माँ की रहम में आया तो सब तालुक्कात अफसानी तुझ में सजर करे जो माँ के पेट में थे बहा तकुल्लियातिब वजूदू पकर कर आता है ऊस रोज़ ब रोज़ साअत ब साअत ज्यूं ज्यूं होश पकड़ता त्यूं त्यूं दीन का स्वाद देखता।"

एक अन्य स्थल पर लेखक ने इस प्रकार अपने धार्मिक विचारों को व्यक्त किया है :—

जो कोई आशिक़ कूं इस सात चीज़ से मना करे, खुदाय ताला उसे दुनिया में सो फ़ना करे। खूबसूरत देख, राग सुन, खुशबई, खुशकर, केफ खा बेपरवा चा और शेर पर खुदा कूँ मौन याद कर। मुहब्बत सों बँधा अपने काम में मशगूल रह। किस सों नको झगड। यहाँ आराम या काम, यां हाल, यां वसाल यां यो खसरे वाले। जो कुछ तूं देखेगा जो सुनेगा, सो सब दर्द-सर है। मुशाहिदी मुराकबे में परखत्या सैर तैर में तू रहेगा। इस ज़माने में किस कूँ कश्फे-करामात हुआ जो मुझे होयेगा, थो जो कीमिया करेगा, धंदा नहीं होता और हुआ च कां कर दिल पर आता। सोधे बात पकर, घर कूं आ। तुं कूं जवान में काई कूं जाता। अव्वल तुझे जो कोई सिखलाता है, उसे पूछ—'तूं मुझे सिखलाता, सो तुझ पर खुला है।' इसका काम उस पर नहीं खुल्या, सो तुझ पर क्या खोलेगा? तूं क्या समझकर भूल्या है? बहुत सीखेगा, तो इधर उधर कियां चार हिकायतां। इस हिकायतां सो क्या हासिल? तूं दुनिया के धंदे में हिल गया है और इसकी बात भी आज़ाद है। वले यों खबर है, कि उसकी बिसरनी में भी उसी का यार है और अपस ते अपे आप कूं याद दिलाता है। तूं भी उसे याद दिलाता है। तूं भी उसे याद कर। आशिक है सो उसे बिसर नको। उसकी याद सों दिल कूं शाद कर और अपस कूं अपे याद दिलाता सो अपस कूं दिखलाता है कि यों देखो यो मेरी सूरत ही, मुझे देख, काकू बेदिल होता है। में इता तेरे नज़दीक हूँ और तू मुझे नहीं देखता।"

इससे स्पष्ट होता है कि मीरां जी शम्सुल उश्शाक की रचना 'सबरस' यद्यपि धार्मिक ग्रन्थ है किन्तु इसे तत्कालीन उच्च कोटि की गद्य रचना कहा जा सकता है। पूरे ग्रन्थ में लेखक ने मनुष्य और परमात्मा का सम्बन्ध और उससे सम्बन्धित बातों का उल्लेख किया है। यह गद्य ग्रन्थ अपने आप में अनूठा है।

शहर मरगूबुल कुलूब

इस पुस्तक का लेखक शम्स तबरेज माना जाता है। इसे लेखक ने फारसी से दक्खिनी में लिखा है। इस पुस्तक का वर्ण्य विषय धार्मिक है। मीरां जी शम्सुल उश्शाक ने इसमें कई स्थलों पर कुरआन की आयतों की व्याख्या की है तथा हदीस के उद्धरणों का अनुवाद अधिकांश स्थलों पर दिया है और कठिन स्थलों को विस्तारपूर्वक समझाया है।

'शहर मरग़ूबुल क़ुलूब' दस भागों में विभाजित है :—

प्रथम भाग में तोबा अर्थात् प्रायश्चित का उल्लेख है।

द्वितीय भाग में तरीक़त, नफ्स (वासना) दिल, रूह, सर (ध्यान), ज़ात (अस्तित्व), शरीअत, हक़ीक़त और मारिफत का परिचय दिया गया है।

तृतीय भाग में वज़ू (नमाज़ के लिए हाथ-पैर, मुँह नियमानुकूल धोना) का उल्लेख है।

चतुर्थ भाग में दुनिया तर्क करने (विराग) का वर्णन है।

पंचम भाग में तनवीर (ज्योति, नूर) का विश्लेषण है।

षष्ठ भाग में अपनी पछानत सूँ नूर-ए-मुहम्मद का उस पछानत में बैसलाना (बैठना)।

सप्तम भाग में इश्क का महत्त्व बताया गया है।

अष्ठम भाग में माशूक (प्रेमी) का वर्णन है।

नवम भाग में फ़ना और बक़ा का विश्लेषण है।

दशम भाग में सफ़र अर्थात् आध्यात्मिक यात्रा का उल्लेख है।

मीरां जी शम्सुल उश्शाक के ग्रन्थ 'शहर मरग़ूबुल क़ुलूब' से स्पष्ट होता है कि लेखक ने अपनी गद्य रचना में इस्लाम के नियमों के साथ-साथ सूफी विचारधारा का समावेश किया है और इसमें तसव्वुफ की चारों अवस्थाओं—शरीअत, तरीक़त, मारिफ़त और हक़ीक़त का वर्णन किया है। इसमें इस बात का भी विशेष रूप से उल्लेख हुआ है कि प्रेम, प्रेमी और फ़ना और बक़ा क्या चीज़ है एवं एक साधक अपनी साधना की यात्रा को किस प्रकार सरलतापूर्वक तय करता है।

शाह कलन्दर

शाह कलन्दर का जीवन वृत्त अज्ञात है लेकिन इनकी रचना 'रिसाला शाह कन्दर' है। इससे ज्ञात होता है कि शाह कलन्दर ख्वाजा बन्दा नवाज़ के पोते अब्दुल्लाह हुसैनी के शिष्य थे। शाह कलन्दर ने अपने गुरु शाह अब्दुल्लाह हुसेनी की प्रशंसा निम्नांकित शब्दों में की है :—

'नज़र में पाया मोती, शाह अब्दुल्ला दिसता ज्योती। देखा जोत दिसता मौन, मैं किया था दिसता कौन ? तब कलन्दर दिल के अन्दर ज़ाहिर पैगम्बर। शाह अब्दुल्ला सानी है, बखत ऊँचे मानी।''[1]

एक अन्य स्थल पर शाह कलन्दर अपने गुरु के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है जिससे स्पष्ट होता है कि ये अब्दुल्ला ख्वाजा बन्दा नवाज़ के खलीफा थे एवं स्वयं को अब्दुल्ला हुसेनी का क़दीम गुलाम (पुराना दास) बतलाया है तथा कामना की है

---

1. डा० राज़किशोर पांडेय—दक्खिनी का प्रारम्भिक गद्य, पृ० 88

कि वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अब्दुल्ला हुसेनी का दर्शन करके ही अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करें :—

"आशिक़-ए-हुसेनी है शाह बाज़, यूं मनच करता सरफराज, सरफराज़ी तेरी हात की यक पल में करे नजात दस्तमीर शाह यदुल्ला। दिल सूं बोलिया जीव की बात, मेरा दिल है पीव के हात, जिधर फिराये उधर फिरे। पीउ जो चाहे सो ही करे। मैं हूं कदीम गुलाम। मेरा जद है तेरा दाम। मुज कूं डर है उस दिन का, बिछुड़ चलेगा निसि दिन का। तन सूं बिछुड़ कर वह चली, फिर कर तन सूं रुह में रूहे मिली। उस वक़्त दिलवर, तू होना। मुख दिखा कर जीव लेना। ..यूं ग़म मुंज कूं भारी है। जखमी कलेजे कारी है। उस जखम का दरमां तू नज़र करना मरहम तूं। इस दिल खातिर रोता हूं। रो मुख अंझू धोता हूं। बात मूं मे के बिसरे हुआ दिवाना। कहते बिसरे हुआ दिवाना। तेरे संग सूं हुआ निहंग। बन्दा ही बन्दा हुवा। नूर हुवा तू हुजूर हुआ। ऐसा मुर्शिद हक़ मिलावे।"[1]

इस पुस्तक का वर्ण्य विषय तसव्वुफ है। इसकी एक प्रति 'चहार दह' नामक रिसाले के साथ सम्पादित है। अधिकांश वाक्य तुकान्त हैं।

बुरहानुद्दीन 'जानम'

सूफी सन्त जानम के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक पहले लिखा जा चुका है। यहां पर केवल उनकी गद्य रचनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। जानम द्वारा रचित सात पुस्तकों का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है :—

(1) कलमतुल हक़ायक़, (2) मक़सूद-ए-इब्तदाई, (3) कलमतुल इसरार, (4) ज़िक्र-ए-जली, (5) मारिफतुल कुलूब, (6) हश्त मसाइल और (7) रिसाला-ए-तसव्वुफ।

इन रचनाओं में कलमतुल हक़ायक़ ही सर्वाधिक रोचक है जिसका परिचय निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

कलमतुल हक़ायक़

यह दक्खिनी गद्य की प्राचीनतम प्रामाणिक रचना स्वीकार की जाती है। इसके उर्दू में दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं— (1) कलमतुल हक़ायक़—सम्पादक मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी, प्रकाशक—इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद। (2) कलमतुल हक़ायक़—सम्पादक—डा० रफिया सुलताना—प्रकाशक—मजलिस तहकी-कात उर्दू, हैदराबाद। पुस्तक का रचना-काल अज्ञात है क्योंकि लेखक ने स्वयं ग्रन्थ में कहीं कुछ अंकित नहीं किया है और न ही बाह्य साक्ष्य से कुछ सामग्री मिल सकी है। श्री हाशमी का अनुमान है कि इसकी रचना हिजरी सन् 990 अर्थात् 1578 ई०

---

1. डा० राजकिशोर पांडेय—दक्खिनी का प्रारम्भिक गद्य, पृ० 88

से पहले हुई है।[1] डा० श्रीराम शर्मा का कथन है कि इर्शादनामा (रचना-काल हिजरी सन् 990) के पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई होगी। इनका तर्क यह है कि इर्शादनामा में जो बात संक्षेप में वर्णित है वही बात कलमतुल हक़ायक़ में विस्तार से दी गई है।[2]

बुरहानुद्दीन जानम ने 'कलमतुल हक़ायक़' में धार्मिक आस्थाओं और आचरणों की व्याख्या की है। यह रचना उपदेशात्मक है और इसमें कवि ने प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया है। इस पुस्तक में कहीं-कहीं पद्य का भी प्रयोग हुआ है। इसमें शिष्य प्रश्न करता है और गुरु उत्तर देता है। कलमतुल हक़ायक़ नामक ग्रन्थ में सूफी सन्त जानम ने हिन्दी के साथ फारसी गद्य का भी प्रयोग किया है। यह गद्य रचना विचित्र सी प्रतीत होती है। आधा वाक्य यत्र-तत्र फारसी है तो आधा वाक्य हिन्दी है :—

"सबब यूं ज़बान-ए-गुजरी नाम इ किताब कलमतुल हक़ायक़ खुलास-ए-बयान तजल्ली अयां रोशन इन्शा अल्लाह ताला के खुदा-ए-ताला क़दीमुल क़दीम क्यूं था ? ज़ात व सिफात ब कुल मखलूकात इब्तेहा ब इन्तेदा बाक़ी व फानी क़दीम व जदीद बाहमा व बेहमा, यदी सबब सवाल जवाब रोशन कर दिखाया।"[3]

केवल फारसी में प्रश्न व उत्तर :

प्रश्न—"दर कुदरत व खुदा फर्क च बाशद ?

(दैवी शक्ति, प्रकृति और ईश्वर में क्या अन्तर है ?)

उत्तर—कि कुदरत ताल्लुक़ बा फेल दारद। कि अपने फेल पर नमूदार शाहिद बाशद।"[4]

(प्रकृति का सम्बन्ध कार्यों से है और ईश्वर का कार्य साक्षी मात्र है)

इस रचना के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इसमें इस्लामी दृष्टिकोण एवं मान्यताओं का प्रतिपादन किया गया है। कलमतुल हक़ायक़ का कुछ अंश प्रस्तुत है जिसमें इस्लामी तसव्वुफ के गुण वर्णित हैं :—

"सवा कि खुदा-ए-ताला अव्वल थे। अव्वल क्यों है। जवाब क़दीम थे क़दीम अव्वल थे, अव्वल आपीं था। सवाल कि क्यूं था, कहाँ था, जवाब बे चूं दवे जगोना था, चूं व चिराना बायद गुफतन व लेकिन हस्ती यानी लायक व लाशबा सवाल ओ कहाँ था कहीं तो तालुक़ात जागा मूँ धरता था भी जवाब तीर ने भी वक्त मूँ तालुक़ा धरता है तो इस हर शै का आफरीदगार धच जान और जागा सब का आफरीदगार वही पछान उस थे अव्वल ओ अव्वल का भी अव्वल व आखिर क़दीम व जहीद सब

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 274
2. डा० श्रीराम शर्मा—दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, पृ० 145
3. डा० रफिया सुलताना—बुरहानुद्दीन जानम—कलमतुल हक़ायक़, पृ० 21
4. वही, पृ० 24

उस थे बेज़बान होता इस थे बोल में आया कि अव्वल थे अव्वल है जुमला मखलूकात थे ला मकाँ।"[1]

लेखक गद्य में अपने विचारों को ठीक से व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करता है। इसका कारण यही रहा होगा कि गद्य उस समय प्रारम्भिक अवस्था में था और इसकी अभिव्यंजना समता अपूर्ण थी। फारसी बीच-बीच में प्रयोग इसका प्रमाण है। शास्त्रीय चर्चा के होते हुए भी इसमें शुष्कता नहीं आने पाई है। लेखक ने उपमा, रूपक आदि के द्वारा अपनी बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

हश्त मसाइल

इस पुस्तक का प्रमुख वर्ण्य विषय इस्लामी तसव्वुफ है। इसमें लेखक ने तसव्वुफ की कुछ प्रमुख बातों का बड़े सुन्दर ढंग से स्पष्टीकरण किया है। इसके गद्य का अध्ययन करने से विदित होता है कि सूफी साधक दक्खिनी के गद्य को भी महत्व प्रदान कर रहे थे और उसमें अपने विचार बिना किसी हिचक के व्यक्त कर रहे थे। इस ग्रंथ के कुछ वाक्य प्रस्तुत हैं :—

"पैगम्बर साहब सल्लाहू अलैहे वस्सस्लम कूँ मअराज हुआ तब मुहम्मद रसूलुल्लाह अलैहेवस्सल्लम ने सवाल किये कि सात तबक़ आसमान होर सात तबक़ ज़मीन क्या कदीम है या जदीद है।"

जवाब ख़ुदा कह्या ऐ अँब मन ऐन हमा जदीद आफरीदा शद। सवाल तो कुछ न था तो क्या था?

जवाब तुझ सूँ मैं था।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया है। इसमें इस्लामी मान्यताओं के आधार पर सात आकाश और सात पृथ्वी का उल्लेख किया गया है। इसमें हज़रत मुहम्मद साहब के मअराज का उल्लेख है और हज़रत मुहम्मद साह प्रश्न करते हैं और परमात्मा उसका उत्तर देता है।

मारिफ़तुल क़ुलूब

इस रचना में शास्त्रीय बातों का उल्लेख हुआ है और सूफी साधना के चारों सोपानों (शरीअत, तरीक़त, मारिफत और हक़ीक़त) का विवरण है। इस पुस्तक के कुछ स्थल इस प्रकार हैं :—

"जान ऐ सालिक पछानत करना शरीअत का होर हक़ीक़त का होर तरीक़त का, होर मारिफ़त का उसमें बयान तमाम है कि नफ़अ पाने के बदल आलमाँ कूं, होर आशिकाँ कूँ होर वासला कूँ, अब तो सब कूँ तसल्ली दिखलाता है, होर दिल कूँ उन पर कि राहत पाते हैं।"

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि लेखक ने सूफी साधना को बताते हुए कहा है कि मुक्ति का सरल साधन है तसव्वुफ के सोपान।

---

1. डा० रफिया सुलताना—बुरहानुद्दीन जानम—कलमतुल हक़ायक़, पृ० 27-28

सूफी साधन बुरहानुद्दीन जानम की गद्य रचनाओं में कई स्थलों पर इस्लामी और हिन्दू मान्यताओं और विचारों का समन्वित रूप दिखायी देता है। इस प्रयत्न में विद्वान लेखक कहीं सफल हुआ है तो कहीं असफल भी परन्तु प्रायः वह अपने विचारों को प्रस्तुत करने में सफल रहा है।

अमीनुद्दीन आला (अली)

शाह अमीनुद्दीन आला बुरहानुद्दीन जानम के पुत्र थे और अपने पिता के समान ही ये भी प्रसिद्ध सूफी साधक हुए हैं। ये अपने समय में विचारक साधक के रूप में प्रतिष्ठित थे। इनके सम्बन्ध में अध्याय चार में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। यहाँ पर हम केवल इनकी गद्य रचनाओं का परिचय देंगे। अमीनुद्दीन अली 'अमीन' की चौदह गद्य पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। इन सबका वर्ण्य विषय तसव्वुफ है।

रिसाला सुलूक

उसमानिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में 'रसायल शाह अमीनुद्दीन आला' नामक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। इस संकलन में प्रथम पुस्तक 'रसाला सलूक' है जो गद्य में है और इसके केवल तीन ही पृष्ठ अवशिष्ट हैं। इस प्रति के अतिरिक्त अन्य किसी प्रति की सूचना नहीं है। अतः यह कह पाना कठिन है कि पूरी पुस्तक कितने पृष्ठों की है, किन्तु जो अंश प्राप्य हैं उससे स्पष्ट है कि पुस्तक का वर्ण्य विषय तसव्वुफ है। इस ग्रन्थ की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं :—

"आफताब तुलूअ हुवा तो मशल की क्या हाजत कि त्यूं बूज ऐ तालिब तहक़ीक उस लाहूत के मुकाम है। अगर वासिल हुवा तो उसको हासिल आयेगा। सो तजल्ली भांत भांत की रविश में उसके तईं" उसकी इस्तदाद की मुनासिबत हासिल होवेगा।

···बाद अज़ उसके तई उस चार मुकाम में भी जाकर आने कूं अल्ला ताला की इनायत होवेगा। उसके तईं मजजूब सालिक कर जायेगा और केतेक मुरीदाँ होवेंगे। अपनी उम्र ही मुल्क नासूत में या मलबूब में या जबरुत में च गुजर कर लाहूत कते सो मुकाम में पोचे गया सो नई उसके तई सालिक कहे जायेगा। तो दुनिया में भी मजबूब न कहे जायेगा तो आखिरत से मजबूब कहा जायेगा।"

मरग़ूबुल क़ुलूब[1]

यह ग्रन्थ दस अध्यायों में विभाजित है जो इस प्रकार है :—

पहला बाब (प्रथम अध्याय) तौबा।

---

1. मरग़ूबुल क़ुलूब (पांडुलिपि), क्रम सं० 613 (तसव्वुफ)—राजकीय पुस्तकालय, हैदराबाद।

दूसरा बाब (द्वितीय अध्याय) नफ्स ।
तीसरा बाब (तृतीय अध्याय) वजू ।
चौथा बाब (चतुर्थ अध्याय) दुनिया कूँ तर्क कर देना ।
पाँचवाँ बाब (पंचम अध्याय) तजरीद और तफरीद होने को बोलते हैं ।
छठा बाब (षष्ठ अध्याय) अपनी पछानत का ।
सातवाँ बाब (सप्तम अध्याय) इश्कल ।
आठवाँ बाब (अष्ठम अध्याय) माशूक का याद करना सो बोले है ।
नवाँ बाब (नवम् अध्याय) फना होर बक़ा हुवे का ।
दसवाँ बाब (दशम अध्याय) सफरां का तमाम किया ।

शीर्षकों से स्पष्ट होता है कि पुस्तक का वर्ण्य विषय तसव्वुफ है । भाषा सरल एवं आकर्षक है । उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

"खुदा कहिया जे कुच ज़मीन पर है सो जिस्मानी सब फना है और रूह की वजूद बक़ा है । जे कुच तू फना देखता सो सब फना च है होर सोने में जिस पर नींद नहीं सो बक़ा है । यानी नूरानी तन ।....खुदा कहिया ये तन जिस्मानी फना है ।"

कुर्सीनामा और रिसाला अखलाक

'कुर्सीनामा' नामक पुस्तिका में केवल दो पृष्ठ हैं । इसमें चिश्ती सम्प्रदाय का वंश वृक्ष है । कुर्सीनामा के द्वितीय पृष्ठ के अन्त से 'रिसाला अखलाक़' आरम्भ होता है । इस पुस्तक में अखलाक की सात बातों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है एवं पुस्तक सात अध्यायों में विभाजित है । पुस्तक का आरम्भ इन शब्दों से होता है :—

"पीर कूँ पैगम्बर कूँ होर ख़ुदा कूँ एक ईच कर देखे होर एक ईच कर जाने । हज़रत अली कहे—मैं पछाने खुदा कूँ खुदा तईं । मैं देखा खुदा कूँ खुदा के तईं । खुदा से मुहव्वत यूं रख कि अपनी मज़ार में वो मज़ार होकर अछ होर अपनी मज़ार में दीवा होर बस्ती खुदाई च अछै होर दोस्तवी खुदा ईच अछै । होर क़यामत कूँ बी अपने सात अछे ।"

रिसाला इरशादात और निकात

इस ग्रन्थ की केवल भूमिका गद्य में है और पुस्तक नौ अध्यायों में विभक्त है एवं प्रत्येक अध्याय का नाम 'तमाशा' है ।

नूर नामा

'रसायल अमीनुद्दीन आला' में 'नूर नामा' सातवीं पुस्तक है । इस पुस्तिका में केवल तीन पृष्ठ हैं । इस पुस्तिका का आरम्भ अरबी भाषा के एक लम्बे उदाहरण से

होता है फिर लेखक ने उसका अनुवाद दक्खिनी में दिया है। भाषा सरल, सरस व प्रांजल है :—

"जिस वक़्त हमल में था उस वक़्त नूर के मुक़ाम में था जो बाहर आया तो रूह की हाल में हुआ। वहाँ ये 'दानाई' और 'गैर' पैदा हुई। दिल के जागा आया वहाँ थे अपस पर नज़र आई।"

"हदीस कहे है कि तू अव्वल अपने पछानत करना क्या सबब कि अपने पछानत थे खुदा की पछानत हासिल होती है।"

रिसाला निक़ात व मारिफ़त

इस ग्रन्थ के केवल तीन पृष्ठ प्राप्य हैं। आरम्भ में छोटी सी भूमिका है। भूमिका का आरम्भ इस प्रकार होता है :—

"अल्ला बड़ा साहब है। इसकूँ भौत नवाजना। इसकी खुदाई थे दोनों आलम पैदा करने में अक़्ल क्याँ अख्वाँ हैरान है। खुदा दायम कायम है। इसकी बुज़ुर्गी का मेहर सब पर है होर खुदा यकला है पैदा करता है और मारता है।"

'रसाला निक़ात व मारिफ़त' का प्रथम अध्याय इन शब्दों से आरम्भ होता है—

"इस तन में नूरानी तन कूँ देखना। ये सब लोगाँ ते देखते थे पैगम्बर कूँ इस तन सूँ...ये किताब आया खुदाताला थे। खुदा कहिया कि ऐ मुहम्मद व लोगाँ तन सूँ तुजे देखते थे। वले तेरे नूरानी तन सूँ तू जैसा है वैसा नहीं देखते।...ऐ दोस्त तुमें क़ुरान की हरफ काले दीखते हैं। उजले काग़ज़ पर इस काली सतरों में नूर तूँ ना देखे।"

गंज-ए-मख्फी

शाह अमीनुद्दीन अली (आला) की दरगाह (बीजापुर) के पुस्तकालय में 'गंज-ए-मख्फी' की हस्तलिखित प्रति है। इस ग्रन्थ में ईश्वर और उसकी शक्ति की व्याख्या की गई है। साथ ही साथ इसमें मुहम्मद ज़िक्र जली, क़ल्बी, रूही और सिरीं का वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पद्य का भी प्रयोग हुआ है। शाह अमीन ने इस ग्रन्थ में एक स्थान पर ज़ात और उसके मन्तबों का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"अल्ला ताला गंज मख्फी कूँ अयां करना चाहा तो अवल उसमें सूँ एक नज़र निकली। सो इससे 'अमीन देख' हुवा। 'अमीन शाहिद' कहते हैं। यूँ दोनों जात के दो तौर हैं। ज़ात ने इस कूँ रेखा, उसे नज़र कहते हैं। देखकर गवाही दिया तो उसे 'शाहिद' कहते हैं, यह तीनों मन्तबे ज़ात के हैं।"

गुफ्तार शाह अमीन

इस ग्रन्थ की चर्चा प्रसिद्ध शोधार्थी डा० मौलवी अब्दुल हक़ और डा० सैयद

मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर ने किया है किन्तु प्रस्तुत लेखक को इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कोई सामग्री नहीं मिल सकी।

इश्क नामा

शाह अमीन की दरगाह के पुस्तकालय में अन्य पुस्तकों के साथ 'इश्क नामा' भी संकलित है। इस पुस्तक का वर्ण्य विषय भी अब पुस्तकों की भाँति तसव्वुफ है। भाषा बोल चाल की दक्खिनी है। भाषा में सरलता, सहजता और प्रांजलता है :—

"ऐ भाई जान कि बीच इस जहान के तीन चीज़ है। यानी इश्क हौर आशिक हौर माशूक। यह तीन ज़ाहिर है। जब यूँ इश्क बीच दिल के तेरे तो जो कुछ कि गैरियत हुई तो उसे जला डाल। जैसा कि एक बुज़ुर्ग फरमाते हैं।"

इरशाद नामा और रिसाला वजूदिया[1]

इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख दक्खिनी के प्रसिद्ध विद्वान नसीरुद्दीन हाशमी ने किया है, किन्तु प्रस्तुत लेखक को इन पुस्तकों को देखने का अवसर नहीं मिला। इरशाद नामा नामक ग्रन्थ के कुछ वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

"बिस्मिल्ला नाम अल्ला का। अल्ला मुहम्मद के राज़ रम्ज के बातां किसी ना मुहरम के अंगे ना बोलना। बोलेंगे तो काफिर होवेंगे हौर सुनेंगे सो दीवाने होवेंगे। तो इनो को बोलकर दीवाने ना करना हौर अपीं सुनाकर काफिर न होना। यू शर्त इस ज़बान सूँ ज़िक्र करना अल्ला अल्ला।"

रिसाला वजूदिया की भाषा सरल तथा सरस है। इसके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं :—

"ऐ आरिफ़ खुदा ताला कुरात में फरमाया है—(अरबी में कुछ वाक्य हैं) इस वास्ते ज़रूर हुआ कि कुछ मारिफ़त हक़ का बोलना। आदमी बात करता है अपनी अक़्ल मुवाफिक। ऐ आरिफ, हर एक इन्सान कूँ पांच वजूद हैं। हर एक वजूद बारी ताला का है। हर एक वजूद की शर्त और लवाजिमात है।"

ज़िक्र नामा

यह चार पृष्ठों की पुस्तिका है।[2] इसका वर्ण्य विषय तसव्वुफ है। इसमें ज़िक्र जली, क़ल्बी, रूही एवं सिर्रो की व्याख्या बड़े कलात्मक ढंग से हुई है।

रिसाला मारिफ़त

'रसायल शाह अमीनुद्दीन आला' में यह दसवाँ ग्रन्थ है। पुस्तक के आरम्भ में बारह शेर (छन्द) हैं, उसके पश्चात् गद्य आरम्भ होता है। इस ग्रन्थ के कुछ वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 274-75
2. पाण्डुलिपि, क्रम संख्या 601 (तसव्वुफ), राजकीय पुस्तकालय, हैदराबाद।

"यहाँ सब सूँ मिलकर एक रूप होता है। इसमें इश्क भये है व नूर भये है व रूह भये है व दिल भये है व नफ्स भये है व चार फरिश्ता भये हैं। बिस्मिल एक जागा हवा में है। इतन्याँ सिफ्ताँ सूँ मिलकर सूस। जमा होता है। आखिर बाहर आता। बाद चहल रोज़ तक नूर में रहता हौर देख पर आता सो रूह का नज़र इसे जान्या। सो दिल का जागा पकड़ने लग्या सो नफ्स मालूम होता है।"

रिसाला तसव्वुफ

यह दो पृष्ठों की पुस्तिका है। प्रथम पृष्ठ गद्य में है और द्वितीय पृष्ठ पद्य में है। गद्य प्रश्नोत्तर शैली में है। कहीं-कहीं फारसी वाक्यों का भी प्रयोग है। गद्य भाग का आरम्भिक अंश इस प्रकार है :—

सवाल—पैगम्बर कूँ मेरा हुवा। पैगम्बर ने पूछे कि सात तबक आसमान और सात ज़मीन क्या क़दीम क्या जदीद है ?

जवाब—(फारसी भाषा में है) कुछ न था।

सवाल—तो कुछ न था तो क्या था ?

जवाब – मुज सूँ मैं च था, ज्यूँ बीज झाड।

शाह अमीन ने इन पुस्तकों में जिन विषयों की व्याख्या की है वह अपने आप में अत्यन्त कठिन है। पूर्णरूपेण वही व्यक्ति उसके रस का रसास्वादन कर सकता है जो स्वयं सूफी साधक हो अथवा उन साधनाओं से भली-भाँति परिचित हो।

मुल्ला वजही

मुल्ला वजही द्वारा लिखी गद्य रचना 'सबरस' है। इसको लेखक ने हिजरी सन् 1045 अर्थात् 1636 ई० में लिखा। लेखक ने स्वयं रचना तिथि इस प्रकार दी है—

"बारे जिस वक़्त था एक हज़ार व चहल व पंज, उस वक़्त ज़हूर पकड़्या यू गंज।" अर्थात् यह सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह के शासन का दसवाँ वर्ष था।[1]

सुलतान अब्दुल्लाह कुत्ब शाह के आग्रह पर वजही ने 'सबरस' नामक ग्रन्थ की रचना की थी—"यका यक ग़ैब ते कुछ रम्ज़ पाकर दिल में अपने कुछ ल्याकर वजही नादिर मन कूँ, दरिया दिल गौहर सुखन कूँ हुज़ूर बुलाये। पान दिए, भौत दिए। होर फ़रमाये के इन्सान वजूद बिच में कुछ इश्क का बयान करना, अपना नावँ अयाँ करना, कुछ निशान धरना। वजही बहुगुनी—गुनभर्या, तसलीम कर कर सर पर हात धर्या। भोत बड़ा काम अंदेशा। भोत बड़ी फ़िक्र किया, बलन्द हिम्मती के बादल ने दानिश के मैदान में गुनताराँ बरसाया। कुदरत के असराराँ बरसाया। बादशाह के फ़रमाये पर चीन्त्या, नवीं तकतीह बीत्या के अंगे के आनहारे हमें बी

1. डा० श्रीराम शर्मा—सबरस (मुल्ला वजही कृत), पृ० 204

कुछ ते कर समजें बारे । हमारे गुन कूं देखे सो हमना देखे, गंगा देखे सो जमना देखे । हमना ते बी अंगे थे सो उनो का कुच बी तमीज़ करे ।"[1]

मुल्ला वजही ने अपनी पुस्तक को मौलिक कहा है—"गरज़ मोत नादिर बातां बोल्या हूँ, दरिया होकर मोतियाँ रोल्या हूँ । मोतियाँ की मौजां का मैं दरिया हूँ । तमाम मोतियाँ सूं भरियां हूँ । इस दरिया में गोता खांयगे तो जागा-जागा के गव्वासां मोतियाँ पायँगे ।....यहाँ खुदा बोलनहारा च है । ज कोई बाट हमारी चलया, बो हमारा च है । हरचन्द फ़हमदारी है, चल्या तो क्या हुआ बाट हमारी है । अगर नुफ़ता किसी ते कुछ जान्या, हम ज़ाहिर, हम बातिन उसे नईं मान्या तो वो मुसलमान नईं । उसे ईमान नईं, ऐसे से डरना । भोत-भोत परहेज़ करना । यो बी एक चोरी है, यो बी एक हरामख़ोरी है ।"[2]

किन्तु उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डा० अब्दुल हक़ ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—"मुल्ला वजही ने किस्से की असल की तरफ़ कहीं इशारा नहीं किया, मगर दानों किताबों (सबरस और हुस्न व दिल) के पढ़ने से स्पष्ट होता है कि वजही ने किस्से की वारदात हरफ़ व हरफ फत्ताही से ली है, अपनी तरफ़ से कोई रज़ाफा किया है तो यह कि जा-ब-जा मौक़ा व-मौक़ा पंद व मौअज़ा का दफ्तर खोल दिया है, जिसका असल किताब में नाम-निशान नहीं है । मेरा ख़्यास यह है कि वजही के, फत्ताही की हुस्न व दिल जो नसर में है, हाथ लग गई थी ।...वजही ने अपनी नसर में उसी का तर्ज़ उठाया और मुसज्जा और मुकफ्फ़ा इबारत लिखी है ।"[3]

आगे चलकर डा० हक़ ने लिखा है कि ऐसा प्रतीत है कि मुल्ला वजही ने फत्ताही की रचना 'हुस्न व दिल' को तो पढ़ा था लेकिन उसकी व्याख्या 'दस्तूर-ए-इश्क' नहीं पढ़ी थी क्योंकि सबरस में उन घटनाओं का अभाव है जो घटनाएँ 'दस्तूर-ए-इश्क' में वर्णित हैं । फत्ताही ने स्पष्ट रूप से मुख में निवास करने वाली वाणी को अमृत बताया है जबकि सबरस के लेखक मुल्ला वजही ने इसे रहस्यमय बनाये रखा है ।

सबरस भी कुछ कुतुब मुश्तरी के समान एक प्रेमाख्यान है । इसमें एक नायक (दिल) और एक नायिका (हुस्न) है । इसमें भी प्रेम का उदय दोनों ओर से होता है । वजही ने सबरस में मानवीय भावों को पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है ये मानवीय भाव शरीर धारण करके कथानक को आगे बढ़ाते हैं ।

कथा-सार

सीस्तान नामक नगर का शासक अक़्ल था । उसके दिल नामक पुत्र था । राज सभा में एक बार दिल भी उपस्थित था । उस सभा में किसी ने बताया कि

---

1. डा० श्रीराम शर्मा—सबरस (मुल्ला वजही कृत), पृ० 7
2. वही, पृ० 11-12
3. डा० अब्दुल हक़—सबरस (मुल्ला वजही कृत) पृ० 12 (भूमिका)

अमृत पीने से मनुष्य अमर हो जाता है। अमृत की बात को सुनकर दिल उसे पाने के लिए उद्विग्न हो उठा। उसकी व्यग्रता बराबर बढ़ती ही गयी।

दिल के जासूस 'नज़र' ने प्रतिज्ञा की कि मैं अमृत की खोज करूँगा। नज़र अमृत की खोज में निकल पड़ा। जाते-जाते आक़फ़ियत नामक नगर में पहुँचा। आक़फ़ियत का शासक नामस था। नामूस ने नज़र से अमृत से गुण वर्णन किये, परन्तु अमृत किस स्थान पर है, यह उसने नहीं बताया। मार्ग में एक विशाल गगनस्पर्शी पर्वत दिखायी दिया। पूछने पर विदित हुआ कि इस पर्वत पर रिज़क नामक महापुरुष रहता है उससे सम्पर्क कर नज़र ने अपना उद्देश्य प्रकट किया। रिज़क ने कहा—अमृत का स्रोत स्वर्ग में है और तुम उसे पृथ्वी पर खोजते हो ? यदि तुम इस अमृत का पता लगाना चाहते हो तो उसके चिन्ह प्रेमियों के आँसुओं में देखो।

नज़र आगे बढ़ा तो मार्ग में उसे 'हिदायत' नामक दुर्ग मिला और दुर्गपति का नाम हिम्मत था। हिम्मत ने अमृत का पता बताया, 'पश्चिम में एक देश है, इश्क वहाँ का शासक है। इश्क की पुत्री का नाम हुस्न है। वह दीदार नगर में रहती है। वहाँ एक रुखसार नामक उद्यान है। इस उद्यान में धन नामक स्रोत है। इसी स्रोत में अमृत है और इसी स्रोत पर आकर हुस्न प्रतिदिन अमृत पीती है।' हिम्मत ने आगे कहा, दीदार नगर जाना बहुत कठिन है। मार्ग बहुत दुर्गम है। यहाँ से चलोगे तो तुम्हें सुबुकसार नामक नगर मिलेगा। उस नगर में रक़ीब नामक राक्षस रहता है। रक़ीब इश्क के आदेशों का पालन करता है और वह इश्क के नगर का रक्षक है। यदि तुम किसी प्रकार सुबुकसार नगर को पार कर लो तो तुम्हें कामत नामक मेरा माआया भाई मिलेगा। दीदार शहर ही में उसका निवास स्थान है। मैं तुम्हारी सिफारिश किये देता हूँ। तुम मेरा पत्र उसे दे देना और वह तुम्हारी सहायता करेगा।

नज़र पश्चिम की ओर चल पड़ा। जब वह सुबुकसार नगर की सीमा में प्रविष्ट हुआ तो उसे कुछ लोग पकड़ कर रकीब के पास ले गये। रक़ीब ने पता-ठिकाना पूछा। नज़र ने उससे कहा, मैं हकीम हूँ, निष्प्राण में प्राण का संचार कर सकता हूँ और मिट्टी को हाथ लगाऊँ तो सोना हो जाये। रकीब बहुत प्रसन्न हुआ और कहा—तुम मेरे लिए सोना बना दो। नज़र ने सोना बनाने के लिए कुछ औषधियों की आवश्यकता बताई। रक़ीब ने कहा—दीदार नामक नगर और रुखसार नामक उद्यान बहुत निकट है। मैं सारी औषधियाँ एकत्र कर दूँगा। तुम मेरे साथ चलो। जब दोनों दीदार नगर में पहुँचे तो कामत से नज़र की भेंट हुई और उसने चुपके से हिम्मत का पत्र कामत को दे दिया। क़ामत ने अपने सेवक सीमसाक़ को आदेश दिया कि रक़ीब को बिना बताये नज़र को छिपा दो। नज़र के अदृष्ट होने पर रक़ीब वहाँ सेचला आया।

नज़र ने कामत को अपना उद्देश्य बताया। एक दिन कामत और नज़र उद्यान में टहल रहे थे कि उन्हें राजकुमारी हुस्न दिखाई दी और उसके साथ लट नामक

सहेली भी थी। लट ने नज़र से उसके घबराये हुए होने का कारण पूछा। उसने अपना उद्देश्य बताया। नज़र के लट ने चार बाल दिए और कहा समय पड़ने पर इन्हें आगे में डालना मैं सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी।

एक दिन नज़र जौहरी के रूप में हुस्न के सामने उपस्थित हुआ। हुस्न ने हीरा परखने के लिए दिया। उस हीरे में एक चित्र था। नज़र ने बताया कि यह चित्र दिल का है। हुस्न दिल पर मुग्ध हो गयी। इसके बाद नज़र ने कहा—यदि तुम दिल को अमृत का पता बता दो तो वह अवश्य आयेगा।

राजकुमारी हुस्न ने अपने ख्याल नामक सेवक को दिल के पास भेजा और विश्वास दिलाया कि यदि दिल यहाँ पर आ जाये तो उसे अमृत अवश्य ही मिल जायेगा। नज़र और ख्याल दोनों दिल के पास पहुँचे। जब ख्याल ने हुस्न का चित्र बनाकर दिल को दिखाया तो उसकी व्यग्रता और भी बढ़ गयी। उधर मंत्री बहम ने अक़्ल से जाकर कहा कि इश्क बहुत बलवान है। अक्ल ने नज़र और दिल दोनों को बन्दी बना लिया। राजकुमारी हुस्न ने नज़र को एक अंगूठी दी और कहा कि इस अंगूठी के मुँह में रखने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है और उसे अमृत का स्रोत दिखायी देता है। अंगूठी के सहारे नज़र बन्दीगृह से भाग निकला और अमृत कुण्ड के पास पहुँच गया। वह अमृत पीना ही चाहता था कि अंगूठी मुँह से कुण्ड में गिर गयी। अंगूठी के गिरते ही नज़र सबको दिखायी देने लगा। रक़ीब ने उसे बन्दी बना लिया। नज़र ने लट नामक सेविका के बाल को जलाया और वहाँ लट उपस्थित हो गयी और नज़र को हुस्न के पास ले आई। नज़र ने हुस्न को बताया कि दिल बन्दी बना लिया गया है।

राजकुमारी हुस्न ने नज़र के साथ अपने सेवक गम्ज़ा को भेजा। उधर सुलतान अक़्ल ने आदेश दे रखा था कि नज़र कहीं भी मिले उसे पकड़ लिया जाये। सुलतान अक़्ल के सामन्त ज़ुहद ने अपने पुत्र तोबा को नज़र के पीछे लगाया। नज़र और गम्ज़ा थक कर ज़ुहद के उद्यान में सो गये। प्रातः ही ज़ुहद के सैनिकों ने इन्हें घेर लिया। लेकिन दोनों ने युद्ध में विजय प्राप्त की। यह बात अक़्ल तक पहुँची तो वह घबरा गया और दिल को बन्दीगृह से मुक्त करके कहा, देखो बेटे तुम अकेले नज़र अथवा गम्ज़ा के साथ मत जाना, सेना साथ में ले जाना।

पिता और पुत्र बात ही कर रहे थे कि समाचार मिला, कुछ हरिण खेत चर रहे हैं। दिल उनका शिकार करने गया। वास्तव में ये गम्ज़ा के सैनिक थे। वे दिल को घने जंगल में ले गये। अक्ल भी अपनी सेना के साथ गया। नज़र और गम्ज़ा ने निश्चय किया कि हम बीच में नहीं पड़ेंगे। हिरनों का पीछा करते-करते दिल और अक़्ल और उसके सैनिक दीदार नगर तक पहुँच गये। उधर गम्ज़ा और नज़र हुस्न के पास पहुँचे। तीनों ने निश्चय किया कि इश्क को सावधान कर देना चाहिए। राजकुमारी हुस्न ने अपने पिता इश्क को पत्र लिखा कि अक़्ल ने मेरे सेवक ख्याल को बन्दी बना लिया है और उसे तंग किया जा रहा है। पुत्री का पत्र पढ़ते ही

सुलतान इश्क जल भुन गया और अपने सेनापति ज़फ़ा, दर्द मशक़्क़त आदि मंत्रियों को साथ लेकर इश्क से युद्ध करें।

महाराजा इश्क और महाराजा अक़्ल की सेनाओं में चार दिन तक घमासान युद्ध हुआ। पाँचवें दिन 'हलाक' नामक हुस्न के सैनिक ने त्रुटिवश दिल पर ही तीर चला दिया और दिल पृथ्वी पर गिर पड़ा। सैनिक उसे उठा ले गये और दिल हुस्न के साथ आ गया।

राजकुमारी हुस्न ने सेनापति मेहर के द्वारा पिता के पास समाचार भेजा कि दिल पकड़ा गया है। महाराज इश्क ने दिल को बन्दीगृह में डालने का आदेश दे दिया। हुस्न अब दिल से बन्दीगृह में बराबर मिलने लगी। एक दिन हुस्न के पहुँचने में देरी हो गयी तो रक़ीब की बेटी 'गैर' दिल के पास गयी और दिल उस पर मुग्ध हो गया। जब हुस्न को इस बात का पता चला तो वह बहुत दुखी हुई। इसी बीच रक़ीब अपनी पुत्री को प्रसन्न करने के लिए दिल को अपने दुर्ग में ले गया। दिल और गैर दोनों को पश्चाताप हुआ और गैर ने राजकुमारी हुस्न को पत्र लिखा कि मैं ही दिल के पास गयी थी उसका कोई दोष नहीं है।

एक रात इश्क़ ने हिम्मत को एकान्त में बुलाया। कई विषयों पर बातचीत की। उसने सुअवसर पाकर दिल और अक़्ल की बात कही, तथा दिल व हुस्न के प्रेम की बात भी कही। इश्क इन बातों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ।

इश्क ने सेनापति मेहर को तन नगर भेजा। जब मेहर ने इश्क का संदेश सुनाया तो अक़्ल मेहर के साथ इश्क के पास आया। इश्क ने उसका बहुत आदर सत्कार किया।

राजकुमार दिल का विवाह राजकुमारी हुस्न के साथ सम्पन्न हुआ। वह सुख का जीवन व्यतीत करने लगा। एक दिन नज़र, हिम्मत और दिल उद्यान में आये और उन्हें अमृत का स्रोत दिखायी दिया। स्रोत के निकट एक पीर दृष्टिगोचर हुआ। दिल ने उस पीर के पैर छुए और पीर ने आशीर्वाद दिया। दिल के बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए और वह आनन्दपूर्वक जीवन-यापन करने लगा।

कथानक

सबरस यद्यपि गद्य रचना है किन्तु लेखक बीच-बीच में कविता भी लिखता गया है। इसके कथानक की विशेषता यह है कि इसका कथानक विस्तृत है किन्तु लेखक अपने प्रतिपाद्य से कहीं हटता नहीं है। इसमें मानवी भावों क' मानवीकरण किया गया है। मुल्ला वजही ने अपने गद्य ग्रन्थ में भी आध्यात्मिक ज्ञान को समग्र रूप से प्रस्तुत किया है। इन्होंने प्रेम के तीन प्रकार बताये हैं :—

"इश्क़ मजाज़ी गाज़ो तीन सूरत, आध्यात्मिक कूँ इस सूरतां का बयान करना ज़रूरत। अव्वल इश्क़ सलामती, दुय्यम इश्क हलाक़ती, सोयम इश्क सलामती। अमा इश्क़ सलामती वते सो अपना घर वते अपना दर, खुशी भाये सो कर।

दायम नज़र तले महबूब बहुत खूब। अताल इश्क़ हलाकती किसी की बहू बेटी यूं अपने घर में तलमलाती वो अपने घर में बैठी।···अताल इश्क मलामती कलावन्ती बज़ारी। यहाँ तो बहुतीच खारी, बहुतीच खारी, बहुतीच दुखारी।"[1]

मुल्ला वजही ने इस्लामी विचारधारा के अनुसार परमात्मा के रूप की चर्चा करते हुए कहा है :—

"सुनता है और कान नईं, बोलता है होर ज़बान नईं। भोत पाक, भोत लतीफ़ मूरत है।"[2]

वजही ने अपने गद्य ग्रन्थ सबरस में संसार की नश्वरता का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"दुनिया की बड़ाई को लगन चलेगी। यू घास की झोपड़ी बगैर आग धुएं सूं जलेगी।···दुनिया जूं दोपहर की छाँव—इस दुनिया कूं सर है न पाँव।"[3]

प्रेम का स्वरूप

वजही का विश्वास है कि जिस व्यक्ति में प्रेम उत्पन्न हो जाता है उसके लिए संसार में कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। प्रेमी संसार के समस्त पदार्थों से निरपेक्ष होकर जीवन यापन करता है। वजही ने वास्तविक और विशुद्ध प्रेम की रूप-रेखा इस प्रकार प्रस्तुत की है :—

"इश्क़ आज़िज, इश्क़ तवाना, इश्क़ दाना, इश्क़ दिवाना। इश्क़ अपने रंग में आप घुलता है।···के चाले कौन संभालते ? इश्क़ चन्दर, इश्क़ कमान, इश्क़ दीन, इश्क़ ईमान, इश्क़ आशिक़, इश्क सुलतान। इश्क़ ते रोशन ज़मीन, इश्क़ ने रोशन आसमान, इश्क़ ते आशिक़ मग़रूर, इश्क़ ते माशूक़ ने पकड़ी ज़हूर।···आशिक हो माशूक के मन का माया सो इश्क़। इन दोनों को धुंदलाय सो इश्क़।····इश्क़ में जितना दुक, आशिक़ कूँ उतना सुक। जाँ दो जीव होते हैं राज़ी, वाँ दिल की खिलती है बाज़ी। ···माशूक़ नावँ है, वले माशूक में बी तमाम आशिक़ की सिफ़त है। आशिक़ नावँ है, वले आशिक़ में बी तमाम माशूक़ की गत है। आशिक माशूक़ दो नाम, वले दोनों का एक काम। सब कूँ एक वजा सूँ घड़े, वले नावँ जुटा पड़े। इश्क एकीच है, जो दोनों जागा जलवा दिया है। कईं नाज को सूरत पकढ़्या, कईं नियाज़ किया

1. मुल्ला वजही—सबरस, पृ० 169।
2. वही, पृ० 68।
3. वही, पृ० 121।

है।'''इश्क निरहंकार, मुनज्ज़ा पाक।''''इश्क़ आलमगीर, अपै पादशाह, कधीं साहब कधीं गुमाम।"[1]

वजही ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जब तक जीव और ईश्वर, प्रेमी और प्रेम का द्वैत विद्यमान है तब तक साधना सफल नहीं हो सकती। द्वैत भाव को तिरोहित करने के लिए प्रेम ही समर्थ है—"वले मैं होर खुदा यू दो हुए। इस निहायत यकानगी सूँ यू बी दुई का मुक़ाम है। दुई तो वाँ लाज़िम नईं आती जाँ इश्क़ तमाम है। दुई दूर करना यू तो इश्क़ का ऐन काम है।"[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वजही का उद्देश्य केवल कहानी कहना नहीं था बल्कि दार्शनिक चिन्तन एवं मनन जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना था। इस ग्रन्थ में जितने रूपक हैं सभी सूफ़ी विचारधारा पर आधारित हैं। वास्तव में वजही ने सूफ़ी साधकों की पुरानी परिपाटी को अपनाया है अर्थात् लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम का प्रदर्शन 'सबरस' नामक ग्रन्थ के मुख्य पात्र दिल और हुस्न हैं किन्तु अक़्ल और इश्क़ नामक पात्र भी प्रमुख ही कहे जायेंगे। इसमें वजही ने अक्ल (बुद्धि) और इश्क (प्रेम) के संघर्ष को बड़े ढंग से चित्रित किया है। बुद्धि, हृदय को अपने वश में रखने का प्रयास करती है और इश्क (प्रेम) की पुत्री हुस्न (सौन्दर्य) है। अन्त में सूफ़ी साधक वजही ने प्रेम की विजय दिखायी है अर्थात् प्रेम कहता है बुद्धि तो मेरा भाई है और मैं उसे अपना मंत्री बनाऊँगा। बुद्धि का मंत्री वहम (भ्रम) है। भ्रम के कारण ही बुद्धि, प्रेम और सौन्दर्य की विरोधी बनती है। दिल (हृदय) का साथ नज़र (दृष्टि) और हिम्मत (साहस) देते हैं। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वजही ने सूफ़ी साधकों की मान्यताओं के अनुकूल ही रूपक चुने हैं और सूफ़ी दर्शन को बड़े आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है।

मुल्ला वजही की भाषा-शैली के अवलोकन से पता चलता है कि उसने अपने काव्य 'कुतुब मुश्तरी' की ही भाँति 'सबरस' नामक गद्य ग्रन्थ में भी शब्दों के चयन में अपने चातुर्य का प्रदर्शन किया है। उसने शब्दों का ऐसा प्रयोग किया है जिससे वर्ण मैत्री में अन्तर न आये और न ही प्रवाह माधुर्य में कोई अड़चन आये। उसने चेष्टा की है कि शब्द के साथ शब्द, वाक्यांश के साथ वाक्यांश और वाक्य के साथ वाक्य की शृंखला तैयार होती रहे—"मेरा बस होय तो इसे तोकूँ, मेरा बस होय तो इसे छूरियाँ मोकूँ, दो नीमा करूँ, कीम करूँ, बहुत सिर चड़ी है, धगड कूँ ले पड़ी है। बहुत आपस कूँ मुखती है, कुत्ते की खीर चुरौती है। अजहूँ भी जीव नहीं भाग्या, घमंड बहुत मीठा लाग्या। यो छिनाल खुदाते नहीं डरी, क्या बला करी। झगड़ा लानहार, दुदकारी, चोल होकर हात में ते झोटें मारी। इताल में, वाई गिरूं के कुवा में, कती थी सो हुवा।" उर्दू साहित्य सर्मज्ञ डा० राम बाबू सक्सेना ने वजही

1. मुल्ला वजही—सबरस, पृ० 78।
2. वही, पृ० 60।

की भाषा के सम्बन्ध में अपना मत अभिव्यक्त किया है—"भाषा बहुत साफ और सादी है और कहानी में प्रवाह पाया जाता है।"[1] सबरस को तो कहावतों और मुहावरों का कोष कहा जा सकता है। यही कारण है उसमें सरसता, सहजता, सरलता और प्रांजलता खूब है। हम यह भी कह सकते हैं कि भाषा की दृष्टि से सबरस एक प्रौढ़ रचना है। इसमें भारतीय पौराणिक नामों का उल्लेख यथा स्थान हुआ है।

सबरस का महत्व अन्य कारणों के साथ-साथ वजही की निजी शैली, पांडित्य और बहुज्ञता के कारण भी है। उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान और कवि रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी ने वजही की शैली के सम्बन्ध में लिखा है—'इसकी शैली अनुप्रास युक्त है और भाषा दक्खिनी है।'[2] वजही ने सबरस में केवल वस्तु, घटना और दृश्य का ही वर्णन नहीं किया है प्रत्युत उनका जीता जागता चित्र भी प्रस्तुत किया है। सफल लेखक और कवि वजही ने अपनी प्रत्येक बात का उदाहरण, दृष्टान्त एवं रूपक तथा उपमा आदि से पुष्ट करने का सफल प्रयास किया है :—

"खुश गुफ़्तार, वो खुश गुफ़्तार, तो दीदां का सिंगार, जीव का आधार, अलम का मदार, अजब खूबी का सूर, महबूबी का नूर, छन्दभरी बाली, लताफ़त के फूल की डाली, नाजाँ में कारी, ग़मजियाँ कूँ उपजान हारी, बाताँ जैसियाँ निबाताँ, फल की फकुड़ियाँ जैसे हाताँ, किरनाँ जैने बाल, आफ़ताब जैसा जमाल, कमर देख शेर जा शरम हुज़ूर, उसकी चाली में काडी हत्ती की चाल में कसूर···।"

वजही ने गद्य लिखते समय छोटे-छोटे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग किया है जिससे भाषा में सजीवता और आकर्षण आ गया है। लेखक ने पाठक को उपदेश देते हुए कहा है—"सबूरी अव्वल कडवी लगती है, वले भोत मीठी होती आखिर। बीज ते झाड, ड ते डाली, डाली ते पात, पात के फूल, फूल ते फल आता है हात।" वजही ने यह भी कहा है कि कष्ट के बाद सुख मिलता है—"होर ज़फ़ा देखे वगैर नहीं होता नफ़ा, दुख के पीछे सुख···जहाँ बन्द है वहाँ आज़ादी, हर ग़म के पीछे शादी।"

लेखक ने सबरस नामक पुस्तक में फारसी और हिन्दी के अनेक पदों को यथा-स्थान प्रयुक्त किया है। हिन्दी के पदों के साथ उन्होंने बहुत से हिन्दी कवियों और साहित्यकारों का उल्लेख किया है और इसी प्रकार फारसी के पदों के साथ फरसी कवियों और साहित्यकारों का उल्लेख किया है। उन्होंने अमीर खुसरो के एक दोहे का भी उल्लेख किया है :—

पंखा होकर मैं डुली साती तेरा चाव।
मुज जलती जनम गया तेरे लेखन बाव॥

---

1. राम बाबू सक्सेना—तारीखे अदब उर्दू, पृ० 62।
2. रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी—उर्दू भाषा और साहित्य, पृ० 84।

अन्य दोहे इस प्रकार हैं :—

जो लंघन तो सहस बल जो भोजन तो मास ।
ये सीना खंक्या क्यूं कहे सत-सत तिनका घास ।।
सींव सत न छाड़िये सत छोड़े पत जाय ।
लक्ष्मी सत की दास है पग लागी घर जाय ।।
जो मैं कही सो उन कहा प्रीत है उस घात ।
दो मन का एक मन भया अब दो की एक ही बात ।।
सात सहेली एक पिव चौंधर पिव पिव होय ।
जिस पर पिव का प्यार है सो धन विरली होय ।।

मुल्ला वजही ने स्त्रियों और पुरुषों के अंग-प्रत्यंग की तुलना कमल पुष्प की पंखुड़ियों से की है तथा कई स्थानों पर हंस, चकोर आदि की उपमानों के रूप में प्रयोग किया है। एक दोहे में उसने युवती की गति की तुलना हंस की चाल से की है :—

लाले दिए सीने जो गुल फुल फुल के तेरे गाल पर ।
दरिया में ते हंस आएगा आशिक़ हो तेरी चाल पर ।।

दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री हाशमी ने लिखा है—"यह किताब न सिर्फ तसव्वुफ के लिहाज से काबिल-ए-तारीफ़ है बल्कि अदबी (साहित्यिक) हैसियत से भी नायाब (दुर्लभ) है।"[1] डा० ख्वाजा अहमद फारूकी का यह कथन उचित ही है—"इस काल का एक महान साहित्यकार मुल्ला वजही है। उसकी मसनवी कुतुब मुश्तरी और सूफ़ीवाद पर उसकी प्रतीकात्मक गद्य कृति सबरस दक्षिण के उर्दू साहित्य के रत्न हैं।"[2]

मौलाना अब्दुल्ला

मौलाना अब्दुल्ला की 'अहकामुल सलाबात' नामक गद्य रचना मिलती है। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1032 अर्थात् 1620 ई० है। यह वास्तव में फारसी से दक्खिनी अनुवाद है। इस ग्रन्थ में लेखक ने नमाज़ के महत्व का प्रतिपादन किया है। यथा—

"अव्वल क़लमा तय्यब, पहला क़लमा बोलता हूं मैं पाकी का कायकी पाकी ईमान की कुफरतो सरकतो 'लाइला इल्लाह' नहीं कोई मअबूद बरहक़ 'इल्लाह' मगर अल्लाह तआला मअबूद बरहक़ है। 'मुहम्मदुर्रसुल्लाह' मुहम्मद रसूल खुदा के बरहक़ हैं। दोयम क़लमा शहादत दूसरा क़लमा बोलता हूं। मैं शहादत का यानी गवाही देता हूं इस खुदा-ए-तआला की एक पनी यह अशहद और गवाही देता हूं मैं इन्नल्लाह की नहीं कोई मअबूद बरहक़ ।...."

---

1. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 166।
2. डा० नगेन्द्र—भारतीय वाङ्मय, पृ० 501।

बात करने सूं नमाज़ जाता है नमाज़ में आदमियाँ की मिशाल दुआ मँगने नमाज़ जाता है ही वाह केने सूं नमाज़ जाता है। दर्द सूं या मुसीबत सूं नमाज़ जाता है। रोने सूं पा दुनिया की सबक सूं नमाज़ जाता है नमाज़ में किसी मौत की खबर सुनकर 'कालू इन्नल्लाह व इन्ना इलयहे राजऊन, बोलती सूं नमाज़ जाता है।...

रूह क़ब्ज़ हो उसी वक़्त अस्कयाँ अँखियाँ मोचना होर पाँव दराज़ करना होर बात दराज़ करना होर दोनों पहलू की तरफ़ व लेकिन सीने पर ना रखना होर उसी की थोड़ी होर सर कूँ मिलाकर बन्द ना उसे तबरख़ुदाँ बोलते हैं। यो सब सिफत है। होर मरनी ते अव्वल उसकी सर कूँ कुत्ब के करना तरफ सुलाना होर मूये बाद अज़ उसी गुल दुनिया उस तरीक़ सूं।"

लेखक ने इसमें केवल नमाज की बातों को ही नहीं लिया है अपितु हम 'फ़िक़ा हनफी'[1] के नाम से भी पुकार सकते हैं क्योंकि इसमें बहुत से इस्लामी नियमों का उल्लेख हुआ है।

अब्दुस्समद

अब्दुस्समद की रचना 'तफसीर वहाबी' है। ये धर्मोपदेशक थे और इनकी मृत्यु 1651 ई० में हुई।[2] लेखक स्पष्ट शब्दों में स्वीकारा है कि यह ग्रंथ अरबी और फारसी में था लेकिन मैंने इसे दक्खिनी में रूपान्तरित किया है जिससे सभी पुरुष और स्त्री सरलता पूर्वक इसे समझ सकें।[3] इसमें धार्मिक आचारों एवं विचारों का उल्लेख हुआ है और उन लोगों को भी ब्याज लेते हैं और देते हैं उपदेश दिया है—

"अल्ला तअला फरमाता है जो लोग सूद खाये हैं, क़यामत के रोज़ ऐसे उठेंगे जैसे कि उनको शैतान लग्या है और जो लोग सूद को और सौदागिरी को बराबर समझे हैं उनको भी अजाब ऐसा सख्त हो गया और हलाल किया है। अल्ला तअला

---

1. 'फ़िक़ा' मुसलमानों में एक नियम का नाम है जिसके द्वारा समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य स्वयं को उपयुक्त बना सके। बहुत सी बातें जीवन में आती हैं उनका उल्लेख हदीसी में नहीं आ पाया है। उन बातों का समसाम यक परिस्थिति के अनुसार अध्ययन करके नियम बनाये जाते हैं। उदाहरणार्थ तस्वीर बनवाना इस्लाम में हराम है किन्तु आज पासपोर्ट के लिए तस्वीर आवश्यक है अतः फिका के आधार पर तस्वीर खिचवाई जा सकती है।
2. श्रीराम शर्मा—दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० 509
3. "भोत तफसीराँ अरबी और फारसी है लेकिन दखनी तफ़सीर शायद कम है, बल्कि नहीं है। इस वास्ते सब मर्दां और औरताँ को कुराने मजीद के मानी मालूम होकर आलम को फायदा होने के वास्ते दखनी ज़बान में बनाया हूँ।"

अब्दुस्समद—तफरीर वहाबी

तिजारत को और हराम किया है सूद को और जो लोग यह नसीहत सुने हैं सूद खाना मौक़ूफ़ करे और यह बात सुने के अव्वल सूद खाये हैं अल्ला तअला माफ करेगा और उनका काम बेहतर करेगा और जो शख्स के यह हुक्क सुनकर फिर सूद लेगा ओ हमेशा दोज़ख का रहने वाला हो गया।"

(जो लोग ब्याज लेते और देते हैं वे दोनों पापी हैं एवं उन्हें केवल नर्क में ही स्थान मिलेगा।)

मीराँ जी हसन खुदानुमा

मीराँ जी हसन खुदानुमा सुलतान अब्दुल्लाह के शासनकाल के कवि और लेखक हैं। इन्हें सरकारी काम के लिए बीजापुर भेजा गया था। वहाँ पर इनकी भेंट हज़रत अमीनुद्दीन आला (अली) से हुई। तत्पश्चात् उनका शिष्यत्व स्वीकार करके उनके उत्तराधिकारी बन गये। बीजापुर से हैदराबाद लौटकर ये भगवद् भक्ति में लीन हो गये। इनका देहान्त हिजरी सन् 1078 (1666 ई०) में हुआ।[1] इनकी हैदराबाद में समाधि है जहाँ पर लोग दर्शनार्थ जाते हैं।

खुदानुमा ने कवि के साथ-साथ गद्य की रचनाएँ भी की हैं। इनकी रचनाओं में 'शहर तमहीद हमदानी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका वर्ण्य विषय तसव्वुफ है। गद्य का एक नमूना द्रष्टव्य है :—

"अल्ला बड़ा साहब है, उसकूँ बहुत सराना। होर बहुत नवाज़ना कि उसके खुदाई से दोनों आलम पैदा करने में अक़्ल ध्यान अँखियाँ हैरान हैं, खुदा दायम कायम है उसकी बन्दगी का महर सब पर है। होर खुदा अकेला है। पैदा करता है। होर मारता है। सब कूँ न अपने हाथों करता है। न दूसरे फरमाता है।"[2]

इस्लामी मान्यताओं को लेखक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

"खुदा कह्या मुहम्मद जे कुच फरमाता है। सो तुमें करूँ। भेज्या हूँ तुमना पर पन्द कहने ऐ दोस्त तुमें कुरान के हर्फ़ाँ काले रस्ते हैं, अजले काग़ज़ाँ पर सो ज़ाहिर कुरान। यानी खुदा कियाँ बाताँ। उस काले सतराँ में नूर तू ना देखें इसे मखलूक कहते हैं।"[3]

लेखक ने पीर (गुरु) और हज़रत मुहम्मद साहब तथा अल्लाह के सम्बन्ध में लिखा है एवं हज़रत मुहम्मद साहब को परमात्मा का प्यारा एवं मित्र घोषित किया

---

1. मौलाना अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी—औलिया-ए-दकन, पृ० 900
2. मीराँ जी हसन खुदानुमा—शहर तमहीद हमदानी-पांडुलिपि, सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद।
3. वही

है। इसके अतिरिक्त हज़रत मुहम्मद साहब से और अल्लाह के प्रेम के महत्व को प्रदर्शित किया है :—

"अगर इश्क खालिक़ नदारी बारे इश्क मखलूके मह्या कुन उसका मअना खुदा की पछानत क़ाबिल नहीं तो अव्वल अपनी पछानत कर, सिवाय दात यूँ है कि आफ-ताब का ज़ात नवारा निहारा है, होर उसका उजाला जालनहारा है। यानी दोस्त सो नवाज़ नहाया होर खूबियाँ व नह्यारा वले उसका मुहब्बत उसे दगदाता है यानी माशूक का मुहब्बत आशिकाँ को गालता है। उसके फिराक में ऐ मुक़ाम ऐसा है जो आशिक माशूक बाज जी न सके। बाज देखे माशूक का सूरत आशिक कहाँ अँखियाँ कूँ जालता है। होर अपना रंग करता है।"[1]

शाह राजू

शाह राजू अपने समय के प्रसिद्ध सूफी साधक थे। मौलाना मुहम्मद अब्दुल जब्बार मलकापुरी के अनुसार सैयद शाह राजू कुतुबशाही वंश के अन्तिम शासक तानाशाह के गुरु थे और इनकी मृत्यु सन् 1682 ई० में हुई।[2] शाह राजू स्वयं विद्वान् एवं लेखक थे और इनके शिष्यों में तबई और आबिद शाह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रसिद्ध कवि तबई ने अपनी रचना 'बहराम व गुलन्दाम' में शाह राजू की प्रशंसा निम्नलिखित शब्दों में की है :—

वली तूँ बड़ा है ककर शाह राजू,
चल आया है शह तेरे घर शाह राजू।
फलक पर तूँ उड़ता है शहबाज नमने,
करामत की शाह उपर शाह राजू।
खबर तेरी मालूम नई बेखबर कूँ,
खबरदार जाने खबर शाह राजू।
तूँ मखदूम सैयद हुसेनी की खन का,
बहुत बेबदल है बहर शाह राजू।
दकन का किया बादशाहअबुलहसन कूँ,
तेरा तख्त देकर छतर शाह राजू।
खड़ा हो कि खिदमत मने तेरी सूरज,
उड़ता किरन की चँवर शाह राजू।
किसी का नहीं ऐब चिनता तूँ हरगिज,
बड़ा तुज में यू है हुनर शास राजू।

---

1. मीराँ जी हसन खुदानुमा — शहर तमहीद हमदानी—पांडुलिपि, सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद
2. मौलाना मुहम्मद अब्दुल जब्बार मलकापुरी — तज़किरा औलिया-ए-दकन, पृ० 141

खुदा पास ऊँचा हात करता है तबई,
हुआ तुजकूँ शाम व सहर शाह राजू ।

इससे स्पष्ट होता है कि शाह राजू सैयद मुहम्मद हुसेनी के वंशजों में से थे एवं इनका बहुत हाथ अब्दुल हसन ताना शाह को गोलकुण्डा की दद्दी पर बैठाने में था । अब्दुल हसन ताना शाह, शाह राजू का शिष्य था ।

शाह राजू कुतुब शाही शासन काल के अन्तिम दिनों में अत्यन्त प्रभावशाली एवं लोकप्रिय व्यक्तियों में से थे । हैदराबाद में इनके मजार पर बने हुए आलीशान गुम्बद और प्रतिवर्ष मनाया जाने वाला उर्स शाह राजू के व्यक्तित्व और लोकप्रियता का परिचायक कहा जा सकता है ।

शाह राजू कवि के साथ-साथ गद्य लेखक भी थे । इनकी पद्य रचनाएँ (1) मर्सिया शाह राजू और (2) सुहागिन नामा है । इनकी प्रसिद्ध गद्य रचना 'रिसाला हज़रत शाह राजू' है ।

'रिसाला हज़रत शाह राजू' नामक पुस्तक सोलह पृष्ठों की है । इसका वर्ण्य विषय तसव्वुफ है और प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया है । प्रस्तुत रिसाले का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :—

"जान ऐ अमीन अवन कुछ न था । आसमान था न ज़मीन, न अर्श, न कुर्सी, न चाँद, न तारे न कुछ था । हौर ज़ात हक़ ताला अपने में अपन था । इस हद तलक कि सिफ्तों का ज़ूहूर न था । न अपनी खबर रखता था न गैर की ।

सवाल— किस वास्ते खबर नहीं रखता था ?

जवाब—कि खबर रखना सिफतों सूं तालुक़ रखता है और अपने ज़ान सूं अपन ऐसा मशगूल था, जो किसी सिफ़्तां का गुन्जाइश न था । जिस वक़्त सिफ्तां का गुन्जाइश न था, तो खबर रखना भी मुमकिन नहीं ।

× × ×

सवाल—गैब हुवीय्यत के माने क्या ?

जवाब—अवल कुछ न था हौर अपने में आप था । जिस वक़्त सुबहान ताला करना चाहा हौर गैब ने हुज़ूरियत का इरादा किया, अवल आप में अपीं जाना कि 'मैं' ।

सवाल—इस मतंबा का नावँ क्या ?

जवाब—इस मतंबा का नावँ 'वहदत' बोलते हैं ।

सवाल—यू दो निस्बत है सो कौन कौन ?

जवाब - एक 'अहदियत' दूसरा 'वाहिदियत' ।

सवाल—अहदियत सो क्या ? वाहिदियत सो क्या ?

जवाब—जिस एतबार जो खालिस है, न 'मै' का च इल्म है—इस निस्बत का नावँ अहदियत है । जिस एतबार चारों एतबार साबित होते हैं, उस निस्बत का नावँ वाहिदियत है ।

भाषा-शैली सरस, प्रांजल है। लेखक ने समसामयिक लोकोक्तियों और मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

शाह आबिद

शाह आबिद का मूलनाम नवाबुद्दीन था। ये कुतुब शाही शासन काल के अन्तिम दिनों में जीवित थे। आपको शाह राजू चिश्ती का शिष्यत्व प्राप्त था।[1] ये अपने समय के महान विचारक और विद्वान् थे। सूफी सिद्धान्तों और मुसलमानों के धार्मिक आचरण विषय में आप प्रमाण माने जाते थे। इनकी मृत्यु 1670 ई० में हुई।[2]

सूफी साधक शाह आबिद कवि और गद्यकार थे। इनकी चार गद्य रचनाएं मिलती हैं जो इस प्रकार हैं :—

1. गुलजारुस्सालिकीन[3]
2. मुआलिज़ात ख्वाज़ा बन्दा नवाज[4]
3. कुन्ज़ुल मोमनीन[5]
4. मखज़नुस्सालिकीन[6]

1. गुलज़ारुस्सालिकीन

यह छब्बीस पृष्ठों की पुस्तिका है। इस पुस्तक का आरम्भ विद्वान लेखक ने ईश-स्तुति से किया है और तद्पश्चात् हज़रत मुहम्मद साहब का गुणगान और फिर शाह आबिद ने अपने पूज्य गुरू शाह राजू की प्रशंसा की है। इसके उपरान्त लेखक ने अपना नाम और पुस्तक का शीर्षक अंकित किया है :—

"ई किताब गुलजारुस्सालिकीन अज़ तसनीफ़ फकीर हकीर आबिद शाह अज़ फकीराने खाकसार हज़रत शाह राजू।"[7]

पुस्तक के आरम्भ में ईश-वन्दना निम्नांकित शब्दों में है :—

"अव्वल सना सिफत करना अल्ला ताला का कि वो कादिर है तमाम चीज उपर कुदरत रखता है और हर शै में हाज़िर और नाजिर है जैसा कि शकर मिठाई और फूल में बास उसी तरह सब में सनअतगरी रखता है।

---

1. गुलजारुस्सालिकीन, पांडुलिपि, क्रम संख्या 801, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद।
2. श्रीराम शर्मा—दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० 590
3. पांडुलिपि, क्रम संख्या 801, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद।
4. पांडुलिपि, क्रम संख्या 801, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद।
5. पांडुलिपि, क्रम संख्या 818, 10003 (तसव्वुफ), राजकीय पुस्तकालय, हैदराबाद।
6. पांडुलिपि, क्रम संख्या 1900 (तसव्वुफ), राजकीय पुस्तकालय, हैदराबाद।
7. गुलजारुस्सालिकीन, पाण्डुलिपि, पृ० 1

देख तूं आदम क्या सनअत धरिया, उसका साना है खुदा और किबरिया हौर तमाम शै पर उसका जात बालातर है।"[1]

2. मुआलिजात ख्वाजा बन्दा नवाज

यह सोलह पृष्ठों की पुस्तिका है। यह पुस्तक भी 'गुलजारुस्सालिकीन' के साथ संकलित है। इस पुस्तक का वर्ण्य विषय औषधि शास्त्र है। इसमें विभिन्न प्रकार की बीमारियों के साथ औषधियों का उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है कि इस समय तक दक्खिनी गद्य का प्रयोग विभिन्न व्यावहारिक विषयों के लिए भी होने लगा था।

पुस्तक के आरम्भ में लेखक ने लिखा है—"जो तालिब पर कुछ आज़ार आया, तो अपना इलाज अपने मन में करना। बाहर की चीज़ कुछ लेना दरकार नहीं है। हौर आजमूदा है सही इलाज।"[2] (जिस व्यक्ति को कोई बीमारी हो जाये उसे अपना इलाज स्वयं करना चाहिए। बाहर के वैद्यों अथवा हकीमों पर निर्भर रहना ठीक नहीं।)

पुस्तक के अन्त में है—"ख्वाजा बन्दा नवाज़ के नाम से फातिहा देकर बाद अज़ दुआ देना और तमाम सात सौ मर्ज़ों का फायदा है और गोलियाँ बनाते वक़्त यह आयत पढ़ना—वक़्त शुरू करने के यह नुस्खा दो 'रकअत नमाज़' पढ़कर हर रकअत 'सूर-ए-इखलास' यक बार पढ़ना। नुस्खा पीने के वक़्त वज़ू से रहना।"[3]

3. कुन्जुल मोमनीन

यह वृहद ग्रन्थ है। इसमें कुल 212 पृष्ठ हैं। श्री हाशमी के मतानुसार इसकी रचना हिजरी सन् 1090 (1678 ई०) के पश्चात हुई।[4] विद्वान लेखक ने ग्रन्थ को 19 अध्यायों में विभाजित किया है :—

प्रथम अध्याय	—	ईमान का वर्णन।
द्वितीय अध्याय	—	पैगम्बरों और महापुरुषों का वर्णन।
तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय	—	इस्लाम के अनुसार बच्चों के संस्कारों का वर्णन
पंचम अध्याय	—	हदीस का महत्व।
षष्ठ अध्याय	—	कुरआन शरीफ का महत्व।

1. गुलजारुस्सालिकीन, पाण्डुलिपि, पृ० 1, क्रम संख्या 801, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद
2. मुआलिजात ख्वाजा बन्दा नवाज़—पाण्डुलिपि, पृ० 1, क्रम संख्या 801, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद
3. वही, पृ० 16
4. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 171

सप्तम अध्याय	—	वज़ू और गुस्ल का वर्णन ।
अष्टम एवं नवम अध्याय	—	रोजा और हज़ का वर्णन ।
दशम अध्याय	—	ज़कात का महत्व ।
एकादश, द्वादश अध्याय एवं त्रयोदश	—	जबीहा और कुरबानी का महत्व और उसकी विधियाँ
चतुर्दश एवं पंचदश अध्याय	—	रोगी की दशा—रोग के समय ध्यान रखने वाली बातें एवं मृत्यु के पश्चात् किये जाने वाले संस्कारों का वर्णन ।
षोडश, सप्तदश एवं अष्टादश अध्याय	—	सम्पत्ति रखने के सिद्धान्त, साक्षी, क्रय-विक्रय और व्याज लेने आदि का वर्णन है तथा शराब पीने के दोष, अच्छे बुरे कामों का विवेचन है।
नवदश अध्याय	—	छोटे और बड़े पापों का उल्लेख है ।

इस ग्रन्थ के कुछ वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

"फसल अव्वल ईमान मुफसिल (उदाहरण) ईमान लाया हूँ मैं उपर अल्ला ताला के वो एक है । जैसा कि (उदाहरण) अल्ला ताला बोले कि ऐ मुहम्मद, अल्ला ताला एक है, पर उसका कोई शरीक नई । दलील (उदाहरण) पाने वो किसी के पेट से पैदा नहीं और उसके पेट से भी कोई पैदा नहीं हुआ ।"

"फसल दोयम ईमान मुजमिल । और मुजमिल वह है जैसा कि (उदाहरण) यानी ईमान लाया हूँ अल्ला ताला के । याने अपने इस्माँ से है और उसके तमाम इस्माँ बरहक है और कबूल किया है तमाम उसके हुक्माँ कूँ । और बोलता हूँ मैं अपने सिदक दिल सूँ ।"

"इसका माना यह है कि तमाम ज़मीन के झाड़ों के क़लम बनाना होर सात दरिया का पानी स्याही बनाना होर सात आसमान का काग़ज़ बना लिखाना तो बी उसका सिफ़त नइ होय इस वास्ते मुख्तसर कहा हूँ कि मेरी ज़बान से कहा हो सकेगा । पन तमाम सिफताँ इसी सात सिफतों से, अक़्ल पछानना ।"

लेखक ने भाषा के सम्बन्ध में स्वयं कहा है—"इस किताब कू दखनी है कि भाका नको समजो । इसमें बड़े-बड़े मसाला जमा करके लगया हूँ ।"

4. मखज़नुस्सालिकीन

प्राप्त हस्तलिखित प्रति में कुल 65 पृष्ठ हैं । पुस्तक आरम्भ शाह राजू के प्रशंसा से हुआ है तदनन्तर पुस्तक का नाम और लेखक का नाम है—"ऐ सालिक, इस रिसाला का नाम 'मखजनुस्सालिकीन' है और तसनीफ फकीर हकीराने हकीर आबिद शाह हुसेनी अज़ फकीराने हज़रत शाह राजू हुसेनी ।" इसके पश्चात् कुछ शेरों में परमात्मा की स्तुति है । ग्रन्थ का वर्ण्य विषय तसव्वुफ है ।

लेखक ने पहले वर्ण्य विषय और उसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है ।

तदनन्तर प्रश्नोत्तर शैली में उन बातों को समझाने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ —जिन पाँच तत्वों से सृष्टि का निर्माण हुआ है, वे पाँच तत्व हमारे शरीर में भी हैं। प्रत्येक तत्व के सात गुण हैं और हमारे शरीर में पैंतीस गुण हैं। लेखक के शब्दों में प्रस्तुत है :—

सवाल—ऐ सालिक, अगर कोई पूछे कि तन कूँ कितनी चीज से पैदा किया ?

जवाब—जपाब दें पाँच चीजों से—माटी, पानी, आग हौर बारा हौर खाली से। और यह पाँच चीज़ ते पैंतीस गुन हैं।

अव्वल माटी के गुन सात हैं—हड्डी हौर रंग हौर गोश्त हौर चमड़ा हौर बाल, नाखून हौर मैल।

दूसरा पानी—इसका सात गुन हैं—थूक हौर भेजा हौर पसीना, पेशाब, मनी हौर आँसू हौर रेंट।

तीसरा आग—इसका भी सात गुन है—भूक हौर प्यास और नींद हौर सुस्ती हौर हजम हौर तप।

चौथा वायु—इसका भी सात गुन है—हिलना, चलना, काँपना, समजना, फूंकना, जम्हाई, अँगड़ाई।

पाँचवाँ खाली—इसका भी सात गुन है—मंगतापन, शहवत हौर हिस्र, मेह, गुस्सा, वासना हौर डर।"

विद्वान लेखक ने सृष्टि के रूप में शरीर को देखा है :—

"पलक मारते सो बिजली, रोते सो बरसात हौर गडगडाहट सो हँसना हौर पुकारना। पहला मौसम बहार यानी बचपना, दूसरा धूप-काला यानी जवानी, तीसरा जड काना यानी ऊपर की उम्र, चौथा बरसात यानी बुढ़ापा जंगल के झाड़ सो बदन के बाल, हौर चरिन्दे परिन्दे सो जुवाँ और पिस्सुवाँ और पहाड़ाँ इस तन में सो चार सो चालीस हाड़ाँ हैं। यही सब छोटे बड़े पहाडाँ हैं। चाँद सूरज सो दोनों आँख्याँ हौर सात सितारे सो दिल कलेजा वगैरह है।"

लेखक ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति विश्वात्मा का जीता जागता प्रतिरूप है जिसमें सृष्टि की प्रत्येक वस्तु विद्यमान है।

भाषा, सरस, सरल, प्रांजल है। इसमें जनसाधारण की दक्खिनी को प्रश्रय दिया गया है। विचारों को सीधे ढङ्ग से व्यक्त किया है। दिन प्रतिदिन के व्यवहार में आने वाले मुहावरों और लोकोक्तियों को उपयुक्त स्थान मिला है।

शाह बुरहानुद्दीन क़ादरी

शाह बुरहानुद्दीन क़ादरी 'राजे इलाही' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। ये आलमगीर औरंग़जेब के शासन-काल में थे और इन्हें राजदरबार से मासिक वृत्ति मिलती थी। कहा जाता है कि इन्होंने औरंग़जेब से प्रार्थना की थी कि उनके देहान्त

के बाद उनके परिवार को किसी प्रकार की राजकीय वृत्ति न दी जाये। इनका देहान्त 1673 ई० में हुआ।

शाह बुरहानुद्दीन क़ादरी की केवल एक गद्य रचना 'रिसाला-ए-वजूदिया' प्राप्त है। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट होता है कि वह पुस्तक तसव्वुफ से सम्बन्धित है और इसमें विद्वान लेखक ने सूफी साधना-सिद्धान्तों को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। उदाहरण :—

"ऐ आरिफ बात हक़ीक़त कहे तो क्या मानी इस अँधारे में वाजिब और मुमकिन दोनों दिसते हैं। उस अँधारे में जपन शूरता। हो आरिफ़ुल वजूद इस अँधारे में कौन देखता सो दीगर मुक़ीम उम्मीद होर आरिफ़ दोनों पर शाहिद सो अपना रूह है। इस बात में हज़रत शाह बुरहान साहब फरमाये हैं राह हक़ीक़त रूह सूं ताल्लुक दिल सेती कित कू च आशिक पर पो हाल सजावार कहते न आवे बूज। जिक्र रूही कहे तो क्या यानी जो अपने आज़ाँ हैं सो सब खुदा के च जानना होर उसते जो कुछ फेल होते हैं सो सब खुदा के जानना। यूं आशिक कूं अपस खुदा में गँवाता है होर मैं पने सूं पाक होता है।"

इससे स्पष्ट होता है कि लेखक एक सूफी साधक है और इसने अपने विचार समसामयिक दक्खिनी गद्य में व्यक्त किये हैं। इस पुस्तक का रचना काल अज्ञात है। यह एक धार्मिक ग्रन्थ है।

मुहम्मद शरीफ

मुहम्मद शरीफ का जीवन वृत्त अद्यावधि अज्ञात है। शरीफ की एक गद्य कृति 'गंज मख्फी' के नाम से प्राप्त है। इसे लेखक ने 1700 ई० में समाप्त किया। लेखक ने पुस्तक का नाम 'गंज मख्फी' (गुप्त खजाना) रखा है जिसका तात्पर्य है कि भगवद् भक्ति एक छुपा हुआ कोष है। इस रचना से स्पष्ट होता है कि लेखक सूफी है। इसमें कई सूफी साधकों का उल्लेख भी हुआ है। एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें हज़रत मुहम्मद साहब द्वारा फकीर शब्द की मार्मिक व्याख्या दी गई है :—

"रसूलुल्लाह फरमाते हैं कि फ़कीरी मेरी बुजुर्गी है, नक़ल है कि एक रोज़ हजरत रसूलुल्लाह नमाज़ गुज़ार कर पीटे मुबारक क़िबला तरफ कर बैठे, याराँ पूछे कि या रसुलुल्लाह असल फ़कीर क्या है? रसूलुल्लाह फरमाये कि असल फकीरी करामत है, जाती करामताँ ने है। याराँ पूछा दरवेश क्या है? रसूलुल्लाह फरमाये कि दरवेश खजाना है, अल्ला ताला के खजाने ने भी। याराँ पूछे कि या रसूलुल्लाह फ़कीरी कित्ती खसलत है? रसूलुल्लाह फरमाये कि खामोशी फ़कीरी कूँ ग़नीमत है होर खाना-पीना रिज़्क अल्लाह ताला कने तलब ना करना जो कुछ हलाल बजे का रिज़्क पोचाता है, तो ओ रिज़्कखाना होर पीना, होर ख़ुदा-ए-ताला का याद हर वक़्त अछना, सारा दिन रोजा रखना, सारी रात इबादत करना अगर फाका पेश आया तो खुशहाल होना होर किसी के आगे ना बोलना।"

भाषा सरल व सरस है। ग्रन्थ धार्मिक है।

मीरां याकूब

मीरां याकूब एक सूफी साधक थे और शाह सैयद मीरां हुसेनी खुदानुमा चिश्ती के शिष्य और उत्तराधिकारी थे। सैयद मीरां हुसेनी के पुत्र सैयद अमीनुद्दीन की प्रेरणा से मीरां याकूब ने 'शुमाअल अत्तकिया' नामक पुस्तक की रचना की। इस विषय में यह प्रमाण द्रष्टव्य है :—

"शाह अमीनुद्दीन आला सानी अपनी हयात के वक़्त में मुंजे बशारत किये यूं शुमाअल अतक़िया किताब कूं हिन्दी ज़बान में लियावी ता हर किसी कूं समझा जावी उस वक़्त मुंजे बया नहीं ताकि यक हज़ार सत्तर पर आठो साल कूं रहलत किए पर उनके भाजे आरिफ़ हक़ रसीदी आरफ़ूरेकी नूर दीदी मुस्तफा की कलेजो होर मुर्तज़ा के तीन शाह मीरां इब्न सैयद हुसेन सलमा अल्लाह ताला की खिलाफत के ज़माने में किताब लिखने का शुरू किया जो कुछ मुश्किल आता है सो पीर की मदद सूं आसान लिखा जाता था।"[1]

यह एक विशालकाय ग्रन्थ है। लेखक ने उन पुस्तकों की सूची भी दी है जिनको उसने उपजीव्य के रूप में अपनाया है। संदर्भ ग्रन्थों में पन्द्रह पुस्तकें तफसीर और हदीस की हैं, नौ फ़िक़ा, बीस अन्य पुस्तकें हैं। पुस्तक को चार खण्डों और नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है। इनके शीर्षक तोबा (प्रायश्चित), अमल हमीदा (पवित्रता का पालन), हिदायत व इरशाद (गुरू दीक्षा), मुअज्जा व करामात (चमत्कार), हिकमत (आयुर्वेद), बैअत (पीर के हाथों मुरीद होना), दर हुक्म मुरीद (गुरु के आदेश मानना), दर आदाब मुरीद (गुरु का आदर करना), हुक्म नमाज़ (प्रार्थना का आदेश), उल्मा-ए-नेक (महापुरुष) आदि हैं।

पुस्तक का रचना-काल हिजरी सन् 1080 है।[2] इसका मूल स्वर तसव्वुफ है। उदाहरण—

"शेख अहमद अरबी फरमाते हैं कि पीर खुदा बख्शिश, सो मर्दाना होना जो अदा बाज कैसे चीज़ तरफ मूं न फिरा दी होर मौजूदात कूं मअदूम कर जियाने यानी जे कुछ चीज ओ तो आलम ही सो नीचा कर यो छप होर भोत ऊँची हिम्मत का होना जो होर दुनिया के तमाम क़ब्र होर मुरादाँ अगर आवे देवी तो उस तरह रज़ई ना करे तो माजागुल बसर व मातगा के सिफ़त पावी होर हमेशा ज़ाहिर का तजरीद होर बातिन का तफरीद अछी होर भोत बार बरपर अछी जो खुदा के बन्दी उस हेती बचक कर किनारी न होये अगर किसी मुरीद थी। कुछ सहू होर खता हो कराबी तो अफ़ू करी होर ज नसीहत।"

---

1. शुमाअल अतकिया, पाण्डुलिपि, पृ० 15, क्रम संख्या 663, राजकीय पुस्तकालय, हैदराबाद।
2. हकीम सैयद शम्सुल्लाह क़ादरी—उर्दू-ए-क़दीम, पृ० 56

पूर्वोक्त गद्यांश से स्पष्ट है कि इसमें चमत्कारों का विस्तार से वर्णन है। भाषा सरल, सहज व सुगम है।

शाह सुलतान

शाह सुलतान एक सूफी साधक थे। ये मीरां शाह के शिष्य और उत्तराधिकारी थे। इनकी कविता और गद्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनका भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इनकी एक गद्य रचना 'जवाहरुल अस्‌रार' नामक मिलती है जिसका वर्ण्य विषय सूफी मत के विभिन्न विश्वास और सिद्धान्त हैं। इसमें लेखक ने सूफी सिद्धान्तों का प्रतिपादन सफलतापूर्वक किया है। ग्रन्थ से एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :—

"यानी ओ सुलतान अपनी ज़ात की दरिया में छुपा राज़ गंज रख्या था बक़ा के मोत्यां का उजाला, देक कर आशिक़ हुआ। होर मसलहत, तजबीज में आया, जो राज़ के मोती छुपा कर रख्या खूब नहीं।"

लेखक ने अपने विचारों को रूपक, उपमा और अन्योक्ति द्वारा व्यक्त किया है। इसमें प्रतीक भी पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि लेखक विद्वान एवं निपुण साहित्यकार था।

शाह वली उल्लाह क़ादरी

शाह वली उल्लाह क़ादरी के पिता का नाम शाह हबीबुल्लाह कादरी था। इनका उत्पत्ति काल अज्ञात है परन्तु इनका देहान्त 29 मुहर्रम 1144 हिजरी में हुआ।[1] इनकी समाधि हैदराबाद नगर से बाहर बाग गोडदहन के निकट है। इनकी मज़ार और चबूतरा अर्काट के अधिकारी सिराजुद्दीन नवाब मुहम्मद अली खां वालाजाह ने बनवाया था।

शाह वली उल्लाह की एक पुस्तक 'मारिफतुल सलूक' प्राप्त है जिसका रचना काल 1109 हिजरी है।[2] लेखक ने स्वयं लिखा है कि इसे मैंने फारसी से अपने पिता के आदेश से दक्खिनी में अनुवाद किया, इसके मूल लेखक शेख महमूद थे।[3] यह ग्रन्थ अपने समय में बहुत ही प्रसिद्ध रहा है। इसकी कई पाण्डुलिपियां प्राप्त होती हैं। दो प्रतियाँ सालार जंग म्युज़ियम पुस्तकालय, हैदराबाद में विद्यमान हैं। पुस्तक

---

1. हकीम मोलवी शम्सुल्लाह कादरी—उर्दू-ए-कदीम, पृ० 120
2. वही, पृ० 119
3. "सदर नशीन, मुहम्मद मुस्तफ की शरीअत के दरिया हक़ीक़त और मारिफत के, बारिस मुहम्मद रसूलुल्लाह के हज़रत शाह मुहम्मद हबीबुल्लाह क़ादरी बाती रखे अल्लाह ताला उनको हमारे सर और आँखों पर जब तलक कि चमकता और झमकता रहे कि किताब मारिफुल सलूक हज़रत मगफरत पनाही और शेखुल शेख बन्दा के मारिफत व शेख महमूद बलुत्फ माबूद कुक्दूसुल्लाह सहर की है। फारसी जबान से इसको हिन्दी ज़बान में बयान कर।"

का वर्ण्य विषय इस्लामी तसव्वुफ है। इसके शीर्षक वाजिबुल वजूद नफ्स अमारा, नफ्सुल वामा, तौहीद आअली, तौहीद वजूदी आदि हैं। अपने मत की पुष्टि के लिए लेखक ने कुरआन शरीफ, हदीस और किस्सों को प्रस्तुत किया है। ग्रन्थ के कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

"मिन उर्फ नफ्स फक़द उर्फ रबा, के बयान में बयान करूँ शेर उसकी शर्तों की शरह कूँ अयाँ करूँ किया वास्ता कि तर मिन उर्फ फ़िका फकद उर्फ रबता के न कर्तों के तहक़ीक़ करना बहुत मुश्किल है क्या वास्ता कि यो काम साहब दिल का है, न हर एक बेदिल का है होर आरिफान ने उस बात तें बहुत किताबाँ कही है नफ्सुल अमा यानी मलामत कर तुम्हारा बरी फअलाँ पर अफ्सुल अमा क़लब सबब के तअल्लुक सालिक ने जिस वक्त सब बातिन के हैं तन जलन कूँ क़लब पनीब में खींचा जो दो नफ्स अमारा की, तन जलन थी। अगर चे नफ्स अमादा क्या था अमाबा में उसकी बाकी रही तो नूर बचताही जो उस कूँ नफ्सुल अमा दूर करे। नफ्सुल अमा नफ्स अमारा की अक्स है।"

इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य को वासना पर नियंत्रण रखकर विभिन्न प्रकार की बुराइयों से बचना चाहिए। लेखक धार्मिक ग्रन्थों का आश्रय समय-समय पर लेता है और आचारों-विचारों की ओर विशेष रूप से ध्यान देता है।

लेखक ने पुस्तक रचना का उद्देश्य एक स्थल पर बताते हुए लिखा है— "कितेक तालिबाँ ऐसे हक़ के हैं, जो न अरबी जानते हैं होर न फारसी पहचानते हैं...यो तुजकूँ लाजिम है जो इस मानी की अरुस कूँ फारसी होर अरबी की खिलवत के बाहर काड हिन्दी जबान की तख्त पर बेलाजवता हो कि आशिक अपने माशूक के जमाल का शराब अपने आँखयाँ के प्यालयाँ में मालामाल भरकर अपने जीव के हलक में पहुँचावें होर अब्द का बेहोश हो जावे।"

इस ग्रन्थ की भाषा-शैली सत्तरहवीं शताब्दी की है जिसमें बड़े-बड़े वाक्यों द्वारा अपनी बात कहने का रिवाज़ रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि फारसी शैली का स्तुत्य अनुकरण है।

शाह मीर

शाह मीर का मूल नाम सैयद मुहम्मद हुसेन था और इनके पिता हज़रत मखदूम जहाँ गश्त बुखारी थे। इनका जन्म हिजरी सन् 1081 में हुआ। इनके काव्य का उल्लेख पहले अध्याय में हो चुका है और अब इनकी गद्य रचनाओं का उल्लेख किया जायेगा।

शाह मीर ने गद्य में कई पुस्तकों की रचना की है जिनका मूल विषय तसव्वुफ है। इनकी एक गद्य कृति का नाम 'असरारूल तौहीद' है जिसमें लेखक ने दर्शन और मनोविज्ञान का विश्लेषण किया है। भाषा व शैली के लिए कुछ अंश उद्धृत है :—

ऐ अज़ीज़ वजूद दो वज़अ का है, एक वाजिबुल वजूद, दूसरा मुमकितुल वजूद, वाजिबुल वजूद उसे बोलते हैं जो वह खुद बखुद आपसे आप क़ायम है, हमेशा था, होर हमेशा रहेगा, होर वजूद हक़ ताला का है। यानी खुदा की जात होर सफ़ात को वाजिबुलवूद कहते हैं, होर वह क़दीम है, होर गैर मखलूक़ होर बाक़ी है, होर दायम है, मुमकितुल वजूद दो भांत है, एक जौहर दूसरा अर्ज जो हर कायम बनफ्स खुद को करे कहते हैं। और गर्ज़ कायम बाल गैर कूँ कहते हैं होर जो हर पांच वजअ का है अव्वल अक़्ल, दूसरा अल नफ्स, तीसरा जिस्म, चौथा हैवला, पाँचवां सूरत अक़्ल''''मुजर्रद और तनहा मादे से अपनी ज़ात में और फअल में नहीं, किस वास्ते कि मुहताज है।"

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि लेखक ने दर्शन का जो विश्लेषण किया है वह अत्यन्त सरल एवं सहज है। इसे साधारण से साधारण व्यक्ति भी सरलतापूर्वक समझ सकता है। इसकी भाषा-शैली उत्तर भारत की खड़ी बोली से पर्याप्त मिलती जुलती है। यद्यपि विषय कठिन व दुरूह है और इसको कुछ रुढ़ शब्दों की आवश्यकता होती है, किन्तु लेखक ने बड़ी कुशलता से वर्णन किया है जिससे पाठक कहीं उलझता नहीं है।

शाह मीर की दूसरी पुस्तक 'रिसाला हक़ायक़' है। यह पुस्तक छोटी है। इसमें लेखक ने तसव्वुफ के विभिन्न नियमों और सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि यह फारसी से दक्खिनी में अनुवाद है। उदाहरणार्थ ग्रन्थ के कुछ वाक्य प्रस्तुत हैं :—

"हज़रत शाह हक़ायक़ आगाह बुरहानुल मिल्लत वालिदैन कुद्दूस सरह फरमाती है फर्द आदम नूर बनी का पाक। ताकि सूरत बरक़अ खाक पस उस नूर कूँ तन की तअल्लुक सूँ रूह रखती है और नूर तन में आकर रूह हुआ बाद अज़ अपनी नूरानियत होर रूहानियत कूँ बसर कर बशरियत की सफ्फाँ सूँ मासूफ होकर महल खतरात होर बाद अज़ आलम मिशाल पैदा किया।"

यह ग्रन्थ धार्मिक है। शब्दों का चयन सुन्दर है। वाक्य रचना फारसी के समान है।

अब्दुल हमीद

अब्दुल हमीद के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में विशेष सामग्री नहीं प्राप्त हो सकी है। केवल इतना पता चलता है कि इन्होंने दक्खिनी गद्य में 'रिसाला तसव्वुफ' नामक ग्रन्थ की रचना की है। पुस्तक के नाम से स्पष्ट है कि पुस्तक का वर्ण्य विषय तसव्वुफ है। लेखक ने एक सूफी साधक की अवस्थाओं का उल्लेख मार्मिक ढंग से किया है जो इस प्रकार हैं :—

"सालिक पर तीन हाल घटते हैं, एक हाल जीव इनका खाता पीता, वली कोई देखता है, कर नहीं जानता। दूसरा हाल दीवानगी का कि दीवाना जो कुछ अपन बोलता सो व बोलता दूसरे का जवाब नहीं देता। तीसरा हाल नन्ही का, अपने खेल

में मशगूल अछता है, भूक लगती है तो रोता है, होर एक खेल खेलता है, माँ बाप बुलाते तो नहीं जाता, उसी रोज इसे ले जाते हैं तो दिल इसका खेल बीच अछता है। यू मंजिल नासूत में तीन हाल घटते हैं। यूँ सालिक खाता पीता, हूकता, अछ कर खुदा की याद में आपे फरामूश करता सो मंजिल नासूत उसके तौहीद अक़बाली याने ज़ाहिर के निसबत सूँ बोलता है, यानी क़पास की ज़बा सूँ बोलता है, कल्ब की ज़बाँ सूं नहीं। इसका पर्दा खूबयत यानी उसके और खुदा के मयानी यही तन पर्दा है। खुदा के पाँच अनासिर, पचीस गुन से यह तन पैदा किया है—माटी, पानी, आग, बारा, खाली।"

यह एक धार्मिक ग्रन्थ है। इसमें साहित्यिक गुण का अभाव है। केवल इससे उस काल की गद्य रचना-शैली का पता चलता है।

नूरे दरिया क़ादरी

'नूरे दरिया' के सम्बन्ध में पहले अध्याय पाँच में लिखा जा चुका है। यहाँ पर केवल इनकी गद्य रचना 'रिसाल-ए-वजूदिया' का उल्लेख किया जायेगा। पुस्तक का रचना-काल अज्ञात है। केवल इतना कहा जा सकता है कि इसकी रचना 1868 ई० से पहले हुई है क्योंकि जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त है उसमें लिपिक ने प्रतिलिपि का समय 1868 ई० लिखा है।

'रिसाल-ए-वजूदिया' का विषय तसव्वुफ है। लेखक एक शिक्षक, विद्वान एवं उपदेशक है। इस ग्रन्थ में लेखक ने परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलन और उसके लिये जीवित रहते हुए मरने का उपदेश दिया है। ग्रन्थ का कुछ अंश इस प्रकार है :—

"ऐ तालिब पहले नुज़ूल फिराक़ का विसाल हमेशा है। हक़ ताला आपस सो आपी था तो इसमें दूसरा कुच न था। जारी का चेत हुआ ज़ात में वहाँ सो आशिक़ माशूक़ बीना हुआ और क़दीम बीना बेहरक़त होर जारी बनायो इसमें हरकत है तो अबी हरकतपना माशूक़ियत को लिकता है होर यो हरक़त आशक़ियत को निकता है मरतबा अव्वल मुक्त सो नफ़्स जानना दिल देखता सो रूह रूह सो, जीव जीव सो बन्दा बन्दा सो अंग उस पर मुशाहद अले मरतबे दुअम नुक्ता सो मुहम्मद है।······ इस बूज सों सिफ़ता कूँ मुआइना किया। हर यक सिफ़त सूरत पकड़ कर दस्याँ सो इस वेक कूँ अरवाह बोलते। इस बूज को मिसाल बोलने। सब सूरताँ दस्याँ सो इसे मुमकिनात बोलते हैं जो ज़हर का तन बाजब-उस-वजूद व सलाम।"

मीर असगर अली काज़ी

मीर असगर अली का जीवन-वृत्त अज्ञात है। केवल इतनी सूचना मिलती है कि रायचूर के निवासी थे। मीर असगर का दक्खिनी गद्य में 'गुलदस्त-ए-हिन्द' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसकी एक प्रतिलिपि राजकीय सेन्ट्रल पुस्तकालय, हैदराबाद में है। प्रतिलिपिकार ने उसका समय 1869 ई० लिखा है। तात्पर्य यह हुआ कि यह रचना इससे पहले लिखी गई होगी।

'गुलदस्त-ए-हिन्द' में लेखक ने मुसलमानों का भारत में प्रवेश और उनके शासन-काल का इतिहास लिपिबद्ध किया है। उदाहरणार्थ ग्रन्थ का कुछ अंश प्रस्तुत है :—

"इस वक़्त महमूद शाह सुना के कन्नौज का राजा अपने साथ दोस्ती करने के सबब से कालिगा का राजा जिसका नाम नन्दा था सो अपनी फौज को लेकर कन्नौज के राजा पर हमला करने के वास्ते गया। और उस राजा से जंग कर उसका मुल्क ले लिया और उसको भी जान से मार डाला। महमूद शाह यह बात सुनकर बहुत ग़ज़ब में आया और जल्द अपनी फौज हमराह लेकर कन्नौज को गया और नन्दा के यह देखकर घबरा होकर फौज को साथ ले अपने मुल्क को चला गया।"

इस पुस्तक की भाषा सरल, प्रवाहमयी और आकर्षक है। लेखक ने आम बोल की भाषा को अपनाया है।

मौलवी कादर अली

हिजरी सन् 1236 अर्थात् 1824 ई० में कादर अली ने 'मिसबाहुलसलवात' नामक पुस्तक की रचना की। इसका विषय फ़िक़ा हनकी है। इसमें लेखक ने इस्लामी सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है। ग्रन्थ के कुछ अंश प्रस्तुत हैं :—

"इन्सान बालिग पर जानना फ़र्ज का फ़र्ज है और जानना वाजिब का वाजिब है, और जानना सुन्नत का सुन्नत है। और जानना मुस्तहब का मुस्तहब है....साहब मुफ्ताहुलसलावात ने मातबर किताबों से लिखा है कि जो शख्स कि फरायज और वाजिबात नमाज की नहीं जानता है। नमाज़ उसकी रवा नहीं। शेख अबू हफ़्स कबीर फर्माये काफिर हुये नअूज बा अल्ला....रखना हाथों का नाफ़ के सुन्नत है। कैफ़ियत उसकी यह है कि मिनकट को बायें हात की सोधे हात की अंगूठी और कुन अंगुली से पकड़ लेवे और तीन अंगुलियाँ ऊपर मिनकट की रखे और बातिन सीधे हात का उस ऊपर ज़ाहिर पावें हात की लावे।"

विवेच्च ग्रन्थ अरबी से दक्खिनी का एक सफल अनुवाद है जिससे लेखक के दोनों भाषाओं पर पूर्ण अधिकार का पता चलता है।

मियाँ मुहम्मद इब्राहीम

मियाँ मुहम्मद इब्राहीम ने अपने सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है :—

"जब मैंने अपना अज्ञोज व इन्कसार बतलाया तब हज़रत दिल से खिताब मस्तताब हुआ कि ऐ मियाँ मुहम्मद इब्राहीम बिन मलिक हुसेन खाँ बिन शेख मुहम्मद बीजापुरी जमादार दखनी हजार सवारी तू ने कहा कर अगर किसूने मुझ सा फ़क़ीर और कशीफ दौरान उस जहाँ बेपायाँ में बगौर तमाम मुलाखता कीजिये तो भी उसका दस्त अरादत दामन मक़सूद तक न पहुँचे और पंजा, मतलब रस्सा उम्मीद को न नीचे।" अर्थात् मियाँ मुहम्मद इब्राहीम के पिता मलिक हुसेन खाँ और उनके दादा शेख मुहम्मद थे जो बीजापुर के निवासी थे।

मियाँ मुहम्मद इब्राहीम ने हिजरी सन् 1240 अर्थात् 1828 ई० में 'अनवार सुहेली' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह पुस्तक अत्यधिक प्रसिद्ध रही है इसी कारण इसका अनुवाद संसार की कई भाषाओं में हुआ। ग्रन्थ का एक अंश पाठकों के लिए उद्धृत है :—

"चीन के मुल्क के औरस चौरस में एक बड़ा बादशाह था उसका नाम हिमायूँ फाल होर उसे एक बड़ा वज़ीर था। उसका नाम खजस्ता राय हुमायूँ फाल एक खजस्ता राय को सात लेकर शिकार को गया वहाँ सो उलटते धूप पड़ी थी। एक पहाड़ की अनी पो झाडाँ थे छाँव की खातिर खजस्ता राय को सात लेकर उस छाँव के तले जा बैठा और देखा तो क्या कि एक झाड़ उसका खोड का होर बड़ा हो गया है। उसके अन्दर शहद की मक्खियाँ पोती बन्दले अन्दर घुसते और भार निकलते हैं। हिमायूँ फाल खजस्ता राय सूँ पूछा यह क्या हूँगा अने बोल्या यह शोर की पोती है। बादशाही अमला फालाँ सगल उनके हाँ है। जमशेद ने बादशाही करना उन सोंच सीख्या हिमायूँ फाल बोल्या अरे मियाँ वज़ीर दुनिया बड़ी खटखट की है उस सूँ बेहतर है सब छोड देकर कोना पकडना। खजस्ता राय बोल्या तुम्हारे सूँ आलम का भला होता है। तमन्ना कोना पकड को किया नफ़ा। आदालत सूँ बादशाही करे तो दुनियाँ में होर दिन में दोनों जगह भलाई है।"

सैयद हुसेन अली खाँ

सैयद हुसेन अली हैदराबाद के निवासी थे। इन्हें सुलतान की ओर से जागीर मिली हुई थी। ये फारसी भाषा व साहित्य के पण्डित थे। इन्होंने अपने पुत्रों के लिए फारसी की कई कहानियों का दक्खिनी में अनुवाद किया था। उन्हीं में एक प्रसिद्ध कहानी 'काम रुप' का अनुवाद दक्खिनी में 'मरग़ूबुलतबा'[1] के नाम से किया है। इसकी रचना तिथि हिजरी सन् 1248 (1836 ई०) है। 'मरग़ूबुलतबा' नामक पुस्तक का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है :—

"हज़ारा हा शुक्र, लिखू खा हम्द जनाब हक़ ताला जिल्ले शाना, में कि बशर को ज़ीनते नतक़ से आरास्ता किया। वास्ते अदा करने हम्द व सना के। लेकिन इन्सान को कहाँ ताक़त है जो अहदा बड़ा हम्द का होवे।...आगाज़ दास्तान कहा बोलने अजायब रोज़गार और दास्तान लेने वाले नादिर ज़माने के आपसी नक़ल करते हैं कि बीच शहर अवध के जो शहरों से हिन्द के हैं और सानी उसके कोई शहर ज़माना में नहीं था। ज़माना गुजिश्ता में वहाँ का एक राजा था राजबन्सी ऊस का नाम तारीफ़ ऊस के बादशाहत की और दौलत व हशमत की मुल्कों में मशहूर थी, और बलिया बादशाह दूसरा किसी मुल्क में नहीं था।"

1. हस्तलिखित प्रति, क्रम संख्या 130, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद।

चार दरवेश

सैयद हुसैन अली खाँ ने हिजरी सन् 1250 (1838 ई०) में फारसी से दक्खिनी में रूपान्तर किया।[1] लेखक ने स्वयं लिखा है कि अपने पुत्र विलायत अली की रुचि और निवेदन पर इसका फारसी से अनुवाद किया। भाषा का नमूना द्रष्टव्य है :—

"वारिस ताज व तख्त का कोई अब तक पैदा न हुआ। जब औलाद नहीं तो उस दौलत दुनिया को लेकर क्या करूँ। यह तख्त व ताज मुझको मुबारक हो, मैं उस हुजरा से बाहर न निकलूँगा। जब तक अल्लाह ताला मुझको औलाद से सर-फराज़ करे। बज़ीर बातद्वीर ने अर्ज़ किया। हक़ ताला साया दामन दौलत को खाना खानादारों के सर पर क़ायम दवायम रखे।"

हमेशा बहार

यह पुस्तक 'बहार दानिश' का अनुवाद है जिसे लेखक ने हिजरी सन् 1250 (1839 ई०) में पूरा किया। लेखक ने लिखा है कि अंग्रेजों के निवेदन पर अनेक पुस्तकें हिन्दी में अनुवाद की गई हैं किन्तु अभी तक शेख इनायतुल्लाह की रचना 'बहार दानिश' का अनुवाद नहीं हुआ इसलिए मैंने अपने मित्रों की इच्छा पूर्ति के लिए इसका अनुवाद किया।[2] इसमें लेखक ने नवाब नसीरुद्दौला की प्रशंसा भी की है।

सता शमसिया

यह एक वृहद् ग्रन्थ है। इसमें बारह सौ से अधिक पृष्ठ हैं। इसे लेखक ने 'शम्सुलअमरा अमीर' के आदेश पर अंग्रेजी और फ्राँसीसी पुस्तकों की सहायता से लिखा था। इसका रचना-काल हिजरी सन् 1253 (1842 ई०) है। पुस्तक छः खण्डों में विभक्त है और प्रत्येक खण्ड का विषय पृथक-पृथक् है। प्रथम भाग में अणु विद्या का उल्लेख है। द्वितीय खण्ड में ज्योतिष का वर्णन है। तृतीय खण्ड में जल विद्या का

---

1. हस्तलिपि प्रति, क्रम संख्या 130, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद
2. किताब बहार दानिश शेख इनायतुल्लाई ने ज़बान फारसी में बहुत इबारत रंगी व मुसलसल व दकीक व नक़लाँ अजायब व कहानियाँ नादिर और नसीहतें जो वज़ीर व अमीर व हकीम व नदीम व अमराद आयान जहाँदार सुलतान के तईं बेवफाई औरतों की थी लिखी है। अक्सर अवक़ात मजलिस में शुग़ल उस किताब का रहता था। और सब अहले महफिल को जो भरा इल्म से रखते थे। बशाशत हासिल होती थी। और इल्म ऊसकी फहम की लज्ज़त से महरूम रहते थे। कई साहबों ने कहे कि अगर इसका तरजुमा ज़बान हिन्दी से हो तो सब बा इल्म दबे अमल की समझ में जो यह कहानियाँ व नक़लाँ जो रंगीन हैं आयेंगी। —(हमेशा बहार)

वर्णन है। चतुर्थ खण्ड में हवा की विशेषताओं और उसके दुरुपयोग का वर्णन है। पंचम खण्ड में प्रकाश का उल्लेख है और षष्ठ खण्ड में विद्युत आदि का वर्णन है।

जब यह पुस्तक पाठकों के सामने आयी तो अत्यधिक प्रसिद्ध हुई और इसको चार बार प्रकाशित करना पड़ा। इसका अन्तिम प्रकाशन हिजरी सन् 1212 (1892 ई०) में हुआ। इससे स्पष्ट है कि उस समय लोग साइन्स को जानने में कितने उत्सुक थे। उदाहरणार्थ :—

"उस्ताज़—अब मैंने इरादा किया है कि तुमको कैफियत व हक़ीक़त क़लमा उमदा को आगाह करूँ। जिस कोशिश शक़ल कहते हैं। और वह एक कुवत है जिसके सबब अजसाम बइदा बा हम दीगर तजाजिब रखते हैं और यह अमर ज़ाहिर है गिरने से तमाम अजसाम शकीला के ज़मीन पर।"

"तलमीज़ कलाँ—गोली का हाथ से गिरना और ईंट का छत से साक़त होना और सलीब का झाड से ज़मीन पर आना। यह सब क्या सबब उसी कुवत के हैं।"

हाँ उस्ताज़—हाँ ब सबब उसी कुवत के हैं जिसको शकील ताबीर करते हैं इस वह अजसाम जिसमें कुछ भी मेल है। अगर उनको कोई थामने वाला न हो तो सतह ज़मीन पर क़रीब अमूद दार गिरेंगे और उस मेल को जो नतीजा और हासिल शक़ल है जिसके अज़मा है वजन कहते हैं। यहीं से है कि शक़ल और वज़न मुतफादत हैं क्योंकि वजन एक जिस्म मायन के वास्ते नापने वजन दूसरे जिस्म के इस्तामाल नहीं लाते। जैसा वजन मंग तराज़ू का था बर इम्तहान वज़न गल्ले वगैरा के इस्तामाल करते हैं।

रिसाला आमाल करह

इस पुस्तक का भी अमीर कबीर शम्सुल उमरा के आदेश पर अनुवाद हुआ। परन्तु यह पुस्तक इतनी अच्छी और सुन्दर बन पड़ी कि यह अनुवाद न होकर मौलिक कृति प्रतीत होता है। इस पुस्तक में भूगोल और नक्षत्रों का वर्णन है। यह पुस्तक चार अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में परिभाषाएँ दी गई हैं, द्वितीय अध्याय में भूगोल, तृतीय और चतुर्थ अध्याय में नक्षत्रों की चर्चा प्रश्नोत्तर शैली में की गई है। इस पुस्तक का रचना-काल हिजरी सन् 1257 (1847 ई०) है। इस पुस्तक के कुछ अंश देखिए :—

कुत्बैन आलम दे दो तरफ़ीन महूर की हैं जहाँ ज़मीन की सतह ने महूर को क़तअ किया है। उनमें से एक शुमाली है और दूसरा कुत्ब जनूबी और मुक़ाबिल इन ही दो नुक़्तों की आसमान के दो कुत्ब वाक़अ हैं।"

"सवाल—जून की दसवी को आफताब कौन मक़ाम में अमूदवार रहता है और कौन मक़ान में तुलूअ और गुरुब नहीं होता।

जवाब—सन्देला और कलकत्ता और आदा और मकादिरा जज़ीर चीन वगैरा में आफताब अमूदवार रहता है और मिन्तका मबरदा शुमाली में कमनज़ई और ग़रीन नदीद और कैप में ग़ुरूब नहीं होता। और मिन्तका मबर वह जनूबी में उस जगह को जहां तमाम बहूर हैं तुलूअ नहीं होता।"

"ज़हल का बयान—यह सैयारा मधूधम रोशनी से नज़र आता है और आफ़ताब से बहुत दूर है और बासतआनत बेहत आला दूरबैन है कि अहले इल्म को उस सैयारे की बेटी के देखने से हैरत होती है और यह पेटी उस सैयारे को अतराफ बतमामा एक हल्का रोशन है और उस हल्का के बाहर सात क़मर गर्दिश करते हैं और उन अक़माज़ में से एक क़मर उस हल्का की सतह पर हरकत करता है।"

मुहम्मद इस्माइल

मुहम्मद इस्माइल अंग्रेज सैनिकों को हिन्दुस्तानी की शिक्षा देते थे। इन्होंने 'बहार दानिश' की कई कहानियों का दक्खिनी में अनुवाद किया है जिससे अंग्रेजों को सरलतापूर्वक शिक्षा दी जा सके। इन्होंने इस पुस्तक को सुन्दर और रुचिकर बनाया है। उदाहरणार्थ कुछ अंश प्रस्तुत हैं :—

"क़दीम दिनों में बीच मुल्क हिन्द के एक सौदागर बहुत बड़ा होर उमदा था ऊसने चहार बेटे थे तीन लायक होर एक नालायक कि तमाम दिन होर तमाम रात बीच नशा शराब के मस्त रहता व जश्न यारी में मशग़ूल।

बहुत पैसी बाप की उस बदकाम में खराब किया। बाप ऊसका नालायकी देखकर बहुत नसीहत दिया वह हद से किया। होर दूसरी लोगाँ की मूँ सुनी कहनी फरमाया आखिर उसकी दिल में हरगिज़ यह नसीहत माँ बाप की होर खुशी अक़र बाक़ी सरमो बराबर ऊस की खातिर नालायक में जागा न ली।"

गुलाम इमाम खाँ

'तारीख रशीदुद्दीन खानी' नामक वृहद् ग्रन्थ की रचना गुलाम इमाम खाँ ने शम्सुल उमरा अमीर कबीर (द्वितीय) के आदेश पर हिजरी सन् 1270 (1850 ई०) में की थी। भूमिका में लेखक ने भारत के राज्यों की स्थिति का उल्लेख किया है। प्रथम अध्याय में दिल्ली सल्तनत, द्वितीय अध्याय में दक्षिण की मुसलमान हुकूमतों का उल्लेख है, तृतीय अध्याय में महान व्यक्तियों की चर्चा है। अन्त में अंग्रेजों का दक्षिण भारत में आना और हैदर अली एवं टीपू सुलतान के युद्धों का उल्लेख किया गया है।

पुस्तक का कुछ अंश प्रस्तुत है। इसमें आसफ जाह (प्रथम) के सम्बन्म में उल्लेख है :—

"नवाब चूँकि यह नफ्स जगीअ मुकदमात माली और मुल्की का अनूराम फरमाते थे मगर वाज़ी नदमा ने फिलजुमला इनके आराम का ख्याल करके एक मअसमद हलिया मुक़र्र कराने के लिए अर्ज़ किया। नवाब ने खिदमत दीवानी के लिए अमराए कबार में से एक मअतमद अलिया मतदीन को तजवीज करके जिनका नाम राक़िम को तहक़ीक़ नहीं हुआ उस ओहदा कासिर वह उनको पहुँचाया। मुहम्मद अबुल खैर ख़ाँ बहादुर जो एक दुरन्देश सख्स और खैरख्वाह सरकार थे उन्होंने इसको नामुनासिब जाना और शब के वक़्त जिसकी सुबह को कारे खिदमत उनके सुपुर्द होने वाला था।"

इस अध्याय में नवाब नासिरुद्दौला की स्थिति का उल्लेख हुआ है और इसका समापन इस प्रकार है :—

"वाजह हो कि सन् जलूस से हिजरी 1269 के इसी माह के आखिर तक नवाब साहब की मुद्दत सलतनत 25 साल एक माह ग्यारह रोज़ होती है। सन् हिजरत का 15 साल है।"

इस उदाहरण से प्रतीत होता है कि गद्य की भाषा अरबी और फारसी के शब्दों से बोझिल है। यह एक इतिहास ग्रन्थ है इसलिए किसी प्रकार के साहित्य की खोज व्यर्थ है।

लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि इसके लिखने में किसी जाति विशेष या वर्ग विशेष अथवा व्यक्ति विशेष का भेदभाव नहीं किया गया है। लेखक ने एक सच्चे इतिहासकार की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि शासकों और उनके शासित प्रदेशों का ऐसा उल्लेख होना चाहिये जिससे लोगों को पूरा विश्वास हो जाए।

नवाब शम्सुल उमरा कबीर (द्वितीय)

नवाब शम्सुल उमरा कबीर (द्वितीय) विद्या प्रेमी व्यक्ति थे। नवाब साहब को गणित विद्या से अधिक रुचि थी। उस पर अधिकार भी प्राप्त था। इन्होंने अपनी रुचि के कारण ही 'तज़किरा दानवार बदरिया' और 'नमूना अनवार बदरिया' की रचना की। ये दोनों पुस्तकें गणित विद्या से सम्बन्धित हैं। इनका रचनाकाल हिजरी सन् 1281 (1861 ई०) है।

'तज़किरा दानवार बदरिया' ग्रंथ के कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

"एक रोज़ जनाब इक़्तदार मआब इक़्तदारुल मुल्क इक़्तदारुल दौला मुहम्मद रशीदुद्दीन खाँ नवाब अमीर कबीर शम्सुल उमरा ने ऐसा फरमाया कि इल्म हिन्दसा में कोई नुस्खा ऐसा नहीं कि जिसकी तालीम से मुबतदियों को फिल जुमला बसीरत हासिल हो और पाये शौक न राज़ अगर कोई लिखे तो किया बेहतर है और यादगार

ज़माना नज़र बरीं इस जर्रता बेमक़दार शाह अली मतवतन क़िला अधोनी ने चन्दे अश्काल हिन्द सी को इस मुख्तसार में जमा करके मौसूम बतज़किरा पेश किया।"

एक अन्य स्थल पर इस प्रकार लिखा है :—

"इल्म हिन्द सा वह इल्म है कि इसमें बहस है अहवाल मक़ादीर सलसा से यानी खत व सतह व जिस्म तालीमी कि मुश्तरक है मुत्सला फारुलज़ात है जो उनकी जिन्स है बल्कि मौज़ू भी इस इल्म का और तक़ीनात को पहुँचाया जली दुनिया।"

इस पुस्तक में रेखा गणित के 48 चित्र दिये गये हैं।

'नमूना अनवार बदरिया' नामक पुस्तक के कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

"जानना चाहिए कि दे निस्बतें जो अक़लीदस (रेखा गणित) में मजकूर है अगरचे कशबरता फवासद हैं बहतराज़ शक़ल उरुस है लेकिन मआली में बावजूद नज़ाकत ऐसी क़लील उनका अल्फाज़ कि जिनका समझना मुब्तदियों को बगायत दुश्वार बल्कि मिन्तहियों को भी इसलिए उनको उस ज़रता बे मक़दार शाह अली साकिन क़िला अधोनी ज़बान हिन्दी में बबारत सलीस मआ अश्ला अददी तरजुमा किया।"

"मक़ादीर दो नसफ की जो मरातिब में बराबर और निसवत में ऐसे हूं कि वह मक़दार में एक सिफत के निस्बता हो जो हर दो मक़दार में सफे आखिर की है पस अतराफ हर सिफत के निस्बत देने को अवसात निस्बत मुसादात कहते हैं।"

सैयद मुहिउद्दीन

सैयद मुहिउद्दीन ने 'तमीम अन्सारी' नामक कथा को हिजरी सन् 1255 (1836 ई०) में लिखा। इनका मूल निवास स्थान विहार था किन्तु हैदराबाद में आकर बस गये थे। इन्होंने 'तमीम अन्सारी' नामक कहानी को गुलाम नबी साहब खतीब की रचना से दक्खिनी में लिखा है।

उदारहणार्थ एक अंश प्रस्तुत है :—

एक शब तमीम अन्सारी अपनी हलाला के साथ हम बिस्तर हुए फरागत के वास्ते इस्तिन्जा करने बाहर गये और अपनी हलाला को कहा जल्द गरम पानी करो। इत्फाकन उस वक़्त वहाँ एक देव हाज़िर था ऊसने सुना तमीम अन्सारी को जो हालत जनाबत में देखा उठा ले गया हर चन्द उस नेक बख्त बीबी साहबा इस्मत ने तलाश किया और बहुत रोई और बलबलाई कहीं तमीम अन्सारी की खबर न मिली। हर रोज हर शब यही दुआ दरगाह इलाही में करती थी। जब चार बरस गुजरे और कुवत की तरफ से कमाल हैरान परेशान हुई। अपने बच्चों को जो छोटे-छोटे थे हमराह लेकर दारूल खिलाफत में गई।....हज़रत उमर रज़ीअल्ला अन्हा ने पूछा कि शोहर तेरा किस वक़्त और कहाँ से गायब हुआ है, कहीं एक शब वास्ते एहतियाज जरूरी के सहन खाना में निकला था जो गायब हो गया।"

नहनोबी

नहनोबी ने हिजरी सन् 1267 (1847 ई०) में 'सौदागर' नामक कहानी का फारसी से दक्खिनी भाषा में अनुवाद किया। इसकी विशेषता यह है कि यह खानों की प्रथम कथा है जो दक्षिण में लिखी गई है। नहनोबी के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है परन्तु यह पता चलता है कि उसे कहानी कहने और लिखने का बहुत शौक था।

'सौदागर' कहानी का कुछ अंश इस प्रकार है :—

"खायत करते हैं और लिखने वाले यों लिखते हैं कि मुल्क सरन्दीप में एक सौदागर था और माल व मताअ ऊस के पास ऐसा था कि ऊस ज़माना में कोई व्यवपारी या महाजन ऊस के बराबर नहीं था। उस पर हक़ताला की इनायत से चार बेटे थे हर एक हुस्न व जमाल में बेमिशाल थे ग़र्ज़ सोला बरस की उम्र में इल्म दानाई व इल्म उस्तादी से कामयाब हुआ और फन सिपाहगीरी में ताक हुआ और यकदम हक़ताला की याद से तग़ाफिल नहीं रहता था और खुराक सवाये दर्द काई के कुछ नहीं खाता था और माँ बाप ऊस पर भोत जाँ सार और खवेश सब चाहते थे। ग़र्ज़ तीनों भाई अपने बेवकूफी से उसके दुश्मनी में थे और काबू ढूंढते थे कि कोई वक़्त ऐसा हमें मिले कि उसको नीस्त व नाबूद करें।"

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि दक्खिनी भाषा इस काल तक खड़ी बोली के बहुत निकट आ गई थी। भाषा में सरलता, सरसता और प्रांजलता है। फारसी की भाँति वाक्य बड़े-बड़े लिखे जाते थे।

अज्ञात लेखकों की कृतियाँ

कुछ पुस्तकें ऐसी भी मिलती हैं जिनके रचयिताओं का पता नहीं चला है किन्तु पुस्तकें साहित्यिक महत्व की हैं और जो आरम्भिक गद्य-साहित्य की अत्युत्तम कृतियाँ कही जा सकती हैं। हम इनमें से कतिपय प्रमुख पुस्तकों के सम्बन्ध में सोदाहरण टिप्पणी प्रस्तुत कर रहे हैं :—

तफसीर सूरत अजाजा

डा० ज़ोर के मतानुसार इसकी रचना हिजरी सन् 1150 के पहले हुई है। डा० ज़ोर ने जो विश्लेषण दिया उसका सारांश इस प्रकार है :—

लेखक कोई दक्खिनी विद्वान है जिसे कुरान और हदीस का अच्छा ज्ञान था और उसे लिखने का भी अच्छा अधिकार था। लेखक का नाम मालूम न हो सका लेकिन यह पुस्तक दक्खिनी किताबों में विशेष महत्व रखती है।

'तफ़सीर सूरत अज़ाज़ा' की कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

"जिस वक़्त कि यह सूरा नाज़िल हुआ तो हज़रत अब्बास रज़ीअल्ला अन्हा मिन कर रोये, हज़रत सल्लाह अलैया आला दसबा व सल्लम ने पूछा कि ऐ अब्बास। तुम किस वास्ते रोये हो। हज़रत अब्बास ने अर्ज़ की क्या रसूलुल्लाह उसके नाज़िल होने से मालूम होता है कि आपके तईं दुनिया से सफर करने का हुक्म हुआ।...और जो शख्स के सूरत के तईं ख्वाब में बढ़ा तो खुदाए ताला ऊस को दुश्मनों पर फतह देगा। और तमाम मुश्किलात ऊस के हल होयेंगे और बाज़े कहते हैं कि यह ख्वाब दलालत करता है मौत के नज़दीक होने पर।"[1]

इस पुस्तक के पारायण से स्पष्ट होता है कि लेखक धार्मिक मनोवृत्ति का था और उसे इस्लाम के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी थी तथा वह दक्खिनी भाषा को भी भलीभाँति जानता था। उसने आध्यात्मिक विषय को इतना सरल, सहज व सरस बनाया है कि पाठक उसकी ओर स्वयं आकृष्ट हो जाते थे। आज का पाठक भी उससे आनन्द ले सकता है।

एखलाक़-ए-हिन्दी

इस पुस्तक के न तो लेखक का पता है और न ही इसका लेखन-काल ज्ञात हो सका है इसमें लोक प्रचलित कहानी है जो इस प्रकार है :—

"दो औरतां एक बच्चे के वास्ते लड़ते थे। होर शाहिद दोनों नहीं रखते थे। और दोनों औरतां लड़ते हुए काज़ी के पास गये होर इन्साफ चाही। काज़ी जल्लाद को हुक्म दिया। उस बच्चे को दो टुकड़े कर उस दोनों औरतां को दो। एक औरत यह बात सुन कर खामूश रही दूसरी औरत गिरया होर दाखिला कर के पुकारी जो वास्ते खुदा के बच्चे के दो टुकड़े मत कर अगर ऐसा ही इन्साफ है बच्चे को मैं चहीते नहीं। काज़ी तब यक़ीन समझा जो माँ बच्ची के यही है बच्चा उसको दिया होर दूसरी औरत को कोड़े मार कर चला दिया।"[2]

तूती नामा

इस नाम की कई पुस्तकों की जानकारी है और ये सभी पुस्तकें फारसी की पुस्तकों के अनुवाद हैं किन्तु इनके अनुवाद की ठीक-ठीक तिथि नहीं ज्ञात है। दो पुस्तकें विशेष रूप से प्रसिद्ध रही हैं :

1. तूती नामा—अबुल फ़ज़ल
2. तूती नामा—सैयद मुहम्मद कादरी

इन दोनों पुस्तकों का दक्खिनी में अनुवाद हुआ है। अबुल फ़ज़ल की पुस्तक

---

1. डा० सैयद मुहिउद्दीन कादरी ज़ोर—तज़किरा उर्दू मखतूतात, भाग 1, पृ० 226
2. नसीरुद्दीन हाशमी—यूरोप में दखनी मखतूतात, पृ० 565

का अनुवाद श्री हाशमी के मतानुसार ब्रिटिश म्यूज़ियम में सुरक्षित है। इसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं :—

"पछे सीं तारीफ़ साहब ज़माना के और जमीन के यानी खुदाए के तारीफ़ के बाद अज़ और पछे सीं तारीफ साहब जान और तन पैदा करने हारे।

× × ×

बीच शहर यक के शहरां हिन्दुस्तान के सौदागर इक था। उसका नाम मुबारक था। आरज़ू फरज़न्द की निहायत रखता था। यकायक आवाज़ देने हार अफ़ज़ल खुदाये आलम का खुश खबरी उस बात की दिया वह बात यह है तुम्हें खुश खबरी देते हैं। सात फरज़न्द नेक के बीच कान उस मुबारक सौदागर के ..सौदागर उस मुबारक हौसला के तीन यानी उस फरज़न्द को मैमून नाम रखा। जब खात रुखसार ऊस के ओ गया यानी मैमून को खत राडी का मकलिया और उमर उस मैमून की अठारह बरस को पोंची। बीच वक़्त मुबारक के साथ खजस्ता नाम वाली औरत के शादी किया।"

सैयद मुहम्मद कादरी की पुस्तक 'तूती नामा' का किसी व्यक्ति ने हिजरी सन् 1142 में अनुवाद किया।[1] इसकी एक प्रतिलिपि उसमानिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है। उदाहरणार्थ एक अंश उद्धृत है :—

"पछे सीं तरह तरह सिफ़त दसना पैदा करने में ज़मीन व आसमान के कैफ़ियत व हक़ीक़त यो है कि दास्तान क़सहाद हिकायत हज़रत बखशी रहमतुल्ला को बेछा तूती नामा के साथ अबारत सखत व दफीक़ के लिखे उस कतीं मुफसिल बयान वास्ते मालूम होने तमाम लोगां को मुहम्मद कादरी एक करे अल्लाह ताला मरतबा उनका।"

× × ×

"तमाम अहवाल शारो का और आशिक होना खजस्ता का ऊपर एक जो उनके और मरना शारो का दस्त सूं खजस्ता के अव्वल सूं आखिर तक मैमून सो कहा मैमून उसी वक़्त खजस्ता मार डाला हलाक हो गया।"

सैयद मुहम्मद कादरी की पुस्तक का दूसरा अनुवाद किसी व्यक्ति ने और किया है किन्तु उसकी तिथि ज्ञात नहीं हो सकी है। श्री हाशमी का अनुमान है कि इसका अनुवाद हिजरी सन् 1208 से पहले हुआ होगा।[2] इसकी हस्तलिखित प्रति इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद में है।

"पहली कहानी यह कैफियत मैमून और खजस्ता की और खरीद करते हैं। मैमून यक तोती के। और एक ताजिर की तोती की कैफियत और मैना की हिकायत यू है। दानायां और अक़लमन्द उस तौर से बयान किये हैं कि आगे के ज़माना में हिंद

1. अब्दुल कादर सरवरी—फहरिस्त उर्दू मख्तूतात, पृ० 181
2. नसीरुद्दीन हाशमी—दकन में उर्दू, पृ० 505

के एक शहर दिल में से एक शहर में कोई सौदागर था साहबे माल और हिम्मत, नाम उसका मुबारक था।

× × ×

मैमून कहा क्या कैफियत है तू ही बोल। तोता तमाम अहवाल हवा सो खजस्ता का कहा एक जवान पर और मारे जाने में शारक के अव्वल से आखिर तक मैमून से कहा। मैमून उस वक़्त खजस्ता को नसीहत किया।"

तूतीनामा पुस्तक की भाषा शैली पहले की अपेक्षा परिमार्जित है इसमें उपमा, रूपक एवं अन्य अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है। कुछ आलोचकों का यह भी मत है कि इसमें प्रतीक विधान बहुत ही सुन्दर है।

गुलिश्ताँ

यह एक प्रसिद्ध फारसी ग्रन्थ का दक्खिनी अनुवाद है। यह ग्रन्थ देश भर में अत्यधिक प्रसिद्ध रहा है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न पुस्तकालयों में विद्यमान हैं किन्तु खेद की बात है कि इस पुस्तक के अनुवाद कर्त्ताओं के नाम तक नहीं ज्ञात हो सके। यह पुस्तक साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि की मानी जाती है। इस ग्रन्थ के कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

"कि आक़लाँ कही है जो कोई हात जान सीं व होदी जो कुछ कि दिल में आदमी बसू कही जब आज़िज़ होता है आदमी लम्बी होती है ज़बान उसकी कि आज़िज़ बली फलंग मारती है ऊपर किते कि बादशाह पूछा कि क्या कहता है यक वज़ीर दिल में नेक खसलत का कहा ऐ साहब उन कहता ही ग़ज़ी कूँ कहाने वाली होर तक़सीर माफ़ करने वाली होर अहसान करने वाली लोक किर्ती खुदाय ताला दोस्त रखता है। बादशाह कूँ ऊपर ऊस की रहम आया होर इरादी सीं ऊस की खून के गुज़रिया।"

सिंघासन बत्तीसी

फोर्ट विलियम कालेज में लाल लल्लू जी लाल ने इसका अनुवाद किया था किन्तु उससे पहले ही दक्खिनी में उसका अनुवाद हो चुका था। खेद है कि लेखक का नाम व लेखन-काल अज्ञात है। किन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इसका अनुवाद सत्तरहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण अथवा अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ है। इसकी भाषा शैली से यह तथ्य उजागर होता है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद में सुरक्षित है। ग्रन्थ का एक अंश द्रष्टव्य है :—

"पोतली अव्वल की जब राजा भोज तख्त कीती तरफ धारा नगर के ले किया। यक बांदी खबरदार को बुलाकर साअत हासिल किया कि उस तख्त पर यक पतली नाम ऊस का चम्पा था, यक मरतबा कहीं के ऐ राजा भोज यह तख्त राजा विक्रमा जोत का है। जो कोई उस मानिंद राजा के सखावत करे वह लायक है कि इस तख्त पर बैठे राजा पूछा वह हक़ीक़त सखावत की किस तरह है तब पतली

कही कि रूचलहन नाम शहर का है निहायत आबाद और खुश आब व हुवा रखता है।"

मुअज़्ज़म शाह व चितर रेखा

इस पुस्तक का लेखक और रचना-काल अज्ञात है किन्तु भाषा और शैली के आधार पर यह रचना अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण अथवा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण की मानी जा सकती है। इस ग्रन्थ के कुछ वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :—

"आगाज़ दास्तान मुअज़्ज़म शाही बादशाह कहते हैं कि चीन के मुल्क में एक बादशाह था कि नै शेरवाँ के से आदलत और हातिम के से सखावत ऊस की ज़ात में थी। और ऊस के वक़्त में रिआइत आबाद और खज़ाना मअमूर, लश्कर मरफअ उल हाल और गरीब गुरबा ऐसे चीन से गुज़राँ करते और खुश रहते थे। हर एक घर में दिन ईद और शबबारात थी। उस बादशाह को एक बेटा था नाम उसका मुअज़म शाह था।"

इसमें एक प्रेम कहानी है। वास्तव में यह भी अन्य प्रेम गाथाओं की भाँति साहित्यिक महत्व की है किन्तु इसमें अलौकिक प्रेम का अभाव है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह रचना खड़ी बोली के बहुत निकट है।

मलूकुज़्ज़मा व काम कन्दला

यह पुस्तक अंग्रेज़ों को शिक्षा देने के लिए दक्षिण में तैयार की गई थी। इसके अनुवादक ने स्पष्ट किया है कि यह फारसी मसनवी 'जवाहर सुखन' का दक्खिनी अनुवाद है। इस ग्रन्थ के कुछ वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

"कहते हैं किसी मुल्क में एक शहर आबाद है वहाँ के बादशाह का नाम काम बख्श और बादशाह बड़ा आदिल और शुजाअत व सखावत में बेनजीर। इस असर के बादशाहाँ और सलातीन पर जामा आमूर में बुज़ुर्गी रखता था, मुल्क में खजाना और लश्कर बहुत था मगर कोई औलाद उसको न थी, उसको एक वज़ीर था, वह भी लाऔलाद था। बादशाह और वज़ीर रात दिन दरगाह-ए-इलाही में अपने को फरज़न्द होने की खातिर दुआ माँगने और फ़ुक़राँ से अअनात चाहते। मदाम दरवेशाँ और मसाकीन की खिदमत गुजारी करते कितेक रोज़ के बाद खुदा का फज़ल वजीर और बादशाह पर हुआ। हरदू की औरताँ कीती अमल और दोनों को फरज़न्दाँ तोलद हुए बादशाह अपने नूर चश्म का नाम कामराँ और वज़ीर अपने फरज़न्द का नाम काम सबरव रखा। और दोनों एक जगह परवरिश होने लगे।"

काम रूप

फोर्ट विलियम कालेज में कुन्दन लाल जी ने सन् 1849 ई० में इसका अनु-

वाद किया था। किन्तु दक्षिण में इस पुस्तक का अनुवाद हिजरी सन् 1248 (1831 ई०) में हुआ। उदाहरणार्थ कुछ अंश प्रस्तुत हैं :—

"सरान्दीय एक राजा था, उसको माल व दौलत हासिल था, मगर औलाद नहीं थी। एक फ़क़ीर की दुआ से उसको लड़का तौलद हुआ। इसका नाम कुँवर काम रूप रखा गया जब वह चौदह साल का हुआ उसके लिए एक बाग़ तैयार किया गया। काम रूप को शिकार का शौक था। इसलिए तमाम क़िस्म के जानवर उस महल में फराहम किए गये थे, ताकि सुबह को शिकार करे और शाम में महफिल निशात गर्म रहे, शहज़ादे के साथ उसके छः रफीक थे, उनमें एक वज़ीर का लड़का। दूसरा पंडित का लड़का, तीसरा हकीम का लड़का, चौथा मसूर का लड़का, पाँचवाँ जोहरी का लड़का, छठा मौसीक़ी दाँ का लड़का था, एक रात काम रूप ख्वाब में एक हसीना को देखकर आशिक़ हो गया, माशूक की तलाश में शाहज़ादा और उसके तमाम रफ़ीक़ रवाना हुए।"

इससे स्पष्ट है कि दक्खिनी गद्य में धार्मिक पुस्तकों की रचना के साथ-साथ प्रेम कथाओं का भी चलन था। जो कहानियाँ दक्खिनी गद्य में मिलती हैं उनमें सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं का भी चित्रण है। इन कथाओं का विषय राजा का नि:सन्तान होना, योगी के योग से सन्तान का होना, राजकुमार के बड़े होने पर प्रेम में फँस जाना और प्रेमिका की खोज में घर से निकल जाना और प्रेमिका को लेकर घर वापस आना आदि है। इन प्रेम कथाओं में लौकिक एवं अलौकिक दोनों तत्व पाए जाते हैं।

□ □

सहायक ग्रन्थ

प्रकाशित ग्रन्थ

अब्दुल हक़ :

सबरस (मुल्ला वजही) अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान) 1962 ई०

गुलशन-ए-इश्क (मुल्ला नुसरती) अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान) 1961 ई०

मेराजुल आशकीन (बन्दा नवाज) ताज प्रेस, छत्ता बाज़ार, हैदराबाद

उर्दू की इब्तदाई नशोनुमा में सूफिया-ए-कराम का काम, अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान) 1953 ई०

मुल्ला नुसरती, अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान) 1931 ई०

कुतुब मुश्तरी (वजही) अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान) 1953 ई०

अब्दुल कादर सरवरी :

किस्स-ए-बेनज़ीर, मजलिस इशाअत दकनी मखतूतात, हैदराबाद, 1357 हिजरी

फूलबन, सिलसिला युसूफिया, हैदराबाद, 1357 हिजरी

फेरिस्त मखतूतात, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1929 ई०

कुल्लियात-ए-सिराज, मजलिस इशाअत दकनी मखतूतात, हैदराबाद

उर्दू मसनवी का इर्तेका, एजूकेशनल बुक हाउस, मुस्लिम यूनिवर्सिटी मार्केट, अलीगढ़, 1975 ई०

अब्दुल मजीद सालिक :

मुस्लिम सकाफत हिन्दुस्तान में, इदार-ए सक़ाफात इस्लामिया, लाहौर, 1957 ई०

अब्दुल मजीद सिद्दीकी :

हिस्ट्री आफ गोलकुण्डा, लिटरेरी पब्लिकेशन, हैदराबाद, 1956 ई०

अलीनामा (नुसरती) सालारजंग दक़नी पब्लिशिंग्स कमेटी, हैदराबाद, 1959 ई०

अब्दुस्सत्तार दलवी :

मनसमझावन (शाह तुराब), मक्तबा जामिया लि०, बम्बई, 1965 ई०

अली अहसन महरवी :

कुल्लियात-ए-वली, अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान), 1957 ई०

आशिर्वादी लाल श्रीवास्तव :

मुग़ल इम्पायर, शिवलाल अग्रवाल, आगरा, 1957 ई०

आर० सी० मजूमदार, एच० सी० रे०, चौधरी एण्ड दत्ता :

एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, मैकमिलन एण्ड संस, लन्दन, 1958 ई०

इक़बाल अहमद :

मिर्ज़ा अब्दुर्रहमान प्रेमी कृत नख-शिख, महात्मा गाँधी मेमोरियल रिसर्च सेन्टर, बम्बई, 1972 ई०

सूफ़ी कवि और काव्य, संध्या पब्लिकेशन्स, कालीकट विश्वविद्यालय, 1979 ई०

मध्यकालीन संस्कृति को सूफी कवियों का योगदान, संध्या पब्लिकेशन्स, कालीकट यूनीवर्सिटी, 1982 ई०

ईश्वरी प्रसाद :

ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुग़ल रूल इन इण्डिया, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1939 ई०

ए० एम० ए० शुस्तरी :

आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर, मकतबा हैदरी, हिजरी 1284, हैदराबाद

काज़ी नूर मुहम्मद :

पंछो नामा (वजदी)

कामता प्रसाद गुरु :

हिन्दी व्याकरण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 2027 वि०

के० ए० नीलाकान्ता शास्त्री :

एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इण्डिया, एलाइड पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1970 ई०

के० ए० अशरफ :

लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ दिपिवपुल आफ हिन्दुस्तान, मुंशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली, 1970 ई०

गोपीचन्द नारंग :

हिन्दुस्तानी किस्सों से माखूज़ उर्दू मसनवियाँ, मक्तबा जामिया, नई देहली, 1962 ई०

मेराजुल आशकीन, आज़ाद किताब घर, दिल्ली

गुलाम उमर खाँ :

लैला मजनूं (आज़िज़) उर्दू विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1968 ई०

मैना सतवन्ती, उर्दू विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1965 ई०

ग्यान चन्द जैन :

शुमाली हिन्द की नस्री दास्तानें—अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान) 1954 ई०

ज़हीरुद्दीन फारूक़ी :

औरंगज़ेब एण्ड हिज़ टाइम्स, इदार-ए-अदबियात, दिल्ली, 1972 ई०

जमील जालबी :

तारीख-ए-अदब उर्दू, उर्दू बाजार, लाहौर (पाकिस्तान), 1977 ई०

जदु नाथ सरकार :

हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब, सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता, 1914 ई०

जीवन प्रकाश जोशी :

निबन्ध नवनीत, साधना प्रकाशन, भागलपुर, 1970 ई०

टी० ग्राहम बेली :

ए हिस्ट्री आफ़ उर्दू लिट्रेचर, एसोसियेशन प्रेस, एस० रस्सेल स्ट्रीट, कलकत्ता

दशरथ राज :

दक्खिनी हिन्दी का प्रेम गाथा काव्य, सेतु प्रकाशन, झाँसी, 1969 ई०

देवी सिंह चौहान :

फूलबन (निशाती) महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा, पुणे, 1966 ई०

तारीखे इस्कन्दरी, महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा, पुणे, 1969 ई०

जंगनामा अली खाँ, महाराष्ट्र, राष्ट्र भाषा सभा, पुणे, 1968 ई०

देवेन्द्र कुमार शास्त्री :

भाषाशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1973 ई०

धीरेन्द्र वर्मा :

हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1949 ई०

नसीरुद्दीन हाशमी :

दकन में उर्दू, नसीम बुक डिपो, लखनऊ, 1963 ई०

यूरोप में दक्खिनी मखतूतात, शम्सुल मतबा, हैदराबाद, 1932 ई०

नगेन्द्र :

भारतीय वाङ्मय, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, 2015 वि०

नीलकंठ शास्त्री :
ए हिस्ट्री आफ साउथ इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1955 ई०
परमेश्वरी लाल गुप्त :
चन्दायन (मुल्ला दाऊद), हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1964 ई०
मिरगावती (कुतबन), हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1966 ई०
परशुराम चतुर्वेदी :
भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, राजकमल, दिल्ली, 1956 ई०
हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1962
हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, चतुर्थ भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2025 वि०
परमानन्द पांचाल :
हिन्दी के मुस्लिम साहित्यकार, भारत भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1971 ई०
पीताम्बर बड़थ्वाल :
गोरखबानी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2003 वि०
बाबू राम सक्सेना :
दक्खिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1952 ई०
भगीरथ मिश्र और राजनारायण मौर्य :
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पूना विश्वविद्यालय, पूना, 1964 ई०
भगीरथ मिश्र :
काव्य शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, 1957 ई०
भोलानाथ तिवारी :
भाषा विज्ञान, किताब महल प्रा० लि० इलाहाबाद, 1965 ई०
मसऊद हुसेन खाँ :
कदीम उर्दू (चारों भाग), उर्दू विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1965 ई०
मसऊद हुसेन खाँ :
दक्खिनी लोगत, उर्दू विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद
इब्राहीम नामा, उर्दू विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1969
महमूद खाँ शिरानी :
पंजाब में उर्दू, उर्दू बाजार, लाहौर (पाकिस्तान), 1949 ई०
माता प्रसाद गुप्त :
चांदायन (मुल्ला दाऊद) प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, 1967 ई०
मृगावती (कुतबन) प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, 1962 ई०

मधुमालती (मंझन) मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1961 ई०
पद्मावत (जायसी), भारती भण्डार, प्रयाग, 1963 ई०

मीर साअत अली रिज़वी :
तूती नामा (मुल्ला गवासी) मजलिस इशाअत दकनी मखतूतात, हैदराबाद, हिजरी 1357

मुइनुद्दीन अहमद नदवी :
हिन्दुस्तान के मुसलमान हुक्मरानों के तमद्दुनी कारनामें, दारुल मुसन्नफीन, आजमगढ़, 1964 ई०

मुहम्मद बिन उमर :
वजीहुद्दीन वजदी मकतबा इब्राहीमिया, हैदराबाद, 1954 ई०
कुल्लियात गवासी, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद, 1959 ई०

मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी :
चन्दर बदन व महयार (मुक़ीमी) मजलिस इशाअत दकनी मखतूतात, हैदराबाद, 1940 ई०
बुझते चिराग, नेशनल फाइन प्रिंटिंग प्रेस, हैदराबाद
कलमतुल हक़ायक़, (जानम), इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद, 1961 ई०
रिज़वान शाह व रूह अफ़ज़ा (फायज़) सिलसिला युसुपिया, हैदराबाद, 1956 ई०

मुहम्मद अली मिर्जा :
रौज़तुल औलिया, बीजापुर

मुहम्मद मुबीन कैफ़ी :
जवाहर-ए-सुखन (तीनों भाग), हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1933-35 ई०

मुहम्मद अब्दुल जब्बार खाँ मलकापुरी :
शुअरा-ए-दकन, मतबा-ए-रहमानी, हैदराबाद, हिजरी 1329
औलिया-ए-दकन, मतबा-ए-रहमानी, हैदराबाद, हिजरी 1325

मुहम्मद फिदा अली :
तारीख-ए-फरिश्ता, जाम-ए-उसमानिया हैदराबाद, द्वितीय भाग, 1927 ई०
तृतीय भाग, 1928 ई०
चतुर्थ भाग, 1932 ई०

मुहम्मद सखावत मिर्जा :
मन लगन (बहरी) अन्जुमन तरक्की-ए-उर्दू, करांची (पाकिस्तान), 1951 ई०

मुहम्मद हुसेन मनाज़िर :

कश्फुल महजूब (दाता गंज बख्श) मलिक दीन मुहम्मद एण्ड सन्स, इशाअत मंज़िल, लाहौर (पाकिस्तान)

यूसुफ हुसेन :

ग्लिम्पसेस आफ इण्डियन कल्चर, पब्लिशिंग हाउस, न्यूयार्क, 1959 ई०

रघुपति सहाय 'फिराक' गोरखपुरी :

उर्दू भाषा और साहित्य, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, 1962 ई०

रफिया सुलताना :

कलमतुल हक़ायक़, मजलिस तहकीकात उर्दू, हैदराबाद, 1961 ई०

राजकिशोर पाण्डेय :

दक्खिनी का प्रारम्भिक गद्य, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1960 ई०

राहुल सांकृत्यायन :

दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1959 ई०

हिन्दी काव्य धारा, किताब महल, प्रयाग, 1945 ई०

राधे श्याम :

दी किंगडम आफ अहमदनगर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966 ई०

राम बाबू सक्सेना :

तारीख-ए-अदब उर्दू (मिर्जा मुहम्मद अस्करी), राजकुमार प्रेस (नवल किशोर), लखनऊ, 1952 ई०

रामचन्द्र शुक्ल :

हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 2025 वि०

जायसी ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 2028 वि०

रामपूजन तिवारी :

सूफी मत साधना और साहित्य, ज्ञान मण्डल, वाराणसी, सं० 2025 वि०

हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, ग्रन्थ वितान, पटना, 1960 ई०

लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय :

हिन्दी साहित्य का इतिहास, महामना प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, 1964 ई०

रामचन्द्र तिवारी :

हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

राजकिशोर पाण्डेय और मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी :

सैफल मुलूक व बदीउज्जमाल, दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, 1955 ई०

वहीद कुरेशी :
मुकदमा शेर व शायरी, एजूकेशनल बुक हाऊस, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी मार्केट, अलीगढ़, 1975 ई०

वाचस्पति गैरोला :
संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1960 ई०

विमला वान्ध्रे और नसीरुद्दीन हाशमी :
कुतुब मुश्तरी (वजही) दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, 1954 ई०

विनय मोहन शर्मा :
हिन्दी साहित्य को मराठी सन्तों की देन, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, 1957 ई०

शिव गोपाल मिश्र :
कुतबन कृत मृगावती, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, शक 1855
मंझन कृत मधुमालती, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

शिबली नोमानी :
शेरुल अजम, मारूफ प्रेस, आजमगढ़, 1923 ई०

शेख मुहम्मद इकराम :
आब-ए-कौसर, मर्केन्टाइल प्रेस, लाहौर (पाकिस्तान), 1940 ई०
मौज-ए-कौसर, फिरोज़ एण्ड सन्स, लाहौर (पाकिस्तान), 1958 ई०
चश्म-ए-कौसर, ताज आफिस, मुहम्मद अली रोड, बम्बई–3

शौक़त सब्जवारी :
उर्दू ज़बान का इर्तेका, पाक किताब घर, ढाका, 1956 ई०

श्याम मनोहर पाण्डेय :
मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1961 ई०

श्रीराम शर्मा और मुबारिजुद्दीन रफत :
अली आदिल शाह का काव्य संग्रह, क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा 1958 ई०

श्रीराम शर्मा :
दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, 1954 ई०
सबरस (वजही) दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, 1955 ई०
दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1964 ई०
दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, दक्षिण प्रकाशन, हैदराबाद, 1972 ई०

सत्येन्द्र :
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1960 ई०

सरयू प्रसाद अग्रवाल :
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० 2007 वि०

सावित्री सिन्हा :
पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1961 ई०

सुनीत कुमार चाटुर्ज्या :
भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1954 ई०

सैयद शहाबुद्दीन अबदुर्रहमान :
बज़्म-ए-सूफिया, दारुल मुसन्नफीन, आजमगढ़ (उ० प्र०)
बज़्म-ए-तैमूरिया, दारुल मुसन्नफीन, आजमगढ़ (उ० प्र०)

सैयद सुलेमान नदवी :
अरब व हिन्द के तालुकात, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1930 ई०

सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर :
कुल्लियात-ए-मुहम्मद कुली कुतुब शाह, सालारजंग दकनी मखतूतात प्रकाशन समिति, हैदराबाद, 1940 ई०
दकनी अदब की तारीख, यूनियन प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली
मुरक्क-ए-सुखन मकतबा इब्राहीमिया, हैदराबाद, 1937 ई०

सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर :
उर्दू शहपारे, मकतबा इब्राहीमिया, हैदराबाद, 1929 ई०
इरशाद नामा (जानम) इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद
तज़किरा उर्दू मखतूलात-इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद,
तीसरा भाग, 1957 ई०
चौथा भाग, 1958 ई०
पांचवां भाग, 1959 ई०

सैयद मुहम्मद :
रिज़वान शाह का अफ़ज़ा (फायज़) मजलिस इशाअत दकनी मखतूतात, हैदराबाद
पंछी बाछा (वजही)

सैयद अबुल हसन अली नदवी
मुस्लिम इन इण्डिया, अकादमी आफ इस्लामिक रिसर्च एण्ड पब्लिकेशन, लखनऊ, 1976 ई०

सैयदा जाफर :
मन समझावन (शाह तुराब) अबुल क़लाम आज़ाद ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, हैदराबाद, 1964 ई०

सैयद मुहम्मद हफीज :
कुल्लियात-ए-बहरी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1937 ई०

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी :
हिन्दी साहित्य (उद्भव और विकास) अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स—दिल्ली, 1955 ई०

हकीम सैयद शम्सुल्लाह क़ादरी :
उर्दू-ए-क़दीम, तेज कुमार प्रेस, लखनऊ, 1967 ई०

हफ़ीज़ क़तील :
दीवान-ए-हाशमी, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद, 1961 ई०

हारुन खाँ शेरवानी :
दी बहमनीज़ आफ दी डेक्कान, सऊद मंज़िल, हिमायत नगर, हैदराबाद, 1953 ई०
दकनी कल्चर, उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1971 ई०

अप्रकाशित ग्रन्थ :

अमीन :
युसुफ ज़ुलेखा, सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद

असरफ :
जंगनामा, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद
नौसिर हार, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद

अली बख्श दरिया :
वफात नामा, इदार-ए-दिबियात, उर्दू, हैदराबाद

आबिद शाह :
कुन्जुल मोमनीन, सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद

आरिफुद्दीन आजिज :
राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

ख्वाजा बन्दा नवाज गेसूदराज :
दुर्रुल अस्रार, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद
शिकार नामा, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

नवाजिश अली शैदा :
एज़ाज़ अहमद, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद
रौज़तुल इज़हार, सालारजंग म्युज़ियम पुस्तकालय, हैदराबाद

नूरे दरिया कादरी :
    रिसाला तसव्वुफ, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

फतह शरीफ :
    दंद नामा लुकमान, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

बाकर आगाह :
    अक़ायद नामा, बालाजाही पुस्तकालय, मद्रास
    हश्त बहिश्त, बालाजाही पुस्तकालय, मद्रास

बुलबुल :
    चन्दर बदन व महयार, इदार-ए-अदबियात, उर्दू, हैदराबाद

मीरा याकूब :
    तर्जुमा शुमाहतुल अत्किया, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

मीराँ जी हसन खुदानुमा :
    शहर तमहीद हमदानी, सालार जंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद

मीराँ जी शम्सुल उश्शाक :
    सबरस, सालारजंग म्यूजियम पुस्तकालय, हैदराबाद

मुजफ्फर :
    महर व माह, सालार जंग म्यूजियम पुस्तकालय, हैदराबाद

शाह तुराब चिश्ती :
    गंजुल अस्रार, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद
    गुलज़ार-ए-वहदत, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद
    ग्यान सरूप, सालारजंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद
    जहूर-ए-कुल्ली, सालारजंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद
    मनसमझावन, जामा मस्जिद पुस्तकालय, बम्बई

सनअती :
    मसनवी गुलदस्ता, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

सैयद मुहम्मद खाँ इशरती :
    चित्त लगन, सालारजंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद
    दीपक पतंग, सालारजंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद

सैयद मुहम्मद हुनर :
    नेह दर्पण, सालारजंग म्युजियम पुस्तकालय, हैदराबाद

सैयद हुसेन अली खाँ :
    मरग़ूबुल तबा, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद

सैयद मुहम्मद फिराकी :
मरातुल हश्र, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

सैयद उमीदी :
शमा व परवाना, श्री अहमद खाँ दरवेश के व्यक्तिगत पुस्तकालय, हैदराबाद

हाशमी :
युसुफ जुलेखा, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

हातिम दकनी :
किस्सा हुस्न व दिल, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, हैदराबाद

पत्र-पत्रिकाएँ :

आज कल :
दिसम्बर, 1975 ई०, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली

इस्लामिक कल्चर :
जनवरी, 1965 ई०, जनवरी, 1967 ई०, इस्लामिक कल्चर बोर्ड, हैदराबाद

इन्कलाब (दैनिक) :
इन्कलाब आफिस, बम्बई

उर्दू अदब :
अम्बर शुमारा, 2, 1966 व 1967 ई०, अन्जुमन तरक्की उर्दू (हिन्द), अलीगढ़

जामिया :
जनवरी, 1976 ई०, जामिया इस्लामिया, दिल्ली

नवा-ए-अदब :
जनवरी-मार्च, 1950, अप्रैल-जून, 1954, जनवरी-मार्च, 1956, जुलाई-सितम्बर, 1966 ई०, अन्जुमन इस्लाम रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बम्बई

मआरिफ :
जुलाई, 1978 ई०, दारुल मुसन्नफ़ीन, आजमगढ़

विश्व भारती पत्रिका :
जुलाई, 1969 ई०, शान्तिनिकेतन, पश्चिम बंगाल

शोध पत्रिका :
अप्रैल-जून, 1974 ई०, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

सबरस :
जनवरी, 1960 ई०, इदार-ए-अदबियात उर्दू, हैदराबाद

हिन्दुस्तानी ज़बान :
अक्टूबर, 1973 व अक्टूबर, 1976 ई०, महात्मा गांधी मेमोरियल रिसर्च सेन्टर, बम्बई

हिन्दुस्तानी :
अप्रैल, 1934 ई०, अप्रैल 1936 ई०, अक्टूबर, 1937 ई०, अप्रैल, 1940 ई०, अक्टूबर, 1976 ई०, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद ।

□ □